वैदिक विवाह

[श्रीमाथुर चतुर्वेदी समाज में प्रचलित]

: लेखक :
श्री खरग राम चतुर्वेदी,
एडवोकेट

: प्रकाशक :
श्री माथुर चतुर्वेदी सभा,
कलकत्ता

वैदिक विवाह

[श्रीमाथुर चतुर्वेदी समाज में प्रचलित]

: लेखक :

श्री खरग राम चतुर्वेदी,

एडवोकेट

: प्रकाशक :

श्री माथुर चतुर्वेदो सभा,

कलकत्ता

: प्रकाशक :
श्री रामलाल चतुर्वेदी, बी० ए०, सी० टी०
सभापति
११ए, गोपाल बोस लेन,
कलकत्ता-६

: प्राप्तिस्थान :
श्री गिरिजाशंकर चतुर्वेदी
२६सी, कालीदत्त ष्ट्रीट,
कलकत्ता-५

[वैशाखी, संवत् २०२३ वि०]

* मूल्य— छै रुपये *

: बांइण्डिङ्ग :
रवि बुक बाइन्डिङ्ग वर्कास
११नं० सिमला ष्ट्रीट,
कलकत्ता-६

: मुद्रक :
श्रीसुनील कुमार रुद्र
रुद्र एण्ड कं० प्रा० लि०
(प्रिंण्टिङ्ग सेक्शन)
३२, मदन मित्र लेन,
कलकत्ता-६

पितृश्री



* श्री भगवान दास जी चतुर्वेदी *

★

जन्म—होलीपुरा, सम्वत् १९३२

साकेतवास—होलीपुरा, सम्वत् १९९६

समर्पण

卐

हृदय की समस्त श्रद्धा

एवम्

पूर्ण भक्ति के साथ

यह तुच्छ कृति

पूज्य पिताजी

श्री भगवानदास जी चतुर्वेदी

की पुण्य स्मृति में

सादर समर्पित है।

卐

—हरगराम

पितृश्री



* श्री भगवान दास जी चतुर्वेदी *

★

जन्म—होलीपुरा, सम्वत् १९३२

साकेतवास—होलीपुरा, सम्वत् १९९६

समर्पण

卐

हृदय की समस्त श्रद्धा

एवम्

पूर्ण भक्ति के साथ

यह तुच्छ कृति

पूज्य पिताजी

श्री भगवानदास जी चतुर्वेदी

की पुण्य स्मृति में

सादर समर्पित है।

卐

—खरगराम

प्रेमोपहार

卐

सेवा में—

श्रीमान् HAR KUMAR JI CHATURVEDI

प्रिय भाई साहब !

शुद्ध भ्रातृ-प्रेम एवं
श्रद्धापूर्ण पालागन के
साथ "वैदिक-विवाह"
का प्रेमोपहार स्वीकृत
कर हमें बाधित करने
की कृपा करें ।

श्री माथुर चतुर्वेदी सभा,
कलकत्ता—
की ओर से—

वक्तव्य

[लेखक—श्रीरामलाल जी चतुर्वेदी (सभापति)]

दिनांक २५ मई, १९५२, के शुभ-दिन, "श्री माथुर चतुर्वेदी सभा, कलकत्ता" की स्थापना का प्रधान उद्देश्य कलकत्ता प्रवासी चतुर्वेदी बन्धुओं की सर्वाङ्गीन उन्नति करना ही था। किन्तु कलकत्ता चतुर्वेदी समाज में सभी मथुरान्त का प्रतिनिधित्व लक्ष करते हुये, सभा की कार्य-विधि का दायरा बढ़ाना ही उचित समझा गया। प्रथम नव-प्रयोग था, कि सभा की सदस्यता कलकत्तास्थ सभी बालिग़ चतुर्वेदी बान्धवों का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाय; और यह बात दिनांक १० अगस्त, १९५२, को पारित सभा के विधान में ही लिख दी गयी। शिक्षा के क्षेत्र में चतुर्वेदी बालकों की सेवा-सहायता भी अखिल भारतीय भित्ति पर ही की गयी। सन्तोष की बात है, कि संवत् २०१२-१३ से संवत् २०२२-२३ तक की छात्र-वृत्ति की सेवा-सहायता का कुल जोड़ १४८२२)४५ रुपये पर पहुँच गया है। इसके अतिरिक्त, श्रीचतुर्वेद विद्यालय, मथुरा, के सुसंचालन हेतु हो रहे मुकदमें के लिये भी इस सभा द्वारा दो हज़ार रुपये से अधिक की धन-राशि भेजी जा चुकी है।

साहित्य के क्षेत्र में, सभा द्वारा आयोजित साहित्य-गोष्ठीं एवं कविता-सम्मेलन स्थानीय चतुर्वेदी बान्धवों तक ही सीमित न रक्खे गये, प्रत्युत कलकत्ता विश्वविद्यालय के दिग्गज प्राध्यापक एवं वङ्गीय हिन्दी साहित्य परिषद् के प्रधान कार्यकर्त्ता गण, सभा द्वारा आयोजित गोष्ठियों में बराबर कृपा-पूर्वक सक्रिय भाग लेते आये हैं।

साहित्य के क्षेत्र में लेखन व पुस्तक-प्रकाशन की ओर भी सभा का प्रयास "रङ्ग झर बरसै री" के साथ प्रारम्भ हुआ। लुप्त हो रहे समाज-प्रचलित वसन्त-गीतों को लिपिबद्ध प्रकाशन के प्रकोष्ठ में

रख कर सभा ने उनकी रक्षा का एक प्रयास किया। यह प्रथम ही प्रयास था, और इस दृष्टि से प्रशंसित और उपयोगी बताया गया।

"वैदिक विवाह" सभा का द्वितीय प्रकाशन-प्रयास है। यद्यपि प्रारम्भ में यही विचार किया गया था, कि इस पुस्तक में समाज में प्रचलित रीति रस्म ही लिख दिये जाँय, ताकि वह लिपिबद्ध होने से विवाहादि के अवसर पर उपयोग में लाये जा सकें; किन्तु प्रस्तुत पुस्तक का क्षेत्र व विषय-वस्तु उस विचार से बहुत ही आगे बढ़ गये। प्रस्तुत प्रकाशन समाज के सम्मुख रखते हुये सभा को हर्ष व गौरव का अनुभव हो रहा है। यदि पुस्तक समाज-सदस्यों को रुचिकर प्रतीत हुयी, तो सभा अपने प्रयास को सफल समझेगी।

पुस्तक की विषय-वस्तु और उपयोगिता को दृष्टिगोचर रखते हुये सभा ने एक और नूतन प्रयोग करना उचित समझा। पुस्तक प्रत्येक चतुर्वेदी-परिवार में पहुँच जाय, और सो भी सभा की ओर से भ्रातृप्रेम के उपहार-रूप, तुच्छ-भेंट के तौर पर, सभा द्वारा सादर अर्पित; और फिर समाज इसे अपनाये, तो सभा अपने को धन्य समझेगी। हमारा प्रयास होता कि हम ऐसे ही उपहार-भेंट रूप में पुस्तक अपने प्रत्येक भाई-बहिन के हाथ तक पहुँचा सकते; परन्तु हम अपनी सीमाओं में बँधे, मन-कचोटते, विवश रह गये। आशा है, बन्धु-गण व बहिनें हमारी बेबसी को क्षमा करेंगे।

हमारा विश्वास है कि समाज में सुसाहित्य का प्रचार एक बड़ा ठोस और निर्माण-कारी क़दम है। हमने तो समाज-सितार के तारों को छेड़कर झनझना भर दिया है, हमारी प्रौढ़ श्री माथुर चतुर्वेदी महासभा, विभिन्न स्थानों की स्थानीय चतुर्वेदी सभाएं एवं समाज के ख्यातनामा सफल कवि, लेखक, शोधक, आदि यदि कोई ऐसा प्रतिष्ठान बनाने में सफल हों, जिससे सुसाहित्य-सृजन की व समाज में उसके प्रचार आदि की व्यवस्था होती रहे, तो यह बहुत ही श्रेयस्कर व

उपयोगी कार्य होगा। जहाँ सुन्दर जलसों व वक्तृताओं का प्रभाव केवल तत्सामयिक और क्षणिक होकर बहुत-कुछ वहीं विलीन हो जाता है, वहाँ प्रकाशित सुसाहित्य भविष्य की पीढ़ी-दर-पीढ़ी को प्रकाश पहुँचाता रहता है। हमें विश्वास है, कि यदि ऐसा कुछ प्रयास हुआ, तो कलकत्ता सभा उस ओर अपने पूर्ण सहयोग में पीछे न रहेगी।

विद्वान लेखक श्री खरगराम जी ने इस ओर जो परिश्रम किया है, उसके हेतु सभा उनके प्रति अपना गहरा आभार प्रकट करती है। पूज्य डिप्टी साहब राधेलाल जी चतुर्वेदी ने Introduction लिख कर पुस्तक एवं सभा का जो गौरव बढ़ाया है, उसके लिये मैं सभा की ओर से आभार प्रकट करता हूँ। जिन-जिन अन्य बन्धुओं व सज्जनों ने प्रकाशन-कार्य में सहयोग दिया है, सभा उनके प्रति भी अपना आभार प्रकट करती है; और आशा करती है कि भविष्य में भी वे सभा के कार्यों में इसी प्रकार सहयोग देते रहेंगे।

अत्यन्त ध्यान से प्रूफ संशोधन करने पर भी, छापेखाने की पुरानी मशीन में छपते-छपते, कहीं-कहीं मात्रा का ऊपर वाला अंश टूट गया है। विद्वान पाठक हमें इस हेतु क्षमा करते हुये भूल सुधार कर लेंगे, यही प्रार्थना है। शुद्धि-पत्र अन्यत्र, पृष्ठ ४५६ पर, प्रकाशित है। सप्रेम—

—रामलाल चतुर्वेदी

सभापति

श्रीमाथुर चतुर्वेदी सभा,

कलकत्ता

लेखक का निवेदन

अपने गाँवों से वि-केन्द्रित (De-centralised) होने के फलस्वरूप, हमें अपनी रीति-रस्म जानने और याद रखने का उतना अवसर नहीं मिलता, जितना आज से कुछ वर्षों पहले, ग्राम में सबके साथ रह कर, मिलता था। आधुनिक शिक्षा के चकाचौंध ने भी, कुछ अंशों में, अपनी पुरानी रीति-रस्म के प्रति हमारी आस्था कम कर दी है। फल यह हुआ, कि जब विवाह-शादी का कार्य आ-जाता है, तो हँमें दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है, और फिर अवसर पर जैसा बन पड़ा, जैसा बताने-वाले नें बता दिया, वैसा कर-धर देते हैं। रीति-रस्म को सामाजिक ऐक्यता इसी प्रकार ढीली पड़ रही है।

हमारी प्रचलित रीतियाँ प्रायः शास्त्रीय विधि-निषेध पर ही आधारित हैं। फिर भी, जिस देश में यवन आक्रान्ताओं द्वारा धार्मिक-ग्रन्थों के पन्ने हम्मामों में पानी गरम करने के काम में लाये गये हों, उस देश का धार्मिक-साहित्य किस अवस्था में होगा, यह भली भाँति अन्दाज़ किया जा सकता है। और हमारा यह अन्दाज़ भी असङ्गत न होगा, कि वह परम्परायें भी, जो प्राप्त धार्मिक-साहित्य पर आधारित ज्ञात नहीं होतीं, सम्भवतः उस शास्त्र-खंड पर आधारित हों, जिसने यवन हम्मामों में बेगमों के स्नानार्थ गरम जल प्रस्तुत किया था।

फिर भी, यह आवश्यक है कि हम प्रचलित रीति-रस्म को आज की तार्किक उपयोगिता की कसौटी पर परखें; और उनमें से नीर-क्षीर विवेक से स्वस्थ एवं सुन्दर परम्पराओं का चयन करें।

श्री माथुर चतुर्वेदी सभा, कलकत्ता, में कई वर्षों से यह चर्चा चल रही थी, कि अपने विवाहादि की रीति-रस्म को पुस्तक रूप में लिपिबद्ध करके छपाने का प्रयास करना सर्वथा उचित है। स्वर्गीय भगवती

प्रसाद जी पाठक ने यह चर्चा आरम्भ की थी, कि माथुर चतुर्वेदी समाज में प्रचलित वैवाहिक रीति-रस्म पुस्तक-रूप में लिखी जाँय। दुःख है, कि वह प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन न देख सके।

जब यह कार्य मुझे सौंपा गया, तो अपनी अल्पज्ञता एवं अनुभव-हीनता को देखते हुये मेरा साहस ही न हुआ, कि मैं इसे आरम्भ करूँ। किन्तु मित्रों के दबाव और सहयोग की प्रतिज्ञा के बल पर, प्रयोग के तौर पर, मैंने प्रयास करना स्वीकार कर लिया। पुस्तक के द्वितीय एवं तृतीय खण्ड में उल्लिखित रीति-रस्म, यही मेरा विचार, इरादा और दायरा था। कुछ स्वयं मालूम था, कुछ दूसरों से पूँछा। सब से अधिक ज्ञान मिला ज्योतिर्विद याज्ञिक चतुर्वेदी कैलाशनाथ-जी गुरू (मथुरा) से। पुस्तक के यह दो खण्ड, जो मेरी समझ में सम्पूर्ण पुस्तक थी, जैसे-तैसे प्रस्तुत किये, और पाठक-जी बड़े हर्ष के साथ इन्हे पृथ्वीनाथ जी (होलीपुरा) के पास ले गये; यह दिखाने के लिये कि सभा यही चाहती है, या और कुछ।

यह सभी को ज्ञात है कि पूज्य डिप्टी साहब श्रीराधेलाल जी का धर्म-शास्त्र अध्ययन व ज्ञान सभी विषयों पर बहुत अधिक है। हम पूज्य डिप्टी साहब से इस विषय में मिले। बड़े स्नेह से उन्होने इसके कुछ अंश सुने; और फिर उन्होंने हमें विवाह-विषयक बहुत से धर्मशास्त्र वाक्य सुनाये, जो उन्हें कण्ठस्थ थे। हमें उनके अध्ययन-ज्ञान पर (पहले से भी) और अधिक श्रद्धा बढ़ी। उन्होने यही कहा—"If you want to write a book on this subject, better read Shastras, and then write. Your book must have some research value."

और मैंने सोच लिया, कि यह काम अपने से पूरा होने का नहीं। टूटा साहस भाई पृथ्वीनाथ जी (होलीपुरा) ने फिर से बँधाना प्रारम्भ किया। पूज्य डिप्टी साहब ने बहुत सी पुस्तकों के नाम बताये थे। भाई

पृथ्वीनाथ-जी ढूँढ़ ढूँढ़ कर पुस्तकें लाने लगे, स्वयं पढ़-पढ़ कर और Flag-mark निशान लगा-लगा कर! और उन्होने जैसे मुझे पुस्तकों से लाद दिया। कुछ दुष्प्राप्य पुस्तकें मुझे अपने वकील-मित्र श्री आनन्द मुखर्जी ने दीं, जिनसे भी मैंने यह सब चर्चा की थी। इसी प्रकार कच्चे-पक्के अ-पचित (undigested) पुस्तक-पाठ के आधार पर, प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम खण्ड—"वैदिक वाङ्मय"—लिखा गया। इस ओर मुझे श्री पृथ्वीनाथ जी की कृपा से पंडित श्रीरामकरण जी शास्त्री से भी सहायता मिली।

सभा के कार्य-कर्त्ताओं के अनुरोध पर पूज्य डिप्टी साहब ने पुस्तक के लिये Introduction लिखने का भार भी स्वीकार कर लिया; यह मुझ पर उनके प्रगाढ़-स्नेह का ही प्रतीक है। पुस्तक की सुन्दरता और उपयोगिता इससे चौगुनी बढ़ गयी।

पुस्तक प्रेस में देने की बात पक्की हो गयी। परन्तु भाई साहब गिरिजा शंकर जी (कमतरी) को सन्तोष न था। वह सबकी बात सुन कर पीछे ही अपनी बात बताते हैं। "ठिक के गीतों के बिना पुस्तक अधूरी रह जायगी"। एक नयी मुसीबत! "गीतों को कभी ध्यान देकर सुना भी नहीं। यह विषय तो महिलाओं का ही है"। सुश्री मनोरमा देवी मिश्र ने "माथुर-गीतावली" लिख कर कितना बड़ा समाजोपकार किया है, यह तब समझ में आया जब भाई साहब ने पुस्तक के दो भाग लाकर रख दिये। साथ ही, काव्य-मर्मज्ञ कवि-पुङ्गव श्री हृषीकेष जी का "चतुर्वेदी" में प्रकाशित "सीआ-दोआ" लेख का हवाला दे दिया। अब कोई उपाय न था यह कहने का, कि ठिक के गीत भी कोई लिखने की वस्तु हैं? बहाना निकाला, "भाई साहब! यह कैसे मालूम हो कि कौन सा गीत किस ठिक का है, और इनका परस्पर क्रम क्या है"! भाई साहब सकुचे, परन्तु हार न मानी—"कल्हि बताइ दैंयगे आपकों।" और दूसरे दिन वह भी

लिखी लिखायी क्रमवार लिस्ट आ गयी। पीछे ज्ञात हुआ कि इसमें भीष्मचन्द्र जी व भाई साहब के साथ उनके घर-पड़ौस की सभी महिलाओं का मत व हाथ था। गीतों को पढ़ा, पढ़ना पड़ा! मगर "झेंग" में न आये। दुरूह शब्द! और बिना समझे जैसा का तैसा लिखना भी ठीक न समझा। श्री वृजेन्द्र नाथ जी (लालू जी, मैंनपुरी) यहीं थे, चट सुझाव दे दिया "हृषीकेश जी कों चिट्ठी लिखौ, उनके पास सब संग्रह है"। श्री हृषीकेश जी जैसे सर्वमान्य मूर्धन्य कवि, कितने व्यस्त रहते हैं अपने साहित्यक व अन्य कार्यों में वह? मेरा उनका पत्र-व्यवहार का कभी कोई क्रम नहीं! श्री पृथ्वी नाथ जी ने भी अपना मत व्यक्त कर दिया,, "ठिक के गीत अवश्य ही देने चाहिये; और जहाँ तक बनें उन्हे शुद्ध और सुसंस्कृत करके; यह बहुत ही आवश्यक है"। अब भाई-साहब व अन्य मित्रों की बात टालने का रास्ता भी न था। और कितना श्रद्धामय आश्चर्य हुआ पत्रोत्तर पाकर, जिसमें भाई हृषीकेश जी ने स्वयमेव पचासों गीत-शब्दों के अर्थ लिख कर भेज दिये। फिर तो मैंने और भी पूँछे, और उन्होने बड़े स्नेह के साथ पत्रोत्तर लिख-लिख कर बताये। भाई भोजराज (होलीपुरा) से भी गीतों में व्यवहृत शब्दों की शुद्धि-अशुद्धि और शब्दार्थ आदि के बारे में कुछ सहायता मिलीः और पुस्तक का चतुर्थ खण्ड भी प्रस्तुत हो चला। गीतों का प्राप्त-रूप मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार कहीं-कहीं परिवर्त्तन चाहता था। मैंने इसमें अति-स्वच्छन्दता से काम लिया है, जो, मैं जानता हूँ, अनुचित था। परन्तु मेरे साधन अति-सीमित थे, और जैसा का तैसा छापना मुझे न रुचा।

गीतों के विषय में एक वस्तु और ध्यान देने योग्य है। विवाहादि के अवसर पर समस्त भारत में अधिकतर भगवान राम-सीता विवाह

विषयक गीत ही प्रचलित हैं, और कुछ शिव-गौरि विवाह-विषयक। श्री राधा-कृष्ण विवाह श्रीमद् भागवत में तो मिलता ही नहीं, सम्भवत: ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में वर्णित है, सो भी बरात आदि के साथ प्रचलित प्रकट-रूप में नहीं। ब्रह्मा जी ने स्वयं पधार कर यह विवाह-अनुष्ठान करा दिया था। हमारे प्रचलित गीतों में "बनि बरात जब ब्याहन आये", "जाकें आये हैं श्याम बराती, लला-मोहन वृषभानु कें आये", के साथ-साथ "गिरिधारी-जू की मेहतारी, समधिन न्योतें आई" तक औपचारिक रूप में बरात के साथ विवाह-वर्णन मिलता है। सखा तो अपने लाला के हम सदा-से रहे हैं। इस विवाह-अनुष्ठान को इस-रूप में देखने का सौभाग्य बहुत ही कम लोगों को मिला था; और उन अन्तरंग सौभाग्यवान व्यक्तियों में चतुर्वेदी भी थे। अथवा हमारी कल्पना अपनी किशोरी जी एवं कृष्ण-जी से अलग ही नहीं हो सकती। अस्तु!

पुस्तक प्रेस में दे दी गयी; और छपना आरम्भ हो गया। एक इच्छा थी; प्रचलित विवाह-पद्धति शुद्ध वेद-मंत्रों के साथ जैसी की तैसी दे दी जाय। पर पद्धति मिले कैसे? चेष्टा करने पर भी सफलता न मिली। कुछ डर था, संकोच भी! सुनने में आया "पद्धति छप गयी तो फिर चाहे जो विवाह-कृत्य करा देगा"! किन्तु मैंनपुरी के पण्डित फुलवारी लाल जी (लल्ली पण्डित जी) सहमत हो गये अपनी पद्धति-पोथी देने को, और उन्होने कृपया दे भी दी। श्री भगवान दास जी मिश्र (रज्जू-जी) शास्त्री एवं मार्त्तण्ड-सम्पादक श्री श्याम सुन्दर जी मिश्र के प्रयास से "चतुर्थी पद्धति" भी आ गयी। परन्तु पद्धति का समझना क्या सहज था? यहाँ श्री मुरारी लाल जी (मथुरा) की सहायता मिली। कैलाश-गुरू ने स्वयं कलकत्ते पधारने का कष्ट स्वीकार किया; और पद्धति का अंश, खण्ड २ अध्याय ४, उन्हीं से पूँछ कर फिर से, उनके बताये अनुसार, लिखा गया। श्री शिव

शंकर गुरू से भी उक्त विषय में वार्त्तालाप हुआ था। फिर यह जिज्ञासा जागृत हुयी कि विवाह-मंत्र लिये कहाँ से गये हैं। वेदों के दर्शन किये! जो मंत्र मिल गये उनमें, छापने के साथ, प्रतीक (Reference) भी लिख दिया। अधिकांश मंत्र-समूह वेद-भगवान में प्राप्त हो गया, जो प्रतीक-युक्त, प्रामाणिक और शुद्ध है। कुछ मंत्र समय की कमी से प्रतीक-युक्त न किये जा सके, परन्तु वह भी ऋग्वेद में ही प्राप्त होंगे, ऐसा विश्वास है।

कलकत्ता सभा के सदा-उत्साही कार्यकर्त्ता–सभापति श्री राम लाल जी, मंत्री श्री हरिश्चन्द्र जी, भाई साहब गिरिजा शंकर जी, श्री श्याम मुरारी जी एवं कितने ही अन्य—संलग्न होगये विज्ञापन आदि लाने में। और कितने ही बन्धुओं ने विज्ञापन देने और दिलाने में सहायता की। श्री गजाधर प्रसाद जी (तरसोखर) ने, सिलीगुड़ी जैसे दूरस्थ स्थान से भी।

इस प्रकार इन सब, तथा कितने ही अन्य बन्धुओं एवं बहिनों के सक्रिय सहयोग से यह पुस्तक प्रस्तुत हुयी है। इसमें मेरा अपना कुछ श्रेय नहीं है, केवल भूलें, त्रुटियाँ और कमी आदि का होना मेरे अपने अल्पज्ञान के फल हैं।

विवाह के उत्सव (functions) आदि के वर्णन में मैंने दिन-विभाग का क्रम नहीं रक्खा। यह अभी समाज में एक-सा रहा भी नहीं। ३६ घंटे से ५ दिन तक में, विविधि सभी प्रकारों के विवाह अनुष्ठित हो रहे हैं; इसी लिये कौन सा उत्सव किस दिन होगा, यह लिखना सम्भव नहों। प्रस्तुत पुस्तक में उत्सव का हवाला भर दे दिया गया है। दिन का कुछ क्रम नहीं रक्खा गया।

पुस्तक में लिखे विचार और सुझाव मेरे अपने हैं; श्री माथुर चतुर्वेदी सभा, कलकत्ता, ने उन पर कोई विचार अथवा राय क़ायम नहीं की है।

आश्वलानाचार्य जी ने विवाहादि में "अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तन्विवाहे प्रतीयात्" सूत्र (१-७-१) में जो जनपद (अंचल, देश) में प्रचलित रीति-रस्म से भी पहले ग्रामधर्माश्च (ग्राम में प्रचलित रीति-रस्म) मानने के लिये आज्ञा दी है, वह सार्थक है। रीति-रस्म के मामले में समस्त जनपद, समस्त समाज, की यद्यपि मोटे तौर पर एक-सी ही रीति-रस्म होतीं हैं, फिर भी, ग्राम-ग्राम और विशेष कुल-परिवार में इनकी सूत्मता, व्यौरा (details) एवं आचरण में कुछ न्यूनाधिकता व हेर-फेर होता ही है। ऐसे कार्य में पुस्तक-लिखित रीति-रस्म का ग्राम एवं कुल विशेष में किसी दूसरे रूप में पालन होता हो, तो उस ग्राम अथवा कुल-विशेष के लिये वही माननीय है, यह नहीं। विषय-वस्तु को ध्यान में रखते हुये पुस्तक में ऐसी त्रुटियाँ अवश्यम्भावी हैं।

जिन बन्धुओं व बहिनों के सक्रिय सहयोग से यह पुस्तक तैयार हो सकी है, (विस्तार-भय से उनमें से केवल कुछ के ही नाम ऊपर लिख पाया हूँ), उन सभी के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता-ज्ञापन के साथ अपना आभार-धन्यवाद निवेदित करता हूँ। पूज्य डिप्टी साहब का आभार व्यक्त कर पाने के लिये मुझे पर्याप्त शब्द नहीं मिलते। यदि पुस्तक की कुछ भी उपयोगिता हो सकी है, तो वह उनके मार्ग-दर्शन और कैलाश गुरू के सक्रिय सहयोग से ही सम्भव हुयी है। मौखिक जिह्वा की पहुँच कण्ठ तक ही समाप्त हो जाती है; वह हृदय को स्पर्श भी नहीं करती। इसी हेतु मौखिक रसना हृदय के भाव की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ रह जाती है। हृदय को इसी विश्वास के साथ धैर्य धारण करना पड़ता है, कि "रीझत राम जानि जन जी की"!

१७८, क्रास ष्ट्रीट (सूतापट्टी), कलकत्ता-७।

दिनांक, १४ अप्रैल, १९६६।

--खरगराम

विषयानुक्रमणी

प्रथम खण्ड

[वैदिक वाङ्मय]

द्वितीय खण्ड

[रीति-भाँति—कन्या-विवाह]

तृतीय खण्ड

[रीति-भाँति—पुत्र-विवाह]

चतुर्थ खण्ड

[ठिक के गीत]

INTRODUCTION

[By Shri Radhelal Chaturvedi,

Ex-President, Chaturvedi Mahasabha.]

In his book entitled "*Vaidic Vivaha*", Sri Kharagram Chaturvedi, B Sc. B. L., has done a great service to the Mathur Chaturvedi community and much beyond. He covers extensive ground right from the Vedic Literature in its various gradations to specific rites and practices; he deals at length with *Grihya Sutras*, the paramount Shastras on domestic rituals. Marriage—the integration of two bodies and souls into one spiritual entity—is outstanding in its scope and importance and has been treated as such. The author quotes plentifully scriptures which condemn *Sagotra* unions. He has packed into his comprehensive book all that an inquisitive Chaturvedi need know about this important *Sanskar*. For his painstaking labour and patient study, we owe him a debt of gratitude. His book will doubtless supply a long-felt want.

A word of grateful appreciation is due to the local Mathur Chaturvedi Sabha for its pioneering activities. By granting scholarships in handsome sums to needy students at a strategic stage, it has enabled promising young men to occupy positions of trust and responsibility. By publishing the "*Vaidic Vivaha*" under its auspices, partly for free distribution, it has added another proud feather to its cap. Only recently, it rushed to the rescue of the Mathura Chaturveda Vidyalaya by raising necessary funds to carry on defensive litigation. Sri Kharagram unites to his high character a constructive, practical bent of mind, and his efforts have been enthusiatically supplemented by a band of colleagues devoted to the service of the community. We watch with growing admiration the picture that is being steadily painted on a large canvas.

Of the several *Sanskaras*, *Upanayana* (or the *Yajnopavita* ceremony) and marriage are the most important; and between the two again, the latter takes easy precedence. *Vashistha* emphasises

the importance of the householder over all other orders. The number of *Sanskaras* varies with various *Rishis. Gautam* has 48 and reduces the important ones to 40. Others occupy an intermediate position ; and *Paithinasi* reduces the number to the minimum. The more important 16 are prescribed in major *Smritis. Vashishtha* says "As all rivers, both great and small, find a resting place in the ocean, even so, all orders find protection with householders. As all creatures exist through protection afforded by their mothers, even so, all mendicants subsist through protection afforded by householders" (See Appendix). In more than one passage, *Manu* observes that "as the householder is the supporter of other *Ashramas*, this order is the best of all. As all living creatures subsist by air, so too, other orders receive subsistance from the householder" (See Appendix).

Marriage among the ancients was compulsory. Without it the multifold debts could not be discharged. The family organisation being patriarchal, a son was necessary for the cotinuance of the family line, for performing the necessary funeral rites, for presenting oblations of food and water for the satisfaction of the manes, and for succeeding to the family property. Marriage was not to be left to the whim of individual choice or even romantic love. It was a vital concern of the society and the race, and could not be safely entrusted to the myopic of fashion or the accents of proximity. It was therefore arranged by betrothal before the fever of sex should have time to precipitate a union. Marriage was to be consecrated by *Mantras*, which bound the couple firmly for eternal affection, fidelity and love. It is thus that compared with other countries, the violation of marriage obligations are so few in this land.

Man without a woman is an incomplete animal. Without woman, he is something like the odd half of a pair of scissors, which singly can cut nothing with confidence and ease. The scriptures bring out this concept gracefully when they describe the wife as *ardhangini*.

The *Shastras* accord to the wife a high place indeed. She becomes the presiding deity of the house ; in fact it is she that makes and constitutes the *Griha ;* and it is she that holds the householder's house.

It is of the highest importance that the inner meaning of the *Mantras* should be explained beforehand to the couple before they are recited at the actual ceremony. A running routine recitation in *Sanskrit*, whose meaning the couple do not understand, deprives the union of all spiritual significance, grace and charm. *Swami Ram Tirtha* says that the *mantras* weep at their exploitation at a marriage when the couple do not understand their inner meaning. This deficiency has to be made good, and the sooner, the better. This book, therefore, rightly gives not only the correct vedic text of the *mantras*, but also their meaning and sense.

The word *Gotra* has several meanings ; family, lineage and race being the most popular. The *Gotra* of a person is the name of a sage (*Rishi*) from whom he or his agnate is supposed to have descended in the main line. Two persons are *Sagotra* or of the same family, if both of them are descended from the *Rishi* or sage after whose name the *gotra* or family is called, however distant either of them is from the common ancestor. The principal sages of a "*Gotra*", by which it is distinguished from other *Gotras*, are called its *Pravaras. Madhvacharya* says that *pravaras* are the group of sages distinguishing the sage who is the founder of a *Gotra*. A *Pravara* is thus one who contributes to the credit of a particular *Gotra*. The important *Pravaras* are estimated to be about 42 or 49. The minimum group consists of two *Rishis*, and the maximum of five.

As already remarked, the word *Gotra* has a number of meanings ; and one such meaning is *Cowpen*. The interesting observations of the late *Golap Lal Shastri* may be quoted at length :—

"It may be interesting to enquire and trace the etymological meaning of some of the terms and the probable connection of the same with the Village Community System. With their

explanation as given, the word *Sapinda*, *Sakulya*, *Samanodaka*, *Sagotra* and *Samana-Pravara* mean respectively those whose *Pinda*, *Kulya*, *Udaka*, *Gotra* and *Pravara* are common. *Gotra* is derived from *go* (cow) and *tra* (that which protects). It means that which protects the cow such as pasturage. *Udaka* is water or reservoir of water such as tank or well; *Kulya* may be derived from *Kula* (similar to Latin *Colo*) to cultivate; and means a field or cultivated land; and *Pinda* means food. Assuming that a single family established a new village and bearing in mind that pasturage and a reservoir of water—indispensable in a tropical country—are not divisible according to Hindu Law, we may take the words *Sagotra* and *Samanodaka* to mean all members of the family, holding the pasturage and reservoirs of water used for domestic or agricultural purposes. The word *Sakulya* is to signify those members that jointly carried on cultivation; and the word *Sapinda* to comprise those that lived in common mess. When a family increased in the number of its members, they would separate in mess first and might still continue to hold in common their *Kulya* or property, consisting mainly of land, by jointly carrying on the cultivation and dividing the produce according to their shares; and when this was felt to be inconvenient, they divided the family land continuing however to use and occupy jointly the *Gotra* or the land reserved for grazing the cattle and the *Udaka* or reservoirs of water, which remained common to the most distant agnate relations. The plain meaning of the text of *Bandhayana* and of the *Bramha-Purana* cited above lends some support to this view"

The sages *Jamadagni*, *Bharadwaja*, *Vishwamitra*, *Atri*, *Gautam*, *Vashistha*, *Kashyapa* and others were progenitors of *Gotras*; those that were descendants of these have transmitted these *Gotras* and have become founders thereof (See Appendix).

The author has quoted a number of authorities which show that a *Sagotra* marriage or *Saman-pravara* marriage is positively condemned by the Scriptures and I need not repeat

them. The condemnation is as positive as it is emphatic. Some *Rishis* go to the length of applying taboo to relations connected with the *Gotra* of the mother. The basic idea of the sages is to bar, as far as possible, persons from functioning as husband and wife relations connected by blood on the father's or mother's side. There is no country in the world where the list of persons ruled out for union is so extensive. The ban is based on grounds which are physiological and eugenic.

The scriptures unanimously speak of *Savarna* marriages, i.e., marriages between members of one sub-caste with those of another within the same *Varna*. The difficulty of avoiding *Sagotra* unions has been particularly felt in small groups. The *Avantar* system of marriage has been uniformly recognised as valid from time immemorial, and judicial decisions have uniformly upheld their validity. *Anuloma* marriages (union of the bridegroom with a bride of lower caste) are not altogether ruled out. The top sage *Manu* shows, however, a distinct preference for *Savarna* marriages while *Yajnavalkya* and *Vashistha* recognise that male child alone as a son who is born of *Savarna* parents (See Appendix). Marriages within the *Savarna* fold having been declared valid unequivocally by the *Shastras*, social reformers have for about fifty years sought to promote inter-sub-caste marriages within the *Savarna* fold. At the National Social Conference held at Allahabad in December 1910, a resolution was unanimously passed that every effort should be made to induce sub-castes of the same caste to inter-dine and inter-marry.

In order to counter-act the evils of holding *Sagotra* marriages within the ever-increasing narrow circles, the late lamented Pundit Madan Mohan Malviya issued on 20. 3. 1937 a pamphlet in which he quoted all authoritative texts in support of *Savarna* marriages and invited opinion of learned pundits all over the country on the subject. On 30th and 31st December 1937, Malaviyaji held a conference of *Brahmins* at Benaras. It was pointed out

in another pamphlet issued a week before that in certain communities the scope for marriage had become so narrow and restricted that recourse had to be taken to *Sagotra* and even *Sapinda* marriages in utter violation of Shastric injunctions. It was further pointed out that the *Gour Mahasabha* and the *Bangiya Brahmin Sammenlan* had already passed a resolution in favour of *Savarna* marriages. In response to his appeal, a Conference, consisting of learned Brahmins from all over the country, was held at Benaras; and they lent their weighty enthusiastic support in favour of *Savarna* marriages. It fully supported the opinions issued already over the signature of fifty-nine learned *pundits*, such as *M. M. Sri Pramath Nath Tark-Bhusan*, *Sri Chinnama Swami*, *Mimansa-Keshari*, *Veda-Visharad* and others. One *Mahamahopadhyaya* in charge of a local *Sanskrit Pathshala* asked for one day's time to express his views in opposition, but he never turned up. The meeting unanimously expressed the view that the unions within the *Savarna* fold should be promoted amongst sub-sections whose *achars* and way of living were of similar character.

The *Mathur Chaturvedis* are experiencing great difficulties, as they constitute one of the very smallest sub-castes in the country. Even this tiny sub-caste was, until recently, woefully divided into so-called *Kulin* and *Badlin* groups. Marriage, in exceptional cases, could not avoid *Sagotra* affiliations, so much so that even *Up-Gotras* (*allas*) were given a go-by. The *Sagotra* marriage is a short step to *Sapinda* marriage which leads to close in-breeding. *If this happens, the soul of the shastras will be given a death burial.* It will, therefore, be proper that where *Sagotra* affiliations stand in the way, marriages should be performed with a pure vegetarian member of some such sub-caste as the *Gour*, *Malaviya*, *Nagar* or *Sanadhya*. There is no dearth of vegetarian Brahmins in the country, more so in U. P. Apart from this, the promotion of *Savarna* marriages would lead to *Sangathan* (consolidation) amongst *Brahmins*, torn at present into fragmentary groups.

The rules of *exogamy* which enjoinmarriage outside the *gotra* are a standing tribute to the Vedic sages who condemned *sagotra* unions in terms most emphatic and for bidding. Compare this for a moment with what happened in ancient days in Egypt or Persia for instance. In the latter, marriages were not unknown between brother and sister or between father and daughter. Among the *Magi*, marriages between mother and son were also possible. In Egypt, the king occasionally married his own daughter or sister to preserve the purity of royal blood. The practice of marrying sister prevailed for several thousand years.

Driven by mundane and selfish considerations, a clumsy device is resorted to change the facial aspect of *Sagotra* marriage and to give it the appearance of a valid Shastric union. The parentage of the bride is transferred from the paternal to the maternal line. A false declaration before the *Vivaha-agni* and the relations of the couple does not at all change the *Gotra* of the bride. The *Gotra* undergoes a change only on two occasions :—(1) When the bride on completion of the marriage becomes merged into the *gotra* of the husband and (2) When on adoption the adoptee takes on the *gotra* of the adoptive father. When for one reason or another, the parties are bent upon a *Sagotra* marriage and lack the courage of wooing one within the *Savarna* fold, much the less objectionable course would be to take to the Secular Civil marriage. It is ridiculous to resort to a farce of doing something utterly *unshastric* under the guise of *Shastric* sanction.

The *Mathur Chaturvedis* migrated in scattered groups as a result of oppression of the *Mughal* rulers of the time. Little light is forthcoming as to when and how they came to settle at or about Mathura before any migrations started. I distinctly remember to have read at Allahabad in 1928 in an edition of the *Harivansha Purana* that after killing *Lavanasura* and destroying the *Mathuvan* forest, *Shatrughna* populated Mathura or Madhura by importing from Ayodhya twenty-six thousand Brahmins conversant with all the *Vedas*. This has not been

confirmed in the edition published by the *Gita Press* of Gorakhpur ; but the abrupt closure there leaves a vacuum which the old edition of the *Purana* referred to appropriately fills up. Bhishma of the *Mahabharat* fame speaks of the *Mathur Brahmans* as good fighters on horse back (अश्वयुद्ध कुशला:) as also in wrestling combats (मल्लयुद्ध कुशला:). Lord Krishna offers the Hastinapur throne to Karna, the eldest son of Kunti. Provided the latter agreed, sage *Dhaumya* would perform the coronation *Yajna* forthwith and his disciples—the *Chaturvedi* Brahmins—would sprinkle holy water over the warrior's body (See Appendix).

I have little to add to the list of *Grihya Sutras* quoted by the author except to say that the *Rigveda* has three *Grihya Sutras* instead of two. The *Kaushitaki* or *Sham-bhabhya* (शाम्भव्य) *sutra* has every claim to be considered as a separate *Grihya-sutra* of the *Rigveda* and has recently been published at Madras. Similarly, *Drahyayana* or *Drahyayayan-sutra-vritti* is another *Grihya Sutra* of the *Samvedis*. The *Samvedis* are divided into two *Shakhas—Radayani* and *Kauthmi*. The *Griyha Sutra* for the former *Shakha* is *Khadir* and for the latter *Gobhila*. The bards at the marriage recite the *Samvedis* in the community as belonging to the *Kauthmi Shakha*. The fact that *Govila Sutra* is followed by the *Chaturvedi Samvedis* proves the recital of the bards to be correct. The matter is however of little practical importance as the *Khadira* is only an abridged edition of *Govila*.

There is some difference in details as to the order in which the various ceremonies are to be performed. Some light has been thrown in my pamphlet entitled "The period of stay of marriage-party", which I wrote in May 1932. However, the *sutras* are all agreed that *saptapadigamana*, in which the bride and the bridegroom pace together seven steps to the north-east, completes the marriage. The seventh step gives the finishing touch and makes them firm friends.

It is now time to consider briefly marriage as conceived by the scriptures. So learned a *Pandit* as *Mahamahopadhyaya Pundit Giridhar Sharma Chaturvedi* dealt with the subject of marriage at length in his presidential address delivered at the *Chaturvedi Mahasabha* held at Kanpur in 1929. During his address, he emphasised the point that according to the *Rishis*, the marriage ceremony involves no expenses worth the name. They are trivial in character which anybody can undergo with convenience. The sages well realised that in case the *Sanskars* were expensive, the poor people would not be able to perform the rites properly. According to the *Mahamahopadhyaya*, a poor Brahmin in the South can complete the marriage within twenty four hours. Among the learned Almora Brahmins, who follow the *Rigveda*, the bride leaves for her new home immediately after the marriage is over and the *Chaturthi Karma* is performed at the husband's place.

It will thus be seen that the prevalent way of celebrating marriage is of recent creation in which the sacramental aspect has been given the complete go-by. What unfortunately characterises it at every step is the subordination of the sacramental ceremony to a vain social show. The petty details, by no means inexpensive, monopolise all attention. I shall briefly deal, on the authority of the *Grihya Sutras*, how the erstwhile-prevalent ceremony involving 5 days was *unshastric*, every inch of it. I will further show how the ceremony as a whole should be curtailed to militate the least against the express injunctions.

According to the practice which prevails, the *lagna* for sacramental marriage comes off usually during the latter part of night. The *Godhuli Lagna* on the day of arrival is an exception and not the rule. As it happened, the *Chaturthi Karma* was usually performed on the 4th day of arrival of the bridegroom and not on the 4th day of the marriage itself. This was violation No. 1. Then again, the *Chaturthi Karma* was performed not during the last quarter of the night but during day time. This was violation No. 2. We have never heard that any *Chaturthi Karma* was performed during the last quarter of the night. Nothing need be said about the funny details which are accretions

introduced by ladies for the sake of mirth. The *Chaturthi Karma* as practised involves another four circumlocutions round the fire, which is absolute non-sense. There are three *samantrak* circumlocutions and one without *mantra* which takes place only when some surplus *laja* (fried rice) left over has to be thrown into the fire. The *Garvadhan* that follows is an integral part of the *Chaturthi Karma*. In fact as *Bhattoji Dikshita*, the celebrated commentator, observes, copulation at the fourth night is an integral part of the *samskar* (इदमुपवेशनं आवश्यकं स्त्री संस्कारत्वात्).

To argue that the old 5 days' stay rule indirectly made for compliance with the *shastric* injunction of three days' complete *Bramacharya* is untenahle. This is making virtue of necessity. *Apasthambha* lays down that the bride at the time of marriage must sit with an unveiled face so as to have a complete thorough look at her future husband (अवयवी निरूपणम्). What happens is that the bride sits under a heavy veil so that she can not see properly even the face of her future lord. The observance of *Brahmacharya* under these circumstances was the negation of what was scripturally enjoined. What the *Grihya Sutras* lay down is that after marriage, the two should understand the psychology of each other and observe strict celebacy at least for three days. If the bride happened to be in her menses at the time, and the *grihya sutras* take full account of this contingency, three days abstention became obligatory.

There was, however, some justification at one time for this long stay of five days. The bridegroom and his party had to travel long distances and complete it in bullock carts in two or three stages. They could be ambushed at any stage; and an escort party was essential. The same process had to be repeated on the return journey. In the circumstances, it was felt necessary to perform *Chaturthi* ceremony, for what it was worth, at the bride's place before departure. Now that conditions have completely changed, a motor vehicle could take the bride and the bridegroom in no time to their new home.

No tears need be shed for the abolition of a practice which grossly violated every injunction of the *Sutras*.

Before marriage is restored to its true sacramental position, the size of the bridegroom's party has to be seriously considered. Some of the *Sutras* used the word *Agateshu* (आगतेषु), or on return *Prapteshu* (प्राप्तेषु). This obviously means the members of bridegroom's own family and the "*Acharya*" (priest) and the like. The *sutras* never contemplate an unwieldy, unwanted crowd which could only create financial worry for the parents of the bride and has nothing to do with the *Sanskara* as such. The *Sutras* clearly enjoin that as soon as the marriage is over the bride should leave for her new home. The practice of the weeping bride taking leave of the relatives on the bridegroom's arrival fully confirms that the injunction was followed religiously. If the bridegroom's residence happens to be at a distance, the intervening night should be spent at the home of a lady who has her husband alive and who has begotten children. This takes the bottom completely out of the embarassing practice of a crowd following the bridegroom on the occasion. The poor lady certainly could not be expected to stand host to a party of strangers at night. The father or guardian of the bridegroom, anxious to show his social position, invites all and sundry to swell the number; and the invitees, heedless of the economic position, are only too eager to respond generously. What happens to the bride's father when he has to feed so many mouths in these days of acute scarcity, need not be stressed. How true *Swami Ramtirtha* when he observes that the unfortunate Hindu is ground to atoms between the huge mill-stones of marriage and funeral expenses! The *gharatis* as such have no business to participate in the feasts.

The bridegroom has to reach the bride's place conveniently ahead of the time fixed for marriage and the *Shakhocchar* ceremony may be retained both for proclaiming the marriage performed the evening or night previous, as also for the convenience of the bride and bridegroom. The couple must leave

early on the third day of arrival in any case. The practice of the *Pahena* ceremony is as useless as it is uncalled for. All that it involves could be done at the *Shakhocchar* ceremony or even earlier. There is no reference, however, anywhere in any degree, to make any presents in cash or kind to those accompanying the bridegroom. It is these presents that attract a larger number and its propriety has to be seriously considered. As a digestive supplement, one or two varieties of sweets should be served towards the end.

According to the sages, a householder who does not maintain a milch animal, preferably a cow, for the children is not a protector but a destroyer of the family. *Ghee* is a powerful nutrient in the formative stages of a child, and must not be wasted on other occasions. It should be preserved for children's daily use to prevent the progressive deterioration in physique. For feeding arrivals at ceremonies, pure vegetable ghee would do as a wholesome substitute.

The money received at the *padpuja*, or at any stage before or after the marriage, constitutes the bride's exclusive peculium and must not be utilized for paying the music-band or the fare of the motor-bus used for the carriage of the party. *Manu, Katyayana, Narad, Vishnu* and *Devala* among others most unambiguously lay down that what is given before the nuptial fire, what is presented during the bridal procession, what has been received from her mother, brother and other relations, are bride's *stridhana* (see Appendix). *Manu* cited in the *Vivad Ratnakara* emphasises the absolute nature of bride's right over such *Stridhana* and enjoins that any relation who appropriates this *Stridhana shall be punished like a thief. Katyayana* says that if the husband or the son or the father consumes the woman's property by force, he shall be compelled to make good the property with interest and *shall incur punishment.* According to *Devala*, the husband of the woman can use it only in distress (see Appendix).

The Hindu is a pitiable slave of custom. Custom is the supreme God in his pantheon. He has allowed the chance

creation of convenience to be his over-riding master. It is in this sphere that Sriptures have been departed from violently; and the victim finds it difficult to break the fetters of his own making. The late G. Subramanea Iyer, the veteran publicist of Madras, may well be quoted to explain the pernicious influence of custom. Says he "It is wonderful how amongst us custom has usurped the place of reason, sentiment and religion itself as a standard of right and wrong. The English-man is a slave of it in certain spheres of activity as the Hindu, but the Hindu is a more craven slave than any other civilized race".

This does not, however, mean that if any practice does not expressly tilt against the authoritative injunctions of the Shastras in letter or spirit, it should be summarily ruled out. Any practice that can be healthily absorbed may well be maintained. The commentators of such established repute as *Gargnarayan* on *Ashwalayana*, Sri Chandra Kant Tarkalankar on *Govila* take this sane view.

Although the sages, *Manu* in particular, have ordained that women should be respected and honoured as the presiding diety of the family, and observe that the family flourishes only where women feel happy and contented, this is not reflected in the treatment that has been meted out to them for centuries at a stretch. It is forgotten that women had the same status as men and had to undergo *sanskaras* equally like males. In the Vedic age, the girls were invested with the Sacred thread and it was up to them to remain *brahmacharinis* or take to marriage (See Yama & Harita Smritis).

The story will be incomplete if the condition of stranded women after marriage is drawn a pall over. According to the celebrated Marhatta scholar, M. M. P. V. Kane, no Vedic passage makes an incontrovertible reference to Sutteism. Neither the *Grihya sutras* nor *Manu* nor the *Mahabharata* lends any support (except in rare cases) to the practice. *Kripi* (widow of *Drona*) throws the weapons, etc., of her deceased husband into the fire, but does not burn herself to death. *There is no specific Vedic mantras used at the time of*

immolation. *Vishnu Smriti* speaks of as an alternative course and *Vyas* enjoins it. The process of percolation began and it soon hardened into a custom. The barbarous practice was, however, largely confined to the *Kshatriyas*. *Pathinasi*, *Angras* & *Ushanas* prohibited it for Brahmins. Yet the cruel custom claimed its ugly toll even among Brahmins. If the monstrous story of Conti (an Italian traveller) is to be believed, three thousand pet-wives of the King of Vijaynagar, out of a total of 12,000, burnt themselves alive on his funeral pyre. Ninety wives of Rana Jung Bahadur of Nepal are reported to have shared a similar fate. Ranjit Singh's sixteen wives, including the yougest Lily, had to immolate themselves similarly. Sutteism was largely practised by *Kshatriya* kings or their nobles. The reasons seem to be twofold—partly attachment to the deceased and loss of position on the husband's death and partly the result of a multiplicity of wives, the young section whereof was apprehended to go wrong with the death of the husband. Some penalty had to be paid for over-indulgence in sexual pleasures. One shudders, however, to think that the punishment should have taken this strange form of expiation !

Sutteism having been abolished in 1829, the widow's plight has not come to an end. I made some study of the subject during my visit to the British Museum in London in 1931. I had occasion to study all the literature available there, and this included my own book I had written on the subject about 1928. Ishwar-Chandra Vidyasagar (also known as *Karunasagar*) was, like Raja Ram Mohan Roy, the precursor of an epoch. His is a standard work on widow remarriage and contains a mine of information on the subject. *Yagnavalkya*, *Atri*, *Narad* and *Parashar* freely advocate widow remarriage even after consummation under specified conditions, which are quite reasonable. The number that enjoins a second *Sanskar* before consummation is much larger. Among the *Puranas*, *Agni-purana*, *Brahma-Purana* and *Padma-Purana* support widow marriage. There is not the slightest doubt left that—apart from *Smritikars* and authors of *Puranas*—we have the express sanction in the

Atharva Veda and *Taitiriya Samhitta* as interpreted by *Sankaracharya*. *Madhvacharyya*, the celebrated Commentator, ascribes the famous *slok* of *Parasara* to *Manu*. The *Mahabharata* permits widow's remarriage with the husband's brother *as a matter of course* (see Appendix). All this notwithstanding, the stranded childless young girl is denied the opportunity to reconstruct her life. Compassion is the very foundation of Dharma (दया धर्मस्य जन्मभूमिः). Different would have been the course if *Vidyasagar* had left a successor, but he left none in Bengal. Want of compassion is exactly what is lacking under the *Hindu Dharma* as interpreted by a pitiless tyranous priesthood. It is forgotton that humanity has grown too strong to be treated like a little child ; and the wails and lamentations of the stranded widow as she deplores her luckless hour from day to day will draw and compel attention before long.

While carrying on his campaign on 'Protective Tariffs' the late Joseph Chamberlain in one of his speeches alluded to a story which may well be briefly noticed here. After the ship had travelled some 700 miles, a passenger went up to the Captain and asked for a berth. "Where have you been so long", enquired the Captain. The passenger said that hitherto he had been lying on a half-dead, dying, fellow-passenger ; but lately he had shown signs of returning to life and he would not let him sit over his person any longer. With the spread of education, the ill-treated womanhood is regaining vitality and strenously seeking to assert itself. The monopolistic rule of the male is nearing its end and the neglected woman must come into her own before long. The wisest course is to let her have equal rights and opportunities and enable her to make a fresh start after widowhood in the prime of life, instead of compelling her to do things, which she would otherwise abhor.

Apart from the large and weighty Scriptural authority, we have a galaxy of learned commentators and modern stalwarts such as *Vachaspati Misra*, *Mashru Misra*, *Nilkantha Bhatta*, *Raghunandan Bhattacharyya*, *Iswar Chandra Vidyasagar*,

Mahamahopadhyaya Mahesh Chandra Nyayaratna, Bankim Chandra Chatterjee, Dr. Rajendra Lall Mitra, Sri Ramesh Chandra Dutta, Pundit Parashuram Shastri, Dr. R. C. Bhandarkar, Justice Maha Govinda Ranade, Justice Ganesh Chandra Varkar, Sri Muthuswami Iyyer, Sri Tej Bahadur Sapru, Sir C. Y. Chintamani and, last but by no means the least, the great *Swami Dayanand Saraswati* who support widow remarriage. If we are wrong at all, it would be much safer to err in this excellent company. *Kautilya*, who never minces words and stands in a class by himself for his clear foresight and wisdom, declares with the ring of clarion call that those who deny the right of a second husband to a young widow subject to the menstrual flow are guilty of nothing short of murdering the potentialities of such flow. *Manu* speaks of *Parityaga* (परित्यागः) without dissolving the marriage tie, and *Kautilya* speaks clearly of divorce such as would enable her to marry a second time (परस्परं द्वेषात् मोक्षः).

The diminishing returns in agriculture, the alarming annual increase in population, the acute scarcity and high rising prices pose a problem which must hit every family and every individual in the country. Increase in production has its difficulties; it requires capital and its con-comitants. Given a resolute will, there should be no difficulty in reducing destructive expenditure to the minimum. The craze for show will have to go where healthy living is at stake. A novelist of international reputation—a victim of Nazi oppression—had to remark that 1,40,000 words used in Hitler's book were 1,40,000 offences against the spirit of the German language. May it not be said with equal justification that the numerous rites that have from time to time cropped up in recent times are so many offences against the Vedic Mantras? The underlying spirit of brevity, simplicity and solemnity has been cast to the winds. Circumstanced as we are today, the problem that faces us is—live or perish. If the former, we have to restore, so far as possible, the Vedic ideal to its pristine purity.

—*Radhelal Chaturvedi*

APPENDIX

गृहस्थाश्रम प्रशंसा

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः ।
चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥१४
यथानदीनदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम् ॥१५
यथामातरमाश्रत्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः ॥१६

(वशिष्ठस्मृतिः ८—१४-१६)

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वं जन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सव आश्रमाः ॥७७
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रिमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माम् ज्ज्येष्ठाश्रमो गृहीम् ॥७८

(मनुस्मृतिः ३—७७-७८)

आदिगोत्र प्रवर्तकाः

जमदग्निर्भरद्वाजो-विश्वामित्रात्रिगोतमाः ।
वशिष्ठ-काश्यपागस्त्या मुनयो गोत्रकारिण ः ।
एतेषां यान्यपत्यानि तानिगोत्राणि मन्यते ॥

(रघुनन्दनोध्दृतस्मृतिवचनम्)

सवर्णज-पुत्रमहत्ववर्णनम्

सवर्णभ्यः सवर्णासु जायन्ते वै सजातयः ।
अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्धनाः ॥

(याज्ञवल्क्य स्मृतिः १—९०)

स्त्रीधन सम्वन्धि-शास्त्रवचनानि

(१) अध्यग्नध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतितः स्त्रियैः ।
भ्रातृ-मातृ-पितृ-प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥
(मनुकात्यायनौ-४—१-४)

(२) अध्याग्न्यध्यावाहनिकं भर्तदायस्तथैव च ।
भ्रातृदत्तं पितृभ्याञ्च षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥
(नारदः)

(३) भर्त्ता प्रीतेन यद्दत्तं स्त्रियै तस्मिन् मृतेऽपि तत् ।
सा यथाकामम् अश्नीयाद् दद्याद् वा स्थावराद् ऋते ॥
(नारदः)

(४) पितृ-मातृ-पति-भ्रातृदत्तम् अध्यग्न्युपागतं ।
अधिवेदनिकाद्यञ्च स्त्रीधनं परिकीर्त्तितं ॥
(याज्ञवल्क्यः)

(५) वृत्तिराभरणं शुल्कं लाभञ्च स्त्रीधनं भवेत् ।
भोक्ती तत् स्वयमेवेदं पतिनार्हत्यनापदि ॥
(देवलः)

(६) विवाहकाले यत् किञ्चित् वरायोद्दिश्य दीयते ।
कन्यायास्तद् धनं सर्वम् अविभाज्यञ्च वन्धुभिः ॥

(७) यत् पुनर्लभते नारी नीयमाना हि पैतृकात् ।
अध्यावाहनिकं नाम तत् स्त्रीधनम् उदाहृतम् ॥

(८) विवाहात् परतो यत् तु लब्धं भर्त्तृकुलात् स्त्रिया ।
अन्वाधेयं तद्-उक्तन्तु लब्धं बन्धु कुलात् तथा ।
ऊद्ध्र्वं लब्धन्तु यत् किञ्चित् संस्काणत् प्रीतितः स्त्रिया ।
भर्त्तुः पित्रोः सकाशाद् वा अन्वाधेयन्तु तद्-भृगुः ॥
(कात्यायनः)

(९) ऊढ़या कन्यया वापि पत्युः पितृगृहेऽथवा ।
भर्त्तुः सकाशात् पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम् ॥

(१०) सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातंत्र्यमिष्यते ।
यस्मात् तदानृशंस्यार्थं तैर्दत्तं तत्प्रजीवनम् ॥
(कात्यायनः

(११) न भर्त्ता नैव च सुतो न पिता भ्रातरो न च ।
आदाने वा विसर्गे वा स्त्रीधने प्रभविष्णवः ॥
यदि ह्येकतरस्तेषां स्त्रीधनं भक्षयेत् वलात् ।
स वृद्धि प्रतिदाप्यः स्यात् दण्डञ्चैव समाप्नुयात् ॥
(कात्यायनः)

(१२) पितृ-मातृ-सुत-भ्रातृदत्तं अध्यिग्न्युपागतम् ।
आधिवेदानिकं वन्धुदत्तं शुल्कान्वाधेयकम् इति स्त्रीधनम् ॥
(विष्णुः)

(१३) विवाहकाले यत् किञ्चित् वरायोद्दिश्य दीयते ।
कन्यायास्तद्धनं सर्वं अविभाज्यञ्च वन्धुभिः
(व्यासः)

(१४) जीवन्तीनान्तु तासां ये तद्धरेयुः स्ववान्धवाः ।
तान् शिष्यात् चौरदण्डेन धार्म्मिकः पृथ्वीपतिः ॥
(मनुः)

विधवाविवाहसम्बधीनि कानिचत् शास्त्रवचनानि

(१) नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥
(पराशरः, नारदः, अग्निपुराणम्)

(२) कुलशीलविहीनस्य षण्डस्य पतितस्य च ।
अपस्मारि विधर्म्मस्थ रोगिणो वेशधारिणः ॥
दत्तामपि हरेत् कन्यां सगोत्रोढ़ां तथैव च
(स्मृतितत्वोद्धृत वशिष्ठवचनम्)

(३) पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुते पतिम् ।

(महाभारते शान्ति पर्वणि ७२—१२)

(४) तीर्थोपरोधो हि धर्म वधः—इति कौटिल्यः ॥

दीर्घप्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्य्या सप्त तीर्थान् अकांक्षेत् ॥

संवत्सरंप्रजाता ॥

ततः पतिसोदर्यं गच्छेत् ॥

वहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं कनिष्ठमभार्यंवा ॥

तद्भावेऽप्यसोदर्यं सपिण्डं सकुल्यं वासन्नम् ॥

एतेषां एष एव क्रमः ॥

कौटिल्य अर्थशास्त्रम् (३ अधिकरण, ४ अध्याय)

महाभारतेधौम्यगोत्रस्य चातुर्वेदद्विजातीनां उल्लेखः

अग्निं जुहोति वै धौम्यः संशितात्मा द्विजोत्तमः ।

अद्यत्वांऽभिशिञ्चन्तु चातुर्वैद्या द्विजातयः ॥

(महाभारते उद्योगपर्वणि–१४७-१६)

वैदिक विवाह

❋

प्रथम खण्ड

❋

[वैदिक वाङ्मय]

❋

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।

ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहे ॥

जनयन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।

अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥

[अथर्ववेद, का० १४, अ० २, सू० २, श्लो० ७१-७२]

अर्थ—हे जाये। मैं साम हूँ तू ऋक् है; मैं आकाश हूँ तू पृथिवी है; मैं विष्णु-रूप हूँ तू लक्ष्मी-रूपिणी है। हम यहाँ साथ-साथ निवास करते हुए सन्तानोत्पत्ति करें॥ हम दोनों को नदियां प्रकट रक्खें। हम मंगलमय दान के दाता पुत्र को पावें। हम विस्तृत अन्न प्राप्ति के लिये दोनों संयुक्त रहते हुये प्राणों से अहिंसित रहें॥

१

विवाह—एक संस्कार

असीम सीमित—आर्य ऋषियों ने सृष्टि में जीवधारियों की चौरासी लक्ष योनियाँ निर्णीत कीं हैं। आधुनिक विज्ञान अभी तक यह गणना नहीं कर सका है कि यह संख्या ठीक है अथवा कम, या अधिक। सजीव प्राणीमात्र की ज्ञाति व परम्परा प्रजनन की क्रिया से चलती आई है। सृष्टिकर्त्ता की सृष्टि और वैज्ञानिक कृतियों में एक सबसे बड़ा अन्तर यह है कि सृष्टिकर्त्ता का प्रत्येक जीव प्रजनन द्वारा अपनी परम्परा को प्रचलित रखता है। वह नूतन को जन्म देता है और पुराना हो कर स्वयं विलीन हो जाता है। प्रजनन परम्परा को आकर्षक बनाने के लिये विधाताने इसकी क्रिया के मूल में काम-वासना व भोगतृप्ति को रक्खा है, जो अग्नि की भाँति प्रचण्ड, दुर्दमनीय एवं तेजोमय बनाई गई है। अग्नि जबतक अपनी सीमा (चूल्हा, भट्टी, furnace, बायलर, आदि) में रहती है, जन-हित के कार्य करती रहती है; सीमा और वश के बाहर हो जाने पर वह विध्वंसकारी, विनाशक और भयावह साबित होती है। इसी भाँति, कामवासना एवं भोग-लिप्सा जब तक अपनी मर्यादा में रहती है, सीमा में रहती है, प्रजनन द्वारा सृष्टि की परम्परा क़ायम रखने का लोक-हित करती रहती है। मर्यादा से बाहर, Sex होने पर, यह राष्ट्र के लिये विध्वंसकारी और भयावह हो जाती है। सीमा के अन्दर भी थोड़ी सी भूल अथवा असावधानी होने से जैसे अग्नि

अंग-विशेष को जला देती है, उसी भाँति काम एवं भोग-लिप्सा सर्वदा सावधानी बरतने की ही वस्तु है; उच्छृङ्खलता इसमें घातक है।

इस सन्दर्भ में सृष्टि के प्राणी दो प्रकार के पाये जाते हैं। एक वह, जिनमें मादा को केवल ऋतुकाल में, सन्तानोत्पत्ति के हेतु ही, काम व भोग की प्रवृत्ति हो, जैसे गाय, भैंस, घोड़ी, आदि; दूसरे वह जिन पर काम व भोग के लिये प्रकृति ने ऐसा कोई अंकुश न लगा रक्खा हो। मनुष्य द्वितीय श्रेणी में है। द्वितीय श्रेणी में ही काम एवं भोग-लिप्सा की अग्नि के सीमा व वश के बाहर हो जाने का डर और संकट हो सकता है, इसी लिये मानव जाति के आदि महर्षियों और दार्शनिकों ने यही ठीक समझा कि इस अग्नि के लिये एक दृढ़ सीमा और बन्धन निर्धारित कर दिया जाय। ऐसे ही सद् विचारों के फल-स्वरूप मानव मात्र में 'विवाह' की सुप्रथा प्रचलित हुई जिसने असीम बलवती काम व भोग-लिप्सा की अग्नि को अपनी सीमा और मर्यादा में लाकर, उसे विवाह-सूत्र में मर्यादित कर, लोक हिताय सुन्दर, सुखद एवं सुफलवती बना दिया।

महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १२२ में उपाख्यान है कि उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने विवाह की मर्यादा प्रचलित की। उससे आगे स्त्री और पुरुष दोनों ही स्वतंत्र थे। सन्तानोत्पत्ति के हेतु, आवश्यकता प्रतीत होने पर, यदि कोई पुरुष और स्त्री, दोनों, सम्मत हो जाते, तो वह सन्तानोत्पत्ति कर लेते थे। बालक श्वेतकेतु परम तेजस्वी थे। एक दिन उनकी समुपस्थिति में ही एक सज्जन ने उनकी जननी का हाथ पकड़ कर अपने साथ चलने का प्रस्ताव किया। बालक को यह सह्य न हो सका। उन्होंने यह विधान कर दिया कि जिस स्त्री का अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी से समागम हो, उसे भ्रूणहत्या का पातक लगेगा, इसी प्रकार अपनी भार्या के अतिरिक्त अन्य स्त्री

से समागम करने वाले पुरुष को भी भ्रूणहत्या का पातक लगेगा। इस तरह विवाह की संस्था मर्यादित और प्रचलित हुई।

वेद अनादि हैं; और वेदों में विवाह का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद का सम्पूर्ण चौदहवाँ काण्ड विवाह के विषय में ही है। इसलिये, यह मान्य होना चाहिये कि मानव समाज में जब से सभ्यता एवं संगठन का इतिहास पाया जाता है तभी से "विवाह" सर्वत्र प्रचलित है। प्राचीन आर्यों में, रोमनों में, यूनानियों में, मुस्लिमों में, बेबिलोनियनों में, किसी भी देश अथवा काल में और जाति में देख लीजिये, विवाह का स्तम्भ ही समाज की आधार-शिला है।

दाय-भाग नियम—प्रत्येक धर्मशास्त्र और क़ानून ने "विवाह" को महत्ता देने के लिये जो साधन बनाये हैं उनमें दाय-भाग सब से प्रधान है। धर्म और क़ानून जिस "विवाह" को मान्य करता है, उससे उत्पन्न संतति को ही धर्म और क़ानून वैध (Legitimate) सन्तति मानता है और प्रायः उसी को सामाजिक सम्मान के साथ पिता, माता एवं सम्बन्धियों का उत्तराधिकार एवं दायभाग प्राप्त है। बिना जायज़ विवाह के, केवल काम अथवा भोग के फल-स्वरूप, उत्पन्न सन्तति को धर्मशास्त्र और क़ानून "अवैध" (illegitimate) संज्ञा देता है और ऐसी सन्तति सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान, उत्तराधिकार एवं दायभाग में सब तरह हीन मानी गई है। यह सामाजिक मर्यादा केवल भारतवर्ष अथवा आर्य पुरुषों में ही नहीं, किसी न किसी रूप और मात्रा में सभी देशों और राष्ट्रों के क़ानून में पाई जाती है।

धार्मिक बन्धन अथवा केवल इक़रारनामा—हिन्दू क़ानून ने आर्य धर्म-शास्त्रों के अनुकूल हिन्दू विवाहों को धार्मिक संस्कार ही माना है। इसके विपरीत ईसाई आदि विवाहों को आधुनिक

क़ानून में केवल इक़रार-नामा माना जाता है, जहाँ पति और पत्नी आपस में इक़रार (agreement) कर के विवाह कर लेते हैं। इक़रार के विवाहों में विवाह-विच्छेद (Divorce) भी सम्भव है। धार्मिक आर्य विवाहों में ऋषियों ने इसे प्रशस्त नहीं माना है, यद्यपि आज के क़ानून बनाने वालों (legislators) ने "सुविधा" के लिये आर्य विवाहों की क़ानून में भी, अभी हालमें, विच्छेद का पैवन्द लगा दिया है। फिर भी, अन्य विवाहों के विपरीत, क़ानून में, आर्य विवाह अभी तक एक धार्मिक संस्कार (religious sacrament) ही माना जाता है। अन्य राष्ट्र और धर्मों के विपरीत आर्य महर्षियों का मत है कि शरीर का नाश होने पर भी आत्मा अजर, अमर और अविनाशी है ; कृत कर्मों के फल या प्रारब्ध के वश हो कर जबतक पूर्ण मोक्ष प्राप्त न हो, आत्मा पुनः पुनः विविधि योनियों में जन्म ग्रहण करता रहता है और जीवन मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। आर्य महर्षियों का मत है कि विवाह-विच्छेद कभी सम्भव नहीं, विवाह-ग्रन्थि अक्षय और अटूट है और जन्मान्तर में भी वे ही स्त्री व पुरुष एक दूसरे को प्राप्त होते रहते हैं।

सभी धर्म विवाह को कुछ अंशमें धार्मिक कृत्य द्वारा ही अनुष्ठित करते हैं—विश्लेषण कर के देखा जाय तो सभी धर्म विवाह को कुछ न कुछ धार्मिक-कृत्य रूप में ही अनुष्ठित करते हुए मालूम होते हैं। उदाहरण के लिये मुस्लिम विवाह लीजिये। वर-कन्या के अभिभावक ही प्रायः विवाह तय करते हैं, जैसे अपने यहाँ वाग्दान (सगाई) है। फिर हमारी भाँति ही वरपक्ष बारात लेकर कन्या के यहाँ जाता है। कन्या पक्ष को बारात के लिये डेरे आदि की सुविधा व भोजन का प्रबन्ध करना होता है। वर-पक्ष का क़ाज़ी और कन्या-पक्ष का क़ाज़ी (कभी कभी केवल वर-पक्ष

का ही) विवाह सम्पन्न कराता है। विवाह में वर-कन्या एक दूसरे के सामने खड़े होते हैं और क़ाज़ी उनसे सहमति (consent) लेता है। नाबालिग़ वर अथवा कन्या की ओर से उसका वली (guardian) सहमति देता है। फिर निक़ाह, यानी क़ुरान शरीफ़ की तत्सम्बन्धी आयतें, क़ाज़ी पढ़ता है और हदीस के अनुसार अन्य 'विधियों' के साथ मेहर तय किया जाता है। फिर क़ाज़ी वर और वधू से परस्पर प्रातिज्ञाएँ कराता है, जो अपने यहाँ के "वचन" की भांति ही हैं। क़ाज़ी कहता है "यह औरत तुमको औलाद के लिये व अल्लाह ताला की बन्दगी के लिये दी जा रही है। तुमको इसकी परवरिश करनी होगी। जो तुम खाओगे वही इसे खाने को दोगे। जो तुम पहनोगे वही इसे पहनाओगे," आदि। फिर बारात की व घरात की दावत होती है। चाय, नाश्ता, कलेवा, सब उसी प्रकार। एक दिन रह कर दूसरे दिन शाम को बारात रुख्शत होती है। यह इक़रारनामा माना गया है, किन्तु धर्म तों यहाँ भी मौजूद है ही। इसी प्रकार (Roman Catholic) क्रिश्चियनों का विवाह गिरजाघरमें ही होता है और धर्मगुरू पादरी ही उसे कराता है। वहाँ भी धार्मिक मंत्रों के साथ पादरी ही "I declare thee husband and wife" घोषित करता है। बाद को वर और कन्या परस्पर एक दूसरे को पति और पत्नी स्वीकार करते हैं।

पारसियों में विवाहित जीवन की बड़ी मर्यादा है और आजीवन अविवाहित रहने की निन्दा की गई है। इस धर्म में बहु-विवाह मान्य नहीं हैं। विवाह-कार्य बड़े पुरोहित द्वारा सम्पन्न होता है, अन्य पुरोहित सहायता करते हैं। आशीर्वाद देने के सिलसिले में पुरोहित वर और कन्या से तीन बार इस बात की घोषणा कराते हैं कि विवाह उन दोनों की स्वेच्छा से सम्पन्न हो रहा है। विवाह

निश्चत करने वाले अभिभावक तथा गवाहों की भी सम्मति तीन बार ली जाती है। जब तक यह कार्य होता रहता है तब तक चावल के कुछ दानें (अक्षतों) की वर्षा नवदम्पति पर निरन्तर होती रहती है। यह कार्य भावी सुख और समृद्धि का द्योतक समझा जाता है†।

हाँ, Special Marriages Act के मुताबिक जो विवाह होते हैं वही शुद्ध इक़रार-नामे कहे जा सकते हैं, क्योंकि वह केवल-मात्र मर्द और औरत के दस्तख़त और रजिष्ट्रार द्वारा उसकी रजिष्ट्री हो जानेसे सम्पन्न और जायज़ समझे जाते हैं। उनमें धर्म की गन्ध भी नहीं है और वह एक Special Marriages Act द्वारा प्रशाशित होते हैं।

ऊपर कहा जाचुका है कि भारतीय शास्त्रों एवं धर्माचरणों के अनुसार आर्य-विवाह जन्म-जन्मान्तर का चिरस्थायी संयोग है। उपनिषद् और भारतीय नीतिशास्त्र में पति और पत्नी परस्पर अर्धाङ्ग हैं; और इन दोनों को लेकर ही गृहस्थ पूर्ण होता है। पुरुष प्रेरक है, साहस और धैर्य का प्रतीक है, कतृत्वशक्ति का स्रोत है, तो नारी स्वयं शक्ति है, ममता एवं सहृदयता आदि कोमल सद्भावनाओं की भण्डार है और सुख-शान्ति की रक्षिका है। आर्य-विवाह में अग्नि-देवता की साक्षी में, वेद-मंत्रों द्वारा, दोनों के प्राण, अस्थि, मांस, त्वचा एवं मन एकात्म हो जाते हैं। इस प्रकार आर्य-विवाह सार-रूप में दो प्राणियों का आत्मिक सम्मिलन, पूर्ण-विलय, विश्रृंखल वृत्तियों का सामंजस्य और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चतुष्टयी सम्प्राप्ति का आधार है, जिसके द्वारा सृष्टि की दो पृथक दिव्य व श्रेष्ठ सत्ताएं —नारी और पुरुष—दाम्पत्त्य सम्बन्ध स्थापित कर आशातीत निर्द्वन्द ध्येय-पथ की विशाल कर्मधर्मयुक्त मुक्ति-भूमि में पहुँच जाते हैं।

† देखिये, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा प्रकाशित "विश्वधर्म दर्शन", पृष्ट ५९।

अन्य धर्म अथवा देशों में जो भी हो, भारतीय विवाह का उद्देश्य इन्द्रिय-तृप्ति जैसी तुच्छ वस्तु, अथवा केवल काम की पूर्त्ति, नहीं, किन्तु आदर्श गृहस्थ-धर्म के निर्वाह से इह लोक में धर्म, अर्थ और काम के लाभ द्वारा परलोक में उभय की मोक्ष प्राप्ति है। इसी शुद्ध भावना से प्रेरित हो कर दो सम्पूर्णतः अपरिचित नवयुवक नवयुवती—जिन्होंने प्रायः विवाह से पूर्व एक दूसरे को देखा भी नहीं होता—सदियों सहस्त्रों वर्षों से इस पवित्र बन्धन में हर्षपूर्वक बँधते आये हैं। इतिहास साक्षी है कि भारतीय विवाह-पद्धति से अनुष्ठित विवाह प्रायः शत प्रतिशत सफल रहे हैं; इस मानी में, कि उनमें विच्छेद का कभी प्रश्न ही नहीं उठा। पति पत्नी परस्पर स्वयं को सम्पूर्ण और सदा के लिये एक दूसरे को आत्म-समर्पण कर देते रहे हैं। आर्य ऋषियों की दृष्टि में विवाह तुच्छ वासना-पूर्त्ति का साधन न रह कर चरम आत्मत्याग, कठोर संयम और पवित्र आध्यात्मिक उन्नति का पुनीत पथ रहा है।

"विवाह-मूलक-प्रेम" अथवा "प्रेम मूलक-विवाह"—

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, भारतीय विवाह अनुभवी वयोवृद्ध अभिभावकों द्वारा सुनिश्चित किये जाकर—कुछ ही वर्षों पहले अधिकतर और अबभी बहुत कुछ अंशों में—ऐसे होते थे जिनमें विवाह के पश्चात, द्विरागमन के बाद, सौभाग्य-रात्रि में ही पति और पत्नी एक दूसरे को सर्व-प्रथम देखते थे। उस समय उन्हें याद होता कि वह किस बन्धन में बँध चुके हैं। वह एक दूसरे को प्रेम और श्रद्धा करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे, और उसे जन्म भर उसी प्रकार निभाते थे। इसके विपरीत, सभ्य कहे जाने वाले पश्चिमी देशों में, विवाहार्थी युवक और युवती महीनों, वर्षों, एक दूसरे को परखते (court) रहते हैं; आमोद, प्रमोद,

एकान्त आदि में एक दूसरे के साथ रहते हैं और जिसे वह प्रेम समझते हैं उसे प्राप्त करने की चेष्टा करते रहते हैं। इनमें एक बहुत बड़ा अंश तो बीचही में एक को छोड़ दूसरे को court करने लगता है, और यदि दोनों की शादी हो भी गई तो फिर क़ानून में विच्छेद की व्यवस्था है ही; आत्म-समर्पण और परस्पर समझौते का प्रश्न ही नहीं उठता।

आर्यों के विवाह-मूलक-प्रेम में, प्रेम का उदय वैवाहिक कर्त्तव्य द्वारा प्रसूत हो कर चिरस्थायी और सुखद रहता है; पश्चिम के प्रेम द्वारा प्रसूत विवाह में जैसे ही प्रेम समझी जाने वाली वासना शान्त हुई वैसे ही एक शून्य शेष रह जाता है, जो परिणाम में दुःखद होता है। किसी भी पश्चिमी देश के तलाक के आँकड़े ले लीजिये, अधिकांश विवाह शीघ्र-विच्छेद में ही समाप्त होते हैं। और आत्महत्या के आँकड़े लीजिये, अधिकांश प्रेम समझी जाने वाली इसी वासना के कारण घटित होती हैं। अमेरिका में ऋद्धि सिद्धि सभी देशों से अधिक मात्रा में प्राप्त हैं, फिरभी वहाँ प्रतिवर्ष वीस हजार आदमी आत्महत्या करते हैं *। और इस परखने (courtship) की ज़िम्मेदारी तो कौमार्य-भङ्ग का द्वार ही है, यदि किसी प्रकार कन्या अबतक कुमारी बचभी गई हो।

प्राचीन इतिहास में भारतीय विवाहों में जो प्रेम-प्रसूत हुए, अधिकांश दुःख और विपत्ति से रिक्त न रहे। शकुन्तला-दुष्यन्त कण्व ऋषि की अनुपस्थिति में प्रेम-मूलक विवाह-ग्रन्थि में बद्ध हुए थे, फिर कहाँ बेचारी शकुन्तला, और कहाँ महाराज दुष्यन्त? नल और दमयन्ती का आख्यान लीजिये। कौनसी विपत्ति शेष रही जो उनपर न पड़ी हो। महारानी कृष्णा द्रौपदी और जगदम्बा भगवती सीता का भी विवाह विपत्तियों से रिक्त न हुआ। और

* "न्यूयार्क टाइम्स" की सर्वे रिपोर्ट के अनुसार।

हाल में जयचन्द की पुत्री संयोगिता के प्रेममूलक स्वयंवर-विवाह ने तो भारतवर्ष को सदियों की गुलामी के गड्ढे में ही डाल दिया।

यद्यपि आर्ट कहेजानेवाले हमारे आधुनिक चित्रपट; साहित्य कहे जाने वाले साधारण उपन्यास, नाटक, पत्रिकाएं और पत्र; और सुसंस्कृति कही जाने वाली हमारी नवोदित पश्चिमी शिक्षा-सभ्यता आज हमें प्रेम-मूलक विवाहों की ओर ही आकृष्ट कर रही है, फिर भी, इस विषय में हमारा सुनिश्चित कर्त्तव्य होना चाहिये, कि हम पश्चिम के दुःखद परिणाम के आँकड़ों और अपने प्राचीन इतिहास से शिक्षा ग्रहण कर, विवाह-मूलक-प्रेम को ही अपना ध्येय समझें और प्रेम-मूलक-विवाह की जोख़िमें उठाने की ओर न बढ़ें।

और इन चलचित्रों और उपन्यासों की कथा वार्त्ता ही क्या होती है। एक युवक और एक युवती, प्रथम दृष्टि में ही प्रेम, विवाह के लिये उछल कूद और जोख़िमें, एक दुष्ट, और अन्त में hero-heroine का विवाह। फिर यदि विवाह के बाद ही युवक और युवती का प्रथम दृष्टि-विनिमय हो तो ही कौन सी बाधा प्रेम को आने से रोक लेगी। हाँ! आवश्यकता इस बात की है कि हम वैवाहिक कार्य, वैवाहिक मंत्र और अग्नि की साक्षी में की हुई परस्पर की प्रतिज्ञाओं को समझ भर लें।

सुखी और सुन्दर समझे जाने वाले पाश्चात्य प्रेम मूलक-विवाहों में कितना सुख और आनन्द है, इसका अनुभव भुक्तभोगी पाश्चात्य मनीषियों के निजी शब्दों में ही पढ़िये –

"Marriage! Nothing else demands so much from a man!"—*Ibsen.*

"Pleasant the snaffle of courtship, improving the manners and carriage; but the colt who

is wise will abstain from the terrible throw bit of Marriage."—*Rudyard Kipling.*

"Marriage is a very sea of calls and claims, which have but little to do with love."—*Ibsen.*

"The whole world is strewn with snares, traps, gins and pitfalls for the capture of men by women.—*G. Bernard Shaw.*

"There are two rocks, in this world of ours, on which the soul must either anchor or be wrecked—the one is God, and the other is the sex opposite."—*F. W. Robertson.*

"In choosing a wife, a nurse, or a school-teacher, look to the breed.—There is as much blood in men as in horses."—*C. Simmons.*

"Men marry to make an end; women to make a beginning."—*A. Dupuy.*

"Remember, that if thou marry for beauty, thou bindest thyself all thy life for that which perchance will neither last nor please thee one year; and when thou hast it, it will be to thee of no price at all; for the desire dieth when it is attained, and the affection perisheth when it is satisfied."—*Sir W. Raleigh.*

"Early marriages are permanent moralities; deferred marriages are temptations to wickedness."—*H. W. Beecher.*

"Maids want nothing but husbands, and when they have them, they want everything."—*Shakespeare.*

"Wedlock's like wine, not properly judged of till the second glass."—*Jerrold.*

"A husband is a plaster that cures all the ills of girlhood."—*Moliere.*

"I believe marriages would in general be as happy, and often more so, if they were all made by the Lord Chancellor, upon a due consideration of the characters and circumstances, without the parties having any choice in the matter."—*Johnson.*

"The Christian religion, by confining marriage to pairs, and rendering the relation indissoluble* has by these two things done more toward the peace, happiness, settlement, and civilization of the world, than by any other part in this whole scheme of divine wisdom."—*Burke.*

आर्य विवाह में वेद भगवान का आशीर्वाद है—

---

* रोमन कैथलिक धर्म में विवाह-विच्छेद की आज्ञा नहीं है।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥

[ऋक्० मं० १० अ० ७ सू० ८५ श्लो० ४२]

अर्थ—हे वर वधू! तुम समान प्रीतिवाले होकर अपने घरमें निवास करो। विभिन्न प्रकार के भोजनों को प्राप्त करते हुए तुम पुत्र पौत्रों सहित प्रसन्नता पूर्वक सुख भोग करो।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥

[अथर्व० का० १४ अ० १ सू १ श्लो० २२

अर्थ—तुम दोनों साथ रहो, पृथक् न होओ, जीवन पर्यन्त अनेक प्रकार के भोजन करो, पुत्रादि के साथ क्रीड़ा करो और मङ्गल से युक्त होते हुए सदा प्रसन्न रहो।

२

वैदिक साहित्य

हम चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं, इस लिये हमें अपने वैदिक साहित्य से यथासम्भव अवगत रहना चाहिये।

वेद शब्द 'विद्=ज्ञाने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय हो कर बना है। इस लिये ज्ञान, ज्ञान का विषय, ज्ञेय पदार्थ और ज्ञान के साधन तीनों ही वेद शब्द के वाच्य अर्थ हो सकते हैं[1]। प्राचीन वाङ्मय में ब्रह्म, विद्या और वेद, इन तीनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ, में मिलता है।

वेद-विभाग—श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने वर्त्तमान युग में वेद के चार विभाग किये हैं। जैसे मणियों की ढेरी में से विभिन्न जाति की मणियाँ छाँट कर अलग-अलग कर दी जाती हैं, वैसे ही महामति व्यासदेव ने मंत्र-समुदाय में से भिन्न भिन्न प्रकरणों के अनुसार मंत्रो का संग्रह करके उनसे—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—चार संहिताएँ बनाईं और अपने चार शिष्यों में प्रत्येक को एक-एक संहिता की शिक्षा दी। उन्होने 'बहवृच' नाम की पहली ऋक् संहिता का पैल को, 'निगद' नाम की दूसरी यजुः संहिता का वैशम्पायन को, साम श्रुतियों की 'छंदोगसहिंता' का जैमिनि

१ देखिये. महामहोपाध्याय श्री गिरिधर जी शर्मा कृत 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति", पृष्ट २७।

is wise will abstain from the terrible throw bit of Marriage."—*Rudyard Kipling.*

"Marriage is a very sea of calls and claims, which have but little to do with love."—*Ibsen.*

"The whole world is strewn with snares, traps, gins and pitfalls for the capture of men by women.—*G. Bernard Shaw.*

"There are two rocks, in this world of ours, on which the soul must either anchor or be wrecked—the one is God, and the other is the sex opposite."—*F. W. Robertson.*

"In choosing a wife, a nurse, or a school-teacher, look to the breed.—There is as much blood in men as in horses."—*C. Simmons.*

"Men marry to make an end ; women to make a beginning."—*A. Dupuy.*

"Remember, that if thou marry for beauty, thou bindest thyself all thy life for that which perchance will neither last nor please thee one year ; and when thou hast it, it will be to thee of no price at all ; for the desire dieth when it is attained, and the affection perisheth when it is satisfied."—*Sir W. Raleigh.*

"Early marriages are permanent moralities ; deferred marriages are temptations to wickedness."—*H. W. Beecher.*

"Maids want nothing but husbands, and when they have them, they want everything."
—*Shakespeare.*

"Wedlock's like wine, not properly judged of till the second glass."—*Jerrold.*

"A husband is a plaster that cures all the ills of girlhood."—*Moliere.*

"I believe marriages would in general be as happy, and often more so, if they were all made by the Lord Chancellor, upon a due consideration of the characters and circumstances, without the parties having any choice in the matter."—*Johnson.*

"The Christian religion, by confining marriage to pairs, and rendering the relation indissoluble* has by these two things done more toward the peace, happiness, settlement, and civilization of the world, than by any other part in this whole scheme of divine wisdom."—*Burke.*

आर्य विवाह में वेद भगवान का आशीर्वाद है—

* रोमन कैथलिक धर्म में विवाह-विच्छेद की आज्ञा नहीं है।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥

[ऋक्० मं० १० अ० ७ सू० ८५ श्लो० ४२]

अर्थ—हे वर वधू ! तुम समान प्रीतिवाले होकर अपने घरमें निवास करो। विभिन्न प्रकार के भोजनों को प्राप्त करते हुए तुम पुत्र पौत्रों सहित प्रसन्नता पूर्वक सुख भोग करो।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥

[अथर्व० का० १४ अ० १ सू १ श्लो० २२

अर्थ—तुम दोनों साथ रहो, पृथक् न होओ, जीवन पर्यन्त अनेक प्रकार के भोजन करो, पुत्रादि के साथ क्रीड़ा करो और मङ्गल से युक्त होते हुए सदा प्रसन्न रहो।

———

२

वैदिक साहित्य

हम चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं, इस लिये हमें अपने वैदिक साहित्य से यथासम्भव अवगत रहना चाहिये।

वेद शब्द 'विद् = ज्ञाने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय हो कर बना है। इस लिये ज्ञान, ज्ञान का विषय, ज्ञेय पदार्थ और ज्ञान के साधन तीनों ही वेद शब्द के वाच्य अर्थ हो सकते हैं[१]। प्राचीन वाङ्मय में ब्रह्म, विद्या और वेद, इन तीनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ, में मिलता है।

वेद-विभाग—श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने वर्त्तमान युग में वेद के चार विभाग किये हैं। जैसे मणियों की ढेरी में से विभिन्न जाति की मणियाँ छाँट कर अलग-अलग कर दी जाती हैं, वैसे ही महामति व्यासदेव ने मंत्र-समुदाय में से भिन्न भिन्न प्रकरणों के अनुसार मंत्रो का संग्रह करके उनसे—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—चार संहिताएँ बनाईं और अपने चार शिष्यों में प्रत्येक को एक-एक संहिता की शिक्षा दी। उन्होने 'बह्वृच' नाम की पहली ऋक् संहिता का पैल को, 'निगद' नाम की दूसरी यजुः संहिता का वैशम्पायन को, साम श्रुतियों की 'छंदोगसहिंता' का जैमिनि

१. देखिये. महामहोपाध्याय श्री गिरिधर जी शर्मा कृत 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति", पृष्ट २७।

को और 'अथर्वाङ्गिरस-संहिता' का शिष्य सुमन्तु को अध्ययन कराया। इस प्रकार श्रुति के चार विभाग हो कर पृथक पृथक उनका विस्तार निम्न क्रम से हुआ।

ऋग्वेद—"बहवृच" नाम की पहली ऋक् संहिता महर्षि पैल को भगवान वेद्व्यास से मिली थी। पैल मुनि ने अपनी संहिता के दो विभाग करके एक का अध्ययन इन्द्रप्रमति को और दूसरी का वाष्कल को कराया। वाष्कल ने अपनी शाखा के चार विभाग करके उन्हे अलग अलग अपने शिष्य बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र † को पढ़ाया[१]। परम-संयमी इन्द्रप्रमति ने अपनी प्रातिशाखा को अपने पुत्र प्रतिभाशाली माण्डूकेय ऋषि को; और उन्होने अपने पुत्र साकल्य[२] एवं शिष्य देवमित्र को उस दिव्य संहिता को पढ़ाया। देवमित्रने सौभरि आदि ऋषियों को पाठ कराया और साकल्यजी ने अपनी संहिता के पाँच विभाग करके उन्हे वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य (अथवा गोमुख) और शिशिर[३] नामक शिष्यों को पढ़ाया। महर्षि साकल्य को अपने ज्ञान पर अभिमान था और इससे वह ज्ञानान्धकारगर्वित विदग्ध विख्यात थे[४]। इनके बारे में कथा विख्यात है कि विदेह राजर्षि जनक के अश्वमेध यज्ञ में बड़े बड़े ज्ञानी और पण्डित ऋषिप्रवर इकट्ठे हुए थे और उनमें परस्पर

† विशुपुरान के अनुसार "अग्निमाठक"

१। श्रीमद्भागवत्, स्कंध १२, अध्याय ६, श्लोक संख्या ५० से ६०। विशुपुराण, अ०४ श्लोक ६ से ९ व ११ से २६ तक।

२। Pargiter ने माण्डूकेय ऋषि के पुत्र का नाम सत्यश्रवः लिखा है। देखिये, "Historical Tradtions" पृष्ठ 322

३। Pargiier के अनुसार सत्यश्रवः ने अपने पुत्र सत्यश्री और सत्यश्री ने अपने शिष्य देवमित्र, साकल्य, रथीतर शाकपूर्ण एवं वाष्कली भारद्वाज को पढाया। साकल्य ने पाँच संहिता बनायीं और उन्हे अपने पाँच शिष्य मुद्गल, गोलक, खालीय (खिल्य,) वत्स और शैशिरिय को पढ़ाया।

४, Weber, पृ: ३३, १२९; Vedic Index, ii, २८९।

शास्त्रार्थ और विजय की होड़ लगी थी। ब्रह्मवाह के पुत्र याज्ञवल्क्य ने उन सबको हरा दिया और महर्षि साकल्य को भी शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। दोनों में इस शर्त्त पर शास्त्रार्थ होना तय पाया कि हारने वाले को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। शास्त्रार्थ में याज्ञवल्क्य ने साकल्य जी के समस्त प्रश्नों का उत्तर प्रतिभा के साथ दे दिया परन्तु याज्ञवल्क्य जी के एक प्रश्न का भी ठीक ठीक उत्तर साकल्य जी न दे पाये; इस लिये उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये[१]। श्रीमद्-भागवत के अनुसार साकल्य मुनि ने अपने एक शिष्य जातूकर्ण्य मुनि को भी अपनी संहिता पढ़ाई थी और जातूकर्ण्य मुनि ने अपनी संहिता के तीन विभाग करके तत्सम्बन्धी निरुक्त के साथ अपने शिष्य बलाक, पैज, वैताल और विरज को पढ़ायी। वाष्कल के पुत्र वाष्कलिने सब शाखाओं से एक 'बालखिल्य' नाम की शाखा रची। उसे बालायनि, भज्य एवं कासार ने ग्रहण किया[२]। परजीटर साहब के मतानुसार शाकपूर्ण रथीतर ने तीन संहिता और एक निरुक्त की रचना की। उनके चार शिष्य थे, केतव, दालकी, शतबलाक और नैगम। वाष्कलि भारद्वाज ने तीन संहिता बनायीं, उनके तीन शिष्य थे, नन्दायनीय, पन्नगारि एवं अर्यव।

यजुर्वेद[३]—वैशम्पायन जी ने ८६ संहिता रचीं। उनके शिष्य ८७ थे, जिनमें ८६ चारकाध्वर्यु और एक महर्षि याज्ञवल्क्य थे।

१, Pargiter, 'Ancient Indian Historical Traditions", pp., 322-3.

२, श्रीमद् भागवत, स्कंध १२, अध्याय ६, श्लो० ५८-५९।

३, देखिये, वायु पु० ६१, ५-१०, २३-२६। ब्रह्माण्ड पु० २, ३५, ८-१३, २६-३०। श्रीमद्भागवत, स्कंध १२, अध्याय ६, श्लोक ६१-७४ ।"Ancient Indian Historical Traditions," p. 323.

महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने गुरुजी की समस्त विद्या प्राप्त कर ली थी, किन्तु चरकाध्वर्यु की परोक्ष-निन्दा करने के कारण गुरुजी उन पर क्रोधित हो गये और उनसे कहा कि अवतक तुमने जो कुछ भी मुझसे पढ़ा है उसका त्याग करके यहाँ से चले जाओ। कहते हैं कि इस पर याज्ञवल्क्य जी ने अपना पढ़ा हुआ सब उगल दिया (वमन कर दिया)। रूपक वाली भागवतीय कथा में उल्लेख है कि ८६ चरकाध्वयु शिष्यों ने तीतर पक्षी बन कर उन उगली हुई ८६ शाखाओं को ग्रहण कर लिया। सम्भवतः ऐसा हो कि प्रतिभाशील मेधावी याज्ञवल्क्य ने ही संहिता ग्रहण कर पायीं हों और चरकाध्वर्यु गुरुमुख से श्रवण करने पर भी ग्रहण न कर सके हों और परस्पर वार्त्ता रूप में चरकाध्वयुं ने याज्ञवल्क्य के मुख से छलपूर्वक कहला कर सब सीखा हो। इस प्रकार यह ८६ संहिता ८६ चरकाध्वयुं शिष्यों को प्राप्त हुईं और तीतर के नाम पर यह तैत्तिरीय कहलायीं। गुरू द्वारा त्याज्य याज्ञवल्क्य ने तपस्या द्वारा सूर्य को प्रसन्न करके स्वतंत्र नये मंत्रों से यजुः की १५ शाखाओं की रचना की जो वाजसनेय शाखा के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिन्हें कन्व, माध्यन्दिन आदि वाजिन शिष्यों ने पढ़ा। इस प्रकार यजुर्वेद की ८६ + १५ = १०१ संहिता हैं। पर्जीटर साहव का मत है कि रूपक एक कथामात्र है। वास्तव में इन याज्ञवल्क्य के एक पूर्वज वाजिसेनी याज्ञवल्क्य थे अथवा इन्ही महर्षि का नाम वाजिसेन याज्ञवल्क्य था और उसी के अनुसार इनकी १५ संहिता वाजिसनेय कहलायीं। इसी प्रकार ८६ चरकाध्वर्यु शिष्यों में सबसे वड़े शिष्य का नाम तितृ था जिसपर ८६ संहिता तैत्तिरीय कहलायीं।

सामवेद—महर्षि वेदव्यास ने अपने शिष्य जैमिनि को सामसंहिता का अध्ययन कराया। उनके पुत्र थे सुमन्तु मुनि और पौत्र थे सुन्वान। जैमिनि ने इन दोनों को एक एक संहिता

पढ़ाई। जैमिनि के शिष्य सुकर्मा अत्यन्त मेधावी थे। इन्होने एक सहस्र साम संहिता रचित कीं। सुकर्मा के शिष्य कौसलदेशनिवासी हिरण्यनाभ, पौष्यंजि और ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ आवन्त्यने उन शाखाओं को ग्रहण किया। पौष्यंजि और आवन्त्य के पाँच सौ शिष्य थे। वे उत्तर दिशा के निवासी होने के कारण औदीच्य सामवेदी कहलाते थे। उन्होनें एक एक संहिता का अध्ययन किया। पौष्यंजि के और भी शिष्य थे—लौगाक्षि, माङ्गलि, कुल्य, कुसीद और कुक्षि। इनमें से प्रत्येक ने सौ सौ संहिताओं का अध्ययन किया। हिरण्यनाभ के एक शिष्य थे राजकुमार[1] 'कृत', इन्होने अपने शिष्यों को चौवीस संहिताएं पढ़ायीं। शेष संहिताएं परम संयमी आवन्त्य ने अपने शिष्यों को दीं। इस प्रकार सामवेद का विस्तार हुआ[2]।

अथर्ववेद्—अथर्ववेद के प्रथम ज्ञाता सुमन्तु मुनि थे। उन्होने अपनी यह संहिता अपने शिष्य कवन्ध को पढायी। कवन्ध ने उसके दो भाग करके पथ्य और वेददर्श को क्रमशः एक-एक का अध्ययन कराया। वेददर्श के चार शिष्य थे—शौक्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि। पथ्य के तीन शिष्य थे—कुमुद, शुनक और जाजलि। शुनक अङ्गिरा-गोत्रोत्पन्न थे और उनके दो शिष्य थे—बभ्रु और सैन्धवायन, जिनके शिष्य सावर्ण्य आदि तथा नक्षत्रकल्प, शान्ति, कश्यप आंगिरस आदि विद्वान हुए[3]।

वेदोंका स्वरूप—वैदिक साहित्य दो मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है—(१) संहिता (अर्थात् मंत्र) और (२) ब्राह्मण, आरण्यक

१, पर्जिटर के अनुसार राजकुमार।

२, श्रीमद् भागवत, स्कंध १२, अध्याय ६, श्लोक ७५ से ८०। वायु० ६१, २७-४७। ब्रह्माण्ड० २,३५, ३१-५५।

३ श्रीमद् भागवत, स्कंध १२, अध्याय ७, श्लोक १-४।

तथा उपनिषत्। जैसा ऊपर लिखागया है, वेद चार हैं, (१) ऋक्, (२) यजुः, (३) साम एवं, (४) अथर्व। वेदों के सभी भाष्यकार इस बात से सहमत हैं कि चारो वेदों में समुच्चय रूप से प्रधानतः तीन विषयों का प्रतिपादन है[1] :—

(१) कर्म-काण्ड अर्थात् यज्ञ-कर्म—जिससे याज्ञिक या यजमान को इस लोक में अभीष्ट फल की प्राप्ति हो और मरने पर श्रेष्ठ लोक मिले।

(२) ज्ञानकाण्ड—जिससे इहलोक तथा परलोक और परमात्मा के सम्बन्ध में वास्तविक तथ्य तथा रहस्य की बातें जानी जाती हैं और जिससे मनुष्य के स्वार्थ, परार्थ तथा पारमार्थिक अभीष्टों की सिद्धि हो सकती है।

(३) उपासना-काण्ड- अर्थात् ईश्वराराधन, जिससे मनुष्य की ऐहिक तथा पारलौकिक और पारमार्थिक सिद्धि हो सकती है।

वेद अपौरुषेय हैं और उनके विस्तार एवं शाखाभेद पर एक विहंगम दृष्टिपात असंगत न होगा। वह इस प्रकार है :—

ऋग्वेद - इसके दो प्रकार के विभाग उपलब्ध हैं—(१) मण्डल अनुवाक् और सूत्र लेकर "शाकल शाखा" और (२) अष्टक, अध्याय और सूक्त लेकर "वाष्कल शाखा"। पहला विभाग ऐतिहासिक और अधिक महत्वशाली है। इस विभाग के अनुसार समस्त ऋग्वेद दस खण्डों में विभक्त है, जिन्हें मण्डल कहते हैं। मंडल में संगृहीत मंत्रसमूह को सूक्त कहते हैं। इन सूक्तों के खण्डों को ऋचाएँ अर्थात् मंत्र कहते हैं। सूक्तों की संख्या १०१७ है तथा मंत्रो की

१. इस अध्याय में यहाँसे आगे महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी कृत "वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति" से कुछ, एवं श्री साँवलिया बिहारीलाल जी वर्मा कृत "विश्वधर्म दर्शन" से बहुत कुछ सहायता ली गई हैं।

१०५५२। कुछ 'खिल' अर्थात् अतिरिक्त सूक्त हैं जिनकी संख्या ११ है। सब मिला कर सूक्तों की संख्या १०२८ है। दूसरा विभाग 'अष्टक', अध्याय और सूक्त, पाठक्रम के सुभीते के लिये बना प्रतीत होता है। प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं। इस प्रकार यह वेद ६४ अध्यायों में विभक्त है। सब मंत्र पद्य में हैं ; इनमें केवल देवताओं की स्तुति ही नहीं, जुआ खेलने से हानि, विवाह, श्राद्धादि अन्य विषयों का भी समावेश है। देवताओं की स्तुति के साथ साथ इसमें सृष्टि के अनेक तत्वों का उद्घाटन है। इनमें सबसे प्रसिद्ध 'नासदीय' और 'पुरुष-सूक्त' हैं। नासदीय-सूक्त की गणना विश्व-साहित्य के महान आश्चर्यों में है। काव्य और दर्शन, दोनों की ऊँची-से ऊँची उड़ान इस सूक्त में अभिव्यक्त हुई है। इसमें अनेक वैज्ञानिक रहस्यों की ओर संकेत है। इसमें प्रकृति के विकास की दृष्टि से सृष्टि-रचना का उल्लेख है (१०।१२६)। पुरुष-सूक्त भी वैसा ही रहस्यमय है (१०।६०)। इसमें भगवान के विराट स्वरूप का वर्णन है जिसका आभास हमें गीता (अध्याय ११) में मिलता है।

यजुर्वेद—इसमें प्रधानतः यज्ञों के उपयोग में आने वाले मंत्रों तथा उनके प्रयोग के समय, काम में लाये जाने वाली विधि और क्रिया आदि का वर्णन है। इसमें अग्नि के उत्पादन की कल्पना बहुत सरस और सुन्दर है। यजुर्वेद के दो प्रकार हैं, एक कृष्ण-यजुर्वेद अथवा "तैत्तिरीय संहिता" और दूसरा शुक्ल-यजुर्वेद जिसे 'वाजसनेयी-संहिता' भी कहते है।

शुक्ल यजुर्वेद पद्य में है। सोलहवें अध्याय में प्रसिद्ध शतरुद्री है। ऋग्वेद के रुद्र यहाँ शिव-रूप में दर्शन देते हैं। उनका 'शंकर', 'महादेव' आदि नामों से भी गुणगान है। इस वेद में विष्णु भगवान का भी महत्वपूर्ण गुणगान है। यजुर्वेद में

सर्वप्रथम उपनिषद् के ब्रह्म के दर्शन प्राप्त होते हैं। इस वेद का अन्तिम,
चालीसवाँ, अध्याय "ईशोपनिषत्" नाम से प्रसिद्ध है।

सामवेद—सामवेद में १८१० मंत्र हैं जिनमें ७५ मंत्रो
के सिवा अन्य सब ऋग्वेद के हैं। सामवेद के सभी मंत्र संगीतमय
हैं, जिनमें प्रसिद्ध सप्तस्वरों का प्रयोग करना पड़ता है और जिनका
माधुर्य और आनन्द उनके सुनने से ही प्राप्त होता है। सामवेद के
१५४६ मंत्र दो अर्चिकाओं में विभाजित हैं। प्रथम मे छः ओर
द्वितीय में नौ "प्रपाठक" हैं। भारतीय संगीत की उत्पत्ति के
मूल में सामवेद ही है और इसी की कृपा-कटाक्ष से संगीत के विश्व
में गुलामी में भी भारत का स्थान सर्वश्रेष्ठ रहा है।

अथर्व-वेद—इसमें भी अनेक मंत्र- विशेष कर १९-२०
काण्ड के—ऋग्वेद से लिये हुए हैं। यह वेद गद्य-पद्य मिश्रित है
और इसमें प्रधानतः मंत्र, तंत्र, मोहनादि क्रियाओं का वर्णन है।
जादू-टोना करनेवालों से, सर्पादि से, हिंसक जन्तुओं से और रोग आदि
नाना वाधाओं से वच सकने के मंत्र इसमें पाये जाते हैं। मारण,
मोहन, वशीकरण आदि प्रयोगों के लिये; सुख, सम्पत्ति, व्यापार,
जुए आदि की सफलता के लिये; इसमें प्रार्थना-मंत्र हैं। आयुर्वेद
सम्बन्धी बहुत सी बातें इसमें दी हुई हैं। इसमें वर्णित सूर्य की
स्वास्थ्यप्रद शक्ति तथा विभिन्न रोगोत्पादक कृमियों के विस्तृत
वर्णन को आधुनिक विज्ञान अब मान चुका है। इस वेद के चौदहवें
काण्ड में विवाह, पंद्रहवें में उच्च तत्वज्ञान और अट्ठारहवें में अंत्येष्टि
क्रिया की विधियाँ और पितृ-श्राद्ध आदि का वर्णन है।

ब्राह्मण—ब्राह्मण-ग्रन्थ गद्य में हैं और इनका उद्देश्य यज्ञविधि
आदि कर्मकाण्ड पर प्रकाश डालना है। कतिपय विद्वान इन्हें
वेदों का अति प्राचीन भाष्य मानते हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण-ग्रन्थ

हैं (१) "कौषीतकी", और (२) "ऐतरेय"। ऐतरेय ब्राह्मण में
ऐतिहासिक एवं भौगोलिक वर्णन भी प्राप्य हैं। इसमें प्रधानतः
सोम और राजसूय यज्ञों का विवरण है। कहीं कहीं एक ही वेद-
मंत्र के दोनों ग्रन्थों ने भिन्न अर्थ किये हैं।

तैत्तिरीय (कृष्ण-यजुर्वेद) और वाजसनेयी (शुक्ल-यजुर्वेद)
एक ही विषय पर हैं और दोनों में प्रायः एकही अथवा मिलते-
जुलते मंत्र हैं। कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रो के साथ क्रिया प्रणाली भी
विस्तार के साथ बताई गई है और जिन उद्देश्यों से मंत्रो का व्यवहार
होता है वह भी बताये गये हैं। इस प्रकार का ग्रन्थ-अंश वास्तव
में ब्राह्मण है। पूरी संहिता ब्राह्मण के ढंग पर चलती है। कृष्ण-
यजुर्वेद के "मैत्रायणी" और "काठक' ब्राह्मण-ग्रन्थ संहिता के अंश हैं
किन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण पृथक् ग्रन्थ है। शुक्ल-यजुर्वेद का शतपथ-
ब्राह्मण प्रसिद्ध है। यह सौ अध्यायों में समाप्त है। इसमें
वेदकालीन धार्मिक समाज का उज्वल चित्र है।

सामवेदीय ब्राह्मण-ग्रन्थों में 'ताण्डव' और 'साम-विधान' अधिक
प्रसिद्ध हैं। "ताण्डव" १५ अध्यायों में विभक्त है, इसी लिये इसे
पंचविंशब्राह्मण भी कहते हैं। सामविधान में अधिकार-च्युत
और अशक्त लोगों की शुद्धि के लिये कृच्छादि प्रायश्चित्त और
अग्न्याधान, अग्नि-होत्रादि का संग्रह है। षडविंश ब्राह्मण नामक एक
दूसरे ग्रन्थ में यही पंचविंश-ब्राह्मण के अध्यायों के साथ 'अद्भुत-
ब्राह्मण' नामक एक अतिरिक्त अध्याय है जिसमें शकुन आदि का
विवरण है। सबसे पुराना सामवेदीय ब्राह्मण "जैमिनीय" है।
धार्मिक और पौराणिक आख्यानों का इसमें समावेश है। सामवेदीय
"कौक्षमशाखा" का ब्राह्मण ४० अध्यायों में विभक्त है। उसी का भिन्न
भिन्न अंश पंचविंश, षड्विंश, मंत्र और छान्दोग्य-ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध

है। सामवेद के अन्य ब्राह्मण-ग्रन्थ आर्षेय-ब्राह्मण, वंश-ब्राह्मण, संहितोपनिषद्-ब्राह्मण आदि भी हैं।

अथर्व-वेद का एकमात्र ब्राह्मण-ग्रन्थ "गोपथ" है। यह पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो खण्डों में विभक्त है। पूर्वार्ध में अनेक विषयों पर विचार के साथ-साथ अनेक भाँति के आख्यान हैं। उत्तरार्ध में कर्मकाण्ड पर आलोचना है।

आरण्यक व उपनिषद्— यह ब्रह्मविद्या-सम्बन्धी वह विचार-समूह हैं जो निर्जन वनवासी तपस्वी आर्यऋषियों को समय-समय पर अनुभूत हुए थे। सायणाचार्य का मत है कि ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आर्य-जीवन की तीन स्थितियों के प्रतीक हैं—क्रमशः गार्हस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम। आरण्यक ग्रन्थों में अधिकतर उपनिषद् के ही अंश हैं।

ऋग्वेद के "ऐतरेय" और "कौषीतकी" आरण्यक हैं। ऐतरेय आरण्यक के पाँच ग्रन्थ आजकल पाये जाते हैं। इनमें प्रत्येक का नाम आरण्यक है। दूसरे और तीसरे तो स्वतंत्र उपनिषद् हैं, जिसके उत्तरार्ध के शेष के चार परिच्छेद वेदान्त ग्रन्थ में गिने जाते हैं, इसलिये इसका नाम ऐतरेय-उपनिषद् है। कौषीतकी आरण्यक के तीन खण्ड हैं। इनमें दो में कर्मकाण्ड वर्णित हैं और तीसरा, जो कौषीतकी-उपनिषद् कहलाता है, उसमें भौगोलिक एवं अन्य सारगर्भित विषयों पर विवेचन है।

तैत्तिरीय-ब्राह्मण का शेषांश तैत्तिरीय-आरण्यक है। इसका सातवाँ, आठवाँ और नवाँ प्रकरण ब्रह्मविद्या सम्बन्धी होने के कारण उपनिषद् कहलाता है। दसवाँ प्रकरण याज्ञिकी अथवा नारायणी उपनिषद् के नाम से विख्यात है। शतपथ-ब्राह्मण का चौदहवाँ काण्ड आरण्यक के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें संहिता के इकतीस से लेकर उनचालीस अध्यायों तक की सभी कथाएँ उद्धृत की गईं हैं।

इसके शेषके ६ अध्याय वृहदारण्यक-उपनिषद् के नाम से विख्यात हैं। वृहदारण्यक शुक्ल-यजुर्वेद का और कठ, तैत्तिरीय, श्वेताश्वेत, मैत्रायणी और कैवल्य कृष्ण-यजुर्वेद के उपनिषद् हैं।

सामवेद का आरण्यक साम-संहिता के अन्तर्गत है। सामवेदी ब्राह्मण छन्दोमय मंत्रो का गान करते हैं। इसलिये इस आरण्यक का नाम छान्दोग्य-आरण्यक हुआ। यह आरण्यक ६ प्रपाठों में विभक्त है। सामवेदीय उपनिषदों में छान्दोग्य-उपनिषद् और केनोपनिषद् प्रसिद्ध हैं।

अथर्वेद का कोई आरण्यक नहीं मिलता, किन्तु उसकी उपनिषदें अनेक मिलतीं हैं। इनमें मुख्य हैं—माण्डूक्य, प्रश्न और नृसिंहतापिनी; क्योंकि वादरायण ने अपने वेदान्त-सूत्रमें इन्हीके प्रमाण दिये हैं। मुक्तिकोपनिषद् में अथर्व-वेदीय ६३ उपनिषदों के नाम दिये हैं।

मुक्तिकोपनिषद् में १०८ उपनिषदों की सूची दी हुई है; जिनमें से (१) १० ब्रह्मतत्व, (२) २० योग, (३) २४ वेदान्त, (४) १४ वैष्णव, (५) १५ शैव, (६) ८ शाक्त और (७) १७ सन्यास विषय पर उपनिषदें हैं *। इनके अतिरिक्त "अप्रकाशित उपनिषद्" नामक ग्रन्थ में उसी संस्था ने ७१ उपनिषदों का प्रकाशन किया है; जिनमें एक अल्लोपनिषद् मुसलमान-काल में अल्ला ताला के विषय में लिखा गया है—सम्भवतः अकवर या दाराशिकोह के समय में। दारा शिकोह ने बहुत सी उपनिषदों का अनुवाद फ़ारसी भाषा में कराया था।

वेदों के शाखा-भेद के कारण— जैसा इस अध्याय के आरम्भ में लिखा गया है, वेद-विद्या गुरू द्वारा शिष्य को प्रदत्त है और सदियों तक इसी परम्परा से प्रचलित रही है। इस प्रकार इसमें कहीं कहीं पाठ-भेद अथवा ब्राह्मणों के क्रम-भेद हो गये; और वहीं आज-

* इनका प्रकाशन आठ जिल्दों में ब्रह्मयोगी की टीका के साथ, अडयार लाइब्रेरी, मदरास द्वारा किया गया है।

कल शाखा-भेद नाम से कहे जाते हैं। महाभाष्यादि ग्रन्थों में मिलता है कि किसी समय चारो वेदों की सब मिला कर ११३१ शाखाएँ हो गईं थीं जिनमें १००० शाखाएँ केवल सामवेद की थीं, क्योंकि संगीत-विद्या में थोड़ेसे भी स्वर आदि भेदसे बहुत शाखाएँ हो जातीं हैं। आज सब मिला कर १६ शाखाएँ प्राप्य हैं; शेष सब लुप्त हो गईं।

शाखाभेद का दूसरा कारण है, ऋषियों द्वारा मूल मंत्रो के पढ़ाने का क्रम, शैली, आदि। भिन्न भिन्न ऋषियों का पाठ्यक्रम अलग-अलग था, इसीकारण एक-एक ऋषि के क्रम की एक-एक शाखा कहलायी।

वेदाङ्ग—समय बीतनें के साथ-साथ यज्ञ-याग का भी विस्तार होता गया और महर्षियों ने उसके लिये छोटे छोटे सहायक ग्रन्थ बना दिये जिनसे वेदों के अध्ययन में सहायता मिलती थी। अतः इन्हें वेदाङ्ग कहा गया। इनकी विषय-संख्या छः है—(१) कल्प, (२) शिक्षा, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) छन्द तथा (६) ज्योतिष। इनका विषय-विस्तार निम्न प्रकार है :—

(१) कल्प— गागर में सागर भरने के सिद्धान्त के अनुसार कम-से-कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ व्यक्त करने के विचार से छोटे छोटे वाक्यों में महत्वपूर्ण विधि-विधान प्रकट किये गये हैं और यही सारगर्भित वाक्य "सूत्र" कहलाते हैं। यह तीन विभागों में विभक्त हैं—(१) श्रौत-सूत्र, (२) गृह्यसूत्र और (३) धर्मसूत्र। श्रौत-सूत्रों में वैदिक यज्ञ-सम्बन्धी कर्मकाण्ड का वर्णन है; गृह्यसूत्रों में गृहस्थ के दैनिक अग्नि-होम एवं संस्कारादि सम्पन्न करने की विधि है और धर्म-सूत्रों में सामजिक नियम आदि का विवेचन है।

श्रौत-सूत्र—श्रौत का शब्दार्थ है श्रुति अर्थात् वेद से सम्बन्ध रखने वाले कर्म-काण्ड। श्रौत-सूत्रों में बड़े-बड़े यज्ञानुष्ठान की विधि वर्णित हैं। इनमें से अब १३ ही प्राप्य हैं जो इस प्रकार हैं :—

ऋग्वेद के २—आश्वलायन और शांखलायन;
सामवेद के ३—मशक अथवा आर्षेय, लाट्यायन और द्राह्यायण (इसीको सम्भवतः राणायन कहा जाता है);
यजुर्वेद (शुक्ल) का १—कात्यायन;
यजुर्वेद (कृष्ण) के ६—आपस्तम्ब, हिरण्यकेशिन, बौधायन, भारद्वाज, मानव एवं वैखानस;
अथर्ववेद का १—वैतान

गृह्यसूत्र—इनमें गृहस्थों के दैनिक यज्ञ-याग एवं जन्म के पहले से लेकर मृत्यु के बाद तक के सभी संस्कारों का वर्णन है, जिसमें पञ्च-महायज्ञ, पाकयज्ञ श्राद्ध एवं षोडस संस्कार सभी आ जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक का विषय "विवाह" होने से इसमें गृह्यसूत्रों के विधान का मूल्य बहुत अधिक है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से प्राचीन भारतीय आर्यों के गार्हस्थ जीवन, रहन-सहन, आचार-विचार तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तों के रीति-रिवाज़ों का विशद परिचय मिल जाता है। प्राप्य गृह्यसूत्र इस प्रकार हैं :—

ऋग्वेद के २—आश्वलायन और शांखलायन;
शुक्ल-यजुर्वेद का १—पारस्कर;
कृष्ण-यजुर्वेद के ६—आपस्तम्ब, हिरण्यकेशिन, बौधायन, मानव, काठक और वैखानस;
सामवेद के २—गोभिल एवं खादिर; और
अथर्ववेद का १—कौशिक।

विवाह पर भिन्न भिन्न गृह्यसूत्रों में क्या विधान पाया जाता है, इस पर प्रस्तुत पुस्तक के खण्ड १, अध्याय ६ में कुछ विवेचन किया गया है। यहाँ यह लिख देना असंगत न होगा कि भारतवर्ष के किस भाग में कौनसा गृह्यसूत्र अधिक मान्य है, इस विषय में चरणव्यूह में वर्णित महार्णव के अंश में इस प्रकार लेख है :—

"इतर देशेषु वेदशाखयोर्विभाग उच्यते। स च महार्णवे।
पृथिव्या मध्यरेखा च नर्मदा परिकीर्तिता।
दक्षिणोत्तरयोर्भागे शाखाभेदाश्च उच्यते ॥ १ ॥
नर्मदा दक्षिणे भागे आपस्तम्ब्याश्वलायनी।
राणायनी पिप्पला च यज्ञकन्याविभागिनः ॥ २ ॥
माध्यन्दिनी शाङ्खायनी कौथुमी शौनकी तथा।
नर्मदोत्तरभागे च यज्ञकन्याविभागिनः ॥ ३ ॥
तुङ्गा कृष्णा तथा गोदा सह्याद्रिशिखरावधि।
आन्ध्रदेशपर्यन्तं बह्वृचश्चाश्वलायनी ॥ ४ ॥
उत्तरे गुर्जरेदेशे बह्वृचाः परिकीर्तिताः।
कौषीतकी ब्राह्मणं च शाखा शाङ्खायनी स्थिता ॥ ५ ॥
आन्ध्रादिदक्षिणाग्नेयीगोदासागर आवधि।
यजुर्वेदस्तु तैतिर्यो आपस्तम्बी प्रतिष्ठिता ॥ ६ ॥
सह्याद्रिपर्वतारम्भाद्दिशां नैऋत्यसागरात्।
हिरण्यकेशी शाखा पर्शुरामस्य सन्निधौ ॥ ७ ॥
मयूरपर्वताश्चैव यावद्गुर्जरदेशतः।
व्याप्ता वायव्यदेशान्तु मैत्रायणी प्रतिष्ठिता ॥ ८ ॥
अङ्ग बङ्गकलिङ्गाश्च कानीनो गुर्जरास्तथा।
वाजसनीय शाखा च माध्यंदिनी प्रतिष्ठिता ॥ ९ ॥
ऋषिणा याज्ञवल्क्येन सर्व देशेषु विस्तृता।
वाजसनीय वेदस्य प्रथमा कण्व संज्ञकेति ॥ १० ॥

धर्म-सूत्र— इन्हें सामयाचारिक भी कहा जाता है। इन सूत्रों में धर्म का विवेचन, वर्णाश्रम-व्यवस्था, राजा-प्रजा के कर्त्तव्य, विवाह के भेद, दायभाग की व्यवस्था, स्त्रियों का स्थान, निषिद्ध भोजन, शुद्धि, प्रायश्चित्त, न्यायालयादि के व्यवहार आदि विषयों पर प्रतिपादन किया गया है। ज्ञात होता है, इन्हीं धर्मसूत्रों के

आधार पर बाद में स्मृतियों की रचना हुई। वेद-शाखा से सम्बन्धित धर्मसूत्रों में केवल तीन— आपस्तम्ब, हिरण्यकेशिन और बौधायन— प्राप्य हैं। गौतम-धर्मसूत्र और वशिष्ठ-धर्मसूत्र भी सूत्र-ग्रन्थ ही माने जाते हैं। वैखानस धर्मसूत्रभी मिलता है।

शुल्व— इनका सम्बन्ध श्रौत-सूत्रों से ही है। शुल्व का शब्दार्थ है, नापने वाला डोरा। इन सूत्रों में यज्ञ की वेदियों के उपयुक्त स्थान का चुनना, माप, निर्माण-प्रणाली आदि का वर्णन है। यह सूत्रग्रन्थ ज्यामिति (geometry) के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं।

अन्य वेदाङ्ग ग्रन्थ इस प्रकार हैं :—

(२) शिक्षा— जिसके द्वारा वेदों के स्वर, मात्रा और उच्चारणादि का ज्ञान होता है उसे वैदिक साहित्य में "शिक्षा" नाम दिया गया है। अशुद्ध उच्चारण, स्वर की विषमता या वर्ण की विषमता, से मंत्र दूषित हो कर यजमान का अहित न करे, इस लिये वैदिक कर्मकाण्ड में पूर्ण "शिक्षा" की आवश्यकता है— जो आज की परिस्थितियों में और भी अधिक है। पाणिनि के नाम से प्रख्यात पाणिनीय शिक्षा के अध्ययन द्वारा इस विषय का पर्याप्त परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

ऋषियों की स्वरादि विशेषता, जो शाखा-विशेष की परम्परा हो गई, स्मरण रखने के लिये "प्रातिशाख्य ग्रन्थ" बने, जिनमें शिक्षा और व्याकरण दोनों पाये जाते हैं ऋग्वेद की शाकल-शाखा का "तैत्तिरीय प्रातिशाख्य", सामवेद का 'साम-प्रातिशाख्य', अथर्व-वेद का 'अथर्व-प्रातिशाख्य' या 'शौनकीय-चतुराध्यायी' उपलब्ध हैं।

(३) व्याकरण— भाषा रचना के नियम इसमें निहित हैं। 'गोपथ-ब्राह्मण' (१।२४) में व्याकरण के प्रयोजन इस प्रकार दिये हैं—

(१) वेद की रक्षा, (२) उसका ठीक-ठीक अर्थ समझना, (३) शब्दों का ज्ञान, (४) सन्देह-निवारण, (५) अशुद्ध शब्दों का परित्याग, (६) यज्ञादि कर्मों में शुद्ध शब्द-व्यवहार, (७) पटु ऋत्विक् होना, (८) सन्तान का शुद्ध नामकरण और (९) सत्यासत्य का निर्णय। प्राप्य ग्रन्थों में सब से पुराना "पाणिनीय अष्टाध्यायी" है। इसमें आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार चार पाठ हैं। सूत्रों की संख्या ३९९६ है।

(४) निरुक्त—इसमें वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है। अब केवल महर्षि यास्क कृत निरुक्त ही उपलब्ध है। वेदों के शब्दार्थ के लिये यही प्रमाण है।

(५) छन्द—छन्द, अर्थात कविता की बन्दिश। वेदाध्ययन में छन्दों का ज्ञान अनिवार्य है, क्योंकि कृष्ण-यजुर्वेद के एक भाग के अतिरिक्त और सब वेद पद्य में ही हैं। महर्षि कात्यायन ने अपनी 'सर्वक्रमणिका' में सात प्रकार के छन्दों का उल्लेख किया है—(१) गायत्री, (२) उष्णिक, (३) अनुष्टुप्, (४) वृहती, (५) पंक्ति, (६) त्रिष्टुप और (७) जगती। कात्यायन के बाद छन्द शास्त्र के सबसे प्राचीन ज्ञाता महर्षि पिङ्गल हैं। संस्कृत साहित्य में लगभग ५० प्रकार के छन्द व्यवहार में आते हैं।

(६) ज्योतिष—यज्ञयाग आदि शुभ कार्य अथवा संस्कार शुभ मुहूर्त्त पर ही किये जाते हैं। मुहूर्त्त, समय आदि का निर्णय करने के लिये ज्योतिष-शास्त्र है। ज्योतिष के अन्तर्गत भूगोल, खगोल, ग्रहादि की गति व स्थान आदि सम्मिलित है। पराशर और गर्ग सबसे प्राचीन ज्योतिषी हैं, पश्चात् आर्य भट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, कमलाकर आदि उल्लेखनीय हैं। ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ हैं। गणित और फलित, दोनों प्रकार की ज्योतिष विद्या में

भारत सदासे अग्रगण्य रहा है। आधुनिक विज्ञान भी आर्य महर्षियों के ज्योतिष-ज्ञान से प्रभावित है।

अनुक्रमणी—षड्वेदाङ्ग के अतिरिक्त अनुक्रमणी-ग्रन्थों में हमें वेदमंत्र एवं उनके ऋषि, छन्द, देवता आदि की सूची मिलती है।

यही हमारा परम मूल्यवान वैदिक साहित्य है, जिस पर हमारे प्राचीन आर्य-जीवन का राजमहल खड़ा है।

यही ऋषियों द्वारा प्रदत्त अमूल्य निधि है, अक्षय थाती है और हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक समस्त भारत की एकता का सूत्र है। किस देश और धर्म-साहित्य में इतने मूल्यवान मणि-माणिक बिखरे पड़े हैं? हम चतुर्वेदी हैं, और इनमें से जितने अधिक ग्रन्थ पढ़ सकें, हमें पढ़ने चाहिये। इनके अतिरिक्त एक और प्रधान ग्रन्थ-शाखा है जिस पर हमारे समाज के रीति-रिवाज़ो का निर्माण हुआ है। वह हैं—

धर्म शास्त्र—पहले कहा गया है कि "कल्प" नामक वेदाङ्ग के अन्तर्गत 'धर्मसूत्र' नामक अंश है। यही 'धर्मशास्त्र' कहलाता है। वेदों में धर्मशास्त्र के नियमों का उल्लेख आनुषंगिक रूप में ही प्राप्त होता है। यद्यपि संहिताओं में विवाह, उसके प्रकार, पुत्रों के विभिन्न भेद, दत्तक-पुत्र के विधान, धनविभाग, दायभाग, श्राद्ध और स्त्रीधन आदि विषयों पर महत्वपूर्ण सिद्धान्त पाये जाते हैं, तथापि यह सामिग्री व्यवस्थित रूप में, क्रम से, एक स्थान पर नहीं है। धर्मशास्त्रों में यही सामिग्री व्यवस्थित रूप से, ठीक-ठीक क्रम में, एक साथ मिल जाती है।

इतिहास, पुराणों और कतिपय धर्मशास्त्रों में बहुत अधिक स्मृतियों और उपस्मृतियों का उल्लेख मिलता है, पर वह अधिकतर अप्राप्य हैं या फिर कुछ खण्डित रूप में मिलतीं हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है कि जिन ग्रन्थों में प्रजा के लिये उचित आचार-व्यवहार, व्यवस्था

और समाज-संगठन के प्रचलित नियम एवं नीति, सदाचार आदि विषयों का विवेचन था, वह इतने अप्राप्य अथवा खंडित हो गये, अथवा कर दिये गये। भीष्म पितामह के समय में वृहत् धर्मशास्त्र-ग्रन्थ उपलब्ध था, जो वार्हस्पत्य-शास्त्र के नाम से विख्यात था। इसका महाभारत के शान्तिपर्व में उल्लेख है। शुक्राचार्य की औशनस-नीति, जो एक सहस्र अध्यायों में विभक्त थी, आज उपलब्ध नहीं।

स्मृतियाँ—विषय-बाहुल्य एवं व्याख्या-विवेचन की दृष्टि से 'मनुस्मृति' तथा 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्मृतियाँ हैं। मनुस्मृतिमें आचार नियमों का प्राधान्य है और याज्ञवल्क्य-स्मृति में व्यवहार का। इन दो के अतिरिक्त निम्नलिखित १५ स्मृतियाँ भी उपलब्ध हैं-(१) पाराशर, (२) नारद, (३) बृहस्पति, (४) कात्यायन, (५) अंगिरा, (६) दक्ष, (७) पितामह, (८) पुलस्त्य, (९) प्रचेतस्, (१०) प्रजापति, (११) मरीचि, (१२) यम, (१३) विश्वामित्र, (१४) व्यास एवं (१५) हारीत। विषय के ज्ञान के लिये दोनों प्रमुख स्मृतियों के विषय में पृथक टिप्पणी लिखना अधिक उपयुक्त होगा।

मनुस्मृति—इसमें १२ अध्याय और २६९४ श्लोक हैं। पहले अध्याय में सृष्टि विषयक ज्ञातव्य बातें हैं। दूसरे में धर्म के लक्षण, उसके निदान और ब्रह्मचर्य के नियम हैं। तीसरे, चौथे, पाँचवे में विवाह, उसके प्रकार, गृहस्थ-धर्म, श्राद्ध, और विहित तथा निषिद्ध भोजन का विवेचन है। छठे में परिव्राजक तथा नवें में क़ानून का विस्तृत विवरण है। दसवें में वर्णशंकर, म्लेच्छ, काम्बोज आदि जातियों के आचार वर्णित हैं। ग्यारहवें में प्रायश्चित्त तथा बारहवें में मोक्ष एवं उसके साधनों का विवेचन है। मनुस्मृति के मुख्य टीकाकार मेधातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूक भट्ट, नारायण-सर्वज्ञ, राघवानन्द, मणिराम दीक्षित तथा रामचन्द्र हैं। सर्वसाधारण में आज भी मनुस्मृति का प्रचार अच्छी मात्रा में हैं।

याज्ञवल्क्य-स्मृति—विद्वानों ने अन्वेषण के बाद निश्चित किया है कि स्मृतिकार याज्ञवल्क्य शुक्ल-यजुर्वेद के द्रष्टा अथवा वृहदारण्यक-उपनिषद् के ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्य से भिन्न हैं और इन दोनों में सहस्रों वर्ष का अन्तर है। याज्ञवल्क्य-स्मृति तीन अध्यायों में विभक्त है-(१) आचाराध्याय, (२) व्यवहाराध्याय और (३) प्रायश्चित्ताध्याय। व्यवहार-विधान (क़ानून) में मनु की अपेक्षा याज्ञवल्क्य के सिद्धान्त बहुत अधिक विकसित हैं। इसके टीकाकर विश्वरूप, अपरार्क, कुलमणि, देवबोध, धर्मेश्वर, रघुनाथ भट्ट, शूलपाणि तथा मित्रमिश्र तो हैं ही, किन्तु सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका है विज्ञानेश्वर जी की 'मिताक्षरा'। अपरार्क जी की टीका एक स्वतंत्र निबन्ध और विस्तृत होने पर भी 'मिताक्षरा' जैसी मान्यता इस लिये प्राप्त न कर सकी कि हिन्दू-क़ानून में कुछ वर्षों पहले [आधुनिक नियामकों (legislators) द्वारा अपना विधान (code) बनाने की चेष्टा अथवा विशेष क़ानून (special Acts) की रचना करने से पहले] बंगाल प्रान्त छोड़ कर समस्त भारतवर्ष में 'मिताक्षरा' के आधार पर मिताक्षरा-क़ानून ही मान्य व प्रचलित था; और न्यायालय हिन्दू-क़ानून के झगड़े 'मिताक्षरा' के अनुसार ही निपटाते थे। अबभी जिस विषय में विशेष क़ानून नहीं पास किया गया है वह विषय मिताक्षरा के आधार पर ही निपटाये जाते हैं।

भाष्य—स्मृतियों के पश्चात स्थान भाष्यों एवं निबन्ध-ग्रन्थों का है जो स्मृतियों पर आधारित करके गद्य में लिखे गये हैं। इनमें से कई, मिताक्षरा की भाँति, आज भी खुले (un-legislated) विषयों पर हिन्दू-क़ानून में मान्य हैं। इन व्याख्याओं में विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा के अतिरिक्त, जीमूतवाहन का 'दायभाग' (जो बङ्गाल प्रान्त में मान्य रहा है), शूलपाणि का 'स्मृति-विवेक', रघुनन्दन का 'स्मृतितत्व',

चण्डेश्वर का 'विवाद-रत्नाकर', वाचस्पति का 'विवाद-चिन्तामणि', देवनारायण भट्ट की 'स्मृति-चन्द्रिका', नन्द पण्डित की 'दत्तक-मीमांसा' और नीलकण्ठ भट्ट का 'व्यवहार-मयूख' क़ानून-सम्बन्धी ग्रन्थों में विशेष महत्वपूर्ण हैं। वैसे शूलपाणि का 'श्राद्ध-विवेक', रघुनन्दन का 'स्मृतितत्व', श्रीधर उपाध्याय का 'श्राद्ध-कल्प' एवं 'समयप्रदीप', चण्डेश्वर का 'राजनीति-रत्नाकर', हेमाद्रि का 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि', माधवाचार्य का 'पराशरमाधव' एवं 'काल-माधव', नारायण भट्ट की 'अन्त्येष्टि-पद्धति', 'त्रिस्थितिसेतु' एवं 'प्रयोगरत्न', नन्द पण्डित की 'शुद्धि-चन्द्रिका', कमलाकर भट्ट का 'निर्णय-सिन्धु', मित्रमिश्र का 'वीर-मित्रोदय' और जगन्नाथ तर्कपञ्चानन का 'विवादार्णव' भारत के भिन्न भिन्न भागों में विख्यात हैं। चण्डेश्वर का 'राजनीति-रत्नाकर' मध्ययुग की राजनीति जानने के लिये बहुत अच्छा ग्रन्थ है। हेमाद्रि का 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' प्राचीन धार्मिक व्रतों, उपासनाओं तथा आचारों का विश्वकोष है।

विगत सहस्रों वर्षों से आर्यों की एकसी संस्कृति, सभ्यता, सामाजिक एकता आदि को अक्षण्यु बनाये रखने का समस्त श्रेय इन्ही महर्षियों को है।

———

३

गोत्र-प्रवर

"हरिः ओम् प्रयति पाणिः शरणं प्रपद्ये, स्वस्ति संबाधे-ष्वभयन्नो अस्तु"—यह जो गुरू जी सामवेदी स्वर लय से, उच्च स्वर में, शाखोच्चार गायन कर रहे हैं, वह शरबत, पान, इलायची की किचकिच और व्यर्थ्य के परस्पर वार्त्तालाप के कोलाहल में ऐसा डूब जाता है कि उपस्थित "सभ्य-मण्डली" की ओर करुण दृष्टिपात करते हुए बेचारे गुरू जी का स्वर काँप कर अपने आप भर्रा जाता है। किन्तु यदि इसे ध्यान से, शान्ति रख कर, सुना जाय, तो इससे आगे जब गुरू ज़ी हमारे वेद, शाखा, गोत्र, प्रवर, कुलदेवी इत्यादि का क्रम से वर्णन कर हमारा संबन्ध सर्वमान्य बहुप्रसिद्ध वेदवेत्ता ऋषियों से स्थापित करते हैं, तो हमारा गौरव-मय अतीत जैसे मूर्त्तिमन्त होकर हमारे सम्मुख खड़ा हो ज़ाता है। हम जैसे एक सिहरन, आनन्द और स्फूर्ति से प्रदीप्त हो उठते हैं, कि हम दरअसल चतुर्वेदी हैं; वेदों के अधिकारी, वेदों के परम-ज्ञानी ऋषिप्रवरों की सीधी सन्तान हैं—यदि हम समझ भर लें कि गोत्र, प्रवर आदि हमें क्या इङ्गित करते हैं।

गोत्र—दूसरे अध्याय में हम देख चुके हैं कि वेद अपौरुषेय हैं। गुरू द्वारा शिष्य को प्रदत्त होने की परम्परा ने, हमारे सौभाग्य से, उन्हें आधुनिक काल तक हमारा मार्ग-दर्शन करने के लिये प्रायः उसी रूप में प्रचलित रक्खा है जिस रूप में वह ब्रह्माजी के

श्रीमुख से प्रतिध्वनित हुए थे। इस प्रकार क्रमशः फैलती हुई गुरु-शिष्य परम्परा में जो कहीं-कहीं पाठ-भेद या ब्राह्मणों के क्रम-भेद हो गये, वे आजकल शाखा-भेद के नाम से कहे जाते हैं, आदि। किस वेद की कौन-कौन सी शाखा प्राप्त हैं, यह भी हम दूसरे अध्याय में पढ़ चुके हैं।

जैसे जैसे आर्य जाति का और ऋषि-महर्षियों का भारतभूमि में विस्तार होता गया, वैसे वैसे वेदाध्यायी ब्रह्मचारियों की एवं वेदज्ञानी गुरुजन महर्षियों की संख्या बढ़ती गई। ज्यों ज्यों वैदिक शिक्षास्थान ऋषि-आश्रम बढ़ते गये, त्यों त्यों शिक्षा देने के क्रम से वेद की शाखाएं एवं ऋषियों के 'टोल' बढ़ते गये। अब ब्राह्मण समुदाय अपनी संख्या वृद्धि के कारण अनेक भागों में विभक्त होने लगा। उन्हें अपने पूर्वजों के, व उनके माध्यम से अपने परस्पर के, सम्बन्ध की ठीक-ठीक स्मृति-रक्षा के लिये एक संकेत की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसी संकेत-कार्य के लिये "गोत्र" ज्ञान की सृष्टि हुई। गोत्र शब्द का अर्थ है 'गूयते शब्द्यते इति गोत्रम्' अर्थात् जो कहा या पुकारा जाय वही गोत्र है। तत्कालीन महर्षियों में शिष्य-परम्परा अपने गुरु का नाम लेकर अपना गोत्र बताने लगी होगी। यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ से ही गोत्र केवल जन्मगत हो, शिक्षा अथवा शिष्य-परम्परा से इसका क्रम न चलता रहा हो। किसी महर्षि के पुत्र-पौत्रादि सब उसी महर्षि के नाम से अपना वंश परिचय देते आये और वही उनके वंशजों का 'गोत्र' कहलाने लगा।

जो भी हो, भारतीय जनजीवन में गोत्र का एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी व्यक्ति अथवा समुदाय विशेष के पारस्परिक सम्बन्ध अथवा लगाव और इतिहास की शोधपूर्ण छानबीन करने में इससे बहुत सहायता मिलती है।

ब्रह्माण्ड-पुराण, वायु-पुराण, मत्स्य एवं अन्य पुराणों और महाभारत में ऋषियों की वंशावली कुछ उपलब्ध है, जो इस वैवस्वत

मन्वन्तर से ही सम्बन्धित है। ब्रह्माजी के आठ मानस-पुत्र हुए—(१) भृगु, (२) अङ्गिरा, (३) मरीचि, (४) अत्रि, (५) वशिष्ठ, (६) पुलस्त्य, (७) पुलः और (८) क्रतु [कहीं कहीं कवि नाम के एक और ऋषि भी ब्रह्मा जी के मानस-पुत्र उल्लिखित हैं]। इनमें से अन्तिम तीन की सन्तान ब्राह्मण न हुईं। पुलस्त्य के वंश में राक्षस, वानर, किन्नर एवं यक्ष; और पुलः के वंश में किम्पुरुष, पिशाच, शेर, बाघ आदि जन्तु हुए। क्रतु, एक मत के अनुसार, अविवाहित रहे और दूसरे मत के अनुसार उनसे बालखिल्यादि ऋषि हो कर वंश लोप हो गया; बाक़ी पाँच ऋषियों में भृगु के भार्गव; अङ्गिरा के आङ्गऋषि, मरीचि के काश्यप, अत्रि के आत्रेय और (५) वशिष्ठ के तन्नाम-गोत्रीय ब्राह्मण अभीतक चले आते हैं।

महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय २६ में कहा है कि आरम्भ में केवल चार गोत्र—अङ्गिरा, काश्यप, वशिष्ठ और भार्गव—थे। फिर उनके प्रवर्त्तकों के कर्मभेद के कारण और-और गोत्र बढ़ते गये और उन प्रवर्त्तकों की तपोप्रसिद्धि के कारण वे क्रमशः उन्हीं के नाम से विख्यात होते गये। समयान्तर में, विवाह आदि श्रौत स्मार्त कर्मों में, इन गोत्रों का उपयोग होने लगा[१]।

इसके बाद भी बड़े बड़े महर्षियों के नाम से गोत्र प्रारम्भ होते गये; विश्वामित्र जी राजर्षि से ब्रह्मर्षि हुए; उनका अलग गोत्र चला। महर्षि अगस्त्य, ऋषि सांडिल्य, असित देवल, पाण्डवराज युधिष्ठिर के गुरुवर ऋषि धौम्य (जो वनवास में भी पाण्डवों के साथ रहे), महर्षि भारद्वाज, ऋषि सुश्रवा आदि ऋषिप्रवरों के गोत्र चले। महर्षि आलम्पायन, कन्व, काञ्चन, कुशिक, कृष्णात्रेय, गर्ग, गौतम, जैमिनि, धन्वन्तरि, पाराशर, वात्स्य, मञ्जर्षि आदि के नाम पर अभीतक गोत्र वर्त्तमान और प्रचलित हैं।

१, देखिये, श्री साँवलियाबिहारीलाल वर्मा कृत 'विश्वधर्म दर्शन', पृष्ठ ६४।

प्रवर—गोत्र-प्रवर्त्तकों की निरन्तर बढ़ती हुई संख्या ने सम्भवतः इस बात की अधिक आवश्यकता अनुभव कराई होगी कि गोत्र का संकेत पक्का-पक्का और निश्चित हो जाय, जिसमें किसी प्रकार की द्विधा (ambiguity) पैदा हो जाने की शंका न रहने पाये। इसी हेतु गोत्र को स्पष्टतर करने के लिये उनके साथ प्रवर जोड़े गये।

किसी भी गोत्र का ठीक-ठीक ऋषि-सम्बन्ध एवं ऋषि-परम्परा जानने के लिये गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि के पूर्ववर्त्ती, अथवा कभी कभी परवर्त्ती, कुछ श्रेष्ठ महर्षियों के नाम उस गोत्र के "प्रवर" कहे जाते हैं। उदाहरण के लिये धौम्य-गोत्रीय चतुर्वेदियों के (१) काश्यप, (२) आवत्सार और (३) नैध्रुव, यह तीन प्रवर हैं। वायु, ब्रह्माण्ड, लिङ्ग एवं मत्स्य पुराणों के अनुसार ब्रह्मा जी के मानस-पुत्रों में मरीचि हैं। मरीचि के पुत्र परम प्रतापी कश्यप जी हुए। कश्यप जी के दो पुत्र थे, आवत्सार एवं असित। आवत्सार के पुत्र नैध्रुव एवं रैभ्य मुनि थे। महर्षि च्यवन की सुकन्या से प्राप्त पुत्री सुमेधा के साथ नैध्रुव का विवाह हुआ था। महर्षि असित का विवाह एकपर्णा से हुआ था, जिनसे देवल पुत्र हुए। महर्षि नैध्रुव का नाम ऋग्वेदीय साहित्य में बहुत सम्मान से लिया जाता है और इनकी कृतियाँ भी प्रचलित बतायी जाती हैं[१]। महर्षि कन्व, जिनके आश्रम में शकुन्तला पली थी, इन्ही नैध्रुव-ऋषि के ही वंशज थे। महर्षि विभाण्डक और उनके पुत्र श्रृंगी-ऋषि भी इसी परम्परा से सम्बन्धित हैं, जिन्हें वर्षों से अनावृष्टि-पीड़ित अङ्ग-देश के राजा लोमपाद ने अपने राज्य में वृष्टि होने हेतु बुलाया था और फिर उनसे अपनी राजकन्या शान्ता का विवाह कर दिया था[२]। इन्ही महर्षि ने अयोध्या में चक्रवर्त्ती दशरथजी का पुत्रेष्टि

१, देखिये, *Ancient Indian Historical Traditions*, by F. E. Pargiter, ch, xx, pp, 228-234.

२, *Ancient Indian Historical Traditions*, ch, XVI, p. 190.

यज्ञ कराया था। महर्षि देवल के छोटे भाई (और एक मत के अनुसार चचेरे भाई) हुए महर्षि धौम्य, जिन्हें पाण्डवों ने अपना पुरोहित वरण किया और जिन महर्षि ने वनवास में भी पाण्डवों के साथ रह कर उनकी रक्षा की; और पाण्डवों की विजय और पुनः राज्य-प्राप्ति में जिनका प्रमुख भाग था। इस प्रकार धौम्य-गोत्रीय चतुर्वेदी ब्राह्मणों के, महर्षि धौम्य के पूर्वज काश्यप, आवत्सार एवं नैध्रुव, यह तीन प्रवर हुए।

इसी प्रकार भारद्वाज गोत्रीय चतुर्वेदी ब्राह्मणों के (१) आङ्गिरस, (२) बार्हस्पत्य एवं भारद्वाज, यह तीन प्रवर हैं। ब्रह्माजी के मानस-पुत्र महर्षि अङ्गिरा की ३८ वी पीढ़ी में ऋषि अथर्वण हुए, उनके पुत्र उशीज, उनके पुत्र उकात्य और उनके पुत्र बृहस्पति हुए। बृहस्पति के संवर्त्त, उनके दीर्घात्मा और उनके पुत्र भारद्वाज ऋषि हुए। इन्ही के वंशज (एक मतसे पुत्र) आचार्य द्रोण थे[३]। इस वंश में वामदेव, गर्ग आदि प्रसिद्ध महर्षि हो गये हैं।

इसी प्रकार सौश्रवस-गोत्रीय चतुर्वेदी ब्राह्मणों के प्रवर हैं, (१) विश्वामित्र, (२) देवराट और (३) औदल। प्राचीन इतिहास के अनुसार विश्वरथ कान्यकुब्ज प्रदेश के राजा थे। प्रदेश में लगातार बारह वर्ष तक अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ा और विश्वरथ राज्य छोड़ कर घोर तपस्या में लीन हो गये। महाभारत के उपाख्यान के अनुसार इन राजा ने वशिष्ठाश्रम में कामधेनु गौ का चमत्कार देखा, कि वह वशिष्ट जी द्वारा माँगी हुई सब वस्तुएं उसी समय उपस्थित कर देती थी, तो राजा ने वशिष्ठ जी से वह गौ माँगी और न देने पर उसे बल-पूर्वक खोल ले चले। कामधेनु ने क्रोध में भरकर विचित्र सेना की उत्पत्ति करदी जिससे विश्वरथ जी की सब सेना हार गई। विविधि प्रयत्न करने पर भी विश्वरथ

३, *Ancient Indian Historical Traditions*. P. 206.

जी वशिष्ठ जी से न जीत सके तो वह फिरसे घोर तपस्या में लीन हो गये। तपस्या के बल से विश्वरथ राजर्षि विश्वामित्र हुए ; फिर यह राजर्षि ब्रह्मर्षि हो गये और स्वंय वशिष्ठ जी ने ब्रह्मर्षि कह कर उनका स्वागत किया। इन्हीं विश्वामित्र जी ने अयोध्या के महाराज सत्यव्रत त्रिशङ्कु का पौरोहित्य स्वीकार किया और उनकी रक्षा की। सत्यव्रत के पुत्र हरिश्चन्द्र ने वरुण-देव के यज्ञ में अपने पुत्र रोहित की बलि देने का विचार किया था। रोहित की रक्षा के मोह में पड़कर हरिश्चन्द्र ने रोहित के स्थान पर बलि-प्रदान के हेतु विश्वामित्र के एक भ्रातृ-पौत्र अजीगार्त्त-पुत्र सुनःसेप को क्रय कर लिया। यज्ञ में बलि-प्रदान के समय विश्वामित्र जी उपस्थित हो गये और उन्होने बालक सुनःसेप को यज्ञान्त में पुनः जीवित कर दिया। इस प्रकार पुनर्जीवित सुनःसेप विश्वमित्र जी के दत्तकपुत्र हुए और विश्वामित्र जी ने उनका देवराट नामकरण किया[१]। औदल ऋषि का कुछ वर्णन लेखक को उपलब्ध नहीं हो पाया, किन्तु निश्चित है कि वह भी परम कीर्त्तिवान अवश्य हुए होंगे।

अल्ल—'अल्ल' के बारे में कुछ प्रमाण नहीं उपलब्ध हो सका, फिर भी विश्वास है कि 'अल्ल' कोई मनगढ़न्त वस्तु नहीं हो सकती। संस्कृत में 'अल्ल' शब्द का अर्थ है माता। तो क्या माता के नाम पर अल्लों का नामकरण हुआ? प्रचलित नामकरण देखते हुए यह ठीक नहीं जचता। फिर भी गोत्र, प्रवर और अल्ल ब्राह्मणों के सभी वर्गों और प्रान्तों में पाई जातीं है। "पाँड़े", "पाठक", "मिश्र", "तिवारी", "दीक्षित्" आदि अल्लें केवल चतुर्वेदियों में पाई जातीं हों सो नहीं, अधिकतर सभी ब्राह्मणों में इसी रूप में पायी जातीं हैं, और बहुत सी अपने इसी नाम-विशेष से। इसी तर्क के आधार पर मानलेना पड़ता है कि 'अल्ल' मनगढ़न्त नहीं, प्राचीन है और अपना इतिहास लिये हुए सार्थक है।

१, *Ancient Indian Historical Traditions*, p. 206.

ज्यों ज्यों गोत्रों की जन-संख्या का विस्तार होता गया, त्यों त्यों कारण-विशेष से उनमें आभ्यन्तरिक वर्ग-विभाग होता गया और वही 'अल्ल' कहलाईं, ऐसा अनुमान असङ्गत न होगा।

यह स्मरण रखने की बात है कि गोत्र-प्रवर्त्तक अथवा प्रवर कहे जानेवाले सब महर्षि ब्राह्मण हुए हैं, और एक-गोत्रीय ब्राह्मण सब एकही—गोत्र-प्रवर्त्तक—ऋषि की सन्तान हैं। हाँ! क्षत्रिय और वैश्य द्विजातियों के गोत्र उनके गुरुओं के गोत्र पर आधारित हुए।

माथुर चतुर्वेदी गोत्रादि—माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मणों के गोत्र, प्रवर, अल्ल, आदि की तालिका निम्नलिखित है :—

गोत्र, प्रवर, आदि	अल्लें
(१) भारद्वाज-गोत्र के तीन प्रवर ; आङ्गिरस, वार्हस्पत्य एवं भारद्वाज—वेद, सामवेद—शाखा राणायनी :—	अल्लें :—(१) पाँड़े, (२) पाठक, (३) रावत, (४) तिवारी, (५) नसवारे, (६) कारेनाग, (७) पिलहोली, (८) बीसा, (९) चोपौली, (१०) भाँमले, (११) अजभियाँ, (१२) कोहरे, (१३) दियाचाट, (१४) सड़डभेसरे, (१५) गुनार और (१६) सिकरोरी।
(२) भार्गव-गोत्र के पाँच प्रवर; भार्गव, च्यवन, आप्नुवान, और्व एवं यमदग्नि—वेद, ऋग्वेद—शाखा आश्वलायन :—	(१७) दीक्षित, (१८) गहयवार, (१९) दरर, (२०) गुगोलिया, (२१) गोंहजे, (२२) कनेरे, (२३) तरं, (२४) घेहरिया, (२५) सरवना, (२६) चतुरसुर, (२७) आमरे और (२८) मकनियाँ।

(३) वशिष्ठ-गोत्र के तीन प्रवर ; वशिष्ठ, शक्ति, एवं पाराशर—वेद, ऋग्वेद—शाखा, आश्वलायन :—	(२६) निनावली, (३०) काहो (३१) जौनमाने, (३२) बड्डिया, (३३) डाहरू, (३४) डुँडवार, (३५) पैठवार और (३६) उटोलिया।
(४) सौश्रवस-गोत्र के तीन प्रवर ; विश्वामित्र, देवराट, एवं औदल—वेद, ऋग्वेद—शाखा, आश्वलायन :—	(३७) पुरोहित, (३८) छिरौरा, (३६) मिश्र, (४०) चकेरी, (४१) बदौआ, (४२) तोपजाने, (४३) चन्दपुरिया, (४४) बैसाँदर, (४५) सुभावली और (४६) चन्दसे।
(५) धौम्य-गोत्र के तीन प्रवर ; काश्यप, आवत्सार एवं नैध्रुव—वेद, ऋग्वेद—शाखा, आश्वलायन :—	(४७) लापसे, (४८) भरतवार, (४६) तिलभने, (५०) मोरे, (५१) घरवारी (गृहवर्य), (५२) जोजले, (५३) सुकुल, (५४) ब्रह्मपुरिया, (५५) सोती।
(६) दक्ष-गोत्र के तीन प्रवर ; आत्रेय, गाविस्थिर, एवं पौर्वातिथि ; वेद, ऋग्वेद—शाखा, आश्वलायन :—	(५६) ककोर, (५७) दक्ष, (५८) पेंचरे और (५६) पुरवेऊ।
(७) कुत्स-गोत्र के तीन प्रवर ; आङ्गरिस, यवनाश्व एवं कौत्स—वेद, ऋग्वेद—शाखा, आश्वलायन :—	(६०) सांडिल्य, (६१) मेहारी, (६२) खलहरे, (६३) मरेठिया और (६४) सन्तैरे।

ब्राह्मणों की उपजातियाँ—खोज और अनुशीलन का यह एक बहुत अच्छा विषय होगा कि अन्य ब्राह्मणों में प्रचलित गोत्र और प्रवर क्या हैं और उनके और अपनें गोत्र-प्रवरों में कैसी समानता है। जैसे जैसे जन-संख्या बढ़ती गई, आर्य ऋषि ब्रह्मावर्त छोड़ कर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण आदि दिशाओं में सुन्दर आश्रम स्थापित करते गये। महर्षि अगस्त्य विंध्यगिरि पार करके सुदूर दक्षिण में चले गये और वहाँ उन्होने अपना आश्रम बनाया। सुदूर प्रागज्योतिषपुर (प्रस्तुत मनीपुर, असम) तक महर्षिगण उसी काल में पहुँच गये थे। इस प्रकार देशान्तर के प्रथकत्व से, अवान्तर काल में, ब्राह्मणों में प्रथकत्व सा प्रतिविम्बित होने लगा। ब्रह्मावर्त्त (सरस्वती और घृषध्वती के बीच का प्रदेश, प्रस्तुत उत्तर प्रदेश और पंजाब के भाग) में भी अपनाये हुए स्थान-विशेष के नाम पर ब्राह्मण तदनुसार कहलाये जाने लगे। मथुरा क्षेत्र में बसने वाले 'माथुर' ; कन्नौज क्षेत्र में बसने वाले 'कान्यकुब्ज' ; सरयूपार अयोध्या-क्षेत्र में बसने वाले 'सरयूपारी' ; सरस्वती के तीरवर्त्ती क्षेत्र में बसने वाले 'सारस्वत' ; मिथिला में बसने वाले "मैथिल"। इसी प्रकार स्थान विशेष के नाम के साथ संलग्न होने पर ब्राह्मणों में और अधिक उपजातियों का प्रादुर्भाव हो गया। कालान्तर में विवाहादि कार्य अपनी अपनी उपजाति में ही करने के कारण यह उपजातिवाद कठोरतर होता चला गया।

गोत्र-प्रवरों की समानता—क्या जो गोत्र-प्रवर चतुर्वेदी ब्राह्मणों में पाये जाते हैं, वही अन्य प्रान्त अथवा अन्यनाम्नीय ब्राह्मणों में पाये जाते हैं, अथवा उनके कुछ दूसरी तरह के नाम और भेद हैं, यह अनुशीलन का एक अच्छा विषय है। लेखक ने वङ्गवासी ब्राह्मणों में प्रचलित गोत्र-प्रवर आदि के बारे में खोज की, तो यह ज्ञात हुआ कि बङ्गाल के ब्राह्मणों में निम्नलिखित गोत्र-प्रवर प्रचलित हैं :—

गोत्र	प्रवर
अगस्त्य	दधीचि, जैमिनि ।
आङ्गिरस	आंगरिस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज ।
अत्रि	आत्रेय, शतातप ।
अग्विकास	गार्ग्य, गौतम, वशिष्ठ ।
आत्रेय	शतातप, सांख्य ।
आलम्पायन	शालम्पायन, शाष्ठायन ।
कन्व	कान्व, अश्वथ्थ, देवल ।
कान्चन	अश्वथ्थ, देवल, देवराट ।
कात्यायन	अत्रि, भृगु, वशिष्ठ ।
काश्यप	आवत्सार, नैध्रुव ।
कुशिक	कौशिक, विश्वामित्र ।
शांडिल्य	स्तिमिक, कौशुष ।
कौशिक	अत्रि, जमदग्नि ।
कृष्णत्रेय	आत्रेय, आवत्सार ।
गर्ग	गार्ग, कौस्तुभ, मातुष्य ।
गौतम	आंगिरस, आवत्सार, नैध्रुव ।
जैमिनि	उतथ्य, सांकृति ।
धन्वन्तरि	आंगिरस, बार्हस्पत्य, आवत्सार ।
पाराशर	शक्ति, वशिष्ठ, नैध्रुव ।
वात्स्य	च्यवन, भार्गव, जामदग्नि ।
विष्णु	विष्णु, वृद्धि, कौत्स ।
वृद्धि	कुखृद्ध, आंगिरस, बार्हस्पत्य ।
वृहस्पति	कर्णिल, पार्वन ।
भारद्वाज	आंगिरस, बार्हस्पत्य ।
मर्उषि	आंगिरस, वार्हस्पत्य, नैध्रुव ।
शौनक	शौनिहात्र (सुहोत्र), नृत्समद ।

सम्भवतः अन्य स्थान अथवा नाम के ब्राह्मण-वर्ग में भी इसी प्रकार अथवा इससे मिलते जुलते गोत्र-प्रवर आदि होंगे। इससे यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मण-मात्र एक हैं ; एक ही Common Stock से निकले हैं और विविधि वर्गीकरण होने पर आज भी अपनी एकता बनाये रख रहे हैं। यह दूसरी बात हैं कि स्थान-विशेष और वहाँ के आदिवासी लोगों के प्रभाव से उनके खानपान अथवा रीतिरस्म में परस्पर कुछ अन्तर आ गया हो ; किन्तु मूलतः वह अबभी एक हैं। ब्राह्मणत्व को एक बहुत बड़ा धक्का बौद्धमत के एक समय के धुवाँधार प्रचार और तत्समयकालीन प्रचण्ड अन्धड़ से लगा था, जिसकी चपेट में माथुर और मागध आदि छोड़ कर अन्य बहुतांश ब्राह्मण-समाज औरों की तरह ही बौद्धप्रभाव में आ गया था ; परन्तु भगवान शंकराचार्य ने अपने सद्ज्ञान के प्रचार से वह सामयिक लहर बीच में ही रोक दी थी। और फिर सब ब्राह्मण बौद्ध-मत छोड़ कर वेद-मत में ही आगये थे। फिर भी ब्राह्मणों के आजकल के विविधिवर्गों में कहाँ कहाँ एकता और कहाँ कहाँ कितना वैषम्य है यह चिन्तकों के विचार और उत्साही विद्वानों की खोज और अनुशीलन का एक बहुत अच्छा विषय है। विघटन का युग बीत चुका है, अब संगठन का युग है।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥
[ऋग्वेद, मं० १०, अ० ११, सूक्त १२९, श्लोक ७]

अर्थ—यह विभिन्न सृष्टियाँ किस प्रकार हुईं ? इन्हे किसने रचा ? इन सृष्टियों के जो स्वामी दिव्यधाम में निवास करते हैं, वही इनकी रचना के विषय में जानते हैं। यह भी सम्भव है कि उन्हे भी यह सब बातें ज्ञात न हों (नासदीय सूक्त)।

४

षोडस-संस्कार

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विजोच्यते"

संस्कारों का महत्व[1]—आर्यों की मान्यता है कि द्विजातिमें शिशु का जन्म पहले माता के गर्भ से होता है और दूसरी बार इन संस्कारों द्वारा, और इसी आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन प्रथम तीन वर्णों को "द्विज" (दो बार जन्म लेने वाला) कहा गया है। शूद्रों के विविहादि होते हैं, किन्तु विधिवत समंत्र षोडस-संस्कार नहीं होते।

संस्कारों की संख्या के बारे में ऋषियों में मतभेद है। गौतम-सूत्र के आठवें अध्याय में "अष्टचत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतः", यह संख्या ४८ तक पहुँच गई है। महर्षि सुमन्तु एवं महर्षि अङ्गिरा ने इनकी संख्या २५ लिखी है। इनमें अधिकतर यज्ञ हैं। उन्हे दैव-संस्कार कहा गया है, इस हेतु कि वह साविधि पूर्ण होने पर मनुष्य को देवता-संज्ञा में परिणत कर देते हैं। भगवान व्यास ने अपनी स्मृति में इस युग के उपयोगी सोलह संस्कार लिखे हैं जिनका नाम गौतम-सूत्र के आरम्भ में इस प्रकार आया है—(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) निष्क्रमण, (७) अन्नप्राशन, (८) चूड़ाकर्म अथवा चौल, (९)

[1] संस्कारों पर लिखने में महामहोपाध्याय श्री गिरिधर जी शर्मा कृत "वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति" से सहायता ली गई है।

कर्णवेध, (१०) उपनयन, (११) वेदारम्भ, (१२) केशान्त, (१३) समावर्त्तन, (१४) विवाह, (१५) आवसथ्याधान और (१६) श्रौताधान। मनुस्मृति में उपरोक्त (२) पुंसवन (३) सीमन्तोन्नयन, (९) कर्णवेध, (११) वेदारम्भ, (१५) आवसथ्याधान और (१६) श्रौताधान, इन छः संस्कारो का विधान नहीं है परन्तु बाक़ी दश के साथ वानप्रस्थ, सन्यास और अन्त्येष्टि का सन्निवेष करके इनकी संख्या १३ हो गई है।

प्रकृति द्वारा पैदा की हुई वस्तु को ठीक ठीक अपने उपयोग में लाने के योग्य कर लेने के लिये जो सुधार अथवा क्रिया की जाती है, वही उसका संस्कार है, और इस प्रकार सुधारी हुई वस्तु को ही संस्कृत कहा जाता है। यह तीन प्रकार से होता है—(१) दोषमार्जन, (२) अतिशयाधान (उपयोगी बनाने में कुछ विशेषता पैदा कर देना) और (३) हीनांगपूर्त्ति (किसी अन्य पदार्थ का सम्मिश्रण कर देना) के द्वारा। प्रकृति द्वारा उत्पन्न अन्न में से भूसी, तुष आदि निकाल कर हम उसका दोषमार्जन करते हैं; कुटाव, पिसाव व अग्निपाक के द्वारा अतिशयाधान करते हैं और मधुर, लवण आदि रस मिला कर उसकी हीनांगपूर्त्ति करते हैं; तब वह हमारे उपभोग के लिये सुस्वादु और सुपाच्य भोजन बनता है। प्रकृतिद्वारा उत्पन्न कपास में से हम मिट्टी, बिनौला आदि अलग करके दोषमार्जन करते हैं, फिर सूत कात कर, कपड़ा बिन कर व उस कपड़े को अपने माप और रुचि के अनुसार काट छाँट कर अतिशयाधान करते हैं और धागा से सिला कर, बटन आदि बाहरी वस्तु लगाकर उसकी हीनांगपूर्त्ति करते हैं, तब वह हमारे उपयोग के योग्य कोट, कमीज़ आदि के रूप में तैयार होता है। खान से निकाले हुए लौह-पत्थर (iron ore) से मिट्टी आदि अवांछित वस्तुएं निकाल कर हम उसका दोषमार्जन करते हैं; तपा कर

लोहार से अथवा यंत्रों में घड़वा कर उसका अतिशयाधान करते हैं और फिर मूठ आदि लगाकर उसकी हीनांगपूर्त्ति करते हैं, तव वह छुरी आदि होकर हमारे उपयोग में आता है।

आर्य ऋषियों ने वैज्ञानिक रूप से यह शक्ति प्राप्त कर ली थी कि गर्भस्थ शिशु को वह जैसा चाहें वैसा मनुष्य बना कर तैयार करदें। इसी सदुद्देश्य से उन्होंने मानव-संस्कारों की सृष्टि की। वृहदारण्यक उपनिषद् में इस विषय का एक प्रकरण आया है कि यदि कोई अपने पुत्र को मेधावी बनाना चाहे तो इस प्रकार का संस्कार करे, वीर बनाना चाहे तो इस प्रकार का, धनी बनाना चाहे तो इस प्रकार का, इत्यादि। इन संस्कारों पर थोड़ा भी विचार-चिन्तन किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि शुद्ध वैज्ञानिक रूप में यह प्रबल मनोविज्ञान पर आधारित हैं और इच्छाशक्ति के बल पर अपना अभीप्सित कार्य करते हैं। उदाहरणतः पुंसवन और सीमन्तोन्नयन, इन गर्भावस्था के संस्कारों के अवसर पर गर्भिणी के समक्ष वीणावादन और सुललित संगीत-गायन आदि का सूत्रों में विधान है; इससे समुत्पन्न गर्भिणी के हर्ष-आह्लाद का सुप्रभाव गर्भस्थ भ्रूण पर अवश्य पड़ेगा। जन्मके साथ "जातकर्म-संस्कार" में स्वर्ण-शलाका से घृत और मधु नवजात शिशु की जिह्वा पर चटाने की विधि है; भौतिक विज्ञान द्वारा सिद्ध है कि यह तीनो पदार्थ शोधक और बलप्रद हैं। आगे, नामकरण में वर्णोचित सुन्दर नाम इसलिये रखने का विधान है कि शिशु को वय और समझ बढ़नेपर नाम और वर्ण के अनुसार सद्‌गुण प्राप्तकरने की इच्छा स्वतः ही होगी। शरीर के साथ गर्भ से ही उत्पन्न और निरन्तर बढ़ते हुए केश, नख आदि दूर किये जा कर मस्तक पर पौष्टिक सुन्दर वस्तुओं के प्रलेप का मुण्डन अथवा चूड़ाकरण संस्कार में विधान है। यह सभी दोषमार्जन की संज्ञा में आते हैं। मुण्डन से ही मंत्रपूर्वक हवन का आरम्भ हो जाता

है जो वाह्य शुद्धि के साथ-साथ अन्तः शुद्धि भी करता है। मुण्डन में आर्यों की धार्मिक और सामाजिक चिन्हरूपी शिखा छोड़ दी जाती है। यह ब्रह्मरन्ध्र के ठीक ऊपर अवस्थित है, जो सूर्य से प्राण आने और निकलने का पथ है। केश विद्युत-शक्ति को रोकने वाले (non-conductors of electricity) हैं। कर्म या उपासना के समय ग्रन्थिबद्ध शिखा ब्रह्मरन्ध्र पर अवस्थित रहने से उपासना-उपार्जित विद्युत-शक्ति व मानसिक शक्ति की रक्षा होती है। यज्ञोपवीत संस्कार दोषमार्जन और अतिशयाधान की देहली है। इसमें सूर्य एवं अग्नि की उपासना का विधान बुद्धि में प्रखरता लाने के लिये है। पलाश का दण्ड-धारण, पलाश के पत्तों में भोजन एवं पलाश की समिधा से हवन-क्रिया का इस लिये विधान रक्खा गया है कि वस्तुविज्ञान के मत से पलाश स्मरण-शक्ति बढ़ाने व दृढ़ करने में बहुत सहायक है। मूँज का यज्ञोपवीत-धारण ब्रह्मचर्य का लक्षण है। विवाह-संस्कार अधिकांश में—प्रत्यक्षतः—हीनाङ्गपूरक है।

धर्मग्रन्थों में यह सब संस्कार आडम्बर-शून्य वैज्ञानिक विधियों में ही विहित हैं। आज जैसे हम संस्कारों के पालन में उनका असली स्वरूप भूलकर आडम्बर रूपी छाया के पीछे अधिक दौड़ते हैं। यह तो निश्चित है कि हमारे वनवासी ऋषि-महर्षियों के यहाँ विधिवत और आडम्बर-शून्य संस्कार ही अनुष्ठित होते रहे होंगे। आडम्बर और बाहरी धूमधाम, यह तो जैसे जैसे हम अधिक "सामाजिक" प्राणी होते जाते हैं, वैसे वैसे अधिक मात्रा में बढ़ते जाते हैं। कुछ हद तक यह अनिवार्य भी है। सभ्य कहे जाने वाले पश्चिमी देशों में, जहाँ बात बिना बात रोज़ चाय पार्टी, बाल-डान्स, डिनर आदि का ताँता लगा रहता है, वहाँ हम तो कभी—और वह भी उपयुक्त अवसर परही—अपने भाई-बन्धुओं को बुलाकर, उनके साथ

मिल-जुल कर, और साथ भोजनादि कर, यदि शुष्क जीवन में कुछ सरसता प्राप्त करने की चेष्टा कर लेते हैं, तो इसे बुरा कैसे कहा जा सकता है? फिर भी, आवश्यकता इस बात की है कि मुख्य, मुख्य ही रहे और गौण, गौण। उत्सवादि की हलचल में हम प्रधान विषय-वस्तु को ही न भूल जाँय। हमें संस्कारों के विधान में भीतर घुस कर उनका महत्व और प्रभाव हृदयङ्गम करना होगा। शक्ति के अनुसार बाह्य बाडम्बर अथवा उत्सव मनाना भी तभी क्षम्य होगा जब वह संस्कार की क्रिया और पद्धति में व्याघातकारी सिद्ध न होकर सहायक सिद्ध हों।

मनुस्मृति में संस्कारों के फल इस प्रकार कहे गये हैं :—

निषेकाद्बैजिकं चैनो गार्भिकं चापमृज्यते।
क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥
गर्भे भवेच्च पुंसूतिः पुंस्त्वस्य प्रतिपादनम्।
निषेकफलवज्ज्ञेयं फलं सीमन्तकर्मणः॥
गर्भाम्बुपानजो दोषो जातात्सर्वोऽपि नश्यति।
आयुर्वर्चोभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा॥
नामकर्मफलं त्वेतत्समुद्दिष्टं मनीषिभिः।
सूर्यावलोकनादायुरभिवृद्धिर्भवेद्ध्रुवा॥
निष्क्रमादायुः श्रीवृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभिः।
अन्नाशनान्मातृगर्भमलाशादपि शुध्यति॥
बलायुर्वर्चोवृद्धिश्च चूडाकर्मफलं स्मृतम्।
उपनीतेः फलं चैतद्द्विजतासिद्धिपूर्विका॥
वेदाधीत्यधिकारस्य सिद्धिर्ऋषिभिरीरिता।
देवपित्रृणापगमो विवाहस्य फलं स्मृतम्॥
ब्राह्माद्युद्वाहसम्भूतः पितॄणां तारकः सुतः।
विवाहस्य फलं त्वेतत् व्याख्यातं परमर्षिभिः॥

अर्थात्, गर्भाधान संस्कार से बीज तथा गर्भ-सम्बन्धी सम्पूर्ण मलीनता नष्ट हो जाती है और क्षेत्र रूपी स्त्री का संस्कार भी हो जाता है। इस गर्भ से पुत्र ही उत्पन्न हो, इस अभिप्राय से 'पुंसवन-संस्कार' होता है। 'सीमन्तोन्नयन' का फल गर्भाधान संस्कार की भाँति गर्भ की शुद्धि है। 'जातकर्म-संस्कार' द्वारा माता के खान पान सम्बन्धी समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। 'नामकरण-संस्कार' से आयु तथा तेज की वृद्धि होती है तथा लोक-व्यवहार में प्रसिद्धि होती है। 'निष्क्रमण-संस्कार' में [शिशु को] सूर्य के दर्शन [कराने] से आयु तथा लक्ष्मी की वृद्धि होती है। 'अन्नप्राशन' द्वारा मातृगर्भ में मलीनता-भक्षण [के दोष] की शुद्धि होती है। बल, आयु तथा तेज की वृद्धि ही 'चूड़ाकर्म-संस्कार' का फल है। 'उपनयन' से बालक 'द्विज' श्रेणी में आता है और वेदाध्ययन का अधिकारी हो जाता है। 'विवाह' का फल यह है कि इससे सपत्नीक अग्निहोत्रादि द्वारा पुरुष स्वर्गलाभ का अधिकारी होता है। ब्राह्मादि उत्तम विवाह के फलस्वरूप उत्पन्न पुत्र अपने [मृत] पित्रों को तारता है। विवाह का ऐसा फल महर्षियों ने बताया है।

और महर्षि आश्वलायन ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि :—

"संस्काररहिता ये तु तेषां जन्म निरर्थकम्"

अर्थात् संस्कार से रहित जो [द्विज] हैं, उनका जन्म निरर्थक है।

विवाह एक आवश्यक संस्कार है—आर्य शास्त्रों के अनुसार विवाह षोडश संस्कारों में सब से आवश्यक संस्कार है; और यह व्यक्तिगत अथवा सामाजिक से भी अधिक एक धार्मिक कार्य है। जन्म के साथ पुरुष तीन ऋण लेकर आता है; देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण। वह यज्ञादिक अनुष्ठान करने से देवऋण, शास्त्र-पाठ से ऋषि-ऋण और पुत्र-प्राप्ति से पितृऋण

से मुक्त होता है। पितृकार्य के अधिकारी पुत्र की प्राप्ति वैध-विवाह द्वारा ही सम्भव है, अवैध-पुत्र पितृकार्य का अधिकारी नहीं; इसी लिये आर्य जाति में प्रत्येक पुरुष का शास्त्र-विहित विवाह अत्यावश्यक संस्कार है। आज कल जब देव-यज्ञ प्रायः लुप्त से हो चुके हैं तो कन्या के विवाह के मिस गृहस्थ अपने घर में एक यज्ञ अनुष्ठित कर यज्ञकार्य के पुण्य का भागी हो जाता है, ऐसा धार्मिक विश्वास है। आर्य-शास्त्रों ने प्रत्येक पिता अथवा अभिभावक का यह धर्म और कर्त्तव्य बताया है कि विवाह-वयः प्राप्त होने पर कन्या का उपयुक्त वर के साथ विधिवत विवाह अवश्य अनुष्ठित करे। महाभारत, वनपर्व, अध्याय ११६ में तार्क्ष्य मुनिको उपदेश देते हुए देवी सरस्वती के वाक्य हैं :—

> यो ब्रह्मदेयां तु ददाति कन्यां भूमिप्रदानं च करोति विप्रे।
> ददाति दानं विधिना च यश्च स लोकमाप्नोति पुरंदरस्य॥

अर्थात्, जो ब्राह्मविवाह की विधि से दान करने योग्य कन्या का (श्रेष्ठ वर को) दान करता है; ब्राह्मण को भूदान देता है और विधिपूर्वक अन्यान्य वस्तुओं का दान सम्पन्न करता है, वह इन्द्रलोक में जाता है।

सन्तानोत्पत्ति द्वारा ही पितृऋण से मुक्ति सम्भव—

महाभारत, सभापर्व, एकचत्वारिंशोऽध्याय, श्लोक-संख्या २७ व २८ में निसन्तान मनुष्य के बारे में शिशुपाल ने भीष्म-पितामह से कहा है, कि—

> इष्टं दत्तमधीतं च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
> सर्वमेतदपत्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
> व्रतोपवासैर्बहुभिः कृतं भवति भीष्म यत्।
> सर्वं तदनपत्यस्य मोघं भवति निश्चयात्॥

अर्थात्, यज्ञ, दान, स्वाध्याय तथा बहुत दक्षिणा वाले बड़े-बड़े यज्ञ—यह सब सन्तान की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हो सकते। भीष्म! अनेक व्रतों और उपवासों द्वारा जो पुण्य-कार्य किया जाता है, वह सब सन्तानहीन पुरुष के लिये निश्चय ही व्यर्थ हो जाता है।

महाभारत में जरत्कारु ऋषि, महर्षि अगस्त्य आदि के उपाख्यानों में भी उल्लिखित है, कि इन महात्माओं ने उग्र तपस्या में निरंतर रत रह कर विवाहादि व सन्तानोत्पत्ति की ओर ध्यान देना उचित न समझा; तब इन्हें अपने पूर्वपुरुषाओं के दर्शन हुए जो एक भयानक गर्त्त के ऊपर उलटे होकर लटक रहे थे। उन पुरुषाओं ने इन महात्माओं से अनुरोध किया कि वह विवाह करके सन्ततिवान हों; तभी पुरुषाओं का उस दुर्गति से उद्धार सम्भव है। पुरुषाओं की बात मान कर इन महात्माओं ने उपयुक्त कन्याओं से विवाह कर, सन्ततिवान होकर, पुरुषाओं का उद्धार किया।

इस प्रकार आर्य-संस्कृति आर्य-धर्म और आर्य-विश्वास विवाह को महान धार्मिक कृत्य और सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण से उद्धार पाने का एक-मात्र साधन समझते आये हैं।

> सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तथा।
> समुद्वहेद्दातपेतत्सम्यगूढं महाफलम्॥

[विष्णु०, अध्याय ११ श्लोक २६]

अर्थात्, सहधर्मिणी को प्राप्तकर, उसके साथ गार्हस्थधर्म का पालन करना चाहिये क्योंकि उसका पालन महान फल देने वाला होता है।

विवाह के आठ प्रकार—भगवान मनु के वचन हैं—

> आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवतेस्वयम्।
> आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मः प्रचक्षते॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्या प्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते॥
सह नो चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते॥
इच्छयाऽन्योन्य संयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गन्धर्वं स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः॥
हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः

आर्य धर्म शास्त्रों में इस प्रकार, उपस्थित परिस्थितियों के क्रम से, विवाह को आठ श्रेणियों में विभक्त किया गया है:- (१) कन्या का पिता या अभिभावक, उत्तम सजातीय योग्य वर को आमंत्रित कर, वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत कर, अपनी कन्या धार्मिक विधि के अनुष्ठान के साथ उस वर को "दान" में देता है, उस विधिपूर्वक हुए पाणिग्रहण को "ब्राह्म" विवाह की संज्ञा दी गई है। (२) अपने घर पर देव-यज्ञ करके, यज्ञान्त में दक्षिणा के स्थान पर ऋत्विज को अपनी कन्या का दान करना "दैव" विवाह कहा गया है। यह "ब्राह्म" से निम्न कोटि का विवाह है क्योंकि इसमें कन्या के बदले में पिता अपना कुछ उपकार प्राप्त करता है। किन्तु उपकार 'अर्थ' का न हो कर 'धर्म' का है, इस लिये शास्त्रद्वारा वर्जित नहीं है। (३) 'वर' से एक गाय और एक वृषभ शुल्क

रूप में केवल धार्मिक कृत्यों के हेतु लेकर, पिता यदि उस वर को अपनी कन्या का दान करता है, तो उस विवाह को "आर्ष" संज्ञा दी गई है। (४) 'वर' के चाहने पर, यदि पिता "तुम दोनों साथ रह कर धर्माचरण करो", इस हेतु अपनी कन्या उसे दान कर देता हैं, तो वह "प्राजापत्य" विवाह है। इसके बाद की चार श्रेणियाँ धर्मशास्त्र में हीन मानी गई हैं। (५) "वर" और "वधू", दोनों स्वेच्छा से एक दूसरे को पत्नी और पति स्वीकार कर सहवास करें, इसे 'गन्धर्व' विवाह की संज्ञा दी गई है। वधू का पिता इस चित्र में आता ही नहीं। (६) वर से कन्या के मूल्य रूप में धन आदि लेकर कन्या-दान करने को 'आसुर' विवाह की संज्ञा दी गई है। विवाह के ख़र्च के लिये भी यदि कन्या का अभिभावक वर पक्ष से विपुल (Substantial) धन स्वीकार कर लेता है तो वह विवाह किसी भी श्रेणी का-ब्राह्म-होने पर भी 'आसुर' हो जाता है। यह प्रश्न उठा, कि जहाँ विवाह से पहले 'कन्या' के हेतु वस्त्र और आभूषण 'परिसम' में देने की प्रथा है, क्या उस कारण से ब्राह्म विवाह 'आसुर' हो जायगा? मद्रास हाईकोर्ट ने फैसला दिया, "नहीं; वस्त्राभूषण 'कन्या' के हेतु हैं, कन्या के अभिभावक के हेतु नहीं"। एक और जटिल प्रश्न उठा, क्या बदले का विवाह 'आसुर' है, क्योंकि इसमें एक विवाह का मूल्य दूसरे—बदले के—विवाह से चुकाया जाता है। नागपुर हाईकोर्ट, ने फैसला दिया, "नहीं, केवल इसी कारण 'ब्राह्म' विवाह 'आसुर' नहीं हो जायगा"। (७) युद्ध करके रोती हुई कन्या को बल-पूर्वक हरण करके ले आना 'राक्षस' विवाह माना गया है। (८) सब से निम्न और हीन कोटि का विवाह 'पैशाच' है, जिसमें सोई हुई अथवा विष या नशे द्वारा बेहोश की हुई कन्या का सतीत्व भंग किया जाता है। सम्भवतः सतीत्व की

उच्च मर्यादा की रक्षा निभाने के हेतु ही इसे 'विवाह' संज्ञा दी गई होगी, वरना यह और किसी भाँति 'विवाह' की गिनती में नहीं आ सकता।

प्रशस्त विवाह और सन्तति——भगवान मनु के वचन हैं :—

ब्रह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः॥
रूपसत्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः।
पर्याप्तभोगा धार्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्राह्मधर्मद्विषः सुताः॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निंद्यान् विवर्जयेत॥

अर्थात्, ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य, इन चार विवाहों से जो सन्तान होती है, वह ब्रह्मविद्या से समन्वित, तेजस्वी और विद्वानों में मान्य होती है। वे रूप, सत्वगुण, धन और यश आदि पर्याप्त भोगों की उपलब्धि करते हुए धर्मिष्ट और पूर्ण-आयु को प्राप्त करने वाले होते है (सौवर्षतक जीते है)। इन चार प्रकार के विवाहों से अन्य जो चार (आसुर, गन्धर्व, राक्षस और पैशाच) दुर्विवाह हैं, इनसे उत्पन्न सन्तति निन्दित कर्मों को करने वाली, मिथ्यावादी, और धर्म-द्रोही होती है। इस लिये, मनुष्यों को उपयुक्त है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच सन्तति उत्पन्न होती है, उनका त्याग करें।

नव-पारित Special विवाह क़ानून से पहले, आर्यों में ऋषि-वचन ही विवाह के वैध अथवा अवैध होने का प्रमाण माने जाते थे। प्रथम चार प्रकार के विवाहों द्वारा ही 'कन्या' "पत्नी" हो सकती थी, पिछले चार प्रकार के विवाहों द्वारा नहीं; यदि

साबित की हुई कोई कुलरीति या ज्ञाति-रीति आड़े न आ जाय। मिताक्षरा के अनुसार वैध-विवाह द्वारा उपलब्ध नारी की ही 'पत्नी' संज्ञा है, जिसका, विवाह के साथ, पिता का गोत्र बदल कर 'पति' का गोत्र हो जाता है, जो पति की धर्मतः 'सपिण्ड' हो जाती है; और वही पति का उत्तराधिकार भी प्राप्त कर सकती है।

न्यायालयों में मान्य——जैसा ऊपर कहा गया है, Special विवाह एक्ट लागू होने से पहले, आर्य-विवाहों के प्रश्न पर क़ानून धर्मशास्त्र और ऋषि-वचनों को ही प्रमाण मान कर, मुक़दमों के फ़ैसले करता था। प्रिवी-काउन्सिल और विविधि हाई-कोर्ट के फ़ैसलों में धर्मशास्त्र और ऋषि-वचनों पर बहुत भली भाँति विचार किया हुआ मिलता है। तब के निर्णयों में मुख्य यह हैं :—

गन्धर्व-विवाह तब तक वैध-विवाह नहीं माना जा सकता जब तक इसमें होम, सप्तपदी आदि की शास्त्रविधि अनुष्ठित न कर ली जाय (ए० आइ० आर० १९४६ पटना ३१६)। क़ानून ने यह स्वीकार कर लिया है कि उल्लिखित आठ प्रकार के विवाहों में 'ब्राह्म' और 'आसुर' को छोड़ कर शेष छः प्रकार के विवाह अब लुप्त हो गये हैं (ए० आइ० आर० १९२६ मद्रास ४९७)। विधि-विहीन अथवा सुप्रचलित प्राचीन रीत्यानुसार न होने पर विवाह 'विवाह' नहीं, केवल "धरौना" है (ए० आइ० आर० १९२५ मद्रास ४९७)। लाजाहोम और सप्तपदी, यह दोनो अनुष्ठान आर्य-विवाह के अत्यावश्यक अंग हैं, इन्ही से विवाह पूर्ण होता है; और इनसे वह धार्मिक ग्रन्थि बँध जाती है जो एकबार बँध कर फिर तोड़ी नहीं जा सकती (ए० आई० आर० १९३६ बम्बई १३८)। हिन्दू क़ानून में सगोत्र विवाह वर्जित है और वह अवैध है (ए० आइ० आर० १९४६ बम्बई ३७७; १९२५ मद्रास ४९७)। अनुलोम

विवाह—जहाँ उच्च वर्ण का व्यक्ति अपने से निम्न-वर्ण की कन्या से विवाह करता है—शास्त्रों में विहित होने पर भी लुप्त हो चुका है; और यदि कोई सामाजिक प्रचलित प्रथा इसे स्वीकृत करने के पक्ष में न हो, तो यह अवैध है (ए० आई० आर० १९४१ मद्रास ५१३)। प्रतिलोम विवाह—जहाँ निम्न वर्ण का व्यक्ति अपने से उच्च वर्ण की कन्या से विवाह करता है—बम्बई प्रेसीडेन्सी में अवैध हैं (ए० आई० आर० १९३१ बम्बई ८९)। हिन्दू क़ानून में ऐसा कोई निषेध नहीं है कि द्विजों में एक ही वर्ण की विविधि उपजातियों की वर-कन्या में वैध-विवाह न हो सके। यद्यपि साधारणतः ऐसे विवाह प्रचलित नहीं हैं, फिर भी, यदि हो जाँय तो वह अवैध नही कहे जा सकते (ए० आइ० आर० १९३७ कलकत्ता २१४; १९३६ प्रिवी कौ० १९८)। वयस की विषमता से हिन्दू विवाह अवैध नहीं होता (ए० आइ० आर० १९३२ इलहाबाद ५)।

क्या विवाह विधि का अनुष्ठान विवाह की वैधता के लिये आवश्यक है?—महाभारत, आदि-पर्व, पंचमोध्याय में पुलोमा-प्रकरण इस प्रकार वर्णित है। बाल्यावस्था में सर्वांग सुन्दरी कन्या पुलोमा एक दिन रो रही थी। रोदन-निवृत्ति के लिये उसके पिता ने उसे डराते हुए कहा 'रे राक्षण! तू इसे पकड़ ले'। घर में पुलोमा नाम का एक राक्षस पहले से छिपा था। उसने मन ही मन पुलोमा कन्या को वरण कर लिया, कि पिता द्वारा दी हुई यह कन्या मेरी पत्नी हुई। वयःप्राप्त होने पर पिताने कन्या पुलोमा का विवाह विधिपूर्वक महर्षि भृगु के साथ कर दिया। एक दिन भृगु जी के स्नानार्थ आश्रम से बाहर जाने पर राक्षस पुलोमा अवसर देख सूने आश्रम से ऋषि-पत्नी पुलोमा के हरण के अभिप्राय से वहाँ आया। आश्रम के अग्निहोत्र-गृह में अग्नि-देव प्रज्वलित थे। कुकर्म में प्रवृत्त होने पर जो भीरुता स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाती

है, उसी भीरुता से भीत राक्षस ने अग्निदेव से पूँछा "देव! मैं तुम्हें शपथ दे कर पूँछता हूँ; बताओ! यह पुलोमा सत्यतः किसकी पत्नी है"? सर्वज्ञ और सदैव सत्य-स्वरूप अग्निदेव ने समस्त परिस्थितियों एवं घटनाओं पर विचार करके यही निर्णय दिया कि राक्षस पुलोमा ने यद्यपि पहले सुन्दरी पुलोमा को पिता के वचन पर वरण किया था, तथापि यह विधिपूर्वक, मन्त्रोच्चारण करते हुए, न होने पर "विवाह" नहीं कहा जा सकता। पिताने अपनी कन्या पुलोमा का, मुझ अग्नि को साक्षी बना कर, वेदोक्त-क्रिया द्वारा, महर्षि भृगु को दान किया है; अतएव पुलोमा महर्षि भृगु की ही धर्मपत्नी है।

बम्बई हाई-कोर्ट के एक केस में एक "आधुनिक" महाशय, जो शास्त्रों में विश्वास नहीं करते थे, ने अपने बन्धु-बान्धवों को बुला कर अपने पसन्द की एक लड़की से "विवाह" रचाया। उस "विवाह" में और उत्सव आदि सब कुछ हुए, किन्तु शास्त्र-क्रिया कुछ भी न हुई; मित्रों की पार्टी में "पति" और उस "कन्या" को पति और पत्नी की संज्ञा दे दी गई। फिर दोनों पति-पत्नी की तरह साथ रहने लगे और उनसे सन्तान उत्पन्न हुई। आधुनिक महाशय की मृत्यु होने पर उस सन्तान ने उत्तराधिकार प्राप्त करना चाहा, परन्तु आधुनिक महाशय के दूर के सम्बन्धियों ने स्वयं को उत्तराधिकारी बताया। इस मुक़दमें में बम्बई हाइकोर्ट ने फ़ैसला दिया कि आधुनिक महाशय का विवाह न तो Special Marriages Act के अनुसार रजिष्ट्री कराया गया था; और न आर्य-विवाह की वैदिक-विधि द्वारा सम्पन्न हुआ था; अतएव यह विवाह नहीं, 'धरावना' मात्र था। इससे उत्पन्न सन्तति "अवैध" होने के कारण उत्तराधिकार से वंचित है; और इसी लिये वैध पुत्र के न रहने पर अन्य उत्तराधिकारी ही सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हैं। आर्य-विवाह की वैधताके लिये शास्त्रोक्त अनुष्ठान व विधि-निर्वाह परम आवश्यक है।

५

प्रशस्ति और निषेध

शुभ मुहूर्त्त—"उदगयन आपूर्णमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः" ॥ १ ॥

"सार्वकालमेके विवाहम्" ॥ २ ॥

[आश्वलायन गृह्यसूत्र, अध्याय १ खण्ड ४ सूत्र १ व २]

अर्थात्, उत्तरायण-सूर्य में, शुक्ल-पक्ष में, पुण्य-नक्षत्र में चौलकर्म (मुण्डन), उपनयन (यज्ञोपवीत), गोदान, (समावर्त्तन) एवं विवाह (अनुष्ठित) करना चाहिये। १। और कितने ही आचार्यों का मत है कि सब काल में विवाह सम्पन्न हो सकता है ॥ २ ॥

ऐसा ज्ञात होता है कि साधारण परिस्थितियों में विवाहकार्य ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार शोधे हुए शुभ मुहूर्त्त में ही सम्पन्न होना चाहिये। संकट या आपत्तिकाल में, अथवा विशेष परिस्थितियों में, विवाह कभी भी हो सकता है; उस समय शुभ मुहूर्त्त के लिये ठहरने की आवश्यकता नहीं। शुभ कार्य जब भी हो जाय, श्रेष्ठ है। आश्वलायन जी के मत से उत्तरायण सूर्य और शुक्ल पक्ष विवाह के लिये अधिक प्रशस्त हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मकर-संक्रान्ति (माघकेमहीने) से कर्क-सक्रान्ति (श्रावण) के ठीक पहले तक उत्तरायण सूर्य रहते हैं। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक के चतुर्थ खण्ड में उद्धृत कन्यादान-ठिक के गीत में भी कन्या की विनय है,

कि "एक वचन हम माँगे मेरे बाबुल फागुन करहु विवाह"। प्रथानुसार अपने यहाँ छः महीने, (१) वैशाख, (२) ज्येष्ठ, (३) आषाढ़ (४) अग्रहायण, (५) माघ एवं (६) फाल्गुन, ग्रहणीय हैं और बाकी छः, (१) श्रावण, (२) भाद्र, (३) आश्विन, (४) कार्त्तिक, (५) पौष एवं (६) चैत्र, त्याज्य हैं। प्रचलित प्रथा में कृष्ण एवं शुक्ल दोनों ही पक्षों में विवाह होता है और सभी तिथियों में, जैसा जब मुहूर्त्त बन जाय। विवाह के लिये सौर्य-मास लिये जाते हैं, चन्द्र-मास नहीं। लग्न और नक्षत्र मुख्यतः देखे जाते हैं, जो शुभ होने चाहिये। गोभिल गृह्यसूत्र प्र० २, कां० १ सूत्र १-२ में भी विहित है—"पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत"। ज्योतिषमतानुसार गुरु और शुक्र के अस्त मे विवाहादि शुभ-कार्य वर्जित हैं। प्रत्येक तेरह वर्ष के बाद जब बृहस्पति सिंह राशि में आते हैं तब उतने काल तक विवाह-कार्य वर्जित है। धन और मीन राशि के सूर्य में भी विवाह-कार्य वर्जित है। तिथियों में देवशयनी (आषाढ़ शुक्ल) एकादशी के बाद उस महीने में, और फाल्गुन सुदी अष्टमी से चैत्र बदी दूज तक, यह तिथियाँ भी त्याज्य हैं।

विवाह के योग्य उम्र—पुरुष-विवाह के लिये स्मृति-वचन हैं—

"वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत ॥
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥

अर्थात, अखण्डित-ब्रह्मचर्य-पूर्वक (चार, तीन, दो) वेदों को अथवा (एक) वेद को यथावत् पढ़ना समाप्त कर, (तब) गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। विधिपूर्वक समावर्त्तन संस्कार करने के उपरान्त स्नान करके, गुरूकी अनुमति-आज्ञा लेकर, द्विज-वर्ण के लोग उत्तम-गुणवती अपने वर्ण की कन्या के साथ विवाह करें।

वेद भगवान का निर्देश है—

"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" [अथर्व०]

अर्थात्, ब्रह्मचारिणी कन्या युवा पति से विवाह करे।

ब्राह्मण का बालक सात वर्ष की उम्र में उपनयन-संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् वेदारम्भ करता था। उस समय वेद पढ़ने में कम से कम १२ वर्ष लगते थे। तब उसका "समावर्त्तन" १९-२० वर्ष के वयः में होता था। इस प्रकार बालक का विवाह १९-२० वर्षके वयः से पहले होना ठीक नहीं ज्ञात होता। मध्य-युग में जब छोटी आयु में बालकों के विवाह होते थे तो विवाह से १, ३ अथवा ५ वें वर्ष में उनके द्विरागमन की प्रथा थी; और द्विरागमन होने पर ही वधू प्रथमवार पतिगृह आती थी। इसतरह वह वयस्क हो जाती थी। अब द्विरागमन की प्रथा बन्द सी हो गई है। प्रचलित सारडा-एक्ट में जो पुत्र-विवाह के हेतु कम से कम १८ वर्ष की उम्र निर्धारित की गई है, वह इस प्रकार ठीक ही है। साथ ही, पहले की अपेक्षा अब जीवन-आयु कुछ घटी ही है, बढ़ी नहीं। सन्तान के पालन व शिक्षा आदि का भार पिता पर ही है; इस हिसाब से पुरुष की विवाह योग्य अधिक से अधिक उम्र २५ वर्ष की निर्धारित होनी चाहिये, ताकि वह अपने रिटायर होने के ५५ वर्ष की उम्रतक अपने कनिष्ठतम पुत्रकी शिक्षा आदि का क्रम समाप्त करा सके।

सारडा-एक्ट में विवाहके लिये कन्या का वयः कमसे कम १६ वर्ष का होना चाहिये; और वैद्यकशास्त्र एवं विज्ञान-मत के अनुसार यह ठीक भी है। वधू से वयस में वर कम-से-कम ४-५ वर्ष बड़ा होना चाहिये, इसतरह कन्या का विवाह १६ से २० वर्ष तक के वयः में हो जाना ही अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है।

सगाई (वाग्दान)—विवाहों में श्रेष्ठ ब्राह्म-विवाह का नियम है कि विद्वान, सुशील और सदाचारी वर को कन्यादाता अपने घर

बुला कर वस्त्राभूषणों से सज्जित कुमारी कन्या का उसके हाथ में दान करे। "अपने घर बुला कर" में यह तत्व निहित है कि वर-चयन कन्यादाता करे। भगवान मनुके वाक्य—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः॥

में भी यह स्पष्ट है कि वर का चुनाव कन्यादाता पर ही है। इसीलिये यह नियम बना कि कन्यादाता जिस वर को अपनी कन्या के उपयुक्त समझता है, उस वर के अभिभावक से वर का जन्मपत्र आदि माँग कर वैवाहिक चर्चा का श्रीगणेश करता है। परन्तु इस याचना से कन्यादता किसी भी प्रकार वरपक्ष से हेटा अथवा हीन नहीं हो जाता। विवाह की जितनी आवश्यकता एवं उपादेयता कन्या के हेतु है, उतनी ही वर के हेतु भी है। अभी भी किसी किसी समाज व प्रान्त में यह प्रथा है कि वर की ओर से वड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ कन्या की ओर की वड़ी बूढ़ी स्त्रियों के पास जाकर वैवाहिक-चर्चा प्रारम्भ करती हैं; और अपने लड़के लिये उनकी लड़की की याचना करती हैं।

कुछ ही—३०—४०—वर्ष पहले, यदि कहीं का नाई किसी चतुर्वेदी वन्धु की ओर से लड़के का जन्मपत्र माँगने आता था, तो उसे सहर्ष जन्मपत्र दे दिया जाता था और ख़ातिरदारी में पूड़ीं खिलाईं जातीं थीं। पक्कायत आने पर सहर्ष स्वीकृति के साथ घरमें उत्सव होता; और मुहल्ले में पुत्र की सगाई होने के उपलक्ष में मिठाई बँटती थी। और आज? जैसे कुछ ही वर्षों में युग वदल गया! नाई से तो बात ही नहीं; और साहस ही किसका है जो नाई भेजने की सोचे भी? कन्या के अभिभावक वर के अभिभावक की स्वयं एकाधिक बार हाज़िरी देते हैं, रिश्तेदारों से शिफ़ारिश कराते हैं, बरसों इन्तज़ार करने की लिखित प्रतिज्ञाएँ करते हैं, फिर भी उत्तर मिलता है, "अभी विवाह करने का कोई विचार नहीं,

अतः क्षमा करें"। जैसे इन महानुभाव के अपने घर में लड़की
ही नहीं, इन्हें कभी भी अपनी लड़की के लिये किसी चतुर्वेदी
बन्धु से जन्मपत्र माँगने की नौबत ही नहीं आयेगी। शिक्षा,
सभ्यता और बढ़े हुए स्तर (Standard) ने हमें कहाँ से कहाँ
पहुँचा दिया? कितना उत्थान (अथवा पतन ?) हुआ हमारा, कि
आज हम विवाह की चर्चा करने से पहले 'बदले' के लिये किस
लड़के को देंगे, यह विचार निश्चित करके तब मुँह खोलने
का साहस करते हैं। "लड़का अभी पढ़ रहा है", "इतने वर्ष
शादी करने का विचार नहीं है", "लड़का मिलिटरी में जाना
चाहता है" इत्यादि कितने उत्तर और बहाने मिलेंगे, पर जन्मपत्र
आपको न मिलेगा। और जब पुत्र पढ़ लिख कर स्वयं अपने
पैरों पर खड़ा हो गया, तो वह अपना विवाह भी स्वयं देख-सुन
कर, पिताजी की सहायता के बिना भी, ठीक कर ही लेगा,
कन्या किसी भी वर्ण की हो। अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या
समाज में नित्य बढ़ती जाती है। विश्लेषण करके देखा जाय
तो इनमें बहुतांश "लड़का अभी छोटा है" समझने वाले पिताओं
की समय रहते उचित विवाह-सम्बन्ध स्वीकृत करने में लापरवाही
अथवा अन्य लालच रखने के फल स्वरूप ही घटित होते हैं।
और घटित हो जाने पर फिर मूक पश्चात्ताप के सिवा शेष
ही क्या रह जाता है?

यह रोग दिन पर दिन बढ़ रहा है; और हम इसका उपाय सोचने
में, इसकी चर्चा करने में, भयभीत होते हैं; इस प्रश्न को टालते
जाते हैं, उसी तरह, जिस तरह, कहावत के अनुसार, एक पक्षी-
विशेष (Ostrich = शुतुर्मुग़) रेत में अपना सर छिपा कर यह
सोचता है कि आसमान गिर रहा है और मैं इस प्रकार
अपनी रक्षा कर लूँ।

न्यायालय ने यह भले ही निश्चित कर दिया है कि बदले
के विवाह, इस ठहराव के कारण, ब्राह्म से आसुर नहीं हो जाते,[1]
परन्तु इससे "बदले" में निहित बुराई तो दूर नहीं हुई। और
आज हमें सब तरह से हार कर, लाचार हो कर, "बदले" पर
ही पहले सोचना पड़ता है। दैवी विपत्ति से भगवान भी रक्षा
करते हैं, स्वयं सृष्टि की हुई विपत्ति से रक्षा करने में कौन समर्थ
हो सकता है? काश! यदि हम अब भी कुछ सोचें; करार की कोर
पर तो पहुँच चुके।

कन्या का उपयुक्त वर से ही विवाह——मनुस्मृतिवचन है—

> काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि।
> न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

अर्थात्, चाहे मरणपर्यन्त कन्या पिता के घर बिना-विवाह के बैठी
रहे, परन्तु गुणहीन [अयोग्य] पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी
न करना चाहिये। यह वह संकट-स्थिति है, कि "लड़का अभी पढ़
रहा है" के बहाने पिताजी कोई मनपसन्द सम्बन्ध की ताक लगाये हैं;
और कन्या का पिता लाचार है कि उसे अपने समाज में कन्या के उपयुक्त
वर की प्राप्ति नहीं हो रही। त्रिकालदर्शी ऋषिप्रवर स्मृतिकार
ने यह अवश्य अनुभव किया होगा कि कलिकाल में धन-सम्पत्ति
की विषमता से गुणवती कन्या के लिये भी सदृश-गुणवान वर
मिलना इसलिये कठिन हो जायगा, कि कन्याके पिता वर के पिता का
पाँवपखराउनी अथवा देनदायजे का अभीप्सित लक्ष पूरा न कर
सकेंगे। वरना, "त्रियस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलां" का विधान
करने वाले महर्षि यह कभी न लिखते, कि चाहे मरणपर्यन्त कन्या
पिता के घर बिना-विवाह बैठी रहे। द्रष्टव्य है, कि ऐसी बेबस
असहाय स्थिति में कन्यादाताओं को किसी प्रकार का पाप नहीं

---

१ देखिये, पृष्ठ ७९

"यत्नेकृते यदि न सिद्धि कोऽत्र दोषः" न्याय के अनुसार,
लगता। "यत्नेकृते यदि न सिद्धि कोऽत्र दोषः" न्याय के अनुसार,
यत्न करने पर भी यदि सदृश, उपयुक्त, वर न मिले, तो जानबूझ कर,
केवल कौमार्य उतारने के हेतु, कन्या का अनुपयुक्त वर से विवाह
करके, उसे आजीवन भट्टी में झोंकने की आवश्यकता नहीं है।
लड़केवाले यदि अपने लड़कों को तवतक विवाह-वयः का नहीं समझते
जवतक उन्हे मनचाहा सम्बन्ध न मिल जाय, तो लड़की भी भले ही
पितृगृह में कुमारी बैठी रहे, विकृताङ्ग, अपढ़, असदाचारी अथवा बूढ़े
वर के साथ उसका विवाह रचाकार 'पुण्यलाभ' करने की
आवश्यकता नहीं।

अयोग्य-कन्या—जैसे अयोग्य अथवा असदृश वर के साथ
गुणवती सुशीला कन्या के विवाह का स्मृतिकार निषेध करते हैं, वैसे
ही वर या उसके अभिभावक को भी यह देखने का अधिकार है कि जिस
कन्या का प्रस्ताव आया है, वह वरके योग्य अथवा सदृश है, या नहीं।
स्मृतिकार ने जिन कुटुम्बों अथवा कन्याओं को सुन्दर, सुशील,
सदाचारी वर के अयोग्य ठहराया है, वह इस प्रकार हैं—

> नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।
> नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलम्॥
> नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
> न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥
> अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीं।
> तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्वहेत स्त्रियम्॥

अर्थात, ऐसी कन्या से विवाह न करे जो अधिकाङ्गी (जैसे ६
अङ्गुली वाली) हो, रोगिणी हो, जिसके शरीर पर लोम (रोम) न
हों, अथवा जिसके शरीर पर बड़े-बड़े लोम हों, जो व्यर्थ अधिक बोलने
वाली हो, जिसका [स्वाभाविक वर्ण न हो कर] पीला-वर्ण हो।
[यह भी कहा गया है कि उस कन्या से विवाह न करे] जिसका

नक्षत्र पर (जैसे रोहिणी, कृत्तिका, आदि), वृक्ष पर (जैसे अम्बा,
जमुनी, आदि), नदी पर (जैसे गंगा, यमुना, कावेरी, आदि), पर्वत पर
(जैसे विंध्या, हिमा आदि), पक्षी पर (जैसे मैंना, हंसा, आदि)
अहि पर (जैसे सर्पा, भुजङ्गी, आदि), दासी (प्रेष्य) के नाम पर,
अथवा सुनने में भीषण (जैसे कालिका, चण्डिका, प्रेता, आदि)
नामकरण किया गया हो। [यह स्मृतिकार ने ठीक ही, किन्तु अति-
भावुकतावश लिखा है। आजकल नाम बदलने में तो कोई कष्ट नहीं
है। सम्भवतः ऋषि का निषेध प्रथम नामकरण-कर्त्ताको है, कि
शिशु-कन्या का नामकरण इस प्रकार त्याज्य नामों पर न करें।]
विवाह के लिये प्रशस्त कन्या बताते हुए स्मृतिकार लिखते हैं, कि
जिसके सुन्दर अङ्ग हों, सौम्य नाम हो, हंस अथवा हस्तिनी की भाँति
सुन्दर चाल (गति) हो, सूक्ष्मलोम, सूक्ष्मकेश और सूक्ष्म-दाँत हों,
और कोमल मृदु अङ्ग हों, उस सुशीला सद्गुणवती भार्या से विवाह
करणीय है।

विष्णुपुराण, खण्ड ३ अध्याय १० श्लोक १६ से २२ तक में यही
निषेध कुछ अधिक स्पष्ट शब्दों में मिलता है :—

> [वर्षैरेकगुणां भार्यामुद्वहेत्त्रिगुणस्स्वयम्।]
> नातिकेशामकेशां वा नातिकृष्णां न पिङ्गलाम्॥
> निसर्गतोऽधिकाङ्गी वा न्यूनाङ्गीमपि नोद्वहेत्।
> नाविशुद्धां सरोमां वाकुलजां वापि रोगिणीम्॥
> न दुष्टां दुष्टवाक्यां वा व्यङ्गिनीं पितृमातृतः।
> न श्मश्रुव्यञ्जनवतीं न चैव पुरुषाकृतिम्॥
> न घर्घरस्वरां क्षामां तथा काकस्वरां न च।
> नानिबन्धेक्षणां तद्वद्वृत्ताक्षीं नोद्वहेत् बुधः॥
> यस्याश्च रोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ।
> गण्डयोः कूपरौ यस्या हसन्त्यास्तां न चोद्वहेत्॥

नातिरूक्षत्वचं पाण्डुकरजामरुणेक्षणाम् ।
आपीनहस्तपादां च न कन्यामुद्वहेद् बुधः ॥
न वामनां नातिदीर्घां नोद्वहेत्संहतभ्रुवम् ।
न चातिच्छिद्रदशनां न करालमुखीं नरः ॥

अर्थात्, बुद्धिमान मनुष्य को ऐसी कन्या से विवाह न करना चाहिये जिसके शरीर पर लोम न हों, अथवा अत्यधिक लोम हों, जो अति साँवली (काली) हो अथवा पिङ्गला (पाण्डुवर्ण की— पीली-भूरी) हो, जिसके (साधारण से) कम अथवा अधिक अंग हों, जो अपवित्र, रोमयुक्त, अकुलीना अथवा रोगिणी हो, जो दुष्ट स्वभाववाली हो, कटुभाषिणी हो अथवा मातापिता के अनुसार अङ्गहीना हो : जिसके मूँछो के चिन्ह [स्पष्ट] हों, जो पुरुष-जैसे आकारवाली हो, अथवा घर्घर या अतिमन्द अथवा कौए जैसा कर्णकटु स्वर बोलने वाली हो ; अथवा पक्ष्मशून्या या गोल नेत्रोंवाली हो ; अथवा जिसकी जंघाओं पर [अधिक] रोम हों, जिसके गुल्फ (टखने) ऊँचे हों अथवा हँसते समय कपोलों में गड्ढे पड़ते हों ; जिसकी कान्ति अत्यन्त उदासीन हो, नख पाण्डुवर्ण हों, नेत्र लाल हों, हाथ-पैर अधिक भारी हों ; अथवा जो बौनी अथवा अति-लम्बी हो, अथवा भृकुटियाँ जुड़ी हुई हों, अथवा जिसके दाँतों के बीच का अन्तर अधिक हो, या दाँत बड़े-बड़े, बाहर निकले हुए हों।

स्पष्ट है कि इन निषेधों को धर्माधर्म की भित्ति पर न लिखकर लौकिक सुख व सुन्दरता की भित्ति पर ही लिखा गया है। सब प्रकार निर्दोष अङ्गोंवाली, सुस्वभावा, मधुरा कन्या ही सुशील व सदाचारी वर के हेतु अधिक प्रशस्त मानी गई है। साथ ही, जो अवगुण या दोष कन्या के लिये लिखे गये हैं, वही अवगुण-दोष वर के चयन में भी ठीक उसी प्रकार लागू होते हैं। इसके अतिरिक्त विवाहार्थी वर-कन्या के चयन-सम्बन्ध में दश परिवार को बचाने का भी विधान है। यथा :—

हीन-क्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामय्याव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥

अर्थात्, जिस कुल में (१)उत्तम क्रिया न होती हो, अथवा (२)कोई उत्तम पुरुष न हो, अथवा (३)कोई विद्वान न हो, अथवा (४) लोगों के शरीर पर बड़े-बड़े लोम हों, अथवा (५) अर्श (बवासीर) का रोग हो, अथवा (६) क्षय (राजयक्ष्मा) का रोग हो, अथवा (७) अग्निमांद्य, आमाशयादि रोग हों, अथवा (८) मृगी का रोग हो, अथवा (९) श्वेतकुष्ट का रोगहो, अथवा (१०) गलितकुष्ट का रोग हो, उन कुलों में विवाह सम्बन्ध न करे।

यह विधान धार्मिक भित्ति पर नहीं, केवल व्यवहारिक भित्ति पर आश्रित है। उत्तम क्रिया, उत्तम पुरुष एवं विद्वान के होने से परिवार के सभी अन्य सदस्यों पर सुन्दर नियंत्रण रहता है, जिससे पात्र अथवा पात्री के सुशील और सच्चरित्र होने का अन्दाज़ किया जा सकता है। लोम, बवासीर, क्षय, पेचिश, मृगी, श्वेतकुष्ट एवं गलित-कुष्ट छूत के रोग हैं, जिनके संस्पर्श से बचना साधारण स्वास्थ्य-ज्ञान है। भविष्य की सन्तति में भी माता-पिता से पुत्र को यह रोग हो जाने की आशंका रहती है।

कुलीन कौन—महाभारत, उद्योग-पर्व, अध्याय ३९ में श्रीविदुर जी के वचन हैं :—

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्याविवाहाः सततान्नदानम् ।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥ २३ ॥
अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥ २४ ॥

अर्थात्, जिनमें तप, इन्द्रिय-संयम, वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र-विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार, यह सात गुण वर्त्तमान हैं, उन्हें उत्तम कुलीन कहते हैं। यज्ञ न होने से, निन्दित कुल में

विवाह करने से, वेदों का त्याग और धर्म का उल्लंघन करने से, उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं।

विवाह अपनी जाति में ही करना चाहिये--

मनु भगवान ने कहा है—

"उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्"

अर्थात्, द्विजवर्ण के पुरुष अपने ही वर्ण (जाति) की सुलक्षणा भार्या से विवाह करें।

सभी धर्मशास्त्र इस विषय में एक-मत हैं, यथा :—

> पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते।
> असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाह कर्मणि ॥ (मनु० ३।४५)
> सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत्।
> सुवर्णासु विधौ धर्मे ज्येष्ठया न विनेतरा ॥ (याज्ञ० १।८८)
> सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते वै सजातयः।
> अनिन्द्येषु विवाहेषु पुत्राः सन्तानवर्द्धनाः ॥ (याज्ञ० १।९०)
> अरोगादुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम्।
> सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम् ॥ (व्यासः, २।१२)
> ऊढ़ायां हि सवर्णायामन्या वा काममुद्वहेत (व्यास० २।१९)

हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र[1] में भी "सजातां सवर्णां...." इत्यादि शब्द आये हैं जिनसे और भी स्पष्ट है कि विवाह अपनी जाति और वर्ण में ही करना प्रशस्त है। इसी सूत्र में "जनाश्च" शब्दभी व्यवहृत हुआ है, जिससे यही ज्ञात होता है कि विवाह अपने जनपद, अर्थात् क्षेत्र (area), में ही अधिक श्रेयस्कर है। लौकिक दृष्टि से भी यही ठीक मालूम होता है, क्योंकि विवाह द्वारा दो प्राणी—कन्या और वर—एक ही दाम्पत्य-सूत्र में बँधकर, एक हो जाते हैं। जाति

१, सम्पूर्ण सूत्र आगे, पृष्ट ९८ पर उद्धृत किया गया है।

और वर्ण एक होने से उनके खान-पान, आचार-विचार, रीति-रिवाज़ आदि एकसे रहेंगे। यह वह वस्तुएं हैं, कि इनमें विषमता होने से घर में कितने दिन शान्ति रह सकेगी। पूजा-पाठ करने वाली निरामिष कन्या को यदि धूम्रपानी, माँस-भोजी, शराबी-क़बाबी पति के साथ समस्त जीवन बिताना पड़े तो उसकी हालत क्या होगी, इसका अच्छी तरह अन्दाज़ लगाया जा सकता है। उसी 'जनपद' की बन्दिश भाषा के लिये लगायी गयी मालूम होती है। एक ही जनपद की एक ही भाषा (Dialect=बोली) रहती है। स्त्री और पुरुष यदि अलग-अलग भाषा बोलें तो उनमें तो एकत्व हो ही न सकेगा; और सन्तान की और मुसीबत आ जायगी; वह कौन सी बोली बोले? माँ की, या बाप की, या खिचड़ी। इसी लिये विवाह एक ही ज्ञाति, वर्ण और जनपद में होना सुख और शान्ति का स्रोत है। साथ ही, एक ही ग्राम या अत्यधिक निकट के ग्राम में भी कन्या देना उचित नहीं प्रतीत होता; निरुक्त का वचन है "दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति" (निरुक्त, ३।१।४)

सपिण्ड और समानोदक कौन ?—माता, पिता आदि की कितनी पीढ़ियों सें विवाह-सम्बन्ध का निषेध है, इस पर ऋषि-वचन निम्न प्रकार हैं :—

सपिण्ड की परिभाषा यों की गई है—

> सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते।
> समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥
> मनुः—५।६०

> सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते।
> समानोदकभावस्तु निवर्त्ततायतुर्द्दशात।
> जन्मनाम्नोः स्मृतेरेके तत्परं गोत्रयुच्यते ॥
> (मिताक्षराधृत वृहन्मनुवचनं)

"प्रपितामहः पितामहः पिता स्वयं सोदर्य्या भ्रातरः सवर्णायाः पुत्र-पौत्र-प्रपौत्राः एतान् अविभक्तदायादान सपिण्डान आचक्षते। विभक्तदायादान् सकुल्यान आचक्षते। सत्स्वङ्गजेषु तद्गामीं ह्यर्थो भवति सपिण्डाभावे सकुल्यः तद्भावे चाचार्य्योऽन्तेवासी ऋत्विग् वा हरेत तद्भावे राजा ॥" (दायभागधृत बौधायनवचनम्)

इस प्रकार, मनु जी ने, पिता और माता की सात पीढ़ी तक सपिण्ड-सम्बन्ध माना है और उसके बाद जहाँ तक नाम मालूम हों, अथवा ततोपरि सात पीढ़ी तक, समानोदक-सम्बन्ध माना है। दायभागधृत बौधायन के अनुसार परदादा, दादा, पिता, स्वयं व्यक्ति, उसके भाई, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र (अपनी ज्ञाति की स्त्री से उत्पन्न), यह अविभाजित 'दाय' में सम्मिलित हैं और इन्हें सपिण्ड संज्ञा है। जो विभाजित-दाय अथवा अन्य उत्तराधिकारी हैं, उन्हे "सकुल्य" संज्ञा दी गई है। सन्तति को प्रथम, तदोपरान्त सपिण्ड को, तदोपरान्त 'सकुल्य' को, फिर गुरु, शिष्य, पुरोहित और इन सब के अभाव में राजा को उत्तराधिकार प्राप्त है।

वर्जित पीढ़ीं—विवाह के लिये प्रशस्ति इस प्रकार है :—

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्म्मणि मैथुने ॥ मनुः ॥

अर्थात्, जो कन्या माता की सपिण्ड नहीं है और पिता की सगोत्र नहीं है, द्विजातियों में विवाह के लिये वह प्रशस्त है।

आसप्तमात् पंचमाच्-च बन्धुभ्यः पितृमातृतः।
अविवाह्या सगोत्रा च समान-प्रवरा तथा ॥
नारदः—१२ ॥८॥

न सगोत्रां न समान-प्रवरां भार्य्यां विन्देत।
मातृत-स्त्वापञ्चमात् पुरुषात् पितृत-स्त्वासप्तमात् ॥
विष्णुः—२४, ९-१० ॥

अर्थात्, पिता की ओर सात पीढ़ी और माता की ओर पाँच पीढ़ी, बन्धु, सगोत्र और समान-प्रवर की कन्या से विवाह का निषेध है।

अविप्लुत-ब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियम् उद्वहेत।
अनन्य-पूर्व्विकां कान्ताम् असपिण्डां यवीयसीं ॥
अरोगिणीं भ्रातृमतीम् असमानर्ष-गोत्रजाम्।
पञ्चमात् सप्तमाद्-ऊर्द्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥
याज्ञवल्क्यः—१, ५२-५३ ॥

अर्थात्, जब ब्रह्मचारी अपना पठन-पाठन समाप्त करले, तब वह ऐसी शुद्ध शुभ कन्या से विवाह करे जो कुमारी हो, सुहावनी हो, सपिण्डों में न हो, वयस और क़द में स्वयं से छोटी हो, रोगिणी न हो, जिसके भाई वर्त्तमान हो, अन्य गोत्र और अन्य प्रवर की हो और माता से पाँच और पिता से सात पीढ़ी के अन्दर न पड़तीं हो।

ब्रह्महा सुराप-गुरुतल्पग-मातृ-पितृ-योनि सम्बन्धता—
स्तेन-नास्तिक-निन्दितकर्माभ्यासि—
पतितात्यागि-प्रपतितात्यागिनः पतिता ॥
(गौतम धर्मसूत्र २१। १)

अर्थात्, ब्रह्मघाती, शराबी, गुरुपत्नी के साथ समागम करनेवाला, माता-पिता के रक्त-सम्बन्धियों के साथ विवाह करनेवाला, चोर, नास्तिक, निन्दित-कर्म करनेवाला, पतितों का परित्याग न करनेवाला और पतितों से सन्बन्ध रखनेवाला, ये सब पापी पतित होते हैं।

आधुनिक विज्ञान ने निकटवर्त्ती प्रजनन के अनेकप्रकार से परीक्षण किये और वह इस नतीजे पर पहुँचा, कि ऐसे प्रजनन का सन्तति पर बड़ा बुरा असर पड़ता है; और उनकी हड्डियाँ एवं पुट्ठे कमज़ोर हो जाते हैं। शैल्डन लिखते हैं कि निकट-सम्बन्धियों द्वारा प्रजनन से जाति की शारीरिक और प्रजनन-शक्ति नष्ट हो जाती है।

प्रोफेसर ईवर्ट के अनुसार रक्त-परिवर्तन न होने से वंश-बेलि सूख जाती है। शरीर का भोंडापन, अंधापन, बहरापन, नपुंसकता, लकवा और पागलपन एकही रक्त के लोगों के पारस्परिक समागम के दुष्परिणाम समझे जाते हैं[1]। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन की "हिन्दू भ्यू आफ़ लाइफ़" पुस्तक में पृष्ठ १०३ पर एक वैज्ञानिक परीक्षण की कथा लिखी है। उत्तम कुलोत्पन्न सैनिक मार्टिन कल्लाकक के, एक हीन-कुल की लड़की से अवैध सम्बन्ध द्वारा, एक दुर्बल-मष्तिष्क लड़का पैदा हुआ। इस लड़के ने अपने से नीच घराने की लड़की से शादी की; और ६ पीढ़ियों तक यह क्रम जारी रहा। इस प्रकार मार्टिन के ४८० वंशजों में १४३ कमज़ोर-दिमाग़ के, ३३ दुराचारी, ३६ अवैध, ३ मिरगी-रोग वाले, ३ बदमाशी के लिये जेल भुगतने वाले और ८ धंधे के लिये वैश्यालय चलाने वाले थे। उस अवैध-सम्बन्ध के बाद मार्टिन ने उच्च घराने की एक समाज-सेविका से विवाह किया। इस विवाह से कई पीढ़ियों में उत्पन्न ४९६ वंशजों में बहुत से गवर्नर, सैनिक, विश्व-विद्यालय के संस्थापक, डाकृर, वकील, जज, शिक्षा-शास्त्री, ज़मीन्दार आदि श्रेष्ठ-नागरिक और ख्यातनामा पुरुष-स्त्री हुए। उनका एक वंशधर आजभी एक धनी और प्रभावशाली व्यक्ति है।

सगोत्र विवाह अति-वर्जित है—सभी शास्त्रकारों और ऋषियों ने, एकमत से, सगोत्र विवाह को सभी परिस्थितियों में त्याज्य माना है। इस निषेध के कुछ ऋषिवचन यों हैः—

ताभ्याम् अनुज्ञाताम् भार्य्यामुपयच्छेत्। सजातांसवर्णां
समानाभि जनाञ्च नग्निकां ब्रह्मचारिणीं असगोत्राम् ॥

(हिरण्यकेशि गृह्य सूत्रम् १॥१॥१९॥२)

1, देखिये, जे०एफ० निशन की "विवाह और वंशपरम्परा"।

अर्थात्, उनकी [पिता आदि की] आज्ञा लेकर वह भार्या ग्रहण करे; जो [भार्या] उसी की जाति की हो, उसी के वर्ण की हो, उसी के देश की हो, अखण्डिता-ब्रह्मचारिणी हो और उससे भिन्न-गोत्र की हो।

सगोत्राय दुहितंर न प्रयच्छेत्। (गौतमः)

अर्थात्, सगोत्र को कन्या का दान न करना चाहिये।

समान गोत्र प्रवरां कन्यामुद्वोपगम्य च।
तस्मामुत्पाद्य चाण्डालं ब्राह्मन्यादेवहीयते ॥

(पारिजातधृत आपस्तम्ब वचनम्)

अर्थात्, समान-गोत्र वा समान-प्रवर की कन्या को विवाह कर, और उसके साथ सहवास करने पर, जो पुत्र उत्पन्न होता है वह चाण्डाल है; और ब्राह्मणत्व से हीन है।

अविवाह्याः सगोत्राः स्युः समान प्रवरास्तथा। (नारदः)

अर्थात्, सगोत्र और समानप्रवर, दोनों विवाह [में कन्यादान देने] के अनुपयुक्त है।

न सगोत्रा न समानार्षप्रवरां भार्य्याम् विन्देत। (विष्णुः)

अर्थात्, सगोत्र अथवा समानप्रवर की भार्या के साथ विवाह न करना चाहिये।

सगोत्रां चेदमत्योपयच्छेत् मातृवेदनां विभृयात। (बौधायनः)

अर्थात्, यदि भूल-भ्रान्ति से भी सगोत्र कन्या के साथ विवाह हो जाय, तो [भर्त्ता को] उचित है कि वह उस कन्या का मातृवत् पालन करे।

दत्तामपि हरेत कन्यां स्वगोत्रोढ़ां तथैव च।

(माधव रघुनन्दनादिधृत वशिष्ठ वचनम्)

अर्थात्, यदि कन्या विवाह में सगोत्र (वर) को दे भी दी जाय, तो वह उससे ज़बर्दस्ती [वापस] ले लेनी चाहिये।

विकर्म्मस्थ सगोत्रो वा दासो दीर्घामयोपिवा ।
ऊढ़ापि देया साऽन्यस्मै सप्तावरभूषणा ॥
(पराशर माधव रत्नाकरादि धृत कात्यायन वचनानि)

अर्थात्, यदि पति स्वकर्म से पतित हो अथवा सगोत्र का हो, दास हो अथवा जीर्ण रोग में ग्रसित हो, तो विवाह में दिये जाने के पश्चात भी [वापस बुला कर] उस कन्या को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर, उसका विवाह अन्य वर के साथ कर दे।

परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरं तथा।
कृत्वातस्याः समुत्सर्गं मतिक्षत्वा बिशोधतम् ॥
मातुलस्य सुतांमुद्वा मातृगोत्रां तथैवच।
समानप्रवरां चैवत्यक्त्वा चान्द्रायनं चरेत् ॥
(उज्ज्वलधृत शतातप वचनम्)

अर्थात्, यदि सगोत्र अथवा समानप्रवर कन्या के साथ विवाह हो भी जाय, तो उसका उत्सर्गकर [छोड़] देना चाहिये ; और उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि मामा की लड़की अथवा माता के गोत्र की कन्या से, अथवा अपने समान-प्रवर से, विवाह कर ले, तो चान्द्रायण व्रत से उसका प्रायश्चित्त करे।

केचित् मातृगोत्रतां च वर्जयित्वा ॥
(आश्वलायन गृह्यपरिशिष्टम्)

अर्थात्, किसी किसी ऋषि का मत है कि मातृ-गोत्र की कन्या भी [विवाह के लिये] वर्जित है।

कितने स्पष्ट आदेश हैं ऋषियों के! प्रथम तो सगोत्र को कन्यादान करने का निषेध है, फिर, यदि किसी भूल-भ्रान्तिवश ऐसा हो भी जाय, तो कह दिया कि पति उस पत्नी का मातृवत पालन करे ; और उसे अपने पितृगृह को वापस कर दे। पिता को अधिकार दिया गया है कि (यदि पति वापस न करे तो) कन्याको ज़बर्दस्ती लौटा

लाये—"हरेत"। पति को ऐसे दान के लेने का प्रायश्चित्त चान्द्रायण व्रत कर के करना चाहिये। और यदि शास्त्रों के वचन न मान कर फिर भी सगोत्र पति-पत्नी से सन्तान उत्पन्न हो जाय, तो उसकी चाण्डाल-संज्ञा स्थिर कर दी गई। शोक है कि अपने यहाँ अभीतक सर्व-मान्य प्रथानुसार सगोत्र-विवाह-निषेध का बन्धन अब आधुनिक सुविधापसन्द लोगों में ढीला पड़ने के लक्षण हैं। हमें इससे समय रहते सावधान हो जाना चाहिये।

मातृपक्ष की वर्जित-पीढ़ीं—आश्वलायन वचन हैं "केचित् मातृगोत्रतां च वर्जयित्वा", अर्थात् किसी-किसी ऋषि का मत है कि मातृगोत्र की कन्या भी विवाह के लिये प्रशस्त नहीं। परन्तु "मातृतस्त्वापञ्चमात्", अर्थात, माता से पाँचवीं पीढ़ी तक के निषेध पर तो सभी ऋषि एकमत हैं। इसपर कुछ लिखने से अच्छा यह होगा कि उदाहरण द्वारा यह वर्जित-पीढ़ी की व्यवस्था को समझ लिया जाय, कि पीढ़ीं किस प्रकार गिनीं जातीं हैं।

"धर्मसिन्धु" ग्रन्थ में कल्पित कुर्सीनामे पिता की ओर सात और माता की ओर पाँच सपिण्ड-विवाह-निषेध समझाने के लिये इस प्रकार दिये हैं—

विष्णु

कान्ति (पुत्री)	गौरी (पुत्री)
सुधी (पुत्र)	हर (पुत्र)
बुध ,,	मैत्र ,,
चैत्र ,,	शिव ,,
गण ,,	भूप ,,
प्रिय ,,	अच्युत ,,
रति (पुत्री)	काम (पुत्र)

रति और काम का विवाह हो सकता है, क्योंकि मूल-पुरुष विष्णु उनसे आठवीं पीढ़ी में है, जो दो पुत्रियों—कान्ति और गौरी—से अलग हुईं हैं ; और मातृ-पक्ष की केवल पाँच पीढ़ीं वर्जित हैं।

विष्णु

दत्त (पुत्र)	चैत्र (पुत्र)
सोम ,,	मैत्र ,,
सुधी ,,	बुध ,,
श्यामा (पुत्री)	रति (पुत्री)
शिव (पुत्र)	गौरी (पुत्री)

यहाँ शिव और गौरी का विवाह हो सकता है, क्योंकि वे मूल-पुरुष विष्णु से छठवीं पीढ़ी में हैं ; और माताओं द्वारा ही सम्बन्धित हैं।

विष्णु

दत्त (पुत्र)	चैत्र (पुत्र)
सोम ,,	मैत्र ,,
सुधी ,,	बुध ,,
श्यामा (पुत्री)	नर्मदा (पुत्री)
शिव (पुत्र)	काम (पुत्र)
रमा (पुत्री)	कवि (पुत्र)

यहाँ रमा और कवि का विवाह नहीं हो सकता, क्योंकि वे मूल-पुरुष विष्णु से सातवीं पीढ़ी में हैं और पिता की तरफ़ का सम्बन्ध है, इस लिये—पिता की ओर सात पीढ़ी के भीतर—सपिण्ड हैं।

———

६

विवाह-विधि और गृह्यसूत्र

गृह्यसूत्रों की प्रधानता—इसी खण्ड के दूसरे अध्याय में हम जान चुके हैं, कि वैदिक साहित्य में संस्कारादि पर गृह्यसूत्र ही प्राचीन प्रमाण-ग्रन्थ हैं, क्योंकि संस्कारों की विधि उनमें भली भाँति वर्णिति है।

हमारे पूर्वज चतुर्वेदी-ब्राह्मणों ने चारो वेदों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करके ही इस उपाधि को ग्रहण किया था। चारो वेदों के महत्व को उन्होंने समान ही समझा ; और तभी उन सबका तपस्या-पूर्वक अध्ययन किया। फिर जो शाखोच्चार में हम सुनते है कि अमुक शाखाध्यायिनः, इसका क्या भेद है ?

इसी खण्ड के दूसरे अध्याय में हम जान चुके हैं कि अमुक वेद की अमुक-अमुक नाम्नी शाखाएँ हुईं, जो विभिन्न ऋषियों—विशेष कर गोत्र-प्रवर्त्तकों—को मान्य थीं ; और फिर उस गोत्र के सभी पश्चात्-वर्त्ती गोत्रज उन्हीं शाखाओं पर अपने क्रिया-कलाप आधारित करते आये। तीसरे अध्याय में हम यह भी जान चुके हैं, कि किस किस गोत्रने कौन से वेद, और विशेषकर उसकी किस शाखा को अपनाया। पृष्ठ ६४-६६ पर एक दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि भारद्वाज-गोत्रीय १६ अल्लों[१] ने सामवेद, और विशेष कर उसकी

१, पृष्ट ६४–६५ में "अल्ल" शब्द के विषय में लिखा जा चुका है। ज्ञात होता है कि यह शब्द 'गोत्रावली' से 'वल्ली' और उससे 'अल्ल' हो गया। राजस्थान में यह 'इल्ली' कहा जाता है, जो स्पष्टतः 'गोत्रावली' का शेषांश है। इस प्रकार, यह अन्दाज़ लगाया जा सकता है कि जब एक गोत्र के भी, कारणवश, भिन्न भिन्न विभाग हुए, तो वह गोत्रावलीं 'वल्ली', 'इल्ली' अथवा 'अल्ल' कहलायीं।

राणायनी शाखा को, अपने विधि-विधानों के लिये प्रमाण माना ; और
बाकी छः गोत्रों की ४८ अह्लों ने ऋग्‌वेद, और विशेष कर उसकी
आश्वलायन शाखा को, अपने विधि-विधानों के लिये प्रमाण माना।
इस वेद-शाखा के अनुयायी होने का आशय कुछ ऐसा प्रतीत होता है
कि वैसे तो सभी वेदग्रन्थ, शाखा व गृह्यसूत्रादि हमारे लिये एकसे
मान्य हैं, फिर भी, जहाँ किसी विषय पर गृह्यसूत्रादि की विधि में
परस्पर अन्तर अथवा विरोध हो, वहाँ हम अपनी शाखा को ही
आचरणमें प्रधानता देंगे।

भारद्वाज एवं अन्य छः गोत्रों के वेद और शाखा अलग-अलग
होते हुए भी, चतुर्वेदी जाति के पुरुषाओं ने बड़ी बुद्धिमानी का कार्य
यह किया, कि विवाहादि संस्कार की पद्धति सामवेदी और ऋग्‌वेदी,
दोनों, अर्थात सातो गोत्रों और चौसठो अह्लों के लिये एक ही
बना दी। इस प्रकार, वेदादि अलग-अलग मान्य होते हुए भी
हमारी सामाजिक एकता अटूट बनी रही।

चतुर्वेदी-विवाह की पद्धति बनाने वालों में नरोत्तम जी चतुर्वेदी
का नाम लिया जाता है ; और उन्हीं के नाम पर हमारी नरोत्तम-पद्धति
विख्यात है। यह नरोत्तम जी मैनपुरी के आदि निवासी बताये
जाते हैं। किन्तु मैनपुरी में जो पद्धति की हस्तलिखित प्राचीन
पुस्तक लल्ली पण्डित जी से लेखक को देखने को मिली, उसमें
"लज्जाराम कृत" लिखा है। अस्तु ! जिसे भी अपनी पद्धति-रचना
का श्रेय हो, उसने चतुर्वेदी-समाज की एकता बनाये रखने के
लिये स्तुत्य कार्य किया है।

ऋग्‌वेद एवं सामवेद, अथवा आश्वलायनी और राणायनी
शाखाओं में, एक सबसे बड़ा अन्तर यह देखने में आता है कि
जहाँ आश्वलायन में वधू के घर चतुर्थी-कर्म अनुष्ठित होने का
कोई विधान प्राप्य नहीं है, वहाँ सामवेदी राणायनी शाखा में

इसका पूरा विवरण मिलता है। चतुर्थी-कर्म में और तो कुछ
विशेष धार्मिक कार्य नहीं, हवनादि की ही प्रधानता है। हमारे पद्धति-
रचयिता ने सोचा, कि यह तो अच्छा ही कार्य है ; ऋग्वेदी
भी कर लेंगे तो नुकसान क्या है ; इधर सामाजिक एकता
अखण्ड रहेगी ; इसलिये, सभी गोत्रों के लिये चतुर्थी प्रशस्त कर
दी। इसी प्रकार, चतुर्वेदी-ब्राह्मणों की प्रचलित विवाह-पद्धति,
एकता के सुविचार से, सभी शाखाओं एवं गृह्यसूत्रों में वर्णित
विधियों का सामंजस्य करते हुए प्रस्तुत की गई है।

अपने समाज में प्रचलित प्रथाओं, रीतिभाँति एवं पद्धति का
विशद वर्णन करने से पहले—(जो प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय खण्ड का
विषय होगा)—हम विविधि गृह्यसूत्रों में वर्णित विवाह-विधि के
नियमों पर एक विहङ्गम दृष्टिपात कर लें। सुविधाके लिये विवाह-
विधि को सात भागों में बाँटा जा सकता है :—(१) वर-वधू का
स्नान एवं नवीन वस्त्रधारण; वर का सत्कार आदि; (२) कन्या-संप्रदान
आदि ; (३) पाणिग्रहण ; (४) लाजाहोम एवं भाँवरि ; (५) सप्तपदी ;
(६) ध्रुव-दर्शन ; एवं (७) वर-वधू आगमन व परिछन (पनीछा)।
इनमें से एक-एक क्रिया पर कहाँ कैसा विधान प्राप्य है, उसमें से
एक अंश, उदाहरण की भाँति, आगे लिखा जा रहा है।

चूँकि अधिक संख्या आश्वलायन के अनुयायियों की है, इस
लिये आश्वलायन गृह्यकारिका में वर्णित विधि को हम द्वितीय
खण्ड में वहीं लिखेंगे जहाँ प्रचलित विवाह-पद्धति का वर्णन
होगा। यहाँ केवल कुछ अन्य गृह्यसूत्रों में पाये जाने वाले
विधिविधान का सङ्केत कर देंगे।

वर-वधू स्नान——प्रथमतः, वर और वधू को स्नान से पवित्र
होकर नूतन कोरे वस्त्र धारण करने की विधि है। गोभिल प्र०२ कां०
१ सूत्र १० में वर्णिति है—वधू को क्लितक (?), यव और (beans)

पड़े हुए जल से स्नान कराने के पश्चात, एक बन्धु वधू के सर पर इस प्रकार सुन्दर सुरा (सुरा जलका भी नाम है) मार्जन करे कि उसके सब शरीर पर छींटे पड़ें और साथ ही मंत्र-ब्राह्मण का (१, १, २) मंत्र पढ़े :—

ॐ काम वेद ते नाममदो नामासि समानयामुं सुरा ते अभवत्। परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा ॥

[अर्थ— हे काम ! तेरे नाम को सब जगत् जानता है। मदकारी तू प्रसिद्ध है। यह जल तेरे शान्त्यर्थ उपस्थित है। इस कन्या को मान-सहित कर। हे कामाग्ने ! स्त्री जाति में ही तेरा उत्कृष्ट जन्म है ; और गृहस्थाश्रम पालनरूप उत्कृष्ट धर्म के लिये ईश्वर ने तेरी रचना की है।]

उसके बाद के दो मंत्रो से उसके सभी अङ्ग धोये जाँय। यह कार्य वधू की स्त्री-सहेलियाँ अथवा स्त्री-रिश्तेदार करें।

इसी प्रकार शांखलायन (१, २) में, और खादिर गृह्य-सूत्र (१, ३, ६) में भी, वधू को स्नान कराने की विधि है। वैसे भी विवाह-संस्कार करने से पहले वर और वधू दोनों को ही स्नान द्वारा पवित्र, और नवीन वस्त्र-धारण पूर्वक तैयार, होना ठीक है। वधू-स्नान के समय, शांखलायन (१, ११, ५) में, चार या आठ महिलाओं द्वारा नृत्य-संगीत आदि का भी विधान है। शांखलायन (१, १२) में जहाँ विवाह के लिये वर वधूके घर के लिये प्रस्थान करता है, वहाँ वर के स्नान व नवीन वस्त्र-धारण का विधान है। गोभिल (२, १, १७) में वधू को शिरसे स्नान कराने का विधान है।

वधू को वर द्वारा नये वस्त्र आदि दिये जाना—

पारस्कर गृह्य-सूत्र का० १ कं० ४ में वर द्वारा वधू को उत्तम वस्त्रों का दिया जाना इस मंत्र के साथ विहित है :—

ॐ जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्ति पावा। शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननुसंव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः ॥

[अर्थात्, हे कन्ये ! मेरे दिये हुए वस्त्र को पहनो। तुम मेरे साथ निर्दोष वृद्धावस्था को प्राप्त हो। कामादिकों से आसक्त मनुष्यों के बीच निश्चयरूप अभिशाप-प्रमाद से तुम अपनी रक्षा करने-वाली हो। सौ वर्ष तक प्राणधारण कर, तेजस्विनी हो कर, धन और पीछे पुत्रों को प्राप्त करो। हे सुन्दर आयुवाली कन्ये ! तुम इस वस्त्र को पहनो।]

सांख्यायन मं० ब्रा० १।१।८ मंत्र के अनुसार वर द्वारा वधूको निम्न मंत्र के साथ वस्त्र देने का विधान है।

ॐ या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ। तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः[1] ॥

[अर्थात्, हे कन्ये ! जिन स्त्रियों ने इस वस्त्र के सूत को काता है और जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत को बिना है व सीं कर तैयार किया है, वे देवियाँ तेरे प्रति वृद्धावस्था तक ऐसे ही वस्त्र पहनातीं रहें। हे प्रशस्त आयु वाली ! तुम इस वस्त्र को धारण करो।]

गोभिल गृह्यसूत्र प्र०२, कं १, सूत्र १८ में भी उपरोक्त मंत्र के साथ ही वर द्वारा वधू को नया कोरा वस्त्र पहनने के लिये देने की विधि है।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र प० २ खं ४ सूत्र ८ में भी नये वस्त्रों का वर द्वारा दिया जाना विहित है। खादिर गृह्यसूत्र (१, ३, ६) में भी इसी प्रकार का विधान है।

१, अपने यहां आर्य्योंमें ढरा के वस्त्राभूषण वधू को असंबद्ध दिये जाते हैं। यह अच्छा होगा कि ढरा के वस्त्र इस वेद-मंत्र के साथ दिये जाँय।

वर को अर्घ्यदान—मुखधोने के लिये जल देने को अर्घ्य-दान कहते हैं। आश्वलायन (अध्याय १ खण्ड २४ सूत्र ७) का विधान है—

विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्को गौरित्येतेषां त्रिस्त्रिरेकैकं वेदयन्ते।

[अर्थात्, प्रथम आसन, फिर क्रमशः पाद्य (पैर धोने के लिये जल), अर्घ्य (मुख धोने के लिये जल), आचमनीय (आचमन करने के लिये जल) अर्पण करने के पश्चात् विधिपूर्वक मधुपर्क अर्पण करने का नियम कहा है।]

इससे आगे सूत्र ११ है :—

प्रक्षालितपादोऽर्घ्यमञ्जलिना प्रतिगृह्य।

व्याख्या है :—

प्रक्षालितपादग्रहणमानन्तर्यार्थम्। प्रक्षालनानन्तरमदर्घ्यमेव गृह्णीयादिति। गन्धमाल्यादि संयुक्तमुदकमर्घ्य मित्युच्यते लोके॥

[अर्थात्, दिये हुए पाद्य से वर पैर धोवे। तत्पश्चात् एतदर्थ दिये हुए अर्घ्य-जल को ग्रहण कर उससे वर अपना मुख धोवे। फिर गन्ध व माला आदि से संयुक्त मधुपर्क वर के अर्पण किया जाय, ऐसा लोक में कहा जाता है।]

अर्घ्यादि प्रदान की विधि अन्यत्र शांखलायन (१, १२, १०) एवं खादिर (१, ४, ७) में भी पायी जाती है। अर्घ्य-जल से मुख धोकर वर द्वारा मंत्र बोला जाता है—

ॐ आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि।
ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत।
अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः॥

[अर्थ—हे जल! तुम आरोग्यता के हेतु हो। मैं तुम से सब आरोग्यता-रूप मनोरथों की प्राप्ति करूँ। तुमको अब मैं (समुद्रम्) अन्तरिक्ष-लोक में छोड़ता हूँ जिससे तुम अपने कारणीभूत

अतल जल में मिल जाओ। हम सब, रोग व दुःख रहित हों; मुझसे मंगल-जल दूर न रहे और मैं सर्वदा पूजनीय बना रहूँ।]

मधुपर्क, गोदान आदि की विधि प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय-खण्ड में विवाह-पद्धति के सन्दर्भ में लिखित है।

प्रधान हवन—महाव्याहृतियाँ आदि—गोभिल गृह्यसूत्र प्र० २ कं० १ में इस प्रकार प्रधान-हवन अनुष्ठित करने की विधि है:—

सूत्र १६—नये वस्त्रों को पहने वधू, जो अपने बायें स्कंध पर यज्ञोपवीत धारण किये है, वर द्वारा उस मंत्र के साथ यज्ञ-वेदी के सम्मुख लायी जाय; जिसका अर्थ है "सोम ने इसे गंधर्व को दिया...." आदि। म० ब्रा० १, १, ७।

सूत्र २०—वधू घूँघट मारे हुए, अग्नि के पश्चिम में, आसन को अपने पैर से कुछ आगे सरकावे। वर द्वारा उससे मंत्र बुलवाया जाय (जिसका अर्थ है, जो पथ मेरे पति के लिये प्रशस्त है, वही मेरे लिये प्रशस्त हो)।

सूत्र २१—यदि वधू (इस मंत्र को, लज्जा या संकोच के कारण) न दुहरावे तो वर स्वयं इस मंत्र को 'मेरे' के स्थान पर 'इसके' कह-कर पढ़े।

सूत्र २२—वधू आसन को इस प्रकार सरका कर, उसके छोर को, वरही के किनारे तक कर दे।

सूत्र २३—आसन के पूर्व के किनारे पर वधू वर के दाहिनी ओर बैठे।

सूत्र २४—वधू अपने दाहिने हाथ से वर का दाहिना कंधा स्पर्श करती रहे और वर छः आज्य (घृत) आहुतियों से हवन करे (मंत्र ब्रा० १, १, ६ से १४ तक)।

सूत्र २५—और फिर ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः आदि महाव्याहृतियों से, एक के बाद एक, तीन आहुति दे।

सूत्र २६—और चौथी आहुति "ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः ॐ भूर्भुवस्स्वः", इन चारो महाव्याहृतियों के साथ दे।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र प०२ खं० ५ सूत्र २ में विहित है कि वधू वर का स्पर्श करती रहे और वर एक-एक मंत्र के साथ एक-एक आहुति देता जाय। हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र प्रश्न १, प० ६ खंड १६ में विधि इस प्रकार है :—

सूत्र ४ – प्रज्वलित अग्नि में वर समिधा डाले और वहाँ तक के सब प्राथमिक कार्य करे जहाँ तक अग्नि में तीन समिधा डालीं जातीं हैं। वधू को वर के पास लाया जाय और वर मंत्र बोलते हुए उसकी ओर देखे (मंत्रार्थ है— यह वधू शुभ आभूषण पहने है, इसके पास आओ और इसके दर्शन करो। इसे सौभाग्य का आशीर्वाद देकर आप लोग अपने घर पधारें)।

सूत्र ५ – वधू वर के दक्षिण पार्श्व में बैठे।

सूत्र ६—[वर के] आचमन करने के उपरान्त, वधू वर का स्पर्श करे और वर वेदी के चारो ओर जल प्रक्षालन करे।

सूत्र ७—फिर विधिवत व्याहृतियों के साथ आहुति देने के पश्चात वर निम्न मंत्रों के साथ अन्य आहुतियाँ प्रदान करे।

[आहुतियों कें मंत्र के अर्थ हैं :—सर्वदेवों में अग्रगन्य, अग्नि देव, यहाँ पधारें। इसके बालकों को वह मृत्यु के फन्दे से मुक्त करें। वरुण देवता इसे आशीर्वाद दें कि पुत्रों से मिले कष्ट के कारण दुःखी हो कर यह क्रन्दन न करे। ॐ स्वाहा।

गार्हपत्य अग्नि इस स्त्री की रक्षा करें। वह इसकी सन्तति को वृद्धावस्था तक दीर्घजीवी करें। इस स्त्री की कुक्षि फलवती हो और यह दीर्घजीवी सन्तति की माता बने। इसे अपनी सन्तति से सुख प्राप्त हो। ॐ स्वाहा ॥

रात्रि में तेरे द्वारा घर में किसी प्रकार का रव (ज़ोर की आवाज़) न हो ; रुलाने वाली कृत्या किसी अन्य स्त्री में भले ही निवास करें, तुझमें नहीं। तू विकेशी-नाम्नी कृत्या से आक्रान्त न हो। तेरा पति दीर्घजीवी हो और तू अपनी सुखी सन्तति को देखती हुई अपने पति के संसार में प्रकाशित रहे। ॐ स्वाहा।

स्वर्ग तेरी पीठ की रक्षा करे, वायु जङ्घाओं की, और दोनो अश्विनी-कुमार उरोजों की। सावित्री तेरे दुधमुँहे बच्चों की रक्षा करें। वस्त्रधारण करने योग्य बड़े होने तक तेरी सन्तति की बृहस्पति रक्षा करें और तत्पश्चात् विश्वे-देवा रक्षा करें। ॐ स्वाहा ॥

बन्ध्यात्व, मृत-जातत्व (पुत्रों की उत्पति के साथ मृत्यु), पाप और दुःख, यह सब मैं तुझ से दूर करता हूँ, जैसे गले में से माला उतार फेंकी जाय। मैं (माला की तरह) पाप को हमारे शत्रुओं पर डालता हूँ। ॐ स्वाहा ॥

देवताओं द्वारा रचित इन मंत्रों से तेरी कुक्षि के अन्दर रहने वाले पिशाचों का मैं नाश करता हूँ। माँस-भोजी मृत्यु-कारकों को मैं दूर फेंकता हूँ। तेरे पुत्र दीर्घजीवी हों। ॐ स्वाहा ॥]

इसी प्रकार इस विषय में पारस्कर एवं खादिर गृह्य सूत्रों में भी विधान है।

पाणिग्रहण——हिरण्य-केशि गृह्यसूत्र, प्रश्न १, प० ६, खण्ड २० के सूत्र १ में विहित है :—

"पूर्वाभिमुख-वर सामने पश्चिमाभिमुख-खड़ी वधू का पाणि-ग्रहण करे। यदि वह चाहता है कि सन्तति में पुत्र हों, तो वह वधूका अँगूठा पकड़े ; यदि कन्या-सन्तति चाहता है, तो हाथ की उँगलियाँ पकड़े ; और यदि पुत्र और पुत्री दोनों प्रकार की सन्तति चाहता है, तो अँगूठे समेत उँगलियाँ पकड़े, अर्थात पूरा हाथ (उल्टी तरफ) लोमों

के किनारे तक"। पढ़े जाने वाले दो मंत्रों का अर्थ है "सरस्वती ! हम प्रथम तेरी वन्दना करते हैं, दयालु भगवती ! हमारा मंगल कर"।

"मैं तेरा हाथ पकड़ रहा हूँ, ताकि हम सन्तति द्वारा फलवान हों, ताकि तू मेरे, अपने पति के, साथ वृद्धावस्था तक दीर्घजीवी हो। भग, अर्यमा, सावित्री, पुरन्धी, देवताओं द्वारा तू मुझे दी गयी है ताकि हम दोनों अपने घर पर शासन करें।"

आपस्तम्ब गृह्य-सूत्र, प० २ खण्ड ४ का –

सूत्र ११– फिर वर अपने दाहिने हाथ में, हथेली नीचे की ओर किये, वधू का दाहिना हाथ, जिसकी हथेली ऊपर की ओर रहे, पकड़े।

सूत्र १२– यदि वह चाहता है कि उसके केवल लड़कियों की सन्तति हो, तो वह केवल उँगलियों को पकड़े (अँगूठा नही)।

सूत्र १३– यदि वह चाहता है कि उसके केवल लड़कों की सन्तति हो, तो अँगूठा [पकड़े]।

सूत्र १४– वह वधू का हाथ अँगूठा के साथ वहाँ तक पकड़े जहाँ लोम आने प्रारम्भ होते हैं।

सूत्र १५—चार मंत्रों के साथ, "मैं तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ" इत्यादि (मंत्र ब्रा०, १, ३, ३ से ६ तक),

गोभिल गृह्यसूत्र, प्र० २, कं० २, सूत्र १६ है-"यज्ञ का जल वधू पर छिड़क दिये जाने के पश्चात् वधू के दोनों जुड़े हुए हाथों को अपने बाँये हाथ से अलग कर, वर अपने दाहिने हाथ से वधू का अंगुष्ठ-सहित दाहिना हाथ पकड़े, जिस (वधूके) हाथ की हथेली ऊपर की तरफ हो, और फिर इस प्रकार पाणि-ग्रहण करते हुए छः मंत्र पढ़े (मंत्र ब्रा० १, २, मंत्र १० से १५ तक)"।

भाँवरि एवं लाजाहोम—गोभिल गृह्यसूत्र प्र० २ कंडिका २ का –

सूत्र ८– आहुतियों के पश्चात् वर वधू के पीछे-पीछे चले और दोनों इस प्रकार वेदी और अग्नि की प्रदक्षिणा करें कि अग्नि सदा उनके दाहिनी तरफ रहे। साथ ही वह (अथवा मंत्र जानने वाला आचार्य) मंत्र पढ़े "यह कन्या...." (मंत्र ब्रा० १, २, ५)

सूत्र ९– इस प्रकार एक परिक्रमा पूरी होने पर वह पत्थर की सिल पर खड़ी हो जाय और आचार्य मंत्र पढ़े ; उसका भाई उसकी अञ्जुलि में धान की खीलें डाले और वह पहले कही हुई विधि से उनकी अग्नि में आहुति दे।

सूत्र १०– इस प्रकार तीन बार करे।

हिरण्यकेशि गृह्य-सूत्र प्रश्न १, प० ६, खंड २० का –

सूत्र ५—तैत्तिरीय संहिता के १, २, ८, १ मंत्र के साथ वर वधू को आसन से उठावे और (उसके साथ) अग्नि की इस प्रकार प्रदक्षिणा करे कि अग्नि सदा उनके दाहिने पार्श्व में रहे ; और मंत्र पढ़े, जिसका अर्थ है, "विरुद्ध शक्तियों पर विजय प्राप्त करते हुए हम पानी की नदी की भाँति अपना रास्ता सुगम बनाते चलें"। वर वधू के हाथ में खीलें दे और वधू खीलों की आहुति अग्नि में छोड़े।

सूत्र ६—दुबारा (अग्नि की) प्रदक्षिणा करने पर वधू के हाथ में खीलें डाले और वह (पुनः उसी भाँति) आहुति दे।

सूत्र ७—तिबारा (अग्नि की) प्रदक्षिणा कर के वर (अग्नि में) स्विष्टकृत आहुति प्रदान करे।

सूत्र ८— यहाँ किसी-किसी का मत है कि जया, अभ्यातन एवं राष्ट्रभृत आदि आहुतियाँ भी इसी प्रकार दी जाँय।

आपस्तम्ब गृह्य-सूत्र, प० २ खं० ५ में—

सूत्र १—यज्ञ-वेदी की अग्नि की वर और वधू इस प्रकार प्रदक्षिणा
करें कि अग्नि सदैव उसके दक्षिण-पार्श्व में रहे।

सूत्र २—वह दोनो पहले की तरह अपने आसनों पर बैठ जाँय,
और वधू वर का स्पर्श करे और वर मंत्रों के साथ
आहुति प्रदान करे। "सोमाय स्वाहा" आदि (मंत्र ब्रा०
१, ४, १ से १६ तक), एक-एक मंत्र से एक-एक आहुति
देता हुआ।

सूत्र ३—वर वेदी के उत्तर में रक्खी हुई पत्थर की सिल पर वधू का
दाहिना पैर रखवाये और (मंत्र ब्रा० १, ५, १) मंत्र पढ़े।

सूत्र ४—धान की खीलों पर आज्य [घृत] छिड़क कर दो बार वधू
की अंजुलि में वर खीलें डाले और उन पर घृत डाले।

सूत्र ५—किसी-किसी का मत है कि वधू की अंजुलि में खीलें
डालने की क्रिया उसके सहोदर भाई को करनी चाहिये।

सूत्र ६—वह [वधू] अंजुलि की खीलों की आहुति अग्नि में डाले
(मं० ब्रा० १, ५, २ के साथ)।

सूत्र ७—अग्नि की प्रदक्षिणा करके, इस प्रकार कि अग्नि सदा
उनके दाहिने पार्श्व में रहे, वर वधूको अगले तीन मंत्रों के
साथ पहले की तरह फिर पत्थर की सिल पर पैर रखवाये।

सूत्र ८—और अगले मंत्र के साथ आहुति प्रदान करे (मं १, ५, ७)।

सूत्र ९—पश्चात् फिर उसी प्रकार प्रदक्षिणा करे और सिल पर
वधू का पैर रखवा कर दूसरे मंत्र से आहुति दी जाय
(मं० १, ५, ११ व १२)।

सूत्र १०—फिर प्रदक्षिणा, उसी भाँति (मं० १, ५, १३ से १५)।

सूत्र ११—फिर जया आदि दूसरी आहुतियाँ प्रदान की जाँय।

सूत्र १२—वधू अपना दाहिना पैर आगे रक्खे और बायाँ पैर
दाहिने पैर के पीछे-पीछे आवे।

सूत्र १३—(वर) कहे (वधू से) "वाम (पद) दक्षिण पद से
आगे मत रखना"।

सप्तपदी—हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र, प्रश्न १, प० ६, खण्ड २० में—

सूत्र ९—अग्नि के पश्चिम में वर, वधू को एक-एक पद पूर्व अथवा
उत्तर की ओर, सात पद (विष्णु भगवान के पद का ध्यान
करते हुए) अपने साथ चलावे।

सूत्र १०—वर वधू से कहे "अपने दाहिने पैर से इस प्रकार एक
पद आगे चलो कि बाँया पैर सर्वदा दाहिने पैर से
पीछे रहे। कभी बाँया पैर दाहिने पैर से आगे न
हो जाय।

इससे आगे प० ६ खण्ड २१ में विहित है :—

सूत्र १—इस प्रकार वर वधू के साथ एक-एक पद आगे चले और
मंत्र बोलता जाय :—"ॐ इषे एकपदी भव सा
मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते
सन्तु जरदष्टयः* ॥" (अर्थात अन्नादि-प्राप्ति के लिये तुम
प्रथम पग चलने वाली मेरे अनुकूल हो और विष्णु भगवान
की कृपा से हम दोनो बहुत से पुत्रों का लाभ करें और वह
पुत्र वृद्धावस्था तक दीर्घजीवी हों)। [इसी प्रकार] दूसरा
पद बल-सम्पादन के लिये (विष्णु-मंत्र के साथ) ; तीसरा
पद व्रत आदि के लिये (विष्णु-मंत्र के साथ) ; चौथा पद
सुख की उत्पत्ति के लिये (विष्णु-मंत्र के साथ) ;
पाँचवाँ पद गो-धन की वृद्धि के लिये (विष्णु-मंत्र के
साथ) ; छठवाँ पद धन सम्पत्ति की वृद्धि के लिये
(विष्णु-मंत्र के साथ) ; एवं सातवाँ पद सातप्रकार के
होतृत्व के लिये (विष्णु-मंत्र के साथ) साथ-साथ चले।

---

* पारस्कर गृह्यसूत्र का० १। क० ८॥

सूत्र २—सातवें पद के पश्चात् वर वधू से (उसी अवस्था में खड़े-खड़े) कहता है "सात पद साथ चल कर हम एक दूसरे के मित्र हो गये। मुझे तुम्हारी मित्रता प्राप्त हो; म तुम्हारी मैत्री से कभी दूर न रहूँ। तुम मेरी मैत्री से कभी दूर न रहो"

सूत्र ३—वर वधू के दाहिने पैर पर अपना दाहिना पैर रक्खे, अपने दाहिने हाथ को बधू के दाहिने कन्धे से लगाकर उसे क्रमशः नीचे लाते हुए उससे उसके हृदयस्थान का स्पर्श करे।

सूत्र ४—और उसके नाभि-स्थान का भी, मंत्र के साथ, जिसका अर्थ है, "तुम सब प्रकारके प्राण और बायु की ग्रन्थि हो, खुल न जाना"

सूत्र ५—वधू को अग्नि के पश्चिम की ओर बैठा कर, ताकि उसका मुख पूर्व की ओर रहे, वर वधू के पूर्व की ओर पश्चिमाभिमुख खड़ा हो और उस पर तैत्तिरीय संहिता के तीन मंत्र (४, १, ५, १) चार पदों के साथ मय अनुवाक् (तैत्तिरीय ब्राह्मण १, ४, ८) पढ़ता हुआ जल छिड़के।

सूत्र ६—अब (उपस्थित लोग) वर वधू पर धान्य की वर्षा करें।

आपस्तम्ब गृह्य सूत्र, प० २ खं० ४ में निम्न-विधि विहित है :—

सूत्र १६—वर वधू को दक्षिण पैर से, अग्नि से उत्तर की ओर पूर्व अथवा उत्तर की दिशा में एक पद आगे चलावे; मंत्र के साथ; जिसका अर्थ है, "एक पद अन्नादि के लिये" (मं १, ३, ७)।

सूत्र १७—उसके सातवें पद पर वर कहे "अब तुम मेरी सखा हो" (मं १, ३, १४)।

गोभिल गृहयसूत्र—प्र० २, कां० २ में इसप्रकार सप्तपदी-विधि वर्णित है :—

सूत्र ११—वधू के द्वारा अवशेष खीलों की आहुति अग्नि में दिये जाने के पश्चात् वधू को वर पूर्वोत्तर ईशान-कोण की ओर एक-एक पद आगे अपने साथ चलवावे, मंत्र के साथ "अन्नादि के लिये प्रथम पद" (मंत्र ब्रा० १, २, ६, ७)।

चतुर्थी—चतुर्थी नाम का संकेत अधिक गृह्यसूत्रों में प्राप्त नहीं है। वैसे विवाह के चतुर्थ दिन की विधि इस प्रकार वर्णित पाई जाती है; जो वर के घर पहुँचने पर ही हो सकती है। ज्ञात होता है कि यह विधि गर्भाधान का एक अंग है।

हिरण्यकेशि गृह्य-सूत्र, प्रश्न १, प० ७, खण्ड २३ में विधान है :—

सूत्र १०—(विवाह के पश्चात) तीन रात्रि पर्यन्त वह दोनों [पति-पत्नी] नमकीन वस्तु के भोजन न करें, भूमि पर शयन करें, आभूषण धारण करें, एवं ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें।

सूत्र ११—चौथी रात्रि में, प्रभात से कुछ पूर्व, वर अग्नि में समिधा डाले, हवनादि सम्पन्न करे और निम्न मंत्रों से ६ आहुतियाँ प्रदान करे—

[यहाँ गृह्यसूत्र का प्रश्न १, प० ७, खण्ड २४ प्रारम्भ होता है]

सूत्र १—"अग्निदेव ! तुन्हे नमस्कार है। मैं, ब्राह्मण, अपनी रक्षा के हेतु तुम्हारी उपासना करता हूँ। इस (वधू) में जो भयप्रद हो उसे यहाँ से बाहर कर दो। ॐ स्वाहा ॥

"वायु देव ! नमस्कार ! तुन्हें नमस्कार है। मैं, ब्राह्मण, अपनी रक्षा के हेतु (उसी प्रकार) स्वाहा ॥

"सूर्य देव (उसी प्रकार) स्वाहा ॥

सूत्र २- यह आहुतियाँ देने के पश्चात बचा हुआ वधू के सर के ऊपर से फिराकर इस मंत्र के साथ आहुति दे—"ॐ

भूः ! मैं धन के हेतु यह आहुति देता हूँ ! स्वाहा ॥ ॐ भुवः ! मैं यश के हेतु यह आहुति देता हूँ । स्वाहा !!"

सूत्र ३—वहाँ (वेदी के सन्निकट) वह जल-कलश रक्खे और फिर कलश व वेदी की परिक्रमा करे, इस तरह, जिसमें यह [वेदी और कलश] उसके दाहिनी ओर ही रहें ।

(और फिर गर्भाधान का विधान वर्णित है)

गोभिल गृह्यसूत्र, प्र० २ कां० ५ में विधान है :—

सूत्र १—अब चतुर्थ-दिन की कार्य-विधि (बताई जाती है) ।

सूत्र २—अग्नि में समिधा डाल कर वर चार बार घृत की आहुति मंत्रों सहित दे "अग्नि···स्वाहा" (मंत्र ब्रा० १, ४, १)

सूत्र ३—और उसी प्रकार मंत्र से, अग्नि के स्थान में वायु, चन्द्र और सूर्य (भगवान को आहुतियाँ दे) ।

सूत्र ४—पाँचवी आहुति (उपरोक्त) चारो देवताओं के नाम साथ ले कर (मंत्र में एकवचन के स्थान पर) बहुवचन बदल कर दे ।

सूत्र ५—प्रत्येक आहुति का बचा (अन्तिम बूँद) घी वर एक जलपात्र में डालता जाय ।

सूत्र ६—उस (जलपात्र में पड़े घी) को वधू के सभी अङ्गों पर लगाया जाय, केश व नखों पर भी, (इसके बाद गर्भाधान का विधान वर्णित है)

आपस्तम्ब गृह्य सूत्र, प० ३, खण्ड ८ में विधान है :—

सूत्र ७—वर वह दिन याद रक्खे जब वह वधू को लेकर (अपने) घर में आया है ।

सूत्र ८—(उस दिन से) तीन रात्रि पर्यन्त वह दोनों भूमि पर शयन करें, ब्रह्मचर्य का पालन करें और नमक मिर्च आदि मिली वस्तुएं न भोजन करें ।.......

सूत्र १०—चौथी रात्रि के अन्तिम प्रहर में······ वह विधिवत हवन करे और आज्यभाग आहुतियाँ अर्पित करे । आहुति प्रदान करते समय वधू उसका स्पर्श करती रहे और वह मंत्र पढ़ता रहे (मंत्र १, १०, ३ से ६ तक) । पश्चात वह जया होम करे वहाँ तक, जहाँ वेदी के चारो ओर जल प्राक्षालन किया जाता है । (फिर गर्भाधान का विधान है)

ध्रुव-दर्शन—गृह्यसूत्रों में अधिकतर ध्रुव-दर्शन का विधान वर के घर लौटने पर पत्नीछा और गर्भाधान-संस्कार के बीच में पाया जाता है । विधान इस प्रकार है :—

हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र, प्रश्न १, प० २, खं० २२ में—

सूत्र ११—जब तारागण निकल आवें, तब वर (वधू के साथ) घर से बाहर निकल कर उत्तर अथवा पूर्व दिशा की ओर जाय और उस (आकाशखण्ड की) ओर मंत्र के साथ प्रणाम करे "षड्देवियो····" इत्यादि (तैत्ति० सं० ४, ७, १४, २ मंत्र) ।

सूत्र १२—(वर) तारागणों की मंत्रों के साथ वन्दना करे, जिस पद का अर्थ है "हम लोग अपनी सन्तति से रहित न हों" ।

सूत्र १३—और चन्द्रमा की, उस पद के साथ जिसका अर्थ है, "राजन् सोम ! हम उसकी शक्ति में न आवें जो हमसे घृणा करता हो" ।

सूत्र १४—वह सप्तर्षि-मण्डल (ursa major) की वन्दना करे, उस मंत्रसे, जिसका अर्थ है,—"सप्तर्षिमण्डल के समीपस्थ आठवीं देवी अरुन्धती - जो छहो कृत्तिकाओं में अग्रगण्य हैं और उनके साथ चन्द्र-मण्डल में शोभायमान हो रहीं हैं—हमारे ऊपर सर्वदा प्रकाशित

रहें"। फिर वर ध्रुव-तारा की वन्दना करता है, मंत्र के साथ जिसका अर्थ है,—"दृढ़ स्थिर हैं आप, समस्त तारागण-समुदाय में दृढ़ता और स्थिरता के प्रतीक, शत्रुओं से मेरी रक्षा कीजिये"। "स्थिर और दृढ़ ब्रह्मदेव! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा के पुत्र! आप को नमस्कार है। प्रजापति के पुत्र! आप को नमस्कार है, ब्राह्मण-पुत्रों को नमस्कार है। तेतीस देवताओं को नमस्कार है। ब्रह्माजी के पुत्र और पौत्र, आङ्गिरिषों को नमस्कार है"। "हे ध्रुव-देवता! जो दृढ़ और सर्वदा स्थिर रहने वाले आप, ब्राह्मण को पुत्र और पौत्रों के साथ जानता है, ऐसे मनुष्य के यहाँ पुत्र और पौत्र सुख सदा वर्त्तमान रहते हैं; सेवक और शिष्य, वस्त्र और ऊनी कम्बल, रौप्य और स्वर्ण, स्त्री और राजा, अन्न व भोजन, रक्षा, दीर्घजीवन, यश, कीर्त्ति, प्रभाव, बल, और भोग आदि; यह सब वस्तुए दृढ़ता और स्थिरता के साथ हमें प्राप्त हों"।

और भी ध्रुव की स्तुति में अनेक मंत्र हैं।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र प० २ खं० ६ सूत्र १२ में विहित है—"जब तारागण प्रकाशित हो जाँय, तो वर, वधू को घर से बाहर पूर्व अथवा उत्तर की ओर, ले जाय और उसे ध्रुवतारे का दर्शन कराये और अरुन्धती का। उन दो मंत्रों के साथ और उनके अर्थ के अनुसार"—(मंत्र० १, ६, ६-७)

गोभिल गृह्यसूत्र, प्र० २, कां० ३ में विधान है :—

सूत्र ६—जब यह कहा जाय कि तारे निकल आये, (तब वर) ६ मंत्रो के साथ अग्नि में घी की ६ समंत्र आहुतियाँ प्रदान करे; मंत्र १, १, १, ३, १ से ६ तक।

सूत्र ७—प्रत्येक आहुति से बचा हुआ घी वर वधू के सिर के ऊपर से लाता हुआ गिरा दे।

सूत्र ८—आहुति-प्रदान के बाद वे दोनों उठें और (घर से) बाहर जाँय। वहाँ वर वधू को ध्रुव-तारे का दर्शन कराये।

सूत्र ९—वधू (ध्रुव के दर्शन करती हुई) मंत्र पढ़े—"आप सदैव स्थिर और दृढ़ हैं, मैं, अमुक, अपने पति, अमुक, के घर में दृढ़ और स्थिर रहूँ। (यहाँ वधू को अपना व वर का यथा-स्थान नाम लेना चाहिये)।

सूत्र १०—और वर (वधू को ध्रुवतारे के पास) अरुन्धती के दर्शन कराये;

सूत्र ११—और वधू मंत्र पढ़े—मैं, अमुक, स्थिर और दृढ़ रहूँ (सूत्र ९ की भाँति)

विदा, पनोछा——गोभिल गृहयसूत्र, प्र० २, कं० २ में विधान है :—

सूत्र १७—यह (पाणिग्रहण) समाप्त होने पर वर बधू को (विदा करा) ले जाय—

(कं० ३) सूत्र १—किसी अच्छे ब्राह्मण के घर में, सुविधानुसार, जो ईशान-कोण की दिशा में अवस्थित हो।

सूत्र २—वहाँ अग्नि में समिधा डाली जाय।

सूत्र ३—अग्नि के पश्चिम-ओर एक लाल-वृषभ का चमड़ा बिछा दिया जाय, जिसका सर पूर्व की ओर हो और उसके केश ऊपर की ओर।

सूत्र ४—उस पर वधू को बैठाया जाय। वधू मौन धारण किये रहे।

सूत्र ५—और वहाँ वह तब तक बैठी रहे, जब तक आकाश में तारागण न निकलें।

(शेष सूत्र ६ से ११ तक ध्रुव-दर्शन के सिलसिलेमें पृष्ठ १२० पर द्रष्टव्य)

सूत्र १४—और तब वह [वधू] मौन भंग करे ।

सूत्र १५—इस समय से तीन रात्रि पर्यन्त वह दोनों नमकीन अथवा चरपरी वस्तुएं न खाँय ; और ब्रह्मचर्य-पूर्वक भूमि पर शयन करें ।

सूत्र १६—यहाँ, यह कहा जाता है कि वर के लिये अर्घ्य आदि समर्पित किया जाय ।

सूत्र १८—पहला भोजन (विवाह के बाद) जो वह ग्रहण करे, वह ऐसा होना चाहिये जिससे अग्नि में आहुति दी जा सके और वह मंत्र पाठ कर के (जो सूत्र २१ में वर्णित है) खाया जाय ।

सूत्र १९—अथवा अगले दिन वह (वर) स्वयं ऐसा भोजन प्रस्तुत करे और वर एवं वधू दोनो उसे साथ बैठ कर ग्रहण करें ।

सूत्र २०—यह भोजन अग्नि, प्रजापति, विश्वे-देवा और अनुमति को [प्रथम] समर्पित हो ।

सूत्र २१—प्रथम उस भोज्य पदार्थ को (राँधनेवाले बरतन से) बाहर निकाले, और इसे पसार कर वर अपने हाथ से इसके एक भाग को स्पर्श करे, मंत्र के साथ "भोजन की ग्रन्थि से, मणि माणिक की भाँति" (मंत्र ब्रा० १, ३, ८ से १०) ।

(कं० ४ में, सूत्र १ से ४ तक रथ पर चढ़ कर जाने के मंत्र आदि हैं ; तत्पश्चात्) ।

सूत्र ५—जब वह (वर के घर) पहुँच जाँय तो वामदेव्य (गान हो) ।

सूत्र ६—जब (वधू) घर पर पहुँचे तो सच्चरित्र ब्राह्मण-स्त्रियाँ, जिनके पति और पुत्र जीवित हों, उसे (रथादि वाहन से) उतारें ; और फिर वृषभ की छाल (चमड़े) पर बैठावे ।

सूत्र ७—(वधू की) गोद में एक बालक बैठा दिया जाय ।

सूत्र ८—उस लड़के की बँधी अंजुलि में कमल की जड़ (?) रक्खी जाय ।

सूत्र ९—अथवा फल !

सूत्र १०—वधू उस बालक को [गोद में] ले ; और फिर अग्नि में ८ आहुतियाँ घृत की प्रदान करे । मंत्र—"यह स्थिरता है...." (मंत्र ब्रा० १, ३, १४) ।

सूत्र ११—जब वह आहुति आदि प्रदान कर चुके, तब अग्नि में एक समिधा डाले, फिर उठ कर गुरुजन को उनके गोत्रोच्चार के साथ यथायोग्य प्रणाम आदि करे ।

हिरण्यकेशि गृह्य सूत्र, प्रश्न १, प० ७, खंड २२ में—

सूत्र १—फिर वह वधू की विदा करें (उसके घर से, वाहन आदि में) अथवा वर उसे लिवा जाय ।

सूत्र २—विवाहाग्नि को एक बरतन में रख लिया जाय और वह नवविवाहित दम्पति के पीछे-पीछे ले जायी जाय ।

सूत्र ३—वह बराबर प्रज्वलित रहे ।

सूत्र ४—यदि वह बुझ जाय तो पुनः घर्षण द्वारा जाग्रत की जाय अथवा किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर से और ले आयी जाय ।

सूत्र ५—इसके आलावा, यदि (अग्नि) बुझ जाय, तो वधू अथवा वर को उपवास करना चाहिये ।

सूत्र ६—जब (वर-वधू) (वर के) घर पर पहुँचे, तो वर वधू से मंत्र-द्वारा कहे "(देहली) अपने दाहिने पैर से लाँघ जाओ, देहली पर (पैर रख कर) खड़ी न हो ।"

सूत्र ७—(अन्दर) घर में, पूर्व की ओर, वर अग्नि पधरा दे और फिर उस पर समिधा रक्खे ।

सूत्र ८—अग्नि के पश्चिम की ओर वर एक लाल-वृषभ की छाल (चर्म) बिछा दे, ऐसा कि वृषभ का सिर पूर्व की ओर और रोम ऊपर की ओर रहें।

सूत्र ९—उस (छाल) पर वर व वधू पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठें, इस प्रकार कि वधू वर के पीछे रहे....।

सूत्र १०—वहाँ वह तब तक मौन बैठे रहें जब तक आकाश में तारे निकल आयें।

(इसके बाद के सूत्र ध्रुव-दर्शन के सिलसिले में देखिये, पृष्ठ ११९[1])

आपस्तम्ब गृहय-सूत्र, प० २ खण्ड ५ में—

सूत्र १२—(जया होमकी) विधि वहाँ तक सम्पन्न करके, जहाँ वेदी के चारो ओर जल प्रक्षालन किया जाता है, और (मण्डप की) गाँठ (गूत) खोल कर (मंत्रों के साथ) वर वधू को (उसके पिता के घर से) लेकर प्रस्थान करे।

सूत्र १३—विवाह की अग्नि को एक पात्र में रख कर, वह वरवधू के पीछे-पीछे ले जायी जाय।

सूत्र १४—वह बराबर प्रज्वलित रक्खी जाय।

सूत्र १५—यदि वह बुझ जाय, तो (नये तौर से) घर्षण द्वारा प्रस्तुत की जाय।

सूत्र १६—अथवा किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर से ले आयी जाय।

सूत्र १७—अलावा, यदि (अग्नि) बुझ जाय तो उनमें से एक, वर अथवा वधू, उपवास करे।

सूत्र १८—अथवा उपवास न कर वर मंत्र (१, ५, १८) के साथ (अग्निमें) आहुति प्रदान करे।

(फिर रथ पर चढ़ने और जाने के मंत्र हैं)

१, पृष्ठ ११९ पर हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र, "प्रश्न १, प० २, खं० २२" के स्थान पर "प्रश्न १, प० ७, खं० २२" पढ़िये।

(प० २ खण्ड ६) सूत्र ८—(वर के घर पहुँच कर वहाँ) घर के मध्यभाग में एक लाल-वृषभ की छाल (चर्म) बिछा दी जाय, जिसका मुँह पूर्व की ओर और रोम ऊपर की ओर रहे। वर वधू को उसके दाहिने पैर से घर में प्रवेश कराते हुए वधू द्वारा मंत्र कहलवाये (मंत्र १, ८, २)।

सूत्र ९—और वधू देहली पर (पैर रख कर) खड़ी न हो।

सूत्र १०—घर के ईशान-कोण के भाग में अग्नि में समिधा-दान से लेकर आज्यभाग आहुति तक का कार्य सम्पन्न किया जाय और वर द्वारा आहुति प्रदान के समय वधू वर को स्पर्श करती हुई रहे। फिर वर जया होम एवं अन्य होमादि करे, वेदी के चारो ओर जल प्रक्षालन तक। फिर वह दोनों उस चर्म पर विराजें (मंत्र के साथ), वर उत्तर की ओर रहे।

सूत्र ११—वर फिर अगले (१, ९, २) मंत्र के साथ एक ऐसी गृहिणी के पुत्र को ले, जिसके केवल पुत्र ही पुत्र जन्मे हों और सभी जीवित हों, और उस पुत्र को वधू की गोद में बैठाल दे और अगले (१, ९, ३) मंत्र के साथ (बालक को) फल दे। फिर दोनों मंत्र पढ़ कर वर और वधू मौन भाव से बैठें, तब तक जबतक आकाश में तारे निकल आवें।

(इसके पश्चात के सूत्र ध्रुव-दर्शन प्रकरण में पृष्ठ १२० पर देखिये)

७

वैदिक देवता

वेद-भगवान ने विविधि देव-शक्तियों की प्रशंसा में स्तुति-गान किये हैं। प्रस्तुत पुस्तक का विषय 'विवाह' है, और इसके द्वितीय खण्ड में, जहाँ विवाह-पद्धति उल्लिखित है, तत्सम्बन्धी वेद-मंत्र और उनके अर्थ आदि उद्घृत किये गये हैं। इन वेद-मंत्रों में विविधि हवनादि द्वारा देव-शक्तियों से सुख-सौभाग्य एवं समृद्धि की प्रार्थना और याचना की गयी है। विषय-वस्तु को भली भाँति समझने के लिये अच्छा होगा कि प्रथमतः हम वैदिक देवताओं के विषय में यतकिंचित ज्ञान अर्जन कर लें।

एकोऽहं बहु स्याम्—अथर्व-वेद ६।१०।२८ और ऋग्वेद १।१६४।३१ का वचन है :—

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

अर्थात्, जिसका वर्णन ज्ञानी इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, वायु आदि अनेक नामों से करते हैं, वह एक ही सत् परमात्मा है। उसी के लिये अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि नाम प्रयुक्त हुए हैं।

ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त (१०।६०) में हम जिस विराट-पुरुष का दर्शन करते हैं, उसी महाशक्ति-स्रोत सत् ने जब कामना की, कि एकोऽहं बहु स्याम्, अर्थात मैं एक हूँ अब अनेक हो जाऊँ; तो

वह स्वेच्छा से बहु-रूप में प्रकट हुआ। विश्व का अधिष्ठाता और नियन्ता तो वह सर्वदा ही था; उसके बहु-रूपों के एक-एक रूप में अपार शक्ति-स्रोत निहित हो गये। स्वयं अपनी इच्छा से एक-एक रूप, विश्व की एक-एक महाशक्ति का नियंत्रण-कारी हो गया। सौर-मण्डल, अन्तरिक्ष, गगन और पृथिवी में आर्य-ऋषियों ने इन बहु-रूपों द्वारा संचालित और नियमित भौतिक आश्चर्यों के संचालन-कर्त्ता-रूप-विशेष में उसी सत् के प्रत्यक्ष दर्शन किये; और फिर वेदादिक ने उन महाशक्तियों की, उन बहु-रूपों में प्रत्येक की, पृथक-पृथक प्रशंसा और स्तुति की। उन्हीं बहु-रूपों में से प्रत्येक, पृथक पृथक ऋषि-महर्षियों की अनुभूति, भक्ति एवं अर्चना के इष्ट हुये। इस प्रकार आर्य-ऋषियों में वैदिक देवताओं की मान्यता हुई।

वैदिक देवता—यजुर्वेद (१४, ४०) वचन है :—"ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे-देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता"॥

इस यजुर्वेदीय सूत्र के अनुसार वेदोक्त देवता इस प्रकार हैं :—

(१) अग्नि—ताप-शक्ति एवं क्रिया-शक्ति का स्वामी;

(२) वात—अन्तरिक्ष का स्वामी, भ्रमण-शील और प्राण-रक्षक देवता;

(३) सूर्य—द्युलोक में सदा प्रकाशित, प्राण-शक्ति का दाता और स्वामी;

(४) चन्द्रमा—द्युलोक में सदा चमकने वाला, पृथ्वी का उपग्रह, जिसका 'अमृत' (सोम) प्राणी-मात्र के जीवन को प्रभावित करता रहता है;

(५) <u>वसु</u>– यह आठ[1] हैं :–(क) अग्नि, (ख) पृथिवी, (ग) वायु, (घ) अन्तरिक्ष, (ङ) आदित्य, (च) द्यौः (Space), (छ) चन्द्रमा और (ज) नक्षत्र ;

(६) <u>रुद्र</u>– यह ग्यारह हैं ; एक मत के अनुसार यह शारीरिक "पिण्ड" में (क) आत्मा, (ख) प्राण-वायु, (ग) अपान-वायु, (घ) समान-वायु, (ङ) उदान-वायु, (च) ब्यान-वायु, (छ) नाग, (ज) कूर्म, (झ) कृकल, (ञ) देवदत्त और (ट) धनंजय वायु के स्वामी हैं ;

(७) <u>आदित्य</u>—यह बारह हैं, वर्ष के बारह महीनों में प्रत्येक का एक-एक स्वामी है। इनके नाम हैं—(क) सूर्य अथवा सविता, (ख) भग, (ग) समुद्र, (घ) पूषा, (ङ) विश्वानर, (च) विष्णु, (छ) वरुण, (ज) केशी, (झ) वृषाकपि, (ञ) वर्षिता, (ट) यम और (ठ) अजैकपाद् ;

(८) <u>मरुत</u>–यह ४८ हैं ; अण्ड में विद्यमान विविधि-प्रकार की शक्तियों के स्वामी ;

(९) <u>विश्वे-देवा</u>—कार्य-शक्ति के देवता ;

(१०) <u>बृहस्पति</u>—वेद-ज्ञान के स्वामी ; देवताओं के आचार्य ;

(११) <u>इन्द्र</u>—देवताओं के नायक, राजा ; एवं

(१२) <u>वरुण</u>—जल के स्वामी।

यहाँ देखा जाता है कि प्रथम (१) से (४), (७) व (८) की गणना अष्ट-वसुओं में आ गई है।

वेद में आकाश-मण्डल-वासी देवताओं की ही प्रधानता और गुणकीर्त्तन मिलता है। वेद में प्रधानतः तेतीस देवताओं का ही

१, शतपथ-ब्राह्मण १४, ५, ७, ४ द्रष्टव्य

१ अध्याय ७

उल्लेख अधिक मिलता है जिनका, ऐतरेय-ब्राह्मण में, इस प्रकार विभाग है :—८ वसु ; ११ रुद्र ; १२ आदित्य ; १ प्रजापति और १ वषट्कार = ३३।

सोमपा एवं अ-सोमपा देवता—वेद में उपरोक्त तेतीस देवताओं को ही "सोमपा", अर्थात् सोम-रस-पान-कारी, देवता कहा गया है। इनके अतिरिक्त वेद में अन्य देवताओं का भी उल्लेख है, जो 'सोमपा' नहीं कहलाते। ऐसे ग्यारह "असोमपा" देवता हैं, जिनके नाम हैं—(१) वर्हि, (२) इध्म, (३) ऊषा, (४) नक्ता, (५) त्वष्टा, (६) तनुनपात्, (७) इडा, (८) स्वाहाकृत, (९) नराशंस, (१०) वनस्पति एवं (११) स्विष्टकृत।

उपयाज-देवता—इनके अतिरिक्त तैत्तिरीय में उपयाज-देवताओं का नामोल्लेख मिलता है ; यथा—समुद्र, अन्तरिक्ष, सविता, अहोरात्र, मित्रावरुण, सोम, यज्ञ, छन्दः, द्यावा-पृथिव्यौ, दिव्य, नभः और वैश्वानर। इन सब देवताओं की संख्या ६४ या ६५ है। इनमें से कई उक्त तेतीस देवताओं में आ चुके हैं। इनके अतिरिक्त भी वेद में "पारिभाषिक" देवताओं का उल्लेख देखने में आता है ; किन्तु इनकी गणना करना सहज-साध्य नहीं। महर्षि यास्क ने इन स्वर्गीय, आन्तरीक्ष और मर्त्य, त्रिविधि, पारिभाषिक देवताओं का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

आन्तरीक्ष—यह देवता २३ हैं ; यथा (१) द्यौः, (२) वरुण, (३) मित्र, (४) सूर्य, (५) सवितुः, (६) पूषा, (७) विष्णु, (८) विवस्वत, (९) आदित्यगण, (१०) दक्ष, (११) ऊषा, (१२) दोनों अश्विनींकुमार, (१३) इन्द्र, (१४) त्रित आप्त, (१५) अपानपात, (१६) मातरिश्वा, (१७) अहिर्बुध्न, (१८) अजएकपाद, (१९) रुद्र, रुद्रगण, (२०) मरुद्गण, (२१) वायु-वात, (२२) पर्जन्य एवं (२३) आपः।

मर्त्य—यह पाँच हैं, यथा—(१) नदी और जल, (२) पृथिवी, (३) अग्नि, (४) वृहस्पति और (५) सोम।

अन्य देवता—एतत्-भिन्न देवताओं में विश्वकर्मा, प्रजापति, मन्यु, श्रद्धा, अदिति, दिति, विश्वेदेवा, सरस्वती, सुनृता, इला, ऋभुगण, त्वष्टा, इन्द्राणा, पृश्नि, यम, आर्य्यमा (अर्यमा), वसुगण, उशना, वैश्वानर, आप्रीदेवता, रोदसी, ऋभुक्षा, राका, सिनीवाली, गुंगु, रात्रि, धिषणा आदि देवीदेवताओं के नाम ऋग्वेद में मिलते हैं। ऋग्वेद में कहीं-कहीं द्यावा-पृथिवी, मित्रावरुण आदि देव-द्वय की शक्तिपूजा एकत्र देखी जाती है।

प्रधान तीन देवता—इस प्रकार हम वेद-ग्रन्थों में विविधि प्रकार के नाम देवता-संज्ञा में पाते हैं; फिर भी, मुख्यतः अग्नि, वायु, इन्द्र और सूर्य के ही अधिक स्तोत्र हैं। निरुक्तकार ने "तिस्रो देवता इति" कह कर अग्नि, वायु और सूर्य को ही प्रधान माना है। द्रष्टव्य है कि आधुनिक भौतिक-विज्ञान ने भी इन्हीं तीनों महाशक्तियों को समस्त प्राणि-जगत का आधार मान लिया है।

सब का परस्पर सूत्र-सम्बन्ध और वर्गीकरण करते हुए देखा जा सकता है कि पृथ्वी में अग्नि मुख्य देवता, और नदी, जल, वृहस्पति और सोम आदि अ-प्रधान देवता हैं। अश्वादि चेतन देवता और इध्मादि अचेतन देवता यहाँ पारिभाषिक माने गये हैं। उसी प्रकार अन्तरिक्ष में वायु अथवा इन्द्र प्रधान, पर्जन्यादि अप्रधान एवं श्येनादि चेतन और वागादि अचेतन देवता अन्तरीक्ष के पारिभाषिक देवता माने गये हैं। उसी प्रकार द्यु-लोक में सूर्य प्रधान एवं अश्विनी-कुमार प्रभृति अप्रधान देवता माने गये हैं। द्यु-लोक में पारिभाषिक देवता की बात नहीं देखी जाती।

वर्गीकरण—इस प्रकार देखा जाता है कि देवता-विशेष एकाधिक बार एकाधिक वर्गीकरण में आ जाते हैं। ऐसा मालूम

होता है कि वस्तुतः यह ऋषियों के तत्सामयिक मनोभाव पर अधिक निर्भर रहा है। जो भी हो, विवाह-यज्ञ-सम्बन्धी प्रधान-प्रधान देवताओं के विषय में यहाँ पृथक-पृथक टिप्पणी लिखना असंगत न होगा।

इन्द्र—यह ऐश्वर्य के देवता हैं। ऋग्वेद में यह योद्धा-रूप में प्रशंसित हैं। संसार को कँपा देने वाले वृत्र-असुर को भीषण-युद्ध में हराकर इन्द्र ने मार डाला और सात नदियों को बहाया। काँपती हुई पृथ्वी इन्द्र के द्वारा ही स्थिर हुयी। पंखो से अन्तरिक्ष में उड़नेवाले पहाड़ों के पंख इन्द्र ने ही काटे और पृथ्वी को जीवधारियों के रहने योग्य बनाया। इन्द्र अन्तरिक्ष और द्यौः को धारण करते हैं। विश्व के समस्त ऐश्वर्य और ऋद्धि-सिद्ध के स्वामी इन्द्र है। यह मेघ और वृष्टि के नियन्ता हैं। इन्द्र का दूसरा नाम देवराज इसलिये है कि यह देवताओं में श्रेष्ठ, उनके राजा और शासक हैं। यूरोपीय विद्वान इन्द्र को वैदिक आर्यों का राष्ट्रीय-देव और प्रधान-योद्धा कहते हैं। विवाह के अभ्यातन एवं अन्य होम में इन्द्र के हेतु विशेष आहुतियाँ दी जाती हैं।

शची—यह देवराज इन्द्र की प्रिया, भार्या, हैं। यह महान-पतिव्रता हैं और सुख-सौभाग्य की देवी हैं। विवाहार्थी वधू, विवाह से ठीक पहले, अपने होने-जा-रहे विवाह द्वारा सुख, सौभाग्य और समृद्धि की प्राप्ति के हेतु शची-देवी की पूजा अनुष्ठित करती है; और यही प्रार्थना-अनुष्ठित कर वह सीधी विवाह-वेदी पर चली जाती है।

वरुण—वरुण परम-शान्ति-प्रिय वैदिक देवता हैं; और वैदिक युग के प्रारम्भिक काल से ही इनकी बहुत बड़ी मर्यादा है। यह स्थूल व सूक्ष्म जल के देवता हैं; सागरों पर इनका नियंत्रण है। चूँकि पृथ्वी का चार-बटे-पाँच भाग जल है; इस लिये वरुण-देव का साम्राज्य और प्रभाव प्रत्यक्षतः अधिक है। इस प्रकार वरुण विश्व के नियन्ता और शासक हैं। यह प्राकृतिक और नैतिक नियमों

के संरक्षक हैं। विवाह में अभ्यातनादि-होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की जातीं हैं।

अग्नि——ऋग्वेद, का प्रारम्भ अग्नि की स्तुति से ही होता है। अग्नि यज्ञ के पुरोहित और देवता हैं। यज्ञाग्नि में होमी हुई आहुतियों को धारण कर, उनमें से सब देवताओं का भाग यथास्थान पहुँचाना, अग्नि-देव का ही कार्य है। संसार की समस्त कन्याओं के तृतीय-पति अग्नि-देव ही माने गये हैं और इन्हीं की प्रार्थना-प्रदक्षिणा (भाँवरि) द्वारा मनुष्य वधू-कन्या को अपनी पत्नी-रूप में पाता है। अग्नि से मतलब पृथ्वी की भौतिक अग्नि ही है, क्योंकि द्यु लोक के सूर्य-रूपी अग्नि और अन्तरिक्ष के विद्युत्‌रूप-अग्नि, वेदों में प्रथक रूप और नाम से पूज्य माने गये हैं। सभी प्रकार के यज्ञ व हवन कार्य में इनके स्वयं-के हेतु एकाधिक विशेष आहुतियाँ प्रदान की जातीं हैं एवं सभी अन्य देवताओं के हेतु निवेदित आहुतियाँ भी इन्हें ही प्रदान की जातीं हैं।

सविता——सौर-मण्डल की अग्नि, सूर्य, का ही नाम सविता है। आदित्य, सूर्य, भग, मरीचि आदि पर्यायवाची शब्द हैं। सूर्यमण्डल से उत्पन्न होकर ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थ में प्रविष्ट होने वाले, प्राण-रूप अग्नि का नाम ही "ऋताग्नि" है, जिसके परिवर्त्तन से 'ऋतुयें' होतीं हैं। विवाह-मंत्रों में आने वाले "भग" देवता बारह आदित्यों में से एक हैं, जो सौभाग्य, सुख, समृद्धि, यश और अनन्त-सौन्दर्य के स्वामी और दाता हैं। वैवाहिक-सुख का प्रदान इन्हीं के आधीन माना जाता है। विवाह के राष्ट्रभृत आदि होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ दी जातीं हैं।

प्रजापति——"प्रजापतिः प्रजानां पाता व पालयिता" (निरुक्त); अर्थात् प्रजा के स्वामी और पालनकर्त्ता ही प्रजापति हैं। प्रजापति-देवता को वेद में परमेश्वर कहा है। विवाह-स्थल में वेदों में अच्छी

सन्तति देने वाले और उनका पालन कर उन्हें दीर्घजीवी बनाने वाले देवता प्रजापति ही हैं। ऐतरेय-ब्राह्मण में लिखा है—"प्रजापति र्वा इदमेक एकाग्र आस, सोऽकामयत प्रजायेय भूयानत्स्यामिती" (२।५।७)। सभी प्रकार के यज्ञ व होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की जातीं हैं।

अन्तरिक्ष——आकाश, शून्य, अन्तरिक्ष, सागर और समुद्र, यह सब पर्यायवाची शब्द एक ही अर्थ में व्यवहृत हुए हैं। विश्व-भर के रिक्त-स्थान (space) के यह स्वामी हैं। विवाह-होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की जातीं हैं।

सोम——यह चन्द्रमा का सारभूत पदार्थ कर्त्तृत्व-शक्ति से ओतप्रोत है! अकेले सूर्य की गर्मी कम या अधिक होने से भिन्न-भिन्न ऋतुवों की सृष्टि नहीं हो सकती, जबतक कि उसमें किसी दूसरी शक्ति का योग न हो। वह दूसरी शक्ति है चन्द्रमा की शक्ति—सोम! चन्द्रमा के सोम की न्यूनाधिकता से सूर्याग्नि द्वारा ऋतुयें बनती हैं; पृथ्वी में फल, पुष्प, औषधि, वनस्पति व धान्य इसी के कारण उत्पन्न होते हैं और उन सबके यह स्वामी हैं। विवाह के राष्ट्रभृत एवं अन्य होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ दी जाती हैं। माना गया है कि यह कन्याओं के प्रथम पति-रूप हैं[1]।

समुद्र——स्रोत में बहने वाले समस्त जलों का यह स्वामी माना गया है। विवाह में अभ्यातनादि-होम में इसके हेतु विशेष आहुति प्रदान की जाती है।

वायु——सब प्राणियों को वायु के द्वारा ही बल मिलता है। सूर्य द्वारा चालित यह वायु स्वयं सदैव चलता रह-कर सब जगत को पवित्र करता रहता है। वायु वृष्टिका, बल का, और जगत के आप्यायन, पोषण का कारण है। यह अन्तरिक्ष-लोक का स्वामी

१, द्रष्टव्य, पृष्ठ १३६ पर "कन्या के देवता-पति"।

माना गया है। विवाह के अभ्यातन-होम में इनके हेतु विशेष आहुति प्रदान की जाती है।

मरुद्गण——यह अन्तरिक्षस्थ वायु, विद्युत आदि के देवता हैं; जिन की संख्या ४६ है। विवाह में अभ्यातनादि-होम में इनके समूह के हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की जातीं हैं।

मित्र——यह तेज और प्रकाश के देवता हैं। अभ्यातनादि होम में इनके हेतु विशेष आहुति प्रदान की जाती है।

वसु——इनकी संख्या आठ है जिनका नाम प्रथम (पृष्ठ१२८) लिखा जा चुका है। अभ्यातनादि-होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की जातीं हैं।

द्यौ :——द्युलोक सूर्य-मण्डल का नाम है। पृथिवी को माता और द्यौः को प्राणीमात्र का पिता माना गया है।

यम——धर्मराज-रूप में धर्म के प्रवर्त्तक एवं रक्षक, और यमराज-रूप में मृत्यु के अधिपति हो कर, मृतात्माओं को दण्ड-पारितोषिक, स्वर्ग-नरक आदि का विधान और अधिकार इन्ही यम-देवता का है। विवाह के अभ्यातन आदि होम में इनके हेतु विशेष आहुति प्रदान की जाती है।

अर्यमा——यह नियमों के विधायक और रक्षक हैं। पितृश्वरों पर भी इनका नियंत्रण है। इस प्रकार सृष्टि-मात्र को नियम-धर्म में आवद्ध रख कर यह जगत की रक्षा करते हैं। विवाह के प्रधान-होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ दी जातीं हैं। यही देवता विवाह के समय कन्या का सम्बन्ध उसके पितृ-कुल से विच्छेद कर, पतिकुल से जोड़ देते हैं, ऐसी मान्यता है।

पूषा——सबका जानने वाला अथवा सर्वधन-युक्त, क्योंकि यह रेवती नक्षत्र का देवता है जो नक्षत्र-विभाग में सबसे अन्तिम नक्षत्र

है। ये जगत को पोषण करने वाले देवता विवाह-होम में विशेष-आहुतियों के अधिकारी हैं।

तुष्टा——यह दृष्ट पदार्थों के कुशल-निर्माता एवं शिल्पकला के स्वामी हैं। विवाह में अभ्यातनादि-होम में इनके हेतु विशेष आहुति प्रदान की जाती है।

ताक्ष्र्य——गरुड़! भगवान विष्णु के वाहन और अतुल-वेग एवं शक्ति के स्वामी हैं।

बृहस्पति——देवताओं के गुरुदेव, प्रधान-आचार्य बृहस्पति, ज्ञान के भण्डार और वेदों के स्वामी माने गये हैं। विवाह में अभ्यातनादि-होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की जातीं हैं।

विष्णु——यह सब जगत के आलम्बन अव्यय-पुरुष हैं। बुद्धि, इन्द्रिय एवं पंचभूतों के आधार यही हैं। विद्या और अविद्या, भगवान की यह दोनों शक्तियाँ हैं। यह तीनों लोकों को धारण करते हैं। सभी शुभ-कार्यों में इनकी विशेष पूजा होती है और यज्ञादि हवन-कार्य में यह सर्वदा अग्रगण्य रहते हैं। सप्तपदी इन्हीं की अर्चना-स्मरण के साथ अनुष्ठित की जाती है और विवाह के सभी होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। कन्यादान-स्वीकार-कर्त्ता वर, इन्हीं की कृपा में आश्रित, "विष्णु-रूप" पूज्य माना जाता है।

ऊषा——ऊषा सुन्दरियों में श्रेष्ठ है। ऋग्वेद में ऊषा की स्तुति में बीस सुन्दर सूक्त कहे गये है। ऊषा सूर्य की प्रेयसी बताई गई है और यह सदा-युवती है। वह ऊषाकाल (प्रातः से कुछ पहले) की देवी है। वह प्रकाश के द्वार खोलती है।

रुद्र——एकादश रुद्र! यह क्रोधी और उग्र स्वभाव के हैं। यजुर्वेद में इनकी महिमा और भी बढ़ गई है; उसका सम्पूर्ण सोलहवाँ काण्ड रुद्र की स्तुति से ओतप्रोत है।

अश्विनौ—दोनों अश्विनीकुमार ! यह देवता आयुर्वेद के अधिष्ठाता हैं और देखने में सबसे अधिक सुन्दर हैं ।

विश्वेदेवा—शान्त, बुद्धिमान, धैर्यवान और विद्वान देव-समूह विश्वे-देवा नाम से पूजित है । सभी शुभ एवं हवनादि कार्य में इनकी पूजा होती है । विवाह-होम में इनके हेतु विशेष आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं ।

वषट्कार—ऐतरेय-ब्राह्मण (३।१।८) में उल्लेख है कि जिस देवता के लिये हविः गृहीत होता है, यजमान वषट्-ध्वनि करके साक्षात् सम्बन्ध में उन्हें परितुष्ट करते हैं तथा प्रत्यक्ष में देवता के हेतु यजन करते हैं, वही उच्चध्वनि वषट्कार देवता है । शतपथ-ब्राह्मण (४।२।१२६) में लिखा है "प्राणौ वै वषटकारः" । शतपथ-ब्राह्मण में वषट्कार की जगह "इन्द्र" शब्द देखने में आता है : इस प्रकार शतपथ-ब्राह्मण में तेतीस देवताओं में इन्द्र की भी गणना की गई है, यथा "स्तनयित्नुरेव इन्द्रः" अर्थात स्तनयित्नु (मेघ-चालक वायु विशेष) ही इन्द्र है ।

कन्या के देवता-पति—अथर्व-वेद का० १४, अध्याय २, सूक्त २ का तृतीय एवं चतुर्थ मंत्र है—

"सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥
सोमो ददद् गन्धर्वाय गंधर्वो ददद्ग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्य मथो इमाम् ॥

सीधी भाषा में इसका शब्दार्थ होता है, तू पहले सोम की पत्नी हुई, फिर गन्धर्व की, और अग्नि तेरा तृतीय-पति हुआ । मैं मनुज तेरा चतुर्थ-पति हूँ । सोम ने तुझे गन्धर्व को दिया, गन्धर्व ने अग्नि को और अग्नि द्वारा तू मेरे लिये दी गई है ; [यह] तुझे धन और पुत्र से सम्पन्न करें ।

वैसे सोम, गन्धर्व एवं अग्नि, इन अमानुषी-देवताओं से विवाह दोषयुक्त नहीं कहा जा सकता ; और न ऐसे विवाह के कारण कन्या अ-कुमारी ही होती है । परन्तु वेद में कवित्व-शक्ति का चरम-विकास हुआ है और बहुत से तथ्य उक्तियों और उपमा द्वारा समझाये गये हैं । वेद-मंत्रों का गूढ़ार्थ समझना सहज-साध्य नहीं है । ज्ञात होता है कि उपरोक्त मंत्रों का भी गूढ़ार्थ है ; और वह कन्या की विवाह-योग्य वयस से सम्बन्धित है । सोम चन्द्रमा का प्रधान तत्व है और चन्द्रमा मनुष्य-देह में मन का प्रतीक है । प्रथम, बाल्यावस्था की समाप्ति और किशोरावस्था की देहली पर, मन में संसार-विषयक-अनुभूतियाँ जाग्रत होतीं हैं, इसी Phenomenon को कन्या का प्रथम, सोम से, विवाह कहा गया है । किशोरावस्था के साथ कन्या के अङ्ग-उपांग स्पष्ट होते हैं, यह गंधर्व-कार्य माना गया ; और मंत्र में इस क्रिया को गन्धर्वों से कन्या का विवाह बताया गया है । किशोरावस्था और यौवन के सन्धिस्थल में "काम" प्रकट होता है, जिसकी अग्नि से उपमा दी गयी है । इसे ही मंत्र की अनुप्रासिक-भाषा में अग्नि से तृतीय-विवाह कहा गया है । तत्पश्चात् ही कन्या का पुरुष-वर से विवाह करणीय बताया गया है । दूसरे शब्दों में, इन मंत्रों में, कन्या का विवाह-वयः किशोरावस्था की समाप्ति पर, यौवन के समागम-काल में इङ्गित है । एक और तत्व भी इस मंत्र में निहित हो सकता है । पति का अर्थ रक्षक भी है । इस मंत्र में कुआँरी कन्या के, क्रमशः वयोप्राप्ति के साथ, विविधि देव-रक्षक बताये गये हैं और मनुष्यों को चेतावनी दी गयी है कि कुमारी-कन्या को देवताओं-की-रक्षा-में आश्रित, देवी-रूप, मानें और उस ओर किसी-प्रकार के कुविचार न लावें, वरना ऐसे कुविचारियों को कन्या के रक्षक-देवता नष्ट कर देंगे ।

देवताओं के हेतु आहुति—इस अध्याय के प्रारम्भ में देखा जा चुका है कि उसी एक परम सत् के बहु-रूपों में से एक-एक

रूप प्रकृति की बहु-प्रकार की शक्तियों में एक-एक का स्वामी और अधिकारी "देवता" हो गया। बोलचाल की सीधी भाषा में कहा जाता है कि जो कुछ देने-वाला हो वह 'देवता' और लेने-वाला हो वह 'लेवता' है। निरुक्त-वचन है "दानात् देवनात् देवः"।

श्रीमद् भागवत-गीता में भगवान के निज-वचन हैं :—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥

अध्याय ३, श्लो० ११-१२॥

अर्थात्, [यज्ञ की प्रक्रिया से] देवताओं को तृप्त करने से देवता [यज्ञकर्त्ता-मनुष्य को] इष्ट-भोगादि देकर तृप्त करते हैं। इस प्रकार [मनुष्य-द्वारा-देवता और देवता-द्वारा-मनुष्य] परस्पर एक-दूसरे को तृप्त-करने से श्रेयः और परम-कल्याण की प्राप्ति होती है। यज्ञ-द्वारा तृप्त-किये-गये देवता मनुष्यों के लिये प्रिय भोगों का दान करते हैं; ऐसे दैव-प्रदत्त भोगों को जो मनुष्य देवताओं को अर्पण किये बिना भोगता है वह निश्चय चोर है।

पवित्र विवाह-संस्कार के अवसर पर वर-वधू अपना सम्मिलित नव-दाम्पत्य-जीवन प्रारम्भ करने के हेतु उद्यत हैं। अपने माता-पिता से विवाह में वह "दायजे" अथवा अन्य-रूप में वह सब वस्तुएँ प्राप्त करते हैं जो उनकी घर-गृहस्थी स्वतंत्र-रूप से स्थापित करने में सहायक होंगी। उसी-प्रकार यज्ञ-यागादि के द्वारा वर-वधू देवताओं से वह आशीर्वाद और शक्तियाँ प्राप्त करते हैं, जो भौतिक-संसार में सुख-समृद्धि-मय सफल जीवन-यापन के लिये परमावश्यक हैं। वैदिक-विवाह-पद्धति में यही तत्व निहित हैं; और इन्हीं शक्तियों एवं आशीर्वाद की प्राप्ति-हेतु, क्रमशः उनके अधिकारी देवताओं को, विशेष आहुतियों द्वारा तृप्त किया जाता है।

द्वितीय खण्ड

[रीति-भाँति]

→ कन्या-विवाह ←

"अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान्विवाहे प्रतीयात् ॥"

[आश्वलायन गृ० सू०, अध्याय १, खं० ७, सूत्र १]

[अर्थ—विशेष-रूप से कहा जाता है, कि विवाह में अपने अंचल (जनपद) में व अपने ग्राम में प्रचलित रीति-भाँति का पालन करना चाहिये।]

★

"And may her bridegroom bring her to a house
Where all's accustomed, ceremonius ;
For arrogance and hatred are the wares
Peddled in the thoroughfares
How but in custom and in ceremony
Are innocence and beauty born ?
Ceremony's a name for the rich horn,
And custom for the spreading laurel tree."

—From *"Prayer For My Daughter"*
by *W. B. Yeats.*

१

आवश्यक-वस्तु संग्रह

गृहदेवियाँ घरकी कन्या के विवाह-हेतु वस्तु-संग्रह करना बरसों पहले आरम्भ कर देतीं हैं : और तभी साधारण गृहस्थ, कन्या-विवाह के समय अपने को बहुत हलका अनुभव करता है। यहाँ उन वस्तुओं की सूची प्रस्तुत की जाती है, जो कन्या-विवाह के लिये आवश्यक होतीं हैं। इस सूची में वस्तुओं का परिमाण इसलिये नहीं लिखा जा रहा कि यह बारात-घरात की आशान्वित संख्या और दिनों पर निर्भर करता है। यह भली भाँति देखा जा सकता है कि दहेज व भोजन को छोड़ कर, शुद्ध-संस्कार अनुष्ठान के लिये आवश्यक, सामिग्री पचीस-पचास रुपये से अधिक की नहीं है।

मंडप का सामान——प्रत्येक विवाह के हेतु, मँडवार दो, एक बड़ी घर के लिये और एक छोटी डेरों के लिये, आम अथवा छेंकुर की चाहिये। घर की मँडवार यज्ञस्तम्भ होती है, जिसमें दीपक रखने के लिये "दीवट" लगा दी जाती है। इनके अतिरिक्त बाँस (जिनकी संख्या ११ अथवा १६ होती है); मूँज के पूरा, कड़ब, ज्वार अथवा बाजरे की, अथवा धान के पूरा (आच्छादन के लिये); दाब या कुश, मूँज की डोरी (जिबरिया) एवं पीतल की छोटी घंटी व लाल-टूल की धजीर आवश्यक है। साथ ही, मण्डप गाढ़ने के लिये खन्ता, खुरपी इत्यादि रख लेनी चाहिये।

पूजा-सामिग्री—रोली ; कलाया (मौली) ; सुपाड़ा (पुंगीफल) ; धूप ; सूखा नारियल (गड़गड़ा) ; शहद ; तिल ; यव ; धान ; धान की खीलें ; मुनक्का (द्राक्षा) ; सूखे आँवले ; बताशे ; कुश ; बिना चमड़े का सूप ; पान ; दूब ; फूल ; आम्रपत्र ; दही ; घृत आदि ; बाँस की "पलरिया" ; हवन के लिये आम, छेंकुर अथवा ढाक की सूखी लकड़ी (समिधा) ; पीली मिट्टी (वेदी बनाने को) ; नये कुशासन व अन्य आसन और दो काठ के पट्टे आवश्यक हैं। थोड़ी लाल-'टूल' व सफेद मलमल भी आवश्यक है।

दहेज-सामग्री—(१) बरतन—पचसिहा-विवाह में एक कलसा ; एक झाड़ी (अथवा गंगासागर) ; दो लोटा ; एक गिलास ; सात भाँवरि के कटोरे (इनकी जगह आजकल एक तीन खन का और एक चार खन का टिफ़िन-कैरियर भी दे दिया जाता है) ; एक बड़ा बरतन जैसे डेग, हंडा आदि ; एक परात और एक थार (प्रायः काँसे का) दिया जाता है। सैकड़ा और उससे ऊपर के विवाहों में उपरोक्त बरतनों के अतिरिक्त एक कलसा ; एक लोटा और एक थार और बढ़ जाता है। इसके अलावा गौरिहत के लिये एक छोटी डेग अथवा कसेंड़ी ; और काका मामा के लिये दो पीतल की बालटीं और आवश्यक हैं।

(२) आभूषण—इनकी संख्या और परिमाण आदि अपनी इच्छा और सामर्थ्य के अनुसार है। यह अपनी कन्या के पहनने के हेतु हैं। सोने का पान जनेऊ, जिसके स्थान पर आजकल तद्रूपी अंगूठी भी दी जाने लगी है, कन्यादान के हेतु आवश्यक है। चार चाँदी के बिछुआ भी आवश्यक हैं। काँच की चूड़ी भी चाहिये।

(३) वस्त्र—पचसिहा-विवाह में नौ धोती-कुड़तीं और एक समधिन के लिये अच्छी साड़ी-कुड़ती, इस प्रकार दस "जोड़े" दिये

जाते है। सैकड़ा व उससे ऊपर के विवाहों में इसके अतिरिक्त दस और धोती-कुड़ती के जोड़े दिये जाते हैं, अर्थात् सब मिला कर बीस "जोड़े"। कन्या के लिये घाट-लँहगा दिया जाता है जिसे पहना-कर उसकी "विदा" होती है। एक "जोड़ा" या साड़ी आँचर-वाली के लिये व एक "जोड़ा" या साड़ी गौरिहत पर "छिरकने" के लिये आवश्यक है।

(४) दहेज के साथ—बक्स (ट्रन्क) दो ; सुहाग-पिटारी के स्थान पर एक सन्दूकची अथवा अटेची ; आभूषण-पेटिका आदि। मय चाभी-झुम्पे के एक बिस्तरबन्द (Hold-all) में एक दरी, एक या दो चादर, एक या दो तकिया मय गिलाफ़ के, एक गद्दा और एक लिहाफ़ दिया जाता है। इनमें से एक बक्स में, पचसिहा-विवाह में, दस धोती-कुड़ती-पेटीकोट के "जोड़े" ; व दो पिछौरा ; तौलिया ; रूमाल आदि रक्खे जाते हैं। सैकड़ा व उससे ऊपर के विवाहों में दस के स्थान पर बीस धोती-कुड़ती-पेटीकोट के "जोड़े" (Set) रक्खे जाते हैं। दूसरे बक्स में साबुन, सिन्दूर, नख-लाली, हेज़लिन, क्रीम, पाउडर, पफ, रूज़, कंघा, शीशा, चुटीला, प्याली आदि श्रृङ्गार-वस्तुएँ ; पोस्ट-कार्ड, अन्तर-देशीय पत्र (Inland letter), फ़ाउन्टेन-पेन व उसकी स्याही, Writing-pad आदि विविधि भाँति की दैनिक उपयोग की सामिग्री एवं कुछ खेल-खिलौने रख दिये जाते हैं। अटेची अथवा सन्दूकची में मेवा आदि और नगद रुपये व रेज़गी, इच्छा और श्रद्धा के अनुसार, जिनमें पहेने की गाँठ का रुपया भी अलग से रक्खा होता है, रख दिये जाते हैं।

खाद्य-सामिग्री एवं अन्य आवश्यक वस्तुएँ—जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इनका परिमाण बारात-घरात की आशान्वित संख्या पर निर्भर करता है। खाद्य-वस्तुओं में चावल ; चीनी ; गुड़ ; घृत ; मैदा ; सूजी (गेहूँ व चना की) ; गेहूँ ; चना

की दाल व साबित चना; बेसन; उड़द साबित; मूँग व मूँग की दाल; तेल (तिल व सरसों) और, आजकल, चाय आवश्यक हैं। दूध; दही; मावा (खोआ); छेना आदि का ऐसा प्रबन्ध कर लिया जाता है, जो समय पर सब वस्तु ठीक-ठीक मिल जाय। पत्तल; दौना; सकोरा; चटनी की प्याली; पुरुवा आदि "कंचन-पात्र" (मिट्टी के बरतन) का प्रबन्ध किया जाता है। पौनछक भेजने के लिये पला; डला; खला अथवा मिट्टी के कूँड़े; छोटी-बड़ी डलियाँ, छबरियाँ आदि; व घड़े, मटके, मटकीं व छोटी-बड़ी हाड़ियाँ संग्रहीत की जातीं हैं। ईंधन के लिये लकड़ी, कोयला, कंडा आदि; किरासिन तेल; दियासलाई; कोरी रुई आदि की आवश्यकता होती है; और जनमासे के लिये रौशनी, पानी व बिछावन (यदि सम्भव हो सके तो) आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। आलू, रतालू, अरवी, शकरकन्द व हरे-साग आदि का प्रबन्ध पहले से ही कर लेना पड़ता है जिससे समय पर सब वस्तुएँ ताज़ीं और अच्छीं मिल जाँय। मसालों में हलदी, लाल-मिर्च, काली-मिर्च, धनियाँ, जीरा, बड़ी-इलायची, सोंठि व सोंठि के बरक (चटनी के लिये), छोटी-इलाइची, दालचीनी, मैथी, हींग, सौंफ़, अजवाइन, राई, अमचूर अथवा अन्य खटाई, लौंग, नमक (काला व सादा), गरम-मसाला आदि संग्रह करके छान-बीन और कूट-पीस कर रख लिये जाते हैं। कत्था, चूना, पापड़, बादाम, छुहारे, किशमिश, चिरौंजी, पिश्ता, केसर, बरास (भीमसेनी कपूर), खाने का सोडा व खाने के रँग, तम्बाकू, ज़रदा, कटी व चिकनी सुपाड़ी आदि का प्रबन्ध किया जाता है। साथ ही, इत्र, गुलाबजल, केवड़ा-जल आदि का प्रबन्ध किया जाता है। "माँगर" के लिये कंघा, रिबन, बेंदी आदि और संग्रह कर लेनी चाहिये।

अन्य वस्त्र—श्री-वर को "दरवाज़े" पर देने के लिये थान अथवा अन्य वस्त्र; साफा, सेला अथवा पाग; घड़ी, फ़ाउन्टेन-पेन,

अँगूठी, लर, आदि, जो भी देना हो, उसका प्रबन्ध किया जाता है। विवाह के समय वर के लिये खादी व कन्या के लिये खादी-बरेइया की आवश्यकता होती है, जो प्राय: ननसाल से आये हुए "डाले" में आते हैं। पहेने में श्रीवर को भेंट में देने लिये एक सुन्दर रेशमी वस्त्र एवं बारातियों के लिये 'पहिरावन' की व्यवस्था करनी होती है। शाखोच्चार के डुपट्टे, वधइया के डुपट्टे आदि के लिये मलमल के दो थान ले लेने चाहिये। भँवरीलों के साथ देने के हेतु सात रूमाल या छोटी तौलिया (Towels) आवश्यक होतीं हैं।

बारदाना—कड़ाह; कड़ाही; डेग; पतीला; परातें; हँसिया; चाकू; चका-बेलन; खाली-बोरीं; डलियाँ; झरना (झावे); करछुल; थाल; कौंचा; मुसद्द; खुरपा आदि भट्टी पर इस्तैमाल करने की वस्तुएँ संग्रह की जातीं हैं। उसी प्रकार प्रस्तुत किये हुये पक्वान्न रखने के लिये डला, डलियाँ परातें, कटे-कनस्तर, डेगें; और परोसने के लिये टहनियाँ, बालटीं, थाल, जग (Jug), गंगा-सागर, छोटे-बड़े चम्मच, डंका, कमण्डलु आदि आवश्यक हैं। छोटी-छोटी बाँस की डलियाँ भी मँगा लेनी चाहिये। सिल-लोढ़ी, हिमाम-दस्ता, चलनी (छाननी), चमचा, डोई, रई आदि भी वहीं रख लेनी चाहिये। भट्टी-घर, भण्डार (कच्चा-माल) और भण्डार (पक्वान्न), यह पास ही पास हों, और एक दूसरे से अलग हों, तो कार्य में सुविधा रहती है। तखत, चटाई, आदि यथा-स्थान लगा देनी चाहिये और दो चार कुर्सी-स्टूल आदि रख देने चाहिये। चाशनी छानने के लिये नया कपड़ा और बेली-पूड़ी डालने के लिये साफ़ पुरानी धोती, तथा गरम-कढ़ाई आदि उतारने के लिये फटे कपड़े के टुकड़े वहाँ रख देने चाहिये। गेरू, खड़िया, सूजा, सुतली, साबुन, तेल आदि वहाँ रहने चाहिये और भण्डारों की हिफ़ाज़त के लिये ताले आदि का प्रबन्ध कर देना चाहिये। दही छानने के लिये नया साफ़ कपड़ा रखना चाहिये।

रस्म की नगदी——पचसिहा-विवाह में "दरवाज़े" के पच्चीस रुपये थान आदि के साथ वैसे ही, और पहेने में 'थरा' के पचास गिना कर, दिये जाते हैं। सैकड़ा-विवाह में "दरवाज़े" पर पचास रुपये और पहेने पर एक-सौ रुपये, दोनों, गिना कर, भेंट किये जाते हैं। सौ-सवैया विवाह में "दरवाज़े" पर एक-सौ और पहेने पर एकसौ-पच्चीस रुपये थरा में रख कर गिनाये जाते हैं। सौ-दुसैया-विवाह में "दरवाज़े" पर एक-सौ और पहेने पर दो-सौ थरा में रख कर गिनाये जाते हैं। जिनके यहाँ "घोड़ा-चूड़ा" साथ होता है, वहाँ "दरवाज़े" के रुपयों के अतिरिक्त पचास रुपये घोड़ा-चूड़ा के हेतु दिये जाते हैं। कभी घोड़ा ओर सोने के कड़ा देने की प्रथा रही होगी, अब तो उसके लिये पचास रुपया देने की ही प्रथा है। दरवाज़े पर माला-मुँदरिया अथवा उसके एवज़ में पच्चीस रुपये वर को दिये जाते हैं।

२

ठिक-ठौर

"सोध भेजना"——विवाह-कार्य की प्रथम-सूचना "सोध," जिसे "पीली-चिट्ठी" भी कहा जाता है, से प्रारम्भ होती है। कन्या-पक्ष विवाह-हेतु अच्छा शुभ मुहूर्त्त "सुधवा" कर, उस "सुधवाने" की सूचना, वर-पक्ष को "सोध" द्वारा भेजता है। यह कार्य पंडितजी द्वारा गणेश-पूजन के साथ सम्पन्न कराया जाता है। गणेश-पूजन घर का कोई "बड़ा" करता है। प्रथम, वर-पक्ष के कुटुम्बियों के "श्री" सहित नामादि लिखकर, कन्यापक्ष के कुटुम्बियों के नाम और उनकी ओर से पालागन अभिवादन आदि लिखकर, विवाह-मुहूर्त्त की सूचना लिख दी जाती है। फिर उसपर हलदी अथवा रोली छिड़क कर, उसे कन्या के हाथ से लगा कर, सम्बन्धी-वर-पक्ष के यहाँ भेज दिया जाता है।

लग्न-पत्रिका——"सोध" के पश्चात, वर-पक्ष द्वारा विवाह की कोई अस्वीकृति न मिलने पर, विवाह-कार्य "छेड़" दिया जाता है। पंडित-जी से तेल, ताई, माँगर आदि के विषय में दिन-मुहूर्त्त आदि निश्चित करके, शुभ-मुहूर्त्त में विवाह की "लग्न-पत्रिका" लिखी जाती है। इस कार्य के लिये सब भाई-बन्धुओं को "बोला" देकर बुलाया जाता है। सब के समक्ष "लग्न-पत्रिका" लिखी जाकर, सब को सुनाई जाती है। उसमें वरपक्ष सम्बन्धी-जी के कुटुम्बियों के नामादि के साथ कन्यापक्ष-कुटुम्बियों के नाम लिख कर अभिवादन आदि के बाद

तेल, ताई, माँगर आदि के मुहूर्त्त व कन्यादान-पाणिग्रहण का मुहूर्त्त, "लग्न", लिखी-जाकर विबाह के प्रोग्राम के अनुसार अमुक-दिन "सिदौसे चरण दिखाइयेगा" की प्रार्थना रहती है। फिर "लग्न" लिखे कागज़ में हलदी की गाँठें ५, अक्षत, रोली, सुपाड़ी ५, व पाँच टका पैसे पुराने, साबित-धनियाँ के साथ रख कर "लग्न-पत्रिका" को रोली आदि लगाकर कलाये में अच्छी तरह लपेटा जाता है। उसके साथ भेजे जाने के लिये एक गड़गड़ा सूखा नारियल भी, उसके ऊपर रोली का "सतिया" [स्वस्तिक] लगा कर, कलाये से लपेट दिया जाता है। [यही नारियल ढरा में आता है, जो वापस लड़की के साथ बकस में रख दिया जाता है और वर-वधू की सौभाग्य-रात्रि के समय फोड़ा जाता है।] यह सब हो जाने के बाद, घर के आँगन में "चौक" लगा कर वहाँ पंडित-जी गणपति-पूजन कराते हैं और फिर लग्न-पत्रिका व नारियल "लड़की" के हाथ से लगा कर नाई को ले जाने के हेतु दे दिया जाता है; साथ में मिठाई के लिये दो या पाँच रुपये दिये जाते है और एक पत्र भी लिखा जाता है। वैसे वर-पक्ष का निवास-स्थान यदि दूर न हो, तो नाई ही "लगुन" लेकर वहाँ जाता है। स्थान दूर होने पर लग्न-पत्रिका रजिष्ट्री द्वारा भी भेज दी जाती है। इस प्रकार रजिष्ट्री-पोस्ट द्वारा भेजी हुई "लगुन" के साथ यदि नारियल न भेजा जा सके, तो यह याद रख कर अपने ग्राम/नगर में बारात आने पर सम्बन्धी के पास आग्यौनी से पूर्व अवश्य भेज देना चाहिये। यदि "लगुन" भेजने का मुहूर्त्त ठीक न मिले, और पंडित-जी ऐसा बतावें, तो "खेत-लगुन" दी जाती है; अर्थात् जब बारात कन्या के ग्राम/नगर के बाहर के "खेतों" तक आ जाय, तब यह "लगुन" देने की कार्यवाही की जाती है। इन परिस्थितियों में वर-पक्ष को प्रथम ही "लगुन" के स्थान पर "रैवा" भेज दिया जाता है, जिसमें वह सब सूचना लिखी होती है जो "लगुन" में लिखी जानी चाहिये थी। "रैवा" लिखने में "लगुन" लिखने जैसी

औपचारिकता (formality) नहीं होती। "लगुन" लिखनेका शुभ दिन यथा-सम्भव इस प्रकार निकाला जाता है कि इस दिन से कन्या-दान का दिन सातवाँ अथवा पंद्रहवाँ दिन पड़ता हो।

डाले तथा न्यौतहार के कुंकुम-पत्र——लग्न-पत्रिका भेजी जाने के साथ-साथ ही कन्या की ननसाल डाले की चिट्ठी, अर्थात् विवाह का कुंकम-पत्र, भेजा जाता है और साथ में मिठाई के दो या पाँच रुपये भेजे जाते हैं। यह कार्य शीघ्र ही करणीय हैं क्योंकि ननसाल-वालों को विवाह से पहले 'डाला' तैयार करके भेजना होगा। साथ ही अपने कुटुम्बी, जो जो अन्यत्र हों, बन्धु, इष्ट-मित्र व रिश्तेदार, (दामाद, भानजे वगैरह, कुटुम्ब भर के) आदि को विवाह के कुंकुम-पत्र भेजे जाते हैं। घर-कुटुम्ब की बहुएँ जो अन्यत्र हैं, और भानजों अथवा लड़कियाँ जो अपने श्वसुर-गृह में हैं, उनकी विदा के लिये पत्र लिखे जाते हैं और स्वीकृति-उत्तर आने पर उनकी विदा कराने का प्रबन्ध किया जाता है। साथ ही, जो गुरु-जी कन्या की ओर से विवाह का पौरोहित्य करेंगे, उनको पत्र देकर बुलाने की सूचना आदि भेजी जाती है।

दिन धरना; सीधा-छूना——यह कार्य स्त्रियाँ करतीं हैं। पंडित जी द्वारा बताये हुए शुभ मुहूर्त्त में अपने भाई-बन्धुओं के घर बुलावा दे कर स्त्रियाँ इकट्ठी होती ह व मंगल-गान के साथ दाल दलना, गेहूँ-चावल आदि फटकना आदि कुछ धान्य-कार्य प्रारम्भ कर देतीं हैं। उस दिन से रोज़ मंगल-गान "बधाये" शुरू हो जाते हैं। फिर "बड़ी" वगैरह देने का कार्य यथा-समय होता रहता है। अन्य जातियों में भी इसका भली-प्रकार अनुष्ठित होना पाया जाता है और इसे सात सुहागिल, जहाँ तक सम्भव हो निर्गर्भा, अर्थात जिनके गर्भ न हो ऐसी, महिलाएँ सम्पन्न करती हैं। यह कार्य विवाह के लिये सामिग्री-संग्रह का प्रतीक है।

मांगल्य——अपने ब्यौहार में महिलाओं को "बोला" देकर अपने घर इकट्ठा किया जाता है। सब के साथ "घर" की महिलायें इकट्ठी होकर "कन्या" के सिर में तेल डाल कर उसके बालों में कंघी, चोटी आदि करतीं हैं। आज के बाद "कन्या" के सिर में "कंघी-चोटी" विवाह हो जाने के पश्चात् "वर" के "डेरे" में "पहिनावे" के समय ही होगी, बीच में नहीं, ऐसी प्रथा है। उपस्थित महिलायें भी अपनी कंघी-चोटी करतीं हैं। इसके उपलक्ष में उन्हें कंघा, बेंदी व रिबन आदि ब्यौहार के हिसाब से भेंट किये जाते हैं। माँगर "मांगल्य" का ही अपभ्रंश है।

हलद-तेल——पंडित जी के बताये हुए मुहूर्त्त व संख्या के अनुसार "कन्या" के "तेल चढ़ाया" जाता है। चौक लगा कर "कन्या" को उस पर बैठाया जाता है, कलश स्थापित करके गणेश-पूजन कन्या-द्वारा सम्पन्न कराया जाता है; फिर सात "सुहागिल" स्त्रियाँ उसके पैरों में हलदी एवं दूर्वा मिला हुआ "सरसों का तेल" लगा देतीं हैं। अन्य जातियों में कहीं-कहीं दही के साथ यह वस्तुएँ मिला कर उबटन तैयार किया जाता है और वही "कन्या" के लगाया जाता है। "वर" और "कन्या" के चढ़ने-वाले "तेल" का मुहूर्त्त व संख्या एक-सी ही होती है; जिसकी सूचना "लगुन" अथवा "रैवा" में दे दी जाती है।

ताई-मूरवान——छेई-पूजा के साथ "ताई" होती है, जो पूरे-रूप में महिलाओं का ही कार्य है। कुटुम्ब व ब्यौहार की महिलाएँ बुलायी जातीं हैं; और सब इकट्ठी होकर कन्या के द्वारा मांगलिक गीतवाद्य के साथ छेई-पूजा सम्पन्न करातीं हैं। छेई-पूजा में कन्या के साथ घरसे बाहर जाकर "घूरा" पूजने की प्रथा है, जो पीपल आदि के पेढ़ के नीचे बैठ कर अनुष्ठित की जाती है। मूरवान में कन्या के सिर से "मौरी" बाँधी जाती है, कलाये की डोरी से बँधी

खजूर-पत्र से प्रस्तुत "मौरी"; और सम्भवतः इसी कारण इस उत्सव का नाम "मौरी-बन्धन" अथवा "मूरवान" पड़ा है। इन कृत्यों में, बाहर नियत स्थान पर, और लौटकर घर के द्वार पर, पीसे हुए हरिद्रा-चावल के "ऐपन" से कन्या द्वारा बूँदें व "थापे" रखवाये जाते हैं। ज्ञातव्य है कि यह "थापे" की क्रिया, अपने पितृश्वरों की स्थापना है (थापा = स्थापना), जिससे विवाह-रूपी यज्ञ कुशलता-पूर्वक सम्पन्न होने में अपने पितृश्वरों से सब प्रकार की सहायता की याचना की जाती है। कितना हृदयस्पर्शी कार्य है यह! अपने बाहुबल पर पूरा भरोसा करना आर्य-सभ्यता को कभी मान्य नहीं। अदृश्य शक्तियोंपर विश्वास हमारे हर काम में निहित है। फिर ऐसे शुभ और बड़े कार्य में पितृश्वरों का आवाहन और उनकी स्थापना हमें कितना मानसिक साहस और शक्ति प्रदान करती है! कन्या की माता भट्टी के सिरे पर एक पोटली गाढ़ कर "आँधी-मेह" को गाढ़ देती है, जिससे पितृश्वरों की कृपा से आँधी-मेह इत्यादि प्राकृतिक विघ्न-बाधा न आने पाये। आज की प्रसन्नता में स्त्रियाँ रात्रि-जागरण कर मंगल-गान आदि करतीं हैं। घर-कुटुम्बियों को मूरवान की "जेमाजूठी" का "झोर" यहीं नसीब हो कर रह जाता है।

डाला [भात]——कन्या की माता को अपने पित्रालय—कन्या की ननसाल—से डाला आने की जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी सम्भवतः किसी भी अन्य विवाह-कार्य से नहीं होती। उसका मुख हर्ष और अभिमान से प्रदीप्त हो उठता है। अपने पित्रगृह में अपना बाल्यपन, पिता, माता, भाई आदि का साथ, बहन और सहेलियों के साथ हुई प्रमोद-भरीं बाल-क्रीड़ाएँ, जैसे सब एक-साथ साकार हो कर इस अवसर पर सन्मुख आ जातीं हैं। आँखों से टप-टप हर्ष के आँसू निकलने लगते हैं, इधर उपस्थित महिलाएँ गातीं हैं "वीरा मेरे लेंओंगी, लेंओंगीं ढोल बजाय, सोहिर जो जग जाने मेरो भातई"। माता

बड़े हर्षसे चौक पर बैठ कर डाला स्वीकार करती है। इस डाले में प्रायः निम्नलिखित वस्तुएँ आतीं हैं :—

४ जोड़ा (अथवा साड़ी-जम्फ़र) ज़नाने ;

१ घाट-लँहगा माता के लिये ;

२ खादी, वर व वधू के लिये ;

१ वरेइया (चुनरी), वधू के लिये ;

२ चाँदी के पोले (चूड़ी जैसी, किन्तु चौंड़ी), वधू के हाथों में पहनने के लिये ।

२ चाँदी के बिछुये, वधू के लिये ;

और नगद रुपये, यथेच्छा और यथा-शक्ति, जिसकी कोई नियत-संख्या नहीं है (पच्चसिहा-विवाह में कम से कम दस, सैकड़ा में कम से कम पन्द्रह)। साथ ही, "पाँव-पखराउनी" एवं "सिल-उठवाई" के हेतु भी नगद, जैसी और जितनी इच्छा हो, रुपये भेजे जाते हैं।

मंडप——भाई-बन्धुओं को "बोला" देकर इकट्ठा करने के वाद पंडित-जी "घर" के "बड़े" से कलश-स्थापन व गणपति-पूजन कराते हैं। यही "कलश" विवाह-कार्य में पूजनीय रहेगा; और सम्हाल कर इसकी रक्षा की जाती है। सुन्दर गोवर से स्थान लीप कर, चौक लगवा कर, फिर उपयुक्त स्थान पर "मंडप" के "यज्ञ-स्तम्भ" व "बाँस" गाढ़ने के लिये गड्ढे खोदे जाते हैं। यज्ञ-स्तम्भ के गड्ढे में जल, अक्षत, सुपाड़ी, हरिद्रा, दूर्वा, पैसे आदि डाल कर पूजा की जाती है; फिर भाई-बन्धु सब 'हाथ लगा" कर यज्ञस्तम्भ को उस गड्ढे में खड़ा करते हैं, मानों कन्या-पिता से भुजा उठा कर प्रतिज्ञा करते हैं, कि तुम्हारे यहाँ इस विवाह-यज्ञ के सभी कार्यों में हम "सब-प्रकार" तुम्हारे साथ हैं, सहायक हैं। ज्ञातव्य है कि मंडप ऐसे स्थान पर बनता है जहाँ नीचे ठोस ज़मीन (अर्थात छत वगैरह पर नहीं) हो और ऊपर आकाश-तक खुला हो।

यज्ञस्तम्भ छेंकुर अथवा आम की लकड़ी का होता है, जिसमें दीवट लगी होती है; और जिसके साथ एक बाँस बाँधा जाता है। बाँस में ऊपर की ओर लाल-कपड़ा, घंटी, हलदी की गाँठ, अक्षत, सुपाड़ी व एक टका पैसा बाँध दिये जाते हैं। पूजन के साथ यज्ञ-स्तम्भ की, उसके गड्ढे में, स्थापना की जा कर, उसे 'गाढ़ा" जाता है। इस समय उपस्थित बान्धवों के छोटी-छोटी लड़कियाँ "ऐपन" से "थापे" लगातीं हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, थापा पितृश्वरों की स्थापना का सूचक है, मानों थापा लगा कर भाई बन्धुओं की यज्ञ-कार्य के हेतु सहायता की प्रतिज्ञा पर पितृश्वरों का स्थापना-चिन्ह "थापा" लगा कर ताईद-रजिस्ट्री करतीं हैं कि क्यों न हो, हम-आप एक ही पितृश्वरों की सन्तान के नाते भाई-बहिन हैं; और यह विवाह-यज्ञ-कार्य आपही के घर-कुटुम्ब में होनें के कारण, इसमें सब प्रकार योग देना आपका पुनीत-कर्त्तव्य है, एहसान नहीं। विषय-वस्तु को न समझ कर, "थापे" के "ऐपन" से कपड़े ख़राब न हो जाँय इसलिये, आज-कल 'सभ्य" लोग इस "मंगल-चिन्ह" से यथा-सम्भव बच कर बाहर निकलने की चेष्टा में रहते हैं। स्त्रियाँ ऊपर छत पर से समवेत मंडप-गान करतीं हैं। पंडित-जी उपस्थित सज्जनों के रोली का टीका लगाते हैं। साथ ही, बाँस आदि गाढ़े जाकर, बाजरा या ज्वार की "कड़ब" और "मूँज के पूरों" को बाँध कर, मंडप आच्छादित कर दिया जाता है। अब कहीं-कहीं मंडप को केले के स्तम्भ, रेशमी कपड़े, बिनी हुई या बिजली-बत्ती की झालर आदि से सजा दिया जाता है। विचारणीय है कि मंडप सजाने के लिये पुरानी (पहनी हुयी) साड़ियों का उपयोग अनुचित है। मंडप पवित्र-स्थान है और उसकी पवित्रता की रक्षा की जानी उचित है। बन्दनवार व फूल-माला से काफ़ी सजावट हो सकती है। केले के स्तम्भ लगाना भी वर्जित है, ऐसा सुना है। यज्ञस्तम्भ के साथ एक छोटी "मंड़वार" की भी पूजा की जाती

है। यह "मंड़वार" भी छेंकुर या आम की होती है, जिसके सिरे पर "मूँज" व आम के पत्ते आदि कलाये से बाँध दिये जाते हैं। जहाँ "बारात" ठहराने के लिये 'डेरे' की व्यवस्था की गई है, वहाँ इस "मंड़वार" की स्थापना कर दी जाती है, अर्थात् वहाँ कहीं कोने आदि में यह रख दी जाती है। कहीं-कहीं "मंडप" के उपलक्ष में "खड़पुरी", बताशे आदि भाई-बन्धुओं को बाँटे जाते हैं।

मंडप का अवशिष्ट भाग "प्रतिष्ठने" के बाद भी यज्ञस्तम्भ एक मास तक गढ़ा रहता है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो माँयमौरी के साथ ही सम्पूर्ण मण्डप का विसर्जन किया जा सकता है।

मंड़प गढ़ने के बाद, जब तक यह "प्रतिष्ठा" न जाय (अर्थात उखाड़ न दिया जाय), तब तक नित्य संध्या को इस पर दीपक रक्खा जाता है व इसे "जिमाया" जाता है।

अन्य आवश्यक कार्य——गृहस्थ जीवन में कन्या-विवाह एक बड़ा "यज्ञ" माना जाता है, जिसके लिये अनेक प्रकार की तैयारियाँ करनी होतीं हैं। वैसे तो बहुत दिनों पहले से सब चीज़ का संग्रह व बन्दोबस्त किया जाता है, किन्तु विवाह से पहले के तीन चार दिन काफ़ी व्यस्त होते है। कुछ आवश्यक कार्यों की सूची निम्न-लिखित है :—

(१) अचार डालना—आगमनी से तीन दिन पूर्व "तेल-पानी" के अचार डाल देने से "पौन्छक" के लिये कई प्रकार के स्वादिष्ट अचार तैयार हो जाते हैं; और उनसे किफायतमें हो उपयोगिता के साथ पौन्छक की शोभा भी हो जाती है। फिर क्रशमः दो और एक दिन पूर्व भी, इसी प्रकार, ऋतु की वस्तु के तेल-पानी के अचार डाल देने से "घर" को व "सम्बन्धी" को कलेवे के लिये एक नयी और सुस्वादु वस्तु कम ख़र्च में ही तैयार हो जाती है। यह ठीक हो जाने से इन्तज़ाम की सुन्दरता का परिचय मिलता है।

(२) भण्डार ठीक करना—एक अलग कमरे में कच्ची रसद व खाने-पीने का सब सामान बन्द करके, उसे एक सज्जन के सुपुर्द कर देना चाहिये। जितनी चीज़ भण्डार में जाय, या उससे निकले, वह सब उन्ही के मारफ़त होना चाहिये। विवाह की भीड़ में इससे समय पर सब वस्तु ठीक-ठीक मिल जाती है।

एक अगल कमरा "पकान्न-भण्डार" तैयार-मिठाई आदि रखने के लिये प्रस्तुत कर, बन्द कर देना चाहिये। उस की चाभी भी, इसी प्रकार, अन्य या उन्हीं सज्जन के सुपुर्द हो जानी चाहिये। खाने पीने की सभी चीज़ें, जैसे ही तैयार हों, इस स्थान पर पहुँचा दी जाँय और फिर समय-पर यहाँ से निकाल ली जाँय। परोसने के बरतन व "बनी हुई चीज़ें" रखने के बरतन भी इकट्ठे करके व साफ़ करके इसी कमरे में रक्खे जाँय। भण्डार लिपे-पुते साफ़ रहने चाहिये। चोरी आदि से रक्षा के लिये कुछ प्रबन्ध व देख-भाल करनी होती है।

(३) वस्तु-संग्रह—फर्श, जाजम, रौशनी कढ़ाह, परात, चका-बेलन, डेग, कंडाल, तुक़स आदि व परोसने आदि के बरतन व अन्य आवश्यक चीज़े जैसे इतरदान, गुलाबपाश, ट्रे, चाँदी की थाली, गिलास आदि इकट्ठे कर के, पहिचान के लिये प्रमुख-चिन्ह (Distinctive-mark) आदि के साथ, किस किस के यहाँ से मँगाये गये हैं, यह सब एक कापी में लिख लिया जाय, और वह कापी एक ही आदमी की सुपुर्दगी में रहे। वही आदमी उस हिसाब से, जहाँ से जो वस्तु आयी हो, विवाह समाप्त होने के बाद, वह वस्तु सम्हाल कर लौटा दे।

(४) पाकालय—उपयुक्त स्थान पर हलवाई द्वारा मिठाई आदि, और महिलाओं अथवा हलवाइयों द्वारा पूड़ी आदि, बनाने के उपयुक्त स्थान ठीक करके भट्टी खुदवा देनी चाहिये। प्रायः दो भट्टी हलवाई के लिये लगतीं हैं व एक भट्टी पूड़ी सेकने को। यह भट्टियाँ हलवाई ही आकर अपने हिसाब से बना लेते हैं। पूड़ी की भट्टी के आस-

पास "बेलने वाली'" बैठने के लिये अधिक जगह रखनी चाहिये। इसके अलावा, एक भट्टी पाकालय से बाहर खुले में, कहीं उपयुक्त स्थान पर बना देने से, "साग" आदि भाई-बन्धुओं द्वारा सुविधा-पूर्वक बनाये जा सकते हैं। "पौनछक" के साग बनाने के लिये दो तीन अतिरिक्त चूल्हों का व कढ़ाई, करछुल, थाली आदि का अलग प्रबन्ध कर लेना चाहिये। वैसे यह सब प्रबन्ध घरात-बारात की संख्या व दिनों के प्रोग्राम पर निर्भर करता है। उपरोक्त से कम भी प्रबन्ध करने से काम चल जाता है।

(५) <u>अन्य-प्रबन्ध</u>—दहेज आदि के लिये, अन्य सब सामान संग्रह करने के साथ, सुनार व दरज़ी का काम उन्हे सम्हला देना चाहिये, ताकि समय पर सब चीज़ तैयार मिल जाय।

(५) <u>मसाले</u>—मसाले आदि आवश्यकतानुसार छान-फटक कर व कुटवा-पिसवा कर ठीक से रख देने चाहिये। प्रत्येक मसाले के लिये अचल (जो भण्डार में रहे) व चल (जो भट्टी के पास या जहाँ आवश्यकता हो वहाँ ले जाया जा सके) दोनों प्रकार के, क्रमानुसार बड़े और छोटे, बरतन या डिब्बे आदि का प्रबन्ध करना चाहिये, ताकि कुटे-छने मसाले भली, भाँति रक्खे जा सकें।

(६) <u>कुड़ेरी, मौरी</u>—कुम्हार से कुड़ेरी, व मालिन से मौरी तैयार कराने का प्रबन्ध, व कुम्हार से मिट्टी के बरतन आदि देने का प्रबन्ध, कर लेना चाहिये।

(७) <u>हलवाई</u>—हलवाई आकर पहले चीनी गला कर "बक्खर" तैयार करता है; इसके साथ ही साथ आटे-सीधे, गौरिहत, आदि के लिये "गिँदौड़ा" बनवा लेने चाहिये। आवश्यक "गिँदौड़ों" की संख्या निम्न-प्रकार है :—

पचसिहा-विवाह में, आटे-सीधे में दस और गौरिहत के पाँच;
सैकड़ा-विवाह में, आटे-सीधे में बीस ओर गौरिहत के पाँच।

(८) <u>लड्डू</u>—"पौनछक" में बताशे व लड्डू तो भेजे ही जाते हैं, कहीं-कहीं कुछ और मिठाइयाँ भी भेजीं जातीं है। जो भी भेजना हो, उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

(९) <u>सुखाये-साग</u>—घर में महिलायें प्रायः हर ऋतु के साग उस ऋतु में सुखा कर रख लेती हैं। यदि ऐसे सुखाये हुए "साग" पौनछक के लिये रक्खे गये हों, तो पौनछक तैयार किये जाने से पहली रात को उन्हें पानी में भिंगो देना चाहिये, ताकि पौनछक के लिये वह उपयोग में आ सकें।

(१०) <u>बरा कतरा</u>—यदि "सखरी" रसोई का प्रबन्ध हो (जो आजकल कम होती है, मगर अधिक पसन्द की जाती है) तो विवाह से दो दिन पहले ही "बरा-कतरा" (कँजौरा) सेक लेने चाहिये, क्योंकि मातृका-पूजन हो जाने के बाद घर में कढ़ाई में तेल दे कर गरम नहीं किया जाता।

(११) <u>साग</u>–पौनछक के लिये साग आदि का प्रबन्ध एक दिन पहले ही करना ठीक रहता है, सिवा उन सागों के जो ताज़े-ताज़े उसी दिन मँगवाये जा सकें।

(१२) <u>दूध-दही</u>–शाक, दूध, दही, मावा आदि का प्रबन्ध; तथा पत्तल, दौना, खला, सिकोरा व पुरवा आदि का प्रबन्ध ऐसा करना चाहिये कि सब चीज़ समय पर ठीक-ठीक ताज़ी मिलती रहे। ग्रीष्म-ऋतु के विवाह में यथा-सम्भव पानी की बरफ़ का प्रबन्ध भी इसी तरह करना होता है।

(१३) <u>डेरा</u>–डेरे की सफ़ाई, बिछावट, रौशनी और पानी का प्रबन्ध समयानुसार कर लिया जाता है।

(१४) <u>पौनछक</u>—बड़ी-पूड़ी सेके जाने के पूर्व ही अगल-अलग दो डलियों में बीस-बीस छोटी पूड़ी, घर व डेरे में मातृका-पूजन के लिये, सेक कर अगल अछीकर रख देनी चाहिये।

(१५) पूजा के फूल—पूजा के हेतु समय पर आवश्यक होने वाले पंच-पल्लव (पाँच पेढ़ों की पत्ती), दूर्वा, फूल, गंगाजल अथवा ऋतु-फल मँगाने का प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

(१६) कार्य-प्रबन्ध—विवाह-कार्य के अवसर पर कुटुम्बी, रिश्तेदार व भाई-बन्धु इकट्ठे होते ही हैं। काम-काज की सम्हाल करके अलग-अलग उपयुक्त कार्य व प्रबन्ध अलग-अलग उपयुक्त आदमियों की ज़िम्मेवरी पर लगा देने में सुचारुता रहती है।

(१७) सेवक—घर के व डेरे के लिये सेवक, भृत्य आदि ठीक कर लेने चाहिये।

उपवास——घर का बड़ा जो मातृका-पूजन करेगा, जो कन्यादान करेगा (यदि विवाह-लग्न आज की ही हो) और जो पौनछक व आटा-सीधा छिरकेगा, वह सब अपना कार्य सम्पन्न होने तक उपवास किये रहेंगे।

पौनछक-पाक——पौनछक प्रस्तुत करने का कार्य कुटुम्ब व ग्राम के स्त्री-पुरुष आकर सम्पन्न कर देते हैं। सब कच्ची रसद, घृत, मसाले, शाकादि ठीक कर के, पहले से प्रबन्ध कर, रख दिये जाते है। पौनछक में शाक-संख्या अधिक होती है और प्रस्तुत-कर्त्ता बड़े प्रेम से एक-एक चीज़ से विविधि प्रकार के शाक व व्यंजन प्रस्तुत करते हैं। आज का समुदाय, चहल-पहल व कार्य-शक्ति देखने योग्य ही होती है—सभी अपने अपने कार्य में व्यस्त हैं—ग्राम/नगर के नर-नारी ब्याह-वाले घर सभी-तरह के काम में ऐसे लगे हैं जैसे इन्हीं के घर ब्याह हो रहा हो।



३

आगमनी

"बारात आगई!"

"आगई बारात!!"

"बधइया आगये"—

और घर में, बाहर, मुहल्ले में, गाँव में, सब जगह एक ही हर्षभरा उल्लास-स्वर—"बारात आ गई"। बारात आने का प्रतीक "बधैया", वर के नाई-बारी, अथवा उनमें से एक, बारात आने का शुभ-सन्देश (बधाई) लेकर आये हैं। छोटे-बड़े सभी पूँछ रहे हैं "कहौ ठाकुर! कित्ते हैं" और नाई-ठाकुर ऊनेके दूने बताते है। पहले कहा करते थे "नौ रथ, अट्ठाइस गाड़ी, अठारह घोड़ा, चार छकड़ा, और महाराज नौकर-चाकर लै कें तीन-सै आदमीं तो बज्जरूर बैठेंगें; और-ऊ आइबे कों बांकी हैं; कालि लौं चास्सै है लैंइगे"। लड़के हँसते "और हाथी भूलि गये?" बधैया मुसकरा देते "कालि आमेंगे; हाथी चारि और ऊँट चौधा! साखोचार के लएँ"!! चतुर्दिक हँसी के ठहाके!!! और श्रोता समझ जाते थे कि नौ बैलगाड़ी में तीस आदमी है, बाक़ी दसेक कल तक और आ लेंगे। अब अधिक-झूठ बोलना फ़ैशन के विरुद्ध है; फिर भी दसगुने की जगह दूने तो अब भी बताने की कोशिश करते ही है। पर पुराना हँसी-विनोद अब out of date है।

कन्यापक्ष ने बधइयों का सत्कार किया। पहले शरबत तैयार कर के पिलाया; फिर पौनछक की ताज़ी बड़ी-पूड़ी में से "अछूता"

निकाल कर, चार-चार पूड़ी और एक-एक 'पसा' बताशा दिये। शकुन के लिये दो-कौर खाकर बाकी बधइयों ने गाँठ बाँधे। कन्या-पक्ष का नाई भी 'सत्कार' करने के लिये आया था। उसे भी उसी प्रकार पूड़ी-बताशा मिले। बिदाई में बधइयों को एक-एक रंगीन डुपट्टा मिला और बधइया चले गये।

साथ ही, बारात की 'अगवानी' के हेतु कन्या-पक्ष के गुरू-जी और/अथवा अन्य लोग गये। पहले तो घर की गाड़ियों में बहुत लड़के सजे-बजे जाते थे; अच्छे-अच्छे नामी घोड़ों पर नौजवान जाते थे; और कुछ पदाति भी जाते थे। कट्टर घोड़े बारात के सुपुर्द कर दिये जाते थे। बारातियों में जो सवारी की 'ठसक' रखता था, उन घोड़ों पर सवारी कर उन्हें क़ाबू में करता था। अब अगवानी का रूप बदल गया है; उतनी भीड़-भाड़ नहीं होती। बारात भी प्रायः "बस" से आती है। घर की गाड़ी व घोड़े का भी ज़माना जैसे समाप्त हो रहा है। कहीं-कहीं तो, लड़कीवाले के गुरू-जी ही जा कर अगवानी कर लेते हैं और "डेरा" बता आते हैं।

हाँ! एक और सुधार (?) हो गया है। आगे पौन्छक आने से पहले डेरों में कुछ भोजन का प्रबन्ध न रहता था। अब, पहुँचने के साथ ही, जाड़े में गरम चाय व नाश्ता और गरमी में दही की लस्सी व नाश्ते की लड़ी लग जाती है। न हो, तो आये-सम्बन्धीजी का Mood ही बिगड़ जाय।

श्रीगणेश-पूजन, पुण्याहवाचन, मातृका-पूजन, नान्दीमुख-श्राद्ध—शास्त्र-वचन है :—

आधाने पुंसि सीमन्ते जातनामानि निष्क्रमे।
अन्नप्राशनके चौले तथा चैवोपनायने ॥ १ ॥
ततश्चैव महानाम्नि तथैव च महाव्रते।
अथोपनिषद्गोदाने समावर्त्तनकेषु च ॥ २ ॥

विवाहे नियतं नान्दीश्राद्धमेतेषु शस्यते।
प्रवेशं च नवोढ़ायाः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ ३ ॥
अन्यान्यत्र वदन्त्येके नान्दीश्राद्धं महर्षयः।
यागे च प्रथमे वेदस्वीकारे च महामखे ॥ ४ ॥
मातृवर्गादितः कुर्यात्पितुर्मातामहस्य च।
नवैते पितरो वृद्धिश्राद्धे सद्भिरुदीरितम् ॥ ५ ॥
कन्यादाने च वृद्धौ च प्रपितामह पूर्वकम्।
नाम संकीर्तयेद्विद्वांस्तच्चावरोहण क्रमात् ॥ ६ ॥

[लघ्वाश्वलायन-स्मृति, अध्याय १८]

अर्थात्, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुण्डन तथा उपनयन, महाव्रत, वेदारम्भ, गोदान, समावर्त्तन, विवाह एवं वधू-परिछन, यह सब संस्कार-कार्य नान्दीमुख-श्राद्ध और पुण्याहवाचन पूर्वक ही होने चाहिये। अन्यत्र भी किसी-किसी महर्षि का कहना है कि यज्ञ, वेदारम्भ व बड़े-बड़े अन्य यज्ञ-याग आदि भी नान्दी-श्राद्ध-युक्त ही होने चाहिये। [नान्दी-श्राद्ध में] मातृवर्ग [माता, दादी और परदादी] से प्रारम्भ कर के पितृवर्ग [पिता, पितामह, प्रपितामह] और मातामह-वर्ग [नाना, परनाना और उनसे भी बड़े-परनाना], इन नौ पितरों का वृद्धिश्राद्ध में समादर-पूजन करना चाहिये; कन्यादान, वृद्धि आदि कार्यों में प्रपितामह-पूर्वक इसी क्रम से नाम-स्मरण [नाम-संकीर्तन] विद्वान लोग पहले करते हैं।

इस प्रकार विवाह एवं अन्य संस्कारों की क्रिया का श्री-गणेश पुण्याह-वाचन, नान्दीमुख एवं मातृका-पूजन से ही होता है। यह काय श्राद्ध का अधिकारी ही करता है। कन्या का पिता अथवा घरका और कोई "बड़ा" यह "पूजन" सम्पन्न करता है।

घरके किसी शुद्ध स्थान को भली भाँति लीप कर, पूर्वाभिमुख, दीवाल के निचले हिस्से को धोकर, ऐपन (चावल व हलदी पीस कर बनाया हुआ प्रलेप) से षोडस-मातृका की स्थापना किसी महिला द्वारा की जाती है। पूजन-कर्त्ता उस दिन सुबह से ही उपवास-पूर्वक रहता है। पुण्याहवाचन में गंगा, यमुनादि का आवाहन कलश में करके, पूजन-कर्त्ता उस जल से निज शरीर पर समंत्र छींटे देकर अपनी देह-शुद्धि करता है। नान्दीमुख में श्राद्ध-कर्त्ता समंत्र गणपति-पूजन करके अपने कुलदेवता का पूजन करता है और षोडस-मातृका का पूजन करता है। फिर अपने नौ पितृश्वर (माता, मातामही, प्रमातामही ; पिता, पितामह, प्रपितामह ; मातामह आदि तीन) का आवाहन कर, उन्हें मधुपर्क, वस्त्र और नैवेद्य अर्पण कर, पूजित करता है। फिर इस विवाह-कार्य की सफलता के लिये उनकी कृपा-सहयोग की याचना करते हुये उनकी समुपस्थिति और आशीर्वाद की याचना करता है। धार्मिक विश्वास ऐसा है कि पूजित मातृका-स्थान पर गणपति, कुलदेवता और षोडस-मातृका के समीक्ष यह नौ पितृश्वर कृपापूर्वक उपस्थित रहते हैं और सब विघ्नों को दूर करते रहते हैं। वैसे नान्दीमुख-क्रिया में पितृश्वरों को पूजित कर "यत्र आयाति तत्र गतः" के साथ विसर्जित कर दिया जाता है और गणपति, कुलदेवता एवं षोडस-मातृका का विसर्जन विवाह-कार्य समाप्त होजाने पर "माँय-मौरी" रख कर किया जाता है। केवल भावना की दृष्टि से भी देखा जाय तो यह पूजन बड़ा ही कृतज्ञता-पूर्ण, भावना-मय एवं उल्लास-कारी है ; और बड़ी ही श्रद्धा और प्रेम के साथ अनुष्ठित होना चाहिये। मातृका-पूजन और माँयमौरी रखने के बीच के समय में कुल-कुटुम्ब में वृद्धि, मृत्यु, आदि सूतक नहीं लगते। कुटुम्ब व कन्या की ननसाल के व्यक्ति जो विवाह-कार्य में उपस्थित हैं, वह सब नित्य स्नान के बाद ध्यान और अक्षतादि द्वारा

मातृका की पूजा-वन्दना करते हैं ; यह सब एक ही-स्थान पर प्रस्तुत भोजनादि करते हैं और क्षौर (हजामत) नहीं कराते।

इस पूजन के लिये आवश्यक-सामिग्री है :—रोली, अक्षत, नैवेद्य (बताशे), जनेऊ-जोड़ा, कलाया, दूब, फूल, मखाने, कंजा, मुनक्का, जल, पान, सुपाड़ी, घी, टूल, ऐपन, धूप, दीप, दुनियाँ अथवा पुरुवा, सिकोरा आदि, व रुपया, रेजगारी।

"पौनूछक"——सम्भवतः पाहुन-छाक से 'पौनछक' शब्द बना। पाहुने जो आये हैं, उनके लिये छाक—अर्थात भोजन—पहुँचाना। हरे-हरे गोबर से मंडप-स्थान लीप कर सुन्दर "चौक" लगाया जाता है। पौनछक के लिये विविधि प्रकार के जो पकान्न बने हैं उन्हे तरीक़े से मंडप के नीचे "चौक" पर सँजोया जाता है। सभी लड़के और जवान पौनछक सँजोने में व्यस्त हैं। भाँति-भाँति के शाक, अचार, पूड़ी, लडडू, रायते, चटनी, पापड़, फल, आदि ; कितनी वस्तुएँ हैं। देखते-देखते मण्डप-स्थान चतुर्दिक भर गया। एक बाँस की 'पलरिया' में बताशे रक्खे हैं। इन्हें लेकर सबसे आगे कन्या-पक्ष के गुरु-जी चलेंगे। फिर शरबत का घड़ा है—यही विवाह की पहचान है। पचसिहा-विवाह में एक घड़ा और सैकड़ा आदि में दो घड़े शरबत के जाते हैं। गरमी हो तो खजूर के हाथ-पंखे भी पर्याप्त-मात्रा में रक्खे जाते हैं। गाँव में बोला देकर पंचों को बुलाया जाता है। इधर छिरकने-वाले (यदि वह स्त्री-पुरुष हों तो) गाँठ-जोड़ कर पौनछक "छिरकते" हैं। छिरकने-वाली घाट-लँहगा में हैं ; और दूर से उनके पहने हुए आभूषण भी चमक रहें हैं। गुरू-जी संकल्प के साथ "कृष्णार्पण" बोलते हुए अक्षत और जल छुड़वा देते हैं। पंचों को मंडप-स्थान में बुला कर दिखाया जाता है ; सामान कम तो नहीं ? सलाह होती है ; इतनी बारात है, गाँव में उनकी इतनी लड़कीं-भानजीं हैं। "भाई !

एक पला पूड़ी और रक्खो" ! पंचो की आज्ञा सरमाथे। भलाई-बुराई तो गाँव की और पंचो की है। लड़की-वाला तो जैसे इस विषय में गौण है—पीछे है। और पौनछक चली डेरों की ओर। भारत-भर में विवाह का आदर्श तो एक ही है—जब त्रेता में अयोध्या से जनकपुर बारात आई थी। गोस्वामी जी के शब्दों में :—

"कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।
भरे सुधा सम सब पकवाने। भाँति भाँति नहिँ जाँहि बखाने॥
फल अनेक बहु वस्तु सुहाई। हरषि भेंट हित भूप पठाई।
भूषन वसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहु विधि जाना॥
मंगल सगुन सुगंध सुहाये। बहुत भाँति महिपाल पठाये।
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥"

[बाल०, दा० ३०५, चौ० १—६]

यही बारात के लिये आज का भोजन और सत्कार है।

पौनछक के साथ गाँव के सम्भ्रान्त व्यक्ति जाकर बारातियों से मिलते हैं और अभिवादन के बाद कष्ट-असुविधा आदि पूँछ लेते हैं। यदि कुछ फ़रमाइश हो, तो कन्या-पक्ष उस वस्तु को भेज कर पूरी करता है।

आटा-सीधा छिरकना—साथ ही, "छिरकने" के लिये आटे-सीधे का सामान मंडप के नीचे सँजो दिया जाता है। पहले तो यह प्रथा थी कि बारात के लिये, दिन का "कलेवा", डेरों में बाराती स्वयं ही तैयार करते थे; इस लिये अष्टवर्ग व "कलेवा" बनाने का सामान आटे-सीधे में दे दिया जाता था। अब प्रायः बाराती "कलेवा" नहीं बनाते। यही नहीं, प्रातः का "चाय, नाश्ता" तैयार करके भेजने का भी सम्पूर्ण भार कन्यापक्ष का रहता है। फिर भी चली-आयी-प्रथा के अनुसार "आटा-सीधा" अवश्य "छिरका" और दिया जाता है, भले ही सामान की तौल-तादाद कम हो जाय। आटे-सीधे में घी,

आटा, बेसन, चावल, साझे-उड़द, गुड़, हलदी, जीरा आदि मिर्चमसाले, व "बड़ी" रक्खी जातीं हैं और साथ ही गिँदौड़ा, रक्खे जाते हैं। दरवाज़े पर देने-वाले दायजे के बरतन, कलसा, परात, डेग, झाड़ी आदि व काका-मामा की दोनो बालटीं, जिनमें एक-एक टुकड़ा कपड़े में कसार (कम से कम एक-एक सेर) रख दिया जाता है; एवं आग्यौनी के समय "वर" को दी जाने वाली वस्तुएं—कपड़ा, सेला, घड़ी, फ़ाउन्टेनपेन, अँगूठी आदि जो कुछ भी हो—रक्खी जातीं हैं तथा "दरवाज़े" के रुपये—"पचसिहा" में पचीस, "सैकड़ा" में पचास, "सौ-सवैया" और "सौ-दुसैया" में एक-सौ व साथ में "माला-मुँदरिया" के रुपये देने हों तो वह, रक्खे जाते हैं। इसके अतिरिक्त "गौरिहत" का सामान, एक कँसेड़ी अथवा छोटी-डेग आदि बरतन, आटा, घी, आदि सामान एवं पांच गिंदौड़ा रक्खे जाते हैं। ज्ञातव्य है कि जहाँ आटा-सीधे का सामान वर के पिता के हेतु हैं, वहाँ 'गौरिहत" का सामान वर के मामा के हेतु है। यह सब वस्तुएं मण्डप के नीचे सजा देने के बाद "कन्या" का पिता अथवा और कोई "वड़ा" सपत्नीक गाँठजोड़कर, गुरू-जी द्वारा संकल्प पढ़वा कर, इनको "छिरकता" है; सीधे शब्दों में "दान करने" का संकल्प करता है। इस समय छाँट के लिये सूप की भी आवश्यकता होती है। फिर केवल "सीधे" की वस्तुए "डेरों" में भेज ही जातीं हैं, अथवा सम्बन्धी-जी को सूचना भेज दी जाती है कि वह उन चीज़ों को अपने आदमियों द्वारा मँगवा लें। कहीं-कहीं यह भी देखा है कि आटा-सीधे के सामान की जगह घी में आटा भून कर, "मगद" बना कर, रख दिया जाता है। "आटा-सीधा" छिरकने के वाद डेरों में भेजने के लिये कुछ कड़ुआ तेल व नमक और रख दिया जाता है।

पौनछक जीमना—कन्यापक्ष के कुटुम्बी, दामाद, भानजे, निकट-"ब्यौहारी" (सब ब्यौहार वाले नहीं, अथवा जहाँ जैसी प्रथा

हो) आज सायं-भोजन "पौनछक" के लिये प्रस्तुत की हुई वस्तुओं से ही करते है। इसके लिये प्रथानुसार गाँव के दामाद, भानजे (वह भी जो बारात में आये हैं) बुलाये जाते हैं। अपने यहाँ जो काम करने वाले वृत्ती—कर्मी, जिसका अपभ्रंश "कमीन" हो गया है—जैसे नाई, बारी, चौकीदार, कुम्हार, बढ़ई, धोबी, धानुक, मेहतर आदि—आ कर पौनछक की पूड़ी ले जाते हैं। देखा ऐसा जाता है कि यह वर-पक्ष से डेरों में जाकर, और कन्या-पक्ष के घर से, दोनों जगह से पूड़ी ले लेते हैं, जो ठीक नहीं मालूम होता। उन लोगों की दलील यह है कि हम दोनों ही पक्ष का—डेरों का व कन्या-पक्षका—काम बजाते हैं इसलिये दुतरफ़ा लेने के हक़दार हैं।

आग्यौनी की तैयारी——वर-पक्ष के स्वागत के हेतु उपयुक्त तैयारी की जाती है। स्थान आदि साफ़ करके फ़र्श, गलीचा आदि बिछा दिये जाते हैं। भाई-बन्धुओं को तथा डेरों में "आग्यौनी" का "बोला" भेज दिया जाता है; जल आदि पिलाने के लिये बरतन व पुरवा आदि माँज-धो कर ठीक किये जाते हैं; तथा पिलाने के लिये जल भर कर रख लिया जाता है। प्रथा केवल जल द्वारा सत्कार करने की ही है; किन्तु आज-कल जाड़ों में चाय या दूध और गरमियों में "कोको-कोला" तक चल गया है। सम्बन्धी-जी के यहाँ से माँग आने पर (कहीं कहीं 'बोले' के साथ स्वयमेव) "ढरा" भेज दिया जाता है। "ढरा" दाब से बिनी हुई, अथवा बाँस की, रंगी-चंगी डलिया होती है, जिसमें रोली-अक्षत डाल कर, डेरे में भेज दिया जाता है।

आग्यौनी ; शास्त्र-प्रमाण——आश्वलायन गृह्यसूत्र के गृह्य-परिशिष्ट, प्रथम अध्याय, टिप्पणी २१ में, "कन्यावरणादि" प्रकरण इस प्रकार उल्लिखित है :—

"अथ कन्यावरणं कन्यां परिणेष्यमाणो द्वौ चत्वारोऽष्टौ वरपितु-रामान्प्रशस्ताकारकर्मणोऽनूचाना ऋजवः सन्तु पन्था इति प्रहिणुयात्तावतीभिः पुरन्ध्रीभिः सहिता मङ्गलगीततूर्याभ्यां कन्यागृहमेत्य शुभे पीठासने प्राङ्मुखासीनाया दातृज्ञातिबान्धवोपेतायाः कन्यायाः पाणौ फलं प्रदाय कन्यावरणकाले वृणीरन्नासीनाः प्रत्यङ्मुखा [अमुक] गोत्रोद्भवायामुष्य प्रपौत्रायामुष्य पौत्रायामुष्य पुत्राय श्रुति-शील [अमुक] नाम्ने वराय [अमुक] गोत्रोत्भवाममुष्य प्रपौत्रीममुष्य पौत्रीममुष्य पुत्रीं [अमुक] नाम्नीमिमां कन्यां भार्यात्वाय वृणीमह इति ब्रूयुरथ दाता भार्याज्ञातिबन्धुसमेतो यथोक्तं मनूद्य वृणीध्वमिति ब्रूयादेवं त्रिः प्रयुज्य दाता प्रदास्यामीति चोच्चैस्त्रिर्ब्रूयादथ ब्राह्मणा उक्तस्वस्त्ययनाः शिवा आपः सन्तु सौमनस्यमस्त्वक्षतं चारिष्टं चास्तु दीर्घमायुः श्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्त्वित्युक्त्वा तद्वः सत्यमस्त्वित्यनूद्य समानीव आकूतिः प्रसुग्मन्ताधिय सानस्य सक्षणीत्येत्याः पठेयुः पुरन्ध्र्यः कन्यायै कल्याणान्कुलधर्माचारान्कुर्युः।

तात्पर्य है, अब विवाहार्थ-कन्या-वरण के हेतु वर-पक्षके आठ सम्भ्रान्त पुरुष व स्त्रियाँ मङ्गल-गीत व तुरही-वाद्य-ध्वनि के साथ वर को लेकर कन्या-गृह [आवे; वहाँ वर] शुभ आसन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठे; और ज्ञाति-बान्धवों की समुपस्थिति में, कन्या के हाथों में फल-प्रदान कर, श्री-वर इस प्रकार कहे कि मैं, अमुक गोत्र का, अमुक का प्रपौत्र, अमुक का पौत्र और अमुक का पुत्र अमुक नाम का श्रुतिशील वर अमुक गोत्र की, अमुक की प्रपौत्री, अमुक की पौत्री, अमुक की पुत्री, अमुक नाम की इस सुशीला कन्या का भार्या-हेतु वरण करता हूँ। तदोपरान्त कन्या के ज्ञाति-बन्धु-बान्धवों की समुपस्थिति में कन्यादाता, स्वीकार करता हुआ, यह कहे कि जैसा अभी [वर-द्वारा] कहा गया है, मैं, कन्या-दाता, [इस वर को] अपनी इस कन्या

का दान करूँगा। फिर उपस्थित ब्रह्म-मण्डली "ॐ शिवा आपः सन्तु सौमनस्यमस्त्वक्षतं चारिष्टं चास्तु दीर्घमायुः श्रेयः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्च" आदि मंत्र से स्वस्ति-वाचन स्वस्त्ययन करे और सौभाग्य-वती सन्तानवती महिलायें कन्या के कल्याण के हेतु अन्य कुल-धर्म कुलाचार का अनुष्ठान करें।

आग्यौंनी का जलसा——इस प्रकार स्पष्ट है कि आग्यौनी, शाखोच्चार अथवा पहेने की भाँति कोरा सामाजिक जलसा नहीं, किन्तु विवाह से पूर्व का शास्त्रोक्त-विधान, वर-कन्या-वरण विधि-निर्वाह, का धर्मकार्य और विवाह का एक अङ्ग है। अभी तक सगाई की बात नाई अथवा डाक-विभाग द्वारा, अथवा प्रत्यक्ष-रूप में, वर-कन्या के अभिभावकों में ही, तय हो गयी थी। किन्तु "विवाह" जैसा अटूट सम्बन्ध केवल वर-कन्या के अभिभावकों की इच्छा-मात्र पर छोड़ देना ठीक नहीं। यह गुरुतर दायित्व (responsibility) कुल-कुटुम्ब, मातृपक्ष, भाई-बन्धु आदि सभी समाज का है। विवाह से पहले "वरण" बन्धु-बान्धवों की स्वीकृति (approval) से ही होना उचित है; और इसके लिये बन्धु-बान्धव और समाज की एक ही स्थान में, समुपस्थिति, आवश्यक है, जहाँ वर -कन्या को देखकर बन्धु-बान्धवों की समुपस्थिति में वर एवं कन्यादाता द्वारा, अथवा उनके पक्ष के "पुरुषा" द्वारा, परस्पर इस विवाह के हेतु स्वीकृति दी जा सके। इसी हेतु "आग्यौंनी" का जलसा-आह्वान है।

अपने ग्राम/नगर में भाई-बन्धु व कुटुम्ब, रिश्तेदारों आदि को 'बोला' देकर कन्यादाता अपने द्वार पर (घर से बाहर) एकत्र करता है; और वहीं बारात को आने को आमंत्रित करता है। आती हुई बारात के 'बाजे' [मङ्गलगीततूर्याभ्यां) का शब्द सुन कर स्वागत करने के हेतु "घराती" आमने-सामने, बीच में जाने का मार्ग छोड़ कर,

पंक्तिबद्ध, खड़े हो जाते हैं; और उनके बीच के छोड़े हुए मार्ग से छोटे-से बड़े के क्रमानुसार बाराती, वर को आगे लेकर, पंक्तिबद्ध होकर नियत किये हुये सभास्थान को जाते हैं। दोनों ओर से हाथ जोड़ कर पालागन हो रहा है। बीच-बीच में पुराने-परिचित मिल कर परस्पर गाढ़-अभिवादन भी कर लेते हैं। और इस प्रकार चलती हुयी पंक्ति में जब दोनों नव-"समधी" परस्पर सामने होते हैं, तो गाढ़-आलिंगन में बद्ध हो जाते हैं। नये-रूप में नये-प्रेम का सूत्रपात है।

आग्यौनी में बारात का केवल जल द्वारा सत्कार करने की ही प्राचीन प्रथा है; यद्यपि अब चाय, कोको-कोला आदि भी चलने लगे हैं, जिनके साथ पान-इलायची आदि भी दर्शन देते हैं।

विवाह-गृह के द्वार पर एक छोटी चौकी पर उचित आसनादि बिछाकर, सामने दायजे में दिये जानेवाले कलशा, लोटा, झाड़ी आदि बरतन रख दिये जाते है। वहाँ वर द्वारा गणपति-पूजन आदि सम्पन्न कराया जाता है।

सिनेमा के चकाचौंध, अथवा कहीं अन्यत्र-प्रचलित-प्रणाली के वशीभूत होकर, अपनी आग्यौनी की प्राचीन परिपाटी में, "जयमाल" का नया पैबन्द लगाने की चेष्टा कहीं-कहीं इसी अवसर पर अनुष्ठित होती दर्शन देती है। इसमें वर को "पौरि" में, अथवा देहली पर ही, बुला कर, कन्या द्वारा "जयमाल" पहनायी जाती है। कहीं-कहीं मेक-अप के साथ कन्या की सहेलियाँ भी कन्या के साथ आतीं हैं। प्रथा नयी होने के कारण कुछ लोगों को नूतनत्व अथवा अभिनवत्व द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर रही है; और शहरों को छोड़ कर अब ग्रामों में भी यत्र-तत्र इसकी झाँकी दिखायी देने लगी है। मगर थोड़े विचार से ही यह सिद्ध हो जाता है कि यह क्रिया-प्रणाली अवसर व अपनी धार्मिक विवाह-पद्धति के

बिलकुल अनुपयुक्त और उलटी पड़ती है। जैसा आगे उल्लिखित है, वर और कन्या का उपस्थित-समाज द्वारा विवाह-सम्बन्ध के लिये उपयुक्त ठहराया जाना, वर के काका एवं मामा द्वारा सम्बन्ध-स्वीकृति और कन्यावरण आदि से पहले ही यदि कन्या "जयमाल" डाल कर स्वयं वर का वरण कर ले, तो उसके बाद के आग्यौनी के कार्य में बन्धु-बान्धवों द्वारा वरण, एवं विवाह में कन्यादाता के कन्यादान आदि कार्य, सब निरर्थक हो जाते हैं। अगले अध्याय में देखा जायगा कि जब तक कन्या का माता-पिता द्वारा विधिवत दान नहीं हो जाता, तब तक कन्या अपनी ओर से विवाह हेतु कुछ प्रयत्न अथवा क्रिया नहीं करती। "जयमाल" क्षत्रियों में प्रचलित भले ही हो, अथवा आपत्ति-काल में गन्धर्व-विवाह की प्रतीक हो, अथवा स्वयंवर में किसी प्रतिज्ञा-पूर्त्ति अथवा वर-चयन की प्रतीक हो ; अपने यहाँ, शुद्ध ब्राह्म-विवाह में, और विशेष कर इस अवसर पर, यह बिलकुल ही अनुपयुक्त और भद्दी प्रतीत होती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, आग्यौनी को हम वरण-स्वीकृति उत्सव [Ceremony ot approval] कह सकते हैं। यह कार्य अब प्रारम्भ होता है। "कन्या" को एक सफ़ेद डुपट्टा (जिसमें रुपहला गोटा-किनारी लगा रहता है) उढ़ा कर विवाह-गृह के दरवाज़े में देहली के पास, अन्दर, सतिया लगे स्थान पर बैठा दिया जाता है, उभय-पक्ष के नाई मशाल व पूजा की थाली आदि लेकर खड़े हो जाते हैं ; और गुरू-जी बारातियों को निछावर के लिये आह्वान करते हैं। पहले सभी शुभ-कार्य "मान्य" [भानजा अथवा दामाद] से प्रारम्भ होते हैं। और वर के "मान्य" से ही स्वीकृति (approval) प्रारम्भ होती है ; स्वीकृति-चिन्ह (mode of approval) है "कन्या" के डुपट्टे पर रोली का तिलक-संकेत और कुछ द्रव्य उसकी "निछावर"। क्रम आगे बढ़ता है, और सभी बाराती "कन्या" पर

द्रव्य "निछावर" करते जाते है और इस सम्बन्ध के लिये गन्धाक्षत लगाकर अपनी स्वीकृति देते जाते हैं। सबसे पीछे आते है श्रीवर के सम्मानीय "पुरुषा" [अर्थात् कुटुम्ब के "बड़े"] जिनके साथ "ढरा" का सामान आता है। वह "कन्या" को आभूषण पहनाते है, सोने की मोहर और पहनने के वस्त्र भेंट करते हैं। ढरा की सारी चीज़ें दे दी जाती हैं और फिर वह उसी प्रकार "तिलक" और द्रव्य-निछावर के द्वारा इस विवाह के हेतु अपनी स्वीकृति दे देते हैं। प्रथा में ढरा-प्रदान के समय वेद-मंत्र नहीं पढ़े जाते, किन्तु यहाँ यदि पढ़े जाँय, तो बहुत सुन्दर रहे। अथर्व-वेद में सुन्दर-सार्थक मंत्र हैं, उनमें से यथेच्छा आचार्य द्वारा इस अवसर पर पठनीय हैं। यथा :—

आभूषण देते समय—

"ॐ इहैव स्तं मा वि यौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ" ॥१४, १, १, २२॥

अर्थात्, तुम दोनों [वर-कन्या] साथ रहो ; पृथक न होवो, जीवन-पर्यन्त अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त हो, पुत्र-पौत्रादि के साथ क्रीड़ा करो, और मङ्गल से युक्त होते हुए सदैव प्रसन्न रहो।

स्वर्ण-द्रव्य [मोहर] देते समय :—

"ॐ युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥
इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभं यतीरुस्त्रियाः सोमवर्चसो विश्वेदेवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥"
[अथर्व० १४, १, १, ३१-३२]

अर्थात्, तुम दोनों [वर-कन्या] सत्य बोलते हुये सौभाग्य को प्राप्त होवो। हे ब्रह्मणस्पते ! तुम इस कन्या के लिये इस वर को स्वीकार करो ओर यह भी स्वीकृति-रुप वाणी बोले। कन्ये ! यह

कल्याणमयी धेनु है, तुम यहाँ बैठो ; आगे मत आओ। तुम-दोनों सन्तान से वृद्धि को प्राप्त होवो। विश्वेदेवता तुम्हारे मन को सोम के समान उज्वल बनावें ॥

वस्त्र देते समय :—

"ॐ या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥"
[अथर्व० १४, १, १, ४५]

अर्थात, जिन स्त्रियों ने इस वस्त्र को कात व बुन कर विस्तृत किया है, वे देवियाँ तुझे वृद्धावस्था [तक सुख-सौभाग्य पूर्वक दीर्घजीवी होने का आशीर्वाद दें] वाली बनायें। हे आयुष्मती! तू इस वस्त्र को धारण कर।

इस प्रकार सभी ज्ञाति-बान्धव और वर के 'पुरुषा" द्वारा कन्या-वरण की सुन्दर-स्वीकृति सम्पन्न होती है।

अब वर की स्वीकृति (approval) की बारी है। वर को विवाह-गृह के द्वार पर, किन्तु देहली से बाहर, खड़ा कर दिया जाता है और कन्या पक्ष के पुरुष, मान्य से प्रारम्भ कर, उसी प्रकार तिलक व द्रव्य-निछावर द्वारा अपनी स्वीकृति (approval) जनाते जाते हैं। कुटुम्ब, परिवार, नाते-रिश्तेदार आदि की इस प्रकार स्वीकृति हो जाने पर कन्यापक्ष के सम्मानीय "पुरुषा" [अर्थात् कुटुम्ब के 'बड़े'] आते हैं जिनके साथ "दरवाज़े" का सामान आता है, अर्थात् दरवाज़े पर श्रीवर को भेंट देने के हेतु वस्तुएँ। वह अपने हाथ से श्रीवर के लाल-पाग (अथवा तत्स्थानीय वस्त्र) बाँधते हैं ; वस्त्र, आभूषण (माला, मुँदरिया, घड़ी, फाउन्टेन-पेन आदि जो कुछ भी देना हो) आदि भेंट करते हैं और तिलक लगा कर द्रव्य-निछावर द्वारा अपनी स्वीकृति जना देते हैं। अब श्रीवर विवाह-गृह की ओर "मुँह" घुमा कर खड़े हो जाते हैं और घर-कुटुम्ब व कन्या की रिश्तेदार महिलाएँ

उसी-प्रकार उन पर द्रव्य-निछावर करतीं हैं। इस प्रकार वर की स्वीकृति (approval) सम्पन्न होती है। कितनी ख़ूबसूरती से तिलक के मिस नख-शिख अच्छी तरह देख लिया गया ; और एक दो, दस नहीं, पूरे कुटुम्ब, रिश्तेदार और ग्राम/नगर के लोगों द्वारा। सब से पीछे "पुरुषा" द्वारा स्वीकृति।

इस सिलसिले में यह भी समझ लेना है कि क्यों पौनछक-रूप में डेरे में ही "छाक" भिजवा दी गई थी? क्यों अपने दरवाज़े पर पधारने पर भी, कन्या-पक्ष केवल जल द्वारा ही सत्कार करता है? क्यों घनिष्ट होने वाले "सम्बन्धी" को व बाराती को इस प्रकार घरके बाहर ही (अन्दर नहीं) बैठा कर रूखा जैसा बर्त्ताव किया जा रहा है? उत्तर है, कि अभी तक सगाई आदि की बात दो-चार पुरुष विशेष—वर व कन्या के अभिभावकों—तक ही सीमित थी, वह एक निजी-मामला (Private affair) था। विवाह जैसे अटूट सम्बन्ध को कुटुम्ब व समाज वर-कन्या अथवा तत्-अभिभावक का निजी-मामला कह-कर नहीं छोड़ सकता। वह तो सभी कुटुम्ब, सभी नाते-रिश्तेदार व एक प्रकार से ग्राम/नगर भर का मामला है, जो आज तक 'वर' और 'कन्या' को यथावत् अपना ही पुत्र अथवा कन्या कर-के मानते आये हैं। सब की स्वीकृति लेकर, सम्बन्ध को इस प्रकार सार्वजनिक-रूप देकर, उसे कितना गुरुतम और महत्वपूर्ण बना दिया गया? कितनी दूरदर्शिता और बुद्धिमानी रही होगी उन पूर्वजों में, जिन्होंने आग्यौनी जैसे सामाजिक जलसे की नींव डाली होगी। अन्य जातियों में यह वरण-कार्य विवाह से अलग, पहले ही, सम्पन्न हो जाता है।

"दरवाज़े" का कार्य, जो कन्या-पक्ष के पुरुषा ने किया, वह कन्या का मामा (या ननसाल का अन्य पुरुष) भी सम्पन्न कर सकता था, यदि वह "दरवाज़े" का कार्य अपनी ओर से सम्पन्न करना

चाहे, मगर इसके हेतु भेंट का सामान आदि उसे अपनी ओर से लाना पड़ता। इसके लिये "मामा" को उचित है कि पहले से ही कन्या-पक्ष के पुरुषा से आज्ञा-स्वीकृति ले ले।

इस प्रकार सब ओर से सम्बन्ध-स्वीकृति हो जाने पर दोनों पक्ष परस्पर "सम्बन्धी" हो जाते हैं ; और इसके उपलक्ष में कन्यापक्ष की ओर से "थरा-द्वार" उपस्थित किया जाता है। कन्या-पक्ष के लोग अपने गुरूजी को आगे करके, एक थाल में रोली लगे हुए रुपये सजाकर लाते हैं ; वर का "पुरुषा" अपना डुपट्टा पसार कर उनके सामने हाथ कर देता है। गुरु जी एक, दो....यह हुऐ पूरे....कह कर रस्म के रुपये गिना देते हैं ; सैकड़ा विवाह में पचास ; सौ-सवैया और सौ-दुसैया में एक-सौ। फिर दोनों ओर के गुरू अपने-अपने "यजमान" की ओर से सामने-वाले सम्बन्धी की परस्पर "विनती" करते हैं। स्मरण रहे, कि पचसिहा-विवाह में थरा-द्वार और विनती नहीं होती ; रस्म के पच्चीस रुपये, और वस्तुओं के साथ, "दरवाज़े" पर ही कन्यापक्ष का "पुरुषा" श्री-वर को भेंट कर देता है। पता नहीं यह भेद-भाव (discrimination) कब, क्यों और कैसे प्रचलित हो गया ?

आग्यौनी समाप्त हुई। वर का वरण सम्पन्न हो गया। पंक्तिबद्ध घरात की दो पंक्तियों के मध्य से पालागन करती, और स्वीकार करती, हुयी बारात "डेरों" को वापस चली गयी। पर वर के काका व मामा तो कन्यापक्ष के आग्रह पर वहीं रुक गये। इन्हें "कन्या" की गोद भर कर अपनी स्वीकृति देनी है। सम्भवतः यही "कन्या-वरण" है, जो आश्वलायनाचार्य ने उपरोक्त क्रिया में लिखा है।

ढरा में आये हुए वस्त्राभूषण, घर के अन्दर, "कन्या" को पहनाये जा रहे हैं ; फिर कन्या को मंडप-स्थान में वैठा दिया गया, आह्वान पर वर के काका-मामा अन्दर गये, जिसके—घर में अन्दर जाने के—

अधिकारी, सम्बन्ध-स्वीकृति के बाद, यह "सम्बन्धी" हो कर हो गये। महिलाओं ने "हम घर साजन आये" मङ्गल-गान से इनका स्वागत किया। प्रथम, 'कन्या' का काका मंण्डप-तले उनका स्वागत करता है ; और उनके गन्धाक्षत द्वारा तिलक लगाता है। अब कन्या का काका सम्बन्धी-जी के यहाँ से अग्यौनी के 'ढरा' में रख कर आई हुई लग्न-पत्रिका वर के काका को देता है, जैसे राजकीय दूतों का औपचारिक Presenting the credentials जलसा हो। यह लग्न-पत्रिका कन्या-पक्ष ने अपने नाई द्वारा वर-पक्ष को भेजी थी ; वरपक्ष ने अपनी ठीक-ठीक पहचान के लिये इसे आग्यौनी के "ढरा" में रखकर कन्यापक्ष को दिया ; और इस प्रकार ठीक-ठीक पहचान (identification) का कार्य कर यह वर के काका को लौटा दी गई। वर का काका इसे वर के मामा को देता है ; और मामा इसे वरपक्ष के के गुरू को दे देते हैं। इस प्रकार कन्या की भी पहचान (identification) कराकर यह लग्नपत्रिका विवाह-साक्षी रूप में वर के गुरूजी के पास जमा रहती है। कन्या का काका मगद की पोटली रक्खी एक-एक पीतल की बालटी वर के काका और मामा की भेंट करता है ; फिर परस्पर अभिवादन होता है। कन्या के काका का काम पूरा हो गया।

साथ लायी हुयी सुपाड़ीं (अब सुपाड़ी के दाम अधिक होने के कारण कोई बताशा मिलाकर, अथवा केवल बताशा, लाते हैं, किन्तु पुंगीफल होने से सुपाड़ी ही इस मंगल-कार्य में अधिक उपयुक्त है) में से क्रमशः वर के काका और मामा "अछूता" निकाल कर एक-एक मुट्ठी सुपाड़ीं मंडप-स्थान में बैठी हुयीं महिलाओं में से अपने गाँव/नगर की किसी लड़की या भानजी को दे देते हैं ; और बाक़ी सुपाड़ीं कन्या के सामने-फैले-हुए आँचल में डाल कर उसकी 'गोद भरते' हैं ; फल

प्रदान करते हैं ; शुभाशीर्वाद देते हैं ; और उस पर एक-एक रुपया निछावर करते हैं। इस अन्तिम-स्वीकृति (Final approval) के साथ-साथ "कन्या-वरण" कृत्य साविधि पूर्ण हुवा। ऐसे परम-हर्ष के अवसर पर यदि कोई लड़की या महिला आये हुए 'साजन' के कपड़ों से, विनोद-विनोद में, चुपके-चुपके, सूप-आदि में बँधी रस्सी बाँध दे, ताकि लौट कर जाते हुए काका मामा सूप घसीटते चलें, और उपस्थित महिलायें ठठा कर हँसे, तो इसका कौन बुरा मानेगा ? हर्ष और हँसी का तो अवसर ही है।

न्यौछावर-विभाग——वर-पक्ष द्वारा ; कन्या-पक्ष द्वारा ; एवं वर के काका मामा द्वारा की हुई न्यौछावर का सब द्रव्य इकट्ठा करके गिन लिया जाता है ; फिर उसे दो बराबर-के हिस्सों में बाँट दिया जाता है। एक हिस्सा वर-पक्ष के नाई-बारी का है ; और दूसरा कन्या पक्ष के नाई-बारी का।

गौरि-पूजन——आर्य-संस्कृति में शङ्कर-प्रिया भगवती गौरि—पार्वती—ही सौभाग्य-समृद्धि की वरद देवि हैं—वही, जिनके हेतु देवर्षि नारद ने उनके बाल्यकाल में ही सहज भविष्यवाणी करदी थी—

"होइहि पूज्य सकल जग माँही। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं।
एहि कर नाम सुमिरि संसारा। तिय चढ़िहहिं पतिब्रत-असिधारा ॥"

और स्वयं भगवती सीता द्वारा पूजित, जगदम्बा के ही शब्दों में, जो—

"पति-देवता सुतीय महुँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस सारदा सेख॥
सेवत तोहि सुलभ फल चारी। वरदायिनि त्रिपुरारि-पियारी।
देवि पूजि पदकमल तुम्हारे। सुर-नर-मुनि सब होंहि सुखारे ॥"

कन्या अब वधू बनने जा रही है। किससे माँगेगी वह सौभाग्य का वरदान ? मूक-प्रार्थना—

"मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सब ही के"।

अवढर-दानि-पत्नी के सिवा और कौन इतनी-शीघ्र प्रसन्न हो कर यह सुन्दर-सफल आशीर्वाद दे सकेगी—

"मन जाहि राँचेहु मिलहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो"

और कितना सरल, सीधा-साधा है यह गौरि-पूजा विधान ? गीली चिकनी-मिट्टी (जो प्रायः 'कुड़ेरी' के साथ कुम्हार दे जाया करता है, अथवा अन्यत्र से संग्रहीत) की सात गोल-गोल 'मूर्त्ति' बना कर, गौरि-रूप, उन्हें एक मिट्टी के सिकोरे में स्थापित किया जाता है ; एवं लाल-टूल का डुपट्टा उनपर चढ़ाया जाता है। कन्या का विवाहित भाई, अथवा तत्-स्थानीय अन्य व्यक्ति, सपत्नीक, गाँठ-जोड़ कर, यह पूजा कन्या के द्वारा सम्पन्न कराता है। गौरि-पूजन के हेतु जल, रोली, अक्षत, दूर्वा, फूल, नैवेद्य आदि, पुजाने-वाला भाई अपने हाथ में लेकर अपनी पत्नी के हाथ में देता है; पत्नी वह अपने हाथ में लेकर उसे कन्या के हाथ में देती है ; और कन्या इस-प्रकार दी-हुयी सामिग्री से गौरि-पूजन सम्पन्न करती है। फिर एक के बाद एक, इस प्रकार सात वार, पूजा-कराने-वाला भाई सम्बन्धी-जी के यहाँ से आग्यौनी के ढरा में रख कर आये हुए सिन्दौरी-सिन्दौरा (काठ से निर्मित विशेष प्रकार की पेटिका) में से ईंगुर अथवा रोली अपने दाहिने हाथ की अनामिका और अँगूठे की चुटकी में लेकर अपनी पत्नी को देता है ; पत्नी वह ईंगुर अथवा रोली अपने बाँये हाथ की अनामिका और अँगूठे की चुटकी में ग्रहण करती है और उसे कन्या को दे देती है। कन्या भी उस ईंगुर अथवा रोली को अपनी भाभी से अपने बाँये हाथ की अनामिका और अँगूठे की चुटकी में ग्रहण करती है, और उसमें से किंचित सामने पधरायीं हुयीं गौरि-माता पर चढ़ा कर, अवशेष से अपनी "माँग भरती" है। जैसा ऊपर लिखा है, इसी क्रम से कन्या सात बार गौरि-पूजन के

साथ अपनी माँग भरती है। आज से पूरे एक महीने तक, वधू और बहू होने पर भी, वह नित्य इन्ही गौरि-माता की पूजा सम्पन्न कर, उनसे अपने सुख-सौभाग्य की याचना करती रहेगी। यह गौरि-माता उसके साथ ही उसकी ससुराल जाँयगीं। काका-मामा द्वारा भरी गोद की सुपाड़ियों में से एक मुट्ठी सुपाड़ी लेकर कन्या गौरि-माता पर-चढ़ाती है; तीन-तीन मुट्ठी, पूजा करानेवाले भाई और भाभी को देती है; एक-एक मुट्ठी दोनों पक्ष के गुरुओं को देती है और अवशेष साथ लेकर चौक से उठ जाती है। भाई-भाभी द्वारा यहाँ वेद-वचन में आशीर्वाद दिया जाना चाहिये—

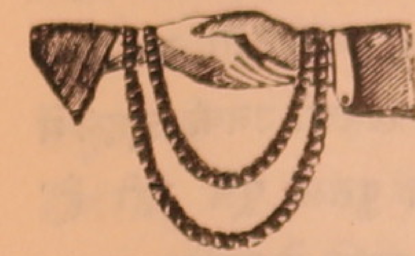
शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं शं स्पृशस्व ॥
[अथर्व० १४, १, १, ४०]

अर्थात् हे कन्ये! तेरे लिये जल आदि रस कल्याणमय हों, सुवर्ण आदि द्रव्य सुखद हों, आक्रोश सुखदायी हो; कल्याण को प्राप्त करती हुई तू अपने पति को स्पर्श करे।

सम्बन्धी के यहाँ से आये हुए वस्त्राभूषणों की सम्हाल——सम्बन्धी-जी के यहाँ से आये हुए वस्त्राभूषण कन्या का स्त्री-धन हैं; वह कन्या के साथ उसकी ससुराल जाँयगे। वैसे पहेने के समय यह सम्बन्धी-जी को ही सम्हला दिये जाते हैं। इन्हें यदि एक ख़ाली बक्स में अलग लिस्ट बना कर रखते जाया जाय, तो पहेने के समय सहेजने में कठिनाई नहीं होती। एकाधिक विवाह में अलग-अलग कन्या के लिये अलग-अलग बक्स व लिस्ट प्रस्तुत करनी चाहिये।

खैरौली का तेल——वर के यहाँ से वर पर चढ़ा हुआ खैरोली का तेल आता है; जिसे सात सुहागिलें कन्या के पैरों पर लगा कर "चढ़ाती" हैं। विवाह के अति-शीघ्र कार्यक्रम की व्यस्तता में अब यह प्रथा छूटती-सी जा रही है।

४



चतुर्वेदी विवाह-पद्धति

वरेई का पुतला—विवाह-लग्न उपस्थित होने से कुछ पूर्व ही डेरों में विवाह-हेतु श्रीवर को बुलाने के लिये "बोला" भेजा जाता है। इधर, कन्या को शुद्ध-जल से स्नान कराया जाता है [स्नान का वेद मंत्र पृष्ट १०६ पर द्रष्टव्य है]। विवाह-गृह के भीतरी आङ्गन में, प्रवेश-द्वार के पार्श्ववर्ती "कौरे" पर, एक सौभाग्यवती महिला गेरू, सिन्दूर अथवा हलदी से "वरेई के पुतले" का रेखाचित्र बना देती है; एवं उस स्थान पर नौ कुड़ेरी [कुम्हार द्वारा लाये हुए सिकोरे अथवा तश्तरी, जिन पर सफ़ेदी पुती रहती है] रख देती है जिनमें, प्रत्येक में, रोली लगाकर सत्तू व एक-एक या दो-दो हरी चूड़ी रख देती है; और एक सिकोरा में हलदी अथवा रोली से रँगे हुए चावल रख देती है। स्नानान्तर कन्या को ननसाल से डाले में आयी हुयी खादी-बरेइया, पोले आदि पहना दिये जाते है। पितृ-कुल से सम्बन्ध टूट रहा है, इसलिये पितृ-कुल के सब वस्त्राभूषण उतार कर, ननसाल से आये हुये सादा वस्त्रादि पहनाना ही अधिक उपयुक्त समझा गया। अब कन्या के सिर से "मौरी" (खजूर-पत्ते से बनी) बाँध दी जाती है। उसे वरेई के पुतले के सामने लगे हुए "चौक" पर बैठा दिया जाता है; और वहाँ रक्खी हुयी पत्थर की "सिल" [जो टूटी फूटी न हो और जिस पर रोली से सतिया लगा हो] पर उसके पैर रख दिये जाते हैं। यहाँ मौन होकर (बिना बोले) कन्या वरेई के

पुतले पर अक्षत छोड़ती हुई इन्द्राणी, भगवती शची देवी, ऐवं हर-गौरी से अपने वैवाहिक-जीवन में सुख, समृद्धि एवं सफलता के लिये प्रार्थना करती रहती है। अब से सप्तपदी, हवन, आदि विवाह-कृत्य सम्पन्न होने तक कन्या को मौन ही रहना है। यों भी हँसी-मसखरी और साधारण बोलचाल में, जब सहेलियों के छेड़ने पर भी कोई लड़की उनकी चुहल में भाग नहीं लेती तो, सहेलियाँ "बेचारी वरेंई का पुतला पूज रही है" कह कर उसकी चुटकी लेतीं हैं। यहाँ वरेंई के पुतले के समीप, कन्या के सम्मुख एक गुड़ की ढेली रक्खी होती है।

वर-परिछन——विवाह-हेतु पधारे वर का स्वागत-सत्कार करने के बाद उन्हें कन्या के दरवाज़े पर, अथवा बाहरी बैठक में, बैठाया जाता है। कन्या की माता, वर की सास, अथवा तत्-स्थानीय महिला, अन्य महिलाओं के साथ मंगल-गान करती हुयीं वहाँ आती हैं। अन्दर, आँगन के प्रवेश-द्वार से मंडपस्थान का रास्ता गोबर से लीप कर, उसपर एक रंगीन-वस्त्र (जो आज कल V. I. Ps. के लिये प्रस्तुत Red-carpet बिछाने की प्रथा के समान है) बिछा दिया जाता है, जिसपर एक-एक डग की दूरी पर सात कच्ची-मिट्टी की सिकोरीं अथवा तश्तरीं उटली करके रख दी जातीं हैं। यह वस्त्रादिक "पाँवड़े" कहलाते हैं। बाहर परिछन-कर्त्रीं महिला एक रंगीन डुपट्टा और एक रुपया वर पर "मौर की न्यौछावर" करके श्रीवर के गन्धाक्षत से तिलक करती हैं। मौर की न्यौछावर का रुपया व डुपट्टा वर का नाई ले-जाकर डेरों में सहेज देता है। बारात वर के ग्राम/नगर में वापस पहुँचने पर, यह मौर बनाने वाली मालिन को दे दिया जाता है। फिर परिछन-कर्त्रीं महिला वर के मौर में से सात छोटी-छोटी फुनगीं तोड़ कर अपनी "गोद" में, आँचल में, ले-लेती है। यह वात्सल्य-भाव है। फिर वह वर का हाथ पकड़-कर श्रीवर को घर के अन्दर ले जाती है।

श्रीवर पाँवड़ों पर पैर रखते हुये मंडप की ओर चलना चाहते हैं; वरेंई के पुतले को पूजती हुयी 'कन्या' अपने सामने रक्खी हुई गुड़ की ढेली वर के पैरों की ओर लुढ़का देती है; मानों शची देवी से मूक प्रार्थना करती है कि मेरा इनका सम्बन्ध, सदा-सर्वदा, गुड़ की भाँति, मधुर रहे। पाँवड़े का वस्त्र और गुड़ की यह ढेली वर के नाई की होती है और उसे दे दी जाती है। और इस प्रकार सत्कारित श्रीवर मण्डप-स्थान में आ गये। इससे आगे का सब कार्य शास्त्रोक्त विधि-विधान है जो देखने और सुनने-समझने की वस्तु है। अभी भी महिलाएँ एवं बालिकाएँ विवाह-कृत्य को बड़े चाव से देखतीं हैं। सुशिक्षित पुरुष-वर्ग प्रायः दर्शन-आकांक्षी न हो कर अलग ही रहता है। अन्य समाज में पुरुष-स्त्री सभी कन्यादान-विवाह-कार्य को देखना शुभ और पुण्यद मानते हैं।

आसन, पाद्यादि व्यवस्था——मण्डप के नीचे सभी तैयारी के साथ कन्या का पिता अथवा तत्-स्थानीय अन्य व्यक्ति, जो कन्यादान करेगा, पश्चिमाभिमुख बैठा प्रस्तुत रहता है। स्मरणीय है कि आज दिन-भर पौनछक छिरकने वाला, आटा-सीधा छिरकने-वाला, मातृका-पूजन करने वाला एवं कन्या-दाता उपवास करके विवाह-कृत्य की सफलता और सौभाग्य की कामना करते हैं। कुछेक अन्य जातियों में तो आज घर के सभी व्यक्ति, हितू, रिश्तेदार आदि तब तक उपवास-पूर्वक रहते हैं जबतक वह कन्यादान के पश्चात् कन्या का लक्ष्मी-रूपी मुखचन्द्र न देख लें।

वर-सत्कार विधि——शास्त्र-प्रमाण——प्रचलित विवाह-पद्धति लिखने से पहले, तद्-विषयक शास्त्रवचनों का उल्लेख आवश्यक है। कुमारिलस्वामिप्रणीता आश्वलायन गृह्यकारिका के अध्याय १ खण्ड २० में "विवाहाङ्गो मधुपर्कः" विधि इस प्रकार उल्लिखित हैः—

यथोक्तलक्षणां कन्यामुक्ते काले समुद्वहेत् ।
स्यादाभ्युदयिकं श्राद्धं द्वितीये वक्ष्यते च तत् ॥ १ ॥
अपरेद्युः कृतस्नानोऽहत वस्त्रधृतो वरः ।
स्वलंकृतः सितच्छत्रो पदातिर्ज्ञातिबान्धवैः ॥ २ ॥
व्रतो वधूगृहं गत्वा मधुपर्केण पूजितः ।
कन्याज्ञातिभिरत्रैव मधुपर्को मयोच्यते ॥ ३ ॥
विष्टराद्युपकल्प्यैनमुपवेश्या ऽऽसने शुभे ।
तत्रोपकल्पितं पूर्वं विष्टरं त्रिर्निवेदयेत् ॥ ४ ॥
उत्तराग्रं त्वहं वर्ष्मेत्यस्मिन्नुपविशेद्वरः ।
एवमेवोत्तरेषां च पञ्चानां त्रिर्निवेदनम् ॥ ५ ॥
निवेदितेन पाद्येन पादौ प्रक्षालयेद्वरः ।
प्रक्षालयित्रे विप्राय दक्षिणाङ्घ्रिं प्रयच्छति ॥ ६ ॥
पश्चात्सव्यं तु शूद्राय पूर्वं सव्यं प्रयच्छति ।
गन्धादियुक्तमर्घ्यं च प्रतिगृह्य निवेदितम् ॥ ७ ॥
वेदिताचमनीयापामेकदेशं ततो वरः ।
उक्त्वाऽमृतोपस्तरणमसिमंत्रं पिबेदथ ॥ ८ ॥
शौचार्थाचमनं कार्यमेवेति प्राह वृत्तिकृत् ।
अवान्तरेण शौचार्थं सर्वमाचमनं त्विह ॥ ९ ॥
आनीयमानमीक्षेत मित्रस्य त्वेति मन्त्रतः ।
मधुपर्कमथा ऽऽनीतं पूर्ववच्च निवेदितम् ॥ १० ॥
देवस्य त्वेति मन्त्रेण गृह्णात्यञ्जलिना ततः ।
मधुवातास्तृचेनैनं मधुपर्कमवेक्षते ॥ ११ ॥
निदधाति च तत्पात्रं सव्ये पाणावितः परम् ।
अङ्गुष्ठोपकनिष्ठाभ्यामालोड्य त्रिः प्रदक्षिणम् ॥ १२
वसवस्त्वादिभिर्मन्त्रैर्दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ।
निमृज्याङ्गुलिलेपं तु भूतेभ्यस्त्वेति मन्त्रतः ॥ १३ ॥

त्रिरुद्गृह्य त्रिरुत्क्षिप्य भूमौ पात्रं निधाय च ।
प्राश्नात्यस्यैकदेशं तु विराजो दोह इत्यथ ॥ १४ ॥
आचम्य पूर्ववत्प्राश्य विराजो दोहमित्यथ ।
आचम्य तद्वत्प्राश्नीयान्मयि दोह इति त्वथ ॥ १५ ॥
विनियोगं च कुर्वीत शिष्टस्यास्योक्तमार्गतः ।
आचम्याथामृतापीति पिबेदाचमनीयकम् ॥ १६ ॥
आचम्याऽऽचमनीयाम्बु पिबेत्सत्यं यशस्त्विति ।
आचान्तः पुनराचामेदथ गां विर्निवेदयेत ॥ १७ ॥
ततो वरो जपेन्माता रुद्राणां दुहितेत्यृचम् ।
अथोमुत्सृजतेत्याह प्रैषं गामुत्सृजन्ति च ॥ १८ ॥
गन्धमाल्याम्बरैस्तद्वद्भूषणैः पूजयेद्वरम् ॥ १९ ॥

(इति मधुपर्कः)

अर्थ—जैसा कहा गया है (द्रष्टव्य, ६० से ६३ पृष्ठ पर) वैसे लक्षण-वाली कन्या के साथ कहे-हुये (द्रष्टव्य ८४-८५ पृष्ठ पर) मुहूर्त्त में विवाह करे। आभ्युदयिक (नान्दीमुख) श्राद्ध, (जिसका उल्लेख आगे द्वितीय-प्रकरणमें भी किया जायगा), भी अनुष्ठित करे ॥१॥ दूसरे दिन वर स्नान करके और नवीन (कोरे) वस्त्र एवं अलंकार धारण कर, सफेद पगड़ी (सित-छत्र) लगा कर, पैदल जाति-बान्धवों के साथ वधू के घर जाय ॥ २ ॥ कन्यापक्ष के लोग [वरण और] आगे कहे हुए मधुपर्क की क्रिया के साथ उसका पूजन करें ॥ ३ ॥ विष्टर (आसन के लिये कुश) पाद्य, अर्घ्यादि क्रिया सम्पन्न कर के वर को शुभासन पर बैठावे। प्रथम विष्टर प्रदान करे ॥ ४ ॥ फिर, विष्टर का अग्र भाग वरके सामने रहे, ऐसा सीधा करके उस पर "अहं वर्ष्म····आदि" मंत्र के साथ वर विराजे ; एवं इसी प्रकार पाँचो विष्टरों को देवे ॥५॥ निवेदन किये हुए पाद्य-जल से वर अपने पैर धोवे ; फिर कन्यादाता वर के पैर धोवे ; यदि कन्यादाता विप्र है तो वर पहले अपना दाहिना चरण देवे ॥६॥

पीछे बायाँ पैर देवे। यदि कन्यादाता शूद्र है तो वर पहले बायाँ और फिर दाहिना पैर देवे। फिर गन्धादि (गन्ध, दूर्वा, अक्षत, सुपाड़ी, पुष्प) युक्त अर्घ्यं (का जल) कन्यादाता निवेदन करे और वर उसे ग्रहण करे ॥ ७ ॥ इसके बाद वर निवेदित-अर्घ्यं (आचमनीय जल) लेकर "अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" इस मंत्र को बोल कर एक भाग जल से आचमन करे ॥ ८ ॥ फिर [कुमारिल भट्ट कहते हैं कि] शुद्धि के लिये आचमन करे; मतान्तर में भी शौचार्थ ही आचमन होता है ॥ ९ ॥ उपकल्पित (प्रस्तुत किया हुवा) मधुपर्क निवेदन करने पर उसे देखे ॥ १० ॥ "देवस्य त्वा" इस-मंत्र को पढ़ कर वर मधुपर्क को (अपने हाथ में) ग्रहण करे और "मधुवाता····" इन तीन मंत्रों को पढ़ते हुए मधुपर्क को भली भाँति देखे ॥ ११ ॥ इसके पश्चात, बाँये हाथ पर मधुपर्क-पात्र रक्खे और [दाहिने हाथ की] अनामिका (चौथी अङ्गुली) और अङ्गूठे से तीन बार मथन करे ॥ १२ ॥ "बसवः····" आदि तीन मंत्रो के द्वारा पूर्वादि दिशा के क्रम से भूतों के लिये मधुपर्क में से छिड़के ॥ १३ ॥ इस बार तीन बार थोड़ा-थोड़ा लेकर भूमि पर छिड़के और फिर मधुपर्क-पात्र भूमि पर रख दे। उसमें से एक भाग प्राशन (भक्षण) करे "विराजो दोह...." मंत्र के साथ ॥ १४ ॥ आचमन करके पहले की तरह (दूसरे भाग में से) "विराजो दोह ..." मंत्र के साथ भक्षण करे। पुनः आचमन करके उसी प्रकार तृतीय भाग में से "मयिदोह" मंत्र से भक्षण करे ॥ १५ ॥ शिष्ट (उत्तम) पुरुषों द्वारा कहे हुये प्रकार से विनियोग करे (मंत्र के साथ जल छोड़ दे); और "अमृतापिधानवसि स्वाहा" इस मंत्र से आचमनीय जल का पान करे ॥ १६ ॥ "सत्यं यशः" इस मंत्र से तृतीय आचमन करे; तत्पश्चात्, पुनः आचमन करके वर को कन्या दाता "गौ" तीन बार निवेदन करे ॥ १७ ॥ फिर वर "माता रुद्राणां····" मंत्र को पढ़े और "उत्सृजत तृणानि अत्तु" मंत्र

का पढ़े और तब कन्यादाता 'गोदान' करे ॥ १८ ॥ फिर गन्ध, माला, वस्त्र, आभूषण आदि से कन्यादाता वर की पूजा करे। यह मधुपर्क की विधि समाप्त हुई ॥ १८ ॥

<u>प्रचलित पद्धति</u>--वर-सत्कार--श्रीवर के मण्डप-स्थान में पहुँचने पर कन्यादाता खड़े होकर उनका स्वागत-सत्कार करता है। वर आकर पूर्वाभिमुख खड़ा होता है; कन्यादाता संकल्प आदि करके विष्टर (पच्चीस लम्बे कुशों में कलाया बाँध कर बनाया हुआ, आसन के हेतु) देता है। मंत्र है—

"ॐ विष्टरोविष्टरोविष्टरः प्रतिगृह्यताम्"

और वर "ॐ प्रतिग्रह्णामि" कह कर विष्टर ग्रहण कर, उसे भूमिपर इस प्रकार रखता है कि कुश का अग्रभाग उत्तर की ओर रहे। उसे रख कर, पहले दाहिना पैर विष्टर पर रख कर, वर पूर्वाभिमुख (पालथी मार कर) बैठ जाता है। वर-आचार्य विनियोग एवं मंत्रपाठ करते हैं—

"ॐ अहं वर्ष्मेति मंत्रस्य वामदेव ऋषिः विष्टरो देवता अनुष्टुप् छन्दः विष्टरोपवेशने विनियोगः।"

"ॐ अहं वर्ष्म सजातानां विद्युतामिव सूर्यः।
इदं तमधितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥"

[आश्वलायन गृ० सू०, अ० १ खं० २४ सू० ८]

[अर्थ—प्रकाश करने वाली वस्तुओं में जैसे सूर्य श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सजातियों में (कुल, ज्ञान व गुणों में) मैं श्रेष्ठ हूँ। जो कोई मेरे प्रति कुविचार रखता हो, उन शत्रुओं को पैरों के नीचे रखने हेतु मैं इस विष्टर पर बैठता हूँ।]

फिर कन्या-दाता पाद्य-पात्र (मिट्टी के सिकोरे में रक्खे हुए जल) को अपने बाँये हाथ पर रख, उसे दाहिने हाथ से ढक कर, वर को पाद्य निवेदन करता है।

मंत्र है :—

"ॐ पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम्"

और वर "ॐ प्रतिगृह्णामि" कह कर स्वीकृति देता है। कन्या-दाता पाद्य-पात्र भूमि पर रख कर, पात्र-जल से, पहले अपना दाहिना हाथ, और फिर अपना बाँया हाथ, भिंगो कर उनसे, दाहिने हाथ से वर का दाहिना पैर और बाँये हाथ से बाँया पैर, प्रक्षालन करता है[1]। आचार्य मंत्रोच्चारण करते हैं—

"ॐ अस्मिन् राष्ट्रे श्रियमावेश याम्यतोदेवीः
प्रतिपश्याम्पापः।
दक्षिणं पादमवने निजेस्मिन्नाष्ट्र इंद्रियं दधामि ॥
सव्यं पादमवने निजेस्मिन्नाष्ट्र इंद्रियं वर्धयामि ॥"
पूर्वमन्यमपरमन्यं पादामवने निजे।
देवाराष्ट्रस्य गुप्था अभयस्यावरुध्यै।
आपः पादावनेजनीर्द्विषं तं निर्दहंतुमे ॥"

फिर कन्या-दाता पूर्ववत् अर्घ्य के लिये जलपात्र हाथ में लेकर वर से निवेदन करता है—

"ॐ अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम"

और वर "ॐ प्रतिगृह्णामि" कह कर स्वीकृति देता है। अब वर के सन्मुख भूमि पर एक रिक्त-पात्र (सिकोरा) रख दिया जाता है। कनयादाता अर्घ्य-पात्र को वर के मौर से स्पर्श कर, सिकोरे के ऊपर वर की अंजुलि (पसे) में तीन बार पात्र से जल देता है,[2] इस प्रकार, जैसे सूर्य भगवान को अर्घ्य दिया जाता है।

१—ब्राह्मण-वर्ग में प्रथम दाहिना पैर, और क्षत्रियादि-वर्ग में प्रथम बायाँ पैर, प्रक्षालन करना चाहिये। द्रष्टव्य, आश्वलायन गृह्यसूत्र, अ० १ खं० २४ सूत्र ९-१०

२—यहाँ यह मंत्र पढ़ा जा सकता है—

"ॐ आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामानवाप्नवानि।
ॐ समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत।
अरिष्टा अस्माकं वीरा मा परासेचि मत्पयः ॥"

फिर कन्यादाता पूर्ववत् जलपूर्ण आचमन-पात्र हाथ में लेकर वर से निवेदन करता है—

"ॐ आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम्"

और वर "ॐ प्रतिगृह्णामि" कह कर उस हेतु अपनी स्वीकृति देता है। फिर कन्यादाता के हाथ से जल ले कर वर तीन बार आचमन[1] करता है। [आचमन-मंत्र "ॐ अमृतोपस्तरण मसि" पृष्ठ १६२ पर द्रष्टव्य]।

मधुपर्क—दही, मधु और घी को मिला कर मधुपर्क प्रस्तुत होता है; प्रमाण है, २ तोला दही में एक तोला शहद और एक तोला से कुछ कम घृत मिलाया जाय; मिलाने में मधु और घी की मात्रा बराबर न हो जाय। अन्य पात्रों में दही बिगड़ जाता है, इसलिये मधुपर्क काँसे के पात्र में प्रस्तुत और प्रदान करना प्रशस्त है।

अर्थ—हे जल! आप आरोग्य लाभादि के हेतु-भूत हो। मैं आप से आरोग्यता-मनोरथ लाभ करूँ। अब मैं आपको (इस प्रकार) छोड़ कर समुद्र (अन्तरिक्ष) में भेजता हूँ, जिससे अपने कारण-भूत को आप प्राप्त हों। मेरे और मेरे बन्धुओं के [वीरा] अरिष्ट [दोष, दुःख आदि] आप नष्ट कर दें।

१—निम्न मंत्र पढ़ कर भी आचमन किया जा सकता है—

"ॐ आ माऽगन् यशसा संसृज वर्चसा।
तं मा कुरु प्रियं प्रजानामधिपति पशूनामरिष्टिं तनूनाम् ॥"

अर्थ—हे जल! वरुण देव! आप मुझे यश के साथ अच्छे प्रकार से प्राप्त हों और अपने आश्रय से आप मुझे तेज-युक्त करें; पुत्र-पौत्रादि [से युक्त करके उन] का मुझे प्रेम-पात्र करें; [बहु] गवादि पशुओं का स्वामी बनावें और मेरे शरीर के अवयवों से अरिष्टों को दूर करें।

अब कन्यादाता मधुपर्क-पात्र[1] को अपने बाँये हाथ में ले कर मधुपर्क देखता हुआ कहता है—

"ॐ मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे"

और फिर उसे अपने दाहिने हाथ से ढँक कर, वर को निवेदन करते[1] हुये कहता है—

"ॐ मधुपर्कोमधुपर्कोमधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ।"

और वर उसे स्वीकार करता हुआ कहता है—

"ॐ प्रतिगृह्णामि ।"

फिर अपने दाहिने हाथ से बायें हाथ में मधुपर्क-पात्र लेता हुआ वर कहता है :—

"ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् प्रतिगृह्णामि" (यजुः, अ० १, मं० १०)

[अर्थ—हे मधुपर्कः! प्रकाशमान सूर्य के आज्ञानुरूपामोदन करने पर अश्विनी-कुमार रूपी भुजाओं से, पूष्ण-स्वरूप अपने हाथों से, तुझे वर-रूप में मैं ग्रहण करता हूँ ।]

१—आश्वलायन गृह्य-सूत्र (अ०१ खं० २४ सूत्र १ से ४ तक) के अनुसार मधुपर्क-सत्कार के योग्य पात्र हैं ऋत्विक, स्नातक, राजा, आचार्य, श्वसुर, पितृव्य (ताऊ), मामा एवं वर । इसी अध्याय के खण्ड २४ में आगे, सूत्र १३ से २६ तक में, यह मधुपर्क-विधि वर्णित है और वहीं से पद्धति-कार ने यह व्यवस्था ली हुयी ज्ञात होती है । यथा--

"मधुपर्कमाह्रियमाणमीक्षेत मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इति" ॥ १३ ॥

"देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामीति तदञ्जलिना प्रतिगृह्य सव्ये पाणौ कृत्वा मधुवाता ऋतायत इति त्र्यृचेनावेक्ष्यानामिकया चाङ्गुष्ठेन च त्रिः प्रदक्षिणमालोड्य वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा भक्षयन्त्विति पुरस्तान्निमार्ष्टि ॥ १४ ॥"

अब वर अपने बायें हाथ में मधुपर्क-पात्र रख कर, निम्न मंत्रों को पढ़ता हुआ, मधुपर्क की ओर अवलोकन करता है—

विनियोग है—

"ॐ मधुवाता इत्यारहूगणो गोतमो विश्वेदेवा गायत्री मधुपर्क वेक्षणे विनियोगः"

और मंत्र हैं—

"ॐ मधुवाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥"

(यजु०, अ० १३, मंत्र २७)

[अर्थ—हे परमात्मान् ! यज्ञ की इच्छा करने वाले हमारे लिये वायु सरस और निरोग हो कर बहे । नदियाँ सरस जल प्रदान करें । हमारे लिये औषधियाँ माधुर्ययुक्त हों ।]

"ॐ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥" (यजु०, अ० १३, मंत्र २८)

[अर्थ—हमारे लिये रात्रि निर्विघ्न व्यतीत हो और प्रभात-बेला भी निरुपद्रव हो । माता के समान रक्षक पृथ्वी-लोक हमारे लिये विषैले जन्तुओं से रहित हो और पिताके तुल्य रक्षक अन्तरिक्ष-मण्डल हमारे लिये सुखकारक हो ।]

"ॐ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँऽअस्तु सूर्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥"

(यजु०, अ० १३, मंत्र २९)

[अर्थ—हमारे लिये औषधियाँ एवं सोम माधुर्य-गुण-युक्त हों और सौरमण्डल सुखकारी हो ; सूर्य की किरणें और गौ आदि पशु रसयुक्त हों ।]

पश्चात, वर अपने दाहिने हाथ की अनामिका (अंगुली) और अँगूठे को मधुपर्क में तीन बार प्रदक्षिणावत चलाता[1] है (बिलोता है)।

अब वर (उन्हीं दो अंङ्गुलि-अंगुष्ठ द्वारा) निम्नलिखित मंत्रों से क्रमशः सब दिशाओं में मधुपर्क के छींटे देता[2] है—

पूर्व में—"ॐ वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा भक्षयन्तु ॥"

[अर्थ – गायत्री-छन्द के साथ तुम्हे (मधुपर्क को) आठो वसु देवता (प्रातः) ग्रहण करें।]

दक्षिण में—"ॐ रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेनच्छंदसा भक्षयन्तु ॥"

[अर्थ – त्रैष्टुभ्-छन्द के साथ तुम्हे एकादश रुद्र देवता (मध्यदिन में) ग्रहण करें ।]

१—पारस्कर गृहय-सूत्र में इस क्रिया के साथ निम्न मंत्र पढ़ने का बिधान है—

"ॐ नमः श्यावास्यायान्नशने यत्त आविद्धं तत्ते निष्क्रन्तामि ॥"
(पा०, का० १, क० ३, सूत्र ९)

अर्थ – हे अग्ने ! पीले वर्णवाले जठराग्ने !! तेरे लिये मैं आदर करता हूँ । इस अन्न-तुल्य मधुपर्क में यदि न खाने योग्य कुछ वस्तु (तिनका आदि) पड़ी हो, तो उसे निकाल कर फेंकता हूँ ।

उपरोक्त आश्वलायन-सूत्र में इस मंत्र अथवा क्रिया का विधान नहीं है। अपने यहाँ यह पढ़ा भी नहीं जाता ।

२—द्रष्टव्य, पृष्ठ १८८, फुटनोट में आश्वलायन गृह्यसूत्र, अ० १, खं० २४ के १४ वें सूत्र का अन्तिम भाग व १५ वाँ सूत्र, जो इस प्रकार है--

"रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्त्विति दक्षिणत
आदित्यास्त्वा जागतेनच्छन्दसा भक्षयन्त्विति पश्चाद
विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेनच्छन्दसा भक्षयन्त्वित्युत्तरतो
भूतेभ्यस्त्वेति मध्यान्निरुक्ष्य ॥ १५ ॥"

फिर, हाथ धोकर, पश्चिम में—

"ॐ आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा भक्षयन्तु ॥"

[अर्थ—जगती-छन्द के साथ तुम्हे द्वादश आदित्य देवता (सायं काल) ग्रहण करें]

एवं उत्तर में—

"ॐ विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसाभक्षयन्तु ॥"

[अर्थ—अनुष्टुभ्-छन्द के साथ विश्वेदेवा तुम्हे ग्रहण करें ।]

फिर वर मधुपर्क-पात्र के मध्य-भाग में से उसी-प्रकार लेकर ऊपर की ओर तीन बार इस मंत्र के साथ छिड़कता है—

"ॐ भूतेभ्यस्त्वा ॥"

[अर्थ—अन्य प्राणियों के लिये भी (यक्ष, राक्षसादि अन्य भूतों के लिये)]

वर अब मधुपर्क-पात्र को नीचे भूमि पर रख देता है

और फिर उस मधुपर्क में से थोड़ा-थोड़ा लेकर तीन बार निम्न-मंत्र पढ़ते हुये प्राशन[1] करता है :—

१—द्रष्टव्य, आश्वलायन गृहय-सूत्र, अ० १ ख० २४ के अगले सूत्र; यथा—

"विराजो दोहोऽसीति प्रथमं प्राश्नीयाद् विराजो दोमहशीयेति
द्वितीयं मयि दोहः पद्यायै विराज इति तृतीयम् ॥१६॥"
"न सर्वम् ॥१७॥"
"न तृप्तिं गच्छेत् ॥१८॥"
"ब्राह्मणायोदङ्ङुच्छिष्टं प्रयच्छेदलाभेऽप्सु ॥१९॥"
"सर्वं वा ॥२०॥"
"अथाऽऽचमनीयेनान्वाचामत्यमृतापिधानमसीति ।२१॥"
"सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतामिति द्वितीयम् । २२ ॥

"ॐ विराजो दोहोऽसीति"

के साथ प्रथम ग्रास,—

"ॐ प्राश्नीयाद् विराजो दोमहशीषेति"

के साथ द्वितीय ग्रास, और—

"ॐ मयि दोहः पद्यायै विराज"

के साथ श्रीवर मधुपर्क का तृतीय ग्रास ग्रहण करता है।

[अर्थ— विराट अन्न का तू सार-रूप है, जो कि संसार का पोषण करता है, विराट जो है, वह रसमय है, अमृतमय है। मुझसे उत्पन्न होने वाली सन्तति के लिये भी तू उत्तम हो।]

इस प्रकार वर तीन ग्रास मधुपर्क ग्रहण करता है; फिर निम्न-मंत्रोच्चारण-पूर्वक दो आचमन करता है।

ॐ अमृतापिधानमसि ॥१॥

ॐ सत्यं यशः श्रोर्मयि श्रीः श्रयताम्[1] ॥२॥"

[अर्थ—हे सुखप्रद जल ! तू प्राणियों का आश्रय भूत है; सब का निश्चय-रूप से पोषक है; मुझ में सत्य, यश, शोभा और कीर्त्ति स्थित हो।]

स्मरणीय है, कि बीच-बीच में, एक-एक बार प्राशन करके, वर हस्तप्रक्षालन एवं आचमन कर लेता है, ताकि पात्र का अवशिष्ट मधुपर्क उच्छिष्ट[2] न हो जाय।

१—"ॐ अमृतोपस्तरणमसि" के साथ यह दो मंत्र कृष्ण-यजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक, प्रपाठक १०, अनुवाक ३२-३४ के हैं, जिस प्रपाठक को नारायणोपनिषद और याज्ञकी-उपनिषद् भी कहते हैं।

२—पृष्ठ १६१ पर वर्णित आश्वलायन विधि इस संदर्भ में द्रष्टव्य है। १७वाँ व १८ वाँ सूत्र कहता है कि सब मधुपर्क न खाया जाय। यह पेट भर कर न खाया जाय। १९वाँ सूत्र कहता है कि अवशिष्ट मधुपर्क ब्राह्मण को दे देना चाहिये; यदि उसे ग्रहण करने वाला ब्राह्मण न मिले, तो अवशिष्ट मधुपर्क जल में छोड़ देना चाहिये। २०वाँ सूत्र कहता है कि (उस हालत में) भले ही सब खा ले। २१-२२ सूत्र आचमन-मंत्रों के हैं।

गौः-ध्यान—गुरुजी दो कुश[1] लेकर, उनमें गाँठ लगाकर, कन्यादाता और श्रीवर के आमने-सामने परस्पर जोड़े-हुये हाथों के बीच में पकड़ा देते हैं। कन्यादाता कहता है :—

"ॐ गौगौंगौः प्रतिग्रह्यताम्"

वर कहता है "ॐ प्रतिगृह्णामि"

गाँठ लगे हुए यह दो कुश, श्यामा गौ और उसके बछड़े के प्रतीक हैं। मान्यता ऐसी है कि इस प्रकार गौः-ध्यान से कन्यादाता और वर के मन की शुद्धि होती है। विनियोग है—

"ॐ गविनिवेदितायां माता रुद्राणामिति जमदग्नि ऋषिः गौदेवता त्रिष्टुप् छन्दः गौरुत्सर्जये विनियोगः"

और मंत्र है :—

"ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥"

[ऋग्वेद मं० ८, अ० १०, सूक्त १०१, श्लो० १५]

इस प्रकार मधुपर्क-विधि अपने यहाँ पूर्ण-रूपेण आश्वलायन गृह्य-सूत्र-विहित-क्रिया द्वारा ही सम्पन्न होती है।

१—आश्वलायन गृह्यसूत्र, अध्याय १ खण्ड २४, के अगले सूत्र हैं :—

"आचान्तोदकाय गां वेदयन्ते ॥ २३ ॥"

"हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हत इति जपित्वोंकुरुतेति कारयिष्यन् ॥ २४ ॥"

"माता रुद्राणां दुहिता वसूनामिति जपित्वोसुत्सृजतेत्युन्त्सक्ष्यन् ॥२५॥"

[अर्थ—हे गौः! तू एकादश रुद्रों की माता है; अष्ट-वसुओं की पुत्री है; सूर्यादिक प्रकाश व तेज के देवताओं [द्वादश-आदित्यों] की बहन है; तेरी नाभि में अमृत [रूपी दूध] का निवास है। चेतन मनुष्यों से मैं कहता हूँ कि ऐसी निरपराध और खण्डन-करने-के-अयोग्य गौ का वध मत करो।]

फिर "ॐ हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हत
मम च अमुष्य च उभयो पापं जहि"

[द्रष्टव्य, आश्व० गृ० सू०, अ० १ खं० २४ सू० २४]

[अर्थ—मेरे पापों का, मेरे पापों का [कन्यादाता और वर, दोने के] आप हरण करें।] यह कह कर उस कुश-निर्मित सवत्सा गौः को उत्तर दिशा में, "ॐ उत्सृजत तृणाण्यत्तु" कह कर, चरने के लिये, "विसृजेत्" छोड़ दिया जाता है [कुश खोल कर रख दिये जाते हैं]।

वर का खादी धारण——कन्यादाता, श्रीवर को, कन्या की ननसाल से आये हुए डाले में की नयी शुद्ध खादी समर्पित करता है।

बिनियोग है—

"ॐ युवं वस्त्राणीत्यस्य दीर्घतमा औतथ्य ऋषिः मित्रा-वरुणौ देवते त्रिष्टुप् छंदः वस्त्र-परिधारणे विनियोगः"

और मंत्र है—

"ॐ युवं वस्त्राणिपीवसावसाथे
युवोरछिद्रामंतवोहसर्गाः।
अवातिरतमनृतानि विश्वऋतेन मित्रावरुणा सचेथे॥"

श्रीवर खादी पहनने के लिये मंडप-स्थान से अलग चले जाते हैं, जहाँ वह अपने पहने हुए वस्त्र उतार कर, नवीन कोरे वस्त्र (खादी आदि) धारण कर, हवनादि कृत्य के लिये शुद्ध और प्रस्तुत हो सकें। इस बीच में मंडपस्थान में वर के गुरू कन्या के गुरू को नौ सुपाड़ी

व नौ टका पैसे देते हैं। कन्या के गुरू बरेंई के पुतले के सामने रक्खी हुयों नौ कुड़ेरियों में से प्रत्येक में [वर के गुरू द्वारा प्रदत्त सुपाड़ा व पैसों में से] एक-एक सुपाड़ी व एक-एक टका पैसा रख देते हैं और कन्या द्वारा बरेंई के पुतले में गौरि, हर एवं शची देवी की गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा आदि के साथ पूजा कराते हैं—

गुरू जी मंत्र पढ़ते हैं :—

"ॐ पार्वत्यै नमः॥ ॐ हराय नमः॥
ॐ शच्यैनमः॥"

और कन्या गंधाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा आदि से बरेंई के पुतले की पूजा करती है; एवं मौन प्रार्थना करती है (गुरू-जी मंत्रोच्चारण कर देते हैं):—

"ॐ देवेन्द्राणि नमस्तुभ्यं देवेन्द्र प्रिय भामिनी।
विवाहं भाग्यमारोग्यं पुत्रलाभं च देहि मे॥"

[अर्थ—हे इन्द्र की प्रिय पत्नी शची-देवी! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप मुझे विवाह द्वारा सौभाग्य, आरोग्य एवं पुत्र-लाभ प्रदान करें।]

कन्या इस पूजा और प्रार्थना में मौन ही रहती है। कन्या द्वारा जल व अक्षत से "ॐ विष्णुः विष्णुः विष्णुः अद्यै……मम सौभाग्यार्थं इमानि नव पात्राणि सात्कन्न सौभाग्य द्रव्य दक्षिणा सहितानि उमामहेश्वर प्रीतये ब्राह्मणेभ्यः सौवासिनीभ्यः दातुमहमुत्सृज्येत् उमामहेश्वरो प्रीयंताम्" कुड़ेरी का संकल्प हो जाने के बाद, वह कुड़ेरी बाँट दी जातीं हैं। एक-एक दोनों गुरुओं को, व अवशेष कन्यापक्ष की सात सुहागिनों को, एक-एक कुड़ेरी दे दी जाती है।

श्रीवर खादी-धारण के पश्चात् मंडप-स्थान में आकर अपना आसन ग्रहण करते है। अब कन्या का मामा, अथवा तत्-स्थानीय

पुरुष, वरैई के पुतले के सामने से सिल-सहित कन्या को लाकर वर के आसन के सामने, अलग आसन पर, पश्चिमाभिमुख बैठा देता है। [आश्वलायन गृह्यकारिका में पूर्वाभिमुख लिखा है।]

इसके उपलक्ष में "सिल-उठवाई", कन्या का "मातुल" कुछ द्रव्य, दस या पाँच रुपया, सिल पर रख देता है और कन्या-दाता उन रुपयों को ले लेता है। अब कन्यादान-विधि[1] प्रारम्भ होती है।

१—यहाँ शास्त्रोक्त विधि के साथ प्रचलित पद्धति का मिलान करना असंगत न होगा। भट्ट कुमारिल स्वामि प्रणीत आश्वलायन गृह्यकारिका, अध्याय १ खंड २१, में कन्यादान-विधि इस प्रकार उल्लिखित है :—

स्नातालंकृत कन्यायाः प्राङ्मुख्याः प्रत्यगाननः ।
ईक्षेत तण्डुलस्थाया वरस्तस्य मुखं च सा ॥ १ ॥
मुहूर्त्ते शोभने सम्यक् क्षिपेतां मुखयोर्मिथः ।
सगुडाञ्जीरकान्कन्यां वरयेदथ तां वरः ॥ २ ॥
असावमुकगोत्रस्य पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रकः ।
एतद्गोत्रामिमामस्य पुत्रीं पौत्रीं च नप्त्रिकाम्, ॥ ३ ॥
वृणेऽहं कन्यकां साध्वीं श्रीरूपामित्यतः परम् ।
वरेणैवं वृतां कन्यां तत्पिता प्रददाति ताम् ॥ ४ ॥
पुत्रायास्य च पौत्राय नप्त्रे चामुक गोत्रिणे ।
अस्मा अमुकगोत्राय पुत्रीं पौत्रीं प्रपौत्रिकाम् ॥ ५ ॥
श्रीरूपां च मया दत्तां तुभ्यं श्रीधररूपिणे ।
इत्युक्त्वोदकपूर्वां तां दद्यात्स्वस्ति पदं वदेत ॥ ६ ॥
वरोऽथ प्रतिगृह्णीयात्स्पृशेत्क इति मन्त्रतः ।
अस्मिन्नहनि यत्किंचित्कन्यादाता ततः परम् ॥ ७ ॥
गोभूहिरण्यदास्यादि तस्मैदद्यात्स्वशक्तितः ।
सघृतं क्षीरमादाय कराभ्यां कन्यकाञ्जलिम् ॥ ८ ॥

शाखोच्चार—गोत्र प्रवर वर्णन—मंडप-स्थान पूर्णरूपेण शोभित हो रहा है। पूर्वाभिमुख श्रीवर, सामने पश्चिमाभिमुख कन्या, उत्तराभिमुख पत्नी-सहित कन्या-दाता और दक्षिणाभिमुख दोनों गुरू। आस-पास दर्शनार्थी—[पुरुष तो कम ही भाग लेते हैं, पर महिलायें यथेष्ट रहतीं हैं।] कन्यादाता एवं श्रीवर, दोनों ही, गुरु एवं उपस्थित आचार्य, पुरोहित आदि को तिलक लगा कर गन्धाक्षत से पूजित करते हैं ; और गुरू-जी के हाथ पर जल, रोली, अक्षत, पुष्प, पान, दक्षिणा, आदि रख कर आचार्य-वरण करते हैं। मंत्र है—

द्विरुन्मृज्य वरः सिक्ताञ्शुक्लाञ्शाल्यक्षतानथ ।
गृहीत्वाऽञ्जलिना तस्या अञ्जलौ द्विःक्षिपेत्ततः ॥ ८ ॥
आदायाञ्जलिमाधत्ते तदञ्जल्युपरि स्वयम् ।
कन्येत्याद्याशिषः पूर्वमुक्त्वा दाता ततः परम् ॥ १० ॥
कन्यां त्वां प्रतिगृह्णात्वित्यन्तं क इति मंत्रतः ।
उपरिस्थाञ्जलौ पूर्णं हरेत्स्वर्णोदकं ततः ॥ ११ ॥
तमेव प्रतिगृह्णामीत्यन्ते मंत्रमुदीरयेत् ।
अञ्जलिस्थाक्षतान्कन्यामूर्धनि प्रक्षिपेद्वरः ॥ १२ ॥
स्वाञ्जलिस्थाक्षतान्कन्या वरमूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ।
मूर्ध्निक्षेपान्तमेवं स्यात्पुनरुन्मार्जनादिकम् ॥ १३ ॥
उन्मार्जनादिकं कुर्यात्पूर्ववत्कन्यका वरे ।
कन्येत्यादि पिता कुर्याद्वरतंत्रं वरो वदेत् ॥ १४ ॥

अर्थ—कन्या स्नानोपरांत अलंकार आदि धारण कर पूर्वाभिमुख बैठे और [उसके पटा के नीचे] अक्षत पड़े हों ; वर पश्चिमाभिमुख, सामने, बैठा हो और वर-कन्या परस्पर एक-दूसरे का अवलोकन करें ॥ १ ॥ शुभ मुहूर्त्त में भली-प्रकार एक-दूसरे के मुख पर गुड़ और जीरा छोड़ें और उसके पश्चात् उस कन्या को वर वरण (करे) ॥ २ ॥

"ॐ शिवा आपः सन्तु जलं गंधाः पान्तु सुमंगल्यंचास्तु अक्षताः पान्तु आयुष्यमस्तु पुष्पाणि पान्तु सौश्रियमस्तु ताम्बूलानि पान्तु ऐश्वर्यमस्तु दक्षिणाः पान्तु बहुदेयंचास्तु"

[अर्थात्, जल आपके हेतु कल्याण-कारी हो, रोली रक्षा-करने-वाली हो, सुमङ्गल होते रहें, अक्षत रक्षक हों, आयु बढ़े, पुष्प कल्याण-कारी हों, श्रेय की वृद्धि हो, ताम्बूल (पान) आपके ऐश्वर्य की वृद्धि करें, दक्षिणा कल्याण-कारी हो।] गुरू जी और वरण किये हुए आचार्य, कन्यादान-कर्त्ता एवं श्रीवर को, वरण-स्वीकृति में पुष्पाक्षत छिड़क कर आशीर्वाद देते हैं—

मैं अमुक-गोत्र का, अमुक का प्रपौत्र, अमुक का पौत्र और अमुक का पुत्र इस अमुक-गोत्रवाली, अमुक की प्रपौत्री, अमुक की पौत्री ओर अमुक की पुत्री ॥ ३ ॥ इस साध्वी और लक्ष्मी-रूपा कन्या का वरण करता हूँ। वर के ऐसा करने पर कन्या का पिता उस कन्या का प्रदान करे ॥ ४ ॥ कि "अमुक के प्रपौत्र, अमुक के पौत्र और अमुक के पुत्र अमुक-गोत्र-वाले इस वर को अमुक की प्रपौत्री, अमुक की पौत्री और अमुक की पुत्री ॥ ५ ॥ लक्ष्मी-रूपा इस कन्या को विष्णु-रूप तुम-वर को मैं प्रदान करता हूँ" ऐसा कह कर जल-लेकर उस कन्या का संप्रदान करे और "स्वस्ति", यह उच्चारण करे ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर वर उसे ग्रहण करते हुए उसका "क" मंत्र-पूर्वक स्पर्श करे। इस समय में कन्यादाता जो कुछ ॥ ७ ॥ गौ, भूमि, सोना, दासी आदि अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार वर को देवे; घी और दूध लेकर दोनों हाथों से कन्या की अञ्जुलि में देवे ॥ ८ ॥ वर धुले हुए स्वच्छ चावल लेकर दो बार अपनी अंजुलि से कन्या की अंजुलि में देवे ॥ ६ ॥ वर स्वयं अपनी अंजुलि को कन्या की अंजुलि

"ततः दीर्घमायुः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु ॥"

अब वर पक्ष के गुरू वर के विशेष परिचय के हेतु शाखोच्चार पढ़ते हैं :—

"हरिः ॐ प्रयत पाणिः शरणं प्रपद्ये
स्वस्ति संवाधेष्वभयन्नो अस्तु।

(यहाँ मङ्गलाचरण में भगवत् वन्दना आदि के श्लोक पढ़े जाते हैं)

अमुक* गोत्रस्य, अमुक प्रवरस्य, अमुक वेदान्तर्गत अमुक शाखाध्यायिनः। श्री कुलदेवि अमुकवरदेत्व त्प्रसादात् ॥ श्रीमन्मथुरास्थ माथुर चतुर्वेद अमुकेति ख्यातस्य अमुक शर्मणां प्रपौत्रोऽयं। (फिर इसी प्रकार अमुकस्य पौत्रोऽयं, अमुकस्य पुत्रोऽयं, कहा जाता है) पुत्रवरणां चिरंजीवीभूयात्। कन्यानामिनी अखण्ड सौभाग्यवती भूयात् ॥

* अमुक के स्थान पर, जैसा भी हो, नाम लिया जाता है।

के ऊपर रक्खे और कन्यादाता "कन्ये ममाग्रतो भूयाः" आदि आशीर्वाद-वचनों को कह कर ॥ १० ॥ वर से प्रार्थना करे कि आप कन्या को 'क' मंत्र के साथ ग्रहण करें और ऊपर वर की अंजुलि में सोना और जल देवे ॥ ११ ॥ वर "प्रतिगृह्णामि" ऐसा उच्चारण कर अपनी अंजुलि-स्थित अक्षतों को कन्या के सिर पर छोड़ देवे ॥ १२ ॥ कन्या अपनी अंजुलि-स्थित अक्षतों को वर के सिर पर छोड़े और फिर उन्मार्जन (जल से मार्जन आदि) क्रिया करे ॥ १३ ॥ पूर्ववत् कन्या वर पर उन्मार्जन करे और कन्यादाता वर से समयोचित प्रार्थना करे और वर भी समयोचित उत्तर दे ॥ १४ ॥

फिर कन्या के गुरू, उसी प्रकार, कन्या के गोत्र, प्रवर, वेद, शाखा, कुलदेवि के नाम के साथ अमुकस्य प्रपौत्री, अमुकस्य पौत्री, और अमुकस्य पुत्री, आदि वर्णन करते हुये शखोच्चार पढ़ते हैं।

इस प्रकार वर का व कन्या का तीन-तीन बार शाखोच्चार पढ़ा जाता है। आशय यह है एक कुल दूसरे कुल के बारे में सभी ज्ञातव्य विषय जान ले। और कन्यादाता वर का और वर कन्या का विशेष परिचय प्राप्त कर लें।

वर-वरण—अब कन्यादाता अपने हाथ में कलाया, रोली, अक्षत, पुष्प, सुपाड़ी, एक टका पैसा एवं जल लेकर, अपना गोत्र, प्रवर, नामादि लेकर श्रीवर से कहता है कि **"कन्यादानार्थं त्वामहं वृणे"**। वर की **"वृतोस्मि"** स्वीकृति मिलने पर कन्यादाता अपने हाथ के गन्धाक्षतादि श्रीवर के दाहिने हाथ में दे देता है और कलाया उसकी दाहिनी कलाई में बाँधता है। मंत्र है—

"ॐ यदा बध्नम् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमाना। तन्न आबध्नामि शत शारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत्॥"

[अर्थ—मैं यह शुभ कंकण तुम्हारे हाथ में बाँध रहा हूँ जिससे तुम्हें सम्पत्ति-स्वर्ण प्राप्त हो, सैकड़ों-सैकड़ों, एवं तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो, तुम सौ-वर्ष तक जीनेवाले आयुष्मान हो कर सुखी वृद्धावस्थाको प्राप्त हो।

और फिर कन्यादाता स्तुति करता हुआ श्रीवर के कहता है—

"कन्यां कनक-सम्पन्नां कनकाभरणैर्युताम्।
दास्यामि विष्णवेस्तुभ्यं ब्रह्मलोक जिगीषया॥
विश्वम्भरः सर्वभूताः साक्षिण्यः सर्वदेवताः।
इमां कन्यां प्रदास्यामि पितॄणां तारणाय च॥

[अर्थ—इस कनकसम्पन्ना, अर्थात्, स्वर्ण से युक्त, कन्या को मैं विष्णुरूप आपको दान करता हूँ ; मुझे विष्णुलोक की प्राप्ति हो। विश्वम्भर, सब प्राणियों एवं सब देवताओं की साक्षी में, अपने पितृ-गणों को तारने के हेतु, मैं इस कन्या का [आपको] दान कर रहा हूँ।]

साथ ही, कन्यादाता जल, पुष्प, गन्धादि द्वारा श्रीवर का हस्त-पूजन, पृष्ठ १६८ पर उल्लिखित "शिवा आपः सन्तु" मंत्र के साथ करता है।

गोदान-संकल्प—उनकी स्वीकृति-ज्ञापन के उपलक्ष में श्रीवर को कन्यादाता द्वारा गौ-दान का विधान है। कभी साक्षात गौ दी भी जाती थी, किन्तु अब उसके स्थान पर द्रव्य दे दिया जाता है, यथाशक्ति, यथेच्छा। संकल्प और ग्रहण के पश्चात् गोदान के यह रुपये सम्हाल कर रख लिये जाते हैं और पाँवपखरावनी के रुपयों के साथ मिला दिये जाते हैं ; जो वर का द्रव्य है। द्रष्टव्य है कि आश्वलायन गृह्यकारिका के अनुसार यह गौ-दान कन्यादान से पहले न हो कर कन्या-दान के पश्चात् होना उचित था, किन्तु अपने यहाँ पहले ही, इसी समय, हो जाता है।

पीले-हाथ (हरिद्रा-लेपन)—कन्या की माता अथवा तत्-स्थानीय अन्य महिला पिसी-हलद में पानी मिला कर, उससे कन्या के दोनो हाथ—हथेली और पीछे की ओर—पहुँचों तक पीले रँग देती है। और कन्या इस प्रकार दान में दी जाने के लिये प्रस्तुत कर दी गई।

कन्यादान—समस्त वैवाहिक कार्यक्रम में कन्यादान सम्भवतः सबसे मुख्य और हृदयस्पर्शी क्रिया है। श्रीवर के सम्मुख हाथ-पीले-की-गयी कन्या बैठी है ; उसकी दोनो कुहनी घुटनों के अन्दर हैं, व उसके हाथ जोड़ दिये गये हैं, जिनके मिले हुये दोनों अँगूठे ऊपर की

ओर अलग उठे हैं, लम्बाकार (vertical)। पार्श्व में कन्यादाता, और घाट-लहँगा पहने कन्या-दात्री (माता या तत्-स्थानीय महिला) परस्पर गाँठ जोड़े (यदि वह स्वामी-स्त्री हों), कन्या के बायीं ओर, उपस्थित हैं। कन्यादाता कन्या के उठे हुए अँगूठों को अपने अँगूठे व समस्त उँगलियों से ग्रहण किये हुये, अपने दाहिने हाथ को कन्या के जुड़े हाथों पर सीधा (horizontal) रक्खे है। कन्या के जुड़े हाथों के नीचे दान-ग्रहीता श्रीवर अपना दाहिना हाथ सीधे (horizontal) लगाये हैं। कन्यादाता के हाथ में तिल, यव, कुश, सोनेका पान-जनेऊ और सुपाड़ी हैं। माता अपने हाथ में वस्त्र से ढँकी हुयी जल की झाड़ी लेकर, उससे कन्या-दाता के हाथपर, अनवरत, न टूटनेवाली धार से, जल गिराती जाती है, जो कन्यादाता और नीचे कन्या के जुड़े हाथों को भिँगोता,श्रीवर के हाथ पर होता हुआ, तले रक्खी परात में गिरता जाता है ; और आचार्य कन्यादान का संकल्प पढ़ते हैं—

"ॐ अद्य श्री विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद् भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्रह्मणो-द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराह कल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशततमे कलियुगे तत् प्रथमचरणे भरतवर्षे भरतखण्डे जम्बूद्वीपे आर्यावर्तान्तर्गत ब्रह्मावर्तैकदेशे मध्यदेशे आदिवाराह अमुक*....क्षेत्रे बौद्धावतारे विक्रम शके केशवादि सकल देवतानां सन्निधाने अमुक नाम संवत्सरे अमुकायने श्री सूर्ये अमुक ऋतौ अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक नक्षत्रे अमुक योगे अमुक करणे अमुक राशिस्थिते

* "अमुक" के स्थान पर, जैसा भी हो, नाम लिया जाता है।

चन्द्रे अमुक राशिस्थिते भास्करे अमुक राशिस्थिते श्री देवराज गुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथाराशिस्थान स्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुण विशेषण विशिष्टायां शुभ पुण्यतिथौ शास्त्रोक्त पुण्यफलावाप्त्यर्थं शतगुणीकृत ज्योतिष्टो-मातिरात्र यज्ञफल शुभफल पुण्यफलावाप्ति कामः मम समस्त पितृणां निरतिशयानंद ब्रह्मलोकावाप्त्यादि फल-प्राप्ति पूर्वकं कन्यादान कल्पोक्तफलावाप्तये अनेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाण संतत्या द्वादशावरान् द्वादशपरान् पुरुषांश्चपवित्रीकर्त्तुं आत्मनश्च पवित्रीकर्त्तुं श्री लक्ष्मीनारायण प्रीतये अमुक गोत्रायामुक प्रवराय अमुक शर्मणे प्रपौत्राय अमुक शर्मणे पौत्राय अमुक शर्मणे पुत्राय अमुक शर्मणे विष्णुरूपिणे वराय अमुक गोत्रां अमुक प्रवरां अमुक शर्मणः प्रपौत्रीं अमुक शर्मणः पौत्रीं अमुक शर्मणः पुत्रीं अमुक नाम्नीं कन्यां यथाशक्त्यालंकृतां प्रजापति दैवतां इदं तृणेनाच्छादितमंडपे विष्णु रूपिणे वराय प्रजोत्पादनार्थं तुभ्यमहं संप्रददे ॥"

[अर्थ - श्रीविष्णु श्रीविष्णु श्रीविष्णु, भगवान महापुरुष विष्णु की आज्ञा लेकर आज ब्रह्माजी के इस द्वितीय परार्द्ध के, श्री श्वेतवाराह कल्प, वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें कलियुग के प्रथम चरण में, इस भरत-खण्ड, भरतवर्ष, जम्बूद्वीप, आर्यावर्त्त के अन्तर्गत ब्रह्मावर्त्त देश के (मध्यदेश) आदिवाराह अमुक क्षेत्र में, [सबसे

बाद का बौद्धावतार होने के पश्चात्] विक्रम, शक आदि अमुक संवत्सर में, केशव आदि सकल देवताओं की सन्निधि में, सूर्य के अमुक अयन, अमुक ऋतु, अमुक मास, अमुक पक्ष, अमुक तिथि और अमुक वार को, अमुक नक्षत्र, अमुक योग, अमुक करण, जब चन्द्र अमुक राशि में स्थित है, सूर्य अमुक राशि में स्थित हैं, देवगुरु बृहस्पति अमुक राशि में स्थित हैं एवं अन्य ग्रहादि अपनी-अपनी राशियों में यथास्थान स्थित हैं, ऐसी इस ग्रहगुण-विशिष्ट बेला और पुण्यतिथि में शास्त्रोक्त पुण्यफल-प्राप्ति[1] के हेतु, ज्योतिष्टोम व अतिरात्रि-यज्ञ का सौगुना फल पाने के हेतु, अपने समस्त पितृश्वरों को सर्वांगपूर्ण-आनन्ददायक ब्रह्मलोक की प्राप्ति के हेतु, कन्यादान-व्रत की सम्पूर्ण फल-प्राप्ति के हेतु, इस वर-कन्या से उत्पन्न होनेवाली सन्तति द्वारा अपनी बारह पीढ़ी ऊपर तक के पितृश्वरों को और होनेवाली बारह पीढ़ी को तारने व स्वयं अपनी आत्मा को पवित्र करने के हेतु, श्री लक्ष्मीनारायण जी की प्रसन्नता के हेतु, अमुक गोत्र, अमुक प्रवर के अमुक शर्मा के प्रपौत्र अमुक शर्मा के पौत्र, अमुक शर्मा के पुत्र अमुक शर्मा विष्णु-रूपी वर को, अमुक गोत्र, अमुक प्रवर के अमुक शर्मा को प्रपौत्री, अमुक शर्मा की पौत्री, अमुक शर्मा की पुत्री अमुक नाम की कन्या यथाशक्ति अलंकृत करके, प्रजापति देवता [ब्रह्मा-जी] की समुप-

---

१—कन्यादान का शास्त्रोक्त पुण्यफल वचन है :—

"कन्यादानं प्रवक्ष्यामि सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
यद्दत्वासर्वदानानाम् फलं प्राप्नोति मानवः ॥
कन्यांयेतु प्रयच्छन्ति यथाशक्ति स्वलंकृताम्।
ब्रह्मदेयां द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥
कृत्वा कन्याप्रदानं च पितरः प्रपितामहः।
विमुक्ता सर्व पापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥

स्थिति ["कलशे च मुखे ब्रह्मा"] में मैं इस तृण से छाये हुए मंडप-स्थान में प्रजोत्पादन के हेतु, विष्णु-रूप-वर, तुमको, दे रहा हूँ।

इस संकल्प के साथ अपने हाथ के जल-अक्षत-पुष्पादि श्रीवर के हाथ में देकर, कन्या का हाथ वर के हाथ के सम्मुख, वर द्वारा ग्रहण किये जाने के हेतु करते हुऐ कन्यादाता कहता है—

"ॐ प्रतिगृह्यताम"

और कन्या के हाथ को ग्रहण करते हुए वर कहता है।

"ॐ प्रतिगृह्णामि। स्वस्ति"

कन्यादान ग्रहण——"ॐ प्रतिगृह्णामि" कह कर वर ने वचन से स्वीकृति दे दी; अब वधू को कुश द्वारा स्पर्श करके क्रिया-रूप में स्वीकार करना अभीष्ट है। अतः उसके हेतु विनियोग है—

"ॐ क इदमिति मंत्रस्य प्रजापति ऋषिः को देवता गायत्री छन्दः कन्याभिमर्शने विनियोगः"

और मंत्र है :—

"ॐ क इदं कस्माअदात्कामः कामायादात् कामोदाता कामः प्रतिग्रहीता कामं समुद्रमाविशकामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णातु। धर्मप्रजासिद्ध्यर्थं कन्यां प्रतिगृह्णामि ॥"

[अर्थ—यह कौन है! किसने इसे मुझे दिया? काम* ही दाता है और काम ही प्रतिग्रहीता। हे काम! यह तेरा ही द्रव्य है; तू ही सबका कारणभूत वर्षा है। दाता आकाशरूप है जो इसे दे रहा है;

---

* 'काम' का अर्थ—कामना, कान्ति, शोभा, इच्छा भी है। यह शब्द कम्=कन्ती धातु से बनता है।

पृथ्वी-रूप प्रतिग्रहीता इसे ग्रहण कर रहा है [भावार्थ है, कि दाता आकाश रूप है, वधू वृष्टि रूप है और वर पृथिवी रूप है—इन तीनों के कारण ही उद्भिज् सृष्टि की उत्पत्ति होती है।] धर्म और प्रजा-सिद्धि के लिये मैं इसे ग्रहण कर रहा हूँ।]

कन्यादाता स्तुति करता है—

"गौरीं कन्यामिमाम् विप्र यथाशक्ति विभूषितां।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय॥ १॥
कन्ये ममाग्रतोभूयाः कन्ये मे देवि पार्श्वयोः।
कन्ये मे सर्वतो भूयास्त्वद्दाना न्मोक्षमाप्नुयाम्॥ २॥
मम वंश कुले जाता पालितावत्सराष्टकम्।
तुभ्यं विप्र मया दत्ता पुत्र पौत्र प्रवर्धनी॥ ३॥
यस्त्वया धर्मश्चरितः कर्त्तव्यश्चानया सह।
धर्मे चार्थे च कामे च नातिचर्या त्वया क्वचित्॥ ४॥"

[अर्थ— हे श्रीवर! गौरी-तुल्य इस कन्या को यथाशक्ति विभूषित करके मैंने यथानाम गोत्र के अमुक शर्मा वर, आपको, दिया; आप इसे अपने आश्रय में लें॥ १॥ कन्या मेरे सन्मुख है, कन्या मेरे अगल-बगल चारो ओर सर्वत्र हैं और इस कन्यादान से ही मोक्ष प्राप्त होती है॥ २॥ अपने वंश व कुल में उत्पन्न हुयी इस कन्या का मैंने पालन पोषण किया है और हे विप्र (वर)! वह कन्या आज मैंने आप को दे दी। (आप-दोनों) पुत्र-पौत्रादि से वृद्धि को प्राप्त हों। जो भी आप धर्म-कार्य करेंगे, उसमें अपनी इस पत्नी को साथ रक्खेंगे। धर्म, अर्थ और काम के विषय में कभी आप इसकी अवहेलना न करेंगे।

और वर प्रतिज्ञा करता है:—

"अहं नातिचरिष्यामीह यदुक्तं भवता ततः।
धर्मार्थकामकैः कार्यैर्देहच्छायेव सर्वदा॥"

[अर्थ—जैसा आपने कहा, मैं धर्म, अर्थ और काम के सम्बन्ध में देह की छाया की भाँति इसे साथ रक्खूँगा और कभी इसकी अवहेलना न करूँगा।]

अब श्रीवर कुश-द्वारा कन्या की दाहिनी कुक्षि छूता है। विनियोग है:—

"ॐ यत्कक्षीवां संवननं विश्वेदेवा अनुष्टुप् वधू कुक्ष्यभिमर्शने विनियोगः।"

और मंत्र है—

"ॐ यत्कक्षीवां संवननंपुत्रो अंगिरसा भवेत्।
तेननोद्य विश्वेदेवाः सप्रियां समजीजनन्॥"

[अर्थ—जिस प्रकार अंगिरा-पुत्र कक्षीवान विवाह द्वारा समृद्ध हुये, हे विश्वेदेवा! उसी प्रकार इस प्रिया (पत्नी) से विवाह कर मैं भी समृद्धि को प्राप्त हूँ।]

फिर गुरु-जी कलश से पवित्र जल काँसे के पात्र में लेकर विनियोग कराते है:—

"ॐ अनाधृष्टमित्यस्य वामदेव ऋषिः आपो देवता बृहती छन्दः उदकाभिमंत्रणे विनियोगः॥

और फिर वर उस कलश जल से कुश द्वारा वधू पर मार्जन करता है। मंत्र है:—

"ॐ अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजो अभिशस्तिपाः।
अनभिशस्त्यं च सा सत्यमुपगेषां स्वितेमाधाः॥"

[अर्थ—जिस प्रकार इन्द्रादिक देवता असुरों पर सर्वदा विजयी हैं, उसी प्रकार निंदित कर्मों पर मैं विजयी हूँ और इस विजय-कार्य में यह पत्नी मेरी सहयोगिनी हो।]

["ब्रह्मकर्म समुच्चय" में उल्लेख है कि अब कांस्य-पात्र के जल में सोना, कुश, दूर्वा और गूलर के पत्ते डाल दिये जाते हैं ;] और वर कुश से वधू पर उस जल से अभिषेक (मार्जन) करता है।

विनियोग है :—

"ॐ आनः प्रजामितिचतसृणां सूर्यासावित्री आद्या
जगती द्वितीयात्रिष्टुप् अंत्येद्वे अनुष्टुभौ
अभिषेके विनियोगः ॥"

और मार्जन मंत्र हैं—

"ॐ आनः प्रजांजनयतु प्रजापति
राजरसाय समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मंगलीः पतिलोकमाविश
शंनो भवद्विपदे शं चतुष्पदे ॥"

"ॐ अघोरचक्षुर पतिघ्न्येधि
शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीर सूर्देवकामा स्योना शं नो भवद्विपदे शं चतुष्पदे ॥"

"ॐ इमांत्वमिंद्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि ॥"

"ॐ सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननांदरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु ॥"

ऋग्वेद, मं० १० सूक्त ८५, मंत्र ४३ से ४६]

[अर्थात्, प्रजापति की कृपा से हम पुत्र-पौत्रवान हों ; अर्यमा-देव हमें वृद्धावस्था पर्यंत दीर्घजीवी करें। हे वधू! तुम अमंगल-रहित होकर पतिगृह में प्रवेश करो और द्विपद (कुटुम्ब के मनुष्य व भृत्य आदि) व चतुष्पद (चौपाये पशुओं) के लिये मङ्गलवान हो।

हे वधू! तुम शान्त-नेत्रों वाली, शुभद्रष्टा, सौभाग्यवती एवं पतिव्रता हो। पशुओं के लिये तुम अहितकर न हो और उदार-चित्त व तेजवती हो। निडर वीर पुत्रों की तुम जन्मदात्री हो और देवताओं की उपासिका, आस्तिक विचारोंवाली, हो। द्विपद और चतुष्पदों के लिये तुम मंगलमयी हो।

हे इन्द्र! इस पत्नी को श्रेष्ठ पुत्रों वाली एवं ऐश्वर्य कारी बनाओ। इससे मेरे दश पुत्र हों और वह, ग्यारहवें मुझ पति के साथ, सुखी रहें।

हे वधू! तुम अपनी सेवा व प्रेम से अपनी गृहस्थी के स्वजन, ससुर, सासु, ननद एवं देवर आदि को, वश में करने में समर्थ हो।]

फिर मार्जन अभिषेक का विनियोग है :—

"ॐ समुद्र ज्येष्ठा इति चतसृणां वसिष्ठ आपस्त्रिष्टुप् मार्जने विनियोगः।"

और मंत्र है—

"ॐ समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्या-
त्पुनानायंत्यनि विशमानाः।
इन्द्रोया वज्री वृषभोरराद्ता आपो देवी रिहमामवंतु ॥
ॐ या आपो दिव्या उतवास्त्रवंति
खनित्रिमा उतवायाः स्वयंजाः।
समुद्रार्थायाः शुचयः पावकास्ता आपो देवी रिहमामवंतु।
ॐ यासां राजावरुणोयाति मध्ये
सत्यानृते अवपश्य ज्जनानां।
मधुश्चुतः शुचयोयाः पावकास्ता
आपो देवी रिहमामवंतु ॥

ॐ यासु राजा वरुणो यासु सोमो
विश्वेदेवा या सूर्ज मदंति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता
आपो देवी रिहमामवंतु ॥"

उधर उपस्थित महिलायें "हो रामा" की साक्षी देकर, कुटुम्ब के सभी स्वर्गीय पूर्व-पुरुषों के नाम लेकर बड़ाई करतीं हुईं "यजन सँजोयो जसरथ-जू के ढोटा ज्यों जन लोग सिहाई" के करुण-काँपते-स्वरों में, "कम्पन लाग्यो हाथ कौ गड़ुआ कम्पी-है कुश की डार" के साथ, याद दिलातीं हैं, कि "गउअ कौ दान नित होइ मोरे बाबुल धिय को दान दुहेतू"—सच है, कन्यादान से इहलोक व परलोक दोनों का ही लाभ हित है, अथवा यों कहा जाय कि दी हुई कन्या और लेने वाले जामाता दोनों का ही हित निहित है।

रुँधे हुए कण्ठ से कन्यादात्री माता कन्या के दाहिने कान में तीन बार कहती है "तू मेरे द्वारा दान की गई (मयापिदत्ता)" ; जैसे कन्या की सब स्वच्छन्दता को नये सुखमय भार से दबा देने की उसे याद दिला रही हो।

उपस्थित व्यक्तियों की आखों का जल आँचल में ; और झाड़ी से न टूटने वाली धार से गिराया हुआ कन्यादान का जल नीचे रक्खी हुई परात में एकत्र होता रहता है। परात का एकत्र जल सम्हाल कर परात में ही रख दिया जाता है। इसी से पाँव-पखरावनी होती है।

कन्यादान का यह "दुहेतू" कार्य, आज के शिक्षित युवकों को भले ही कुछ अटपटा सा लगे, परन्तु हिन्दू-क़ानून ने पिता-माता को अपनी सन्तान को दान में देने का अधिकार जायज़ माना है ; और इसी प्रकार आर्य-पिता, अथवा अधिकारी-माता, अपने पुत्र को भी दान में देकर दूसरे का "दत्तक-पुत्र" कर दे सकती है।

कितना ही करुण अथवा ऊपरसे कठोर देख पड़े, किन्तु दान-रूप में देने की बजाय और किसी प्रकार अपनी कन्या दूसरे व्यक्ति को सुन्दरतापूर्वक दी ही कैसे जा सकती है ? कन्या का एवज़ लेकर देना, अथवा कन्या जिस किसी से चाहे उससे विवाह करने की छूट पर उसे जोख़िम उठानेके लिये छोड़ देना, आदि, विवाह के अन्य सभी प्रकारों से आर्य-ब्राह्म-विवाह अभी भी बहुत अच्छा और सभ्य-संस्कृत है, यह सभी मानते हैं।

यहाँ विशेष ध्यान देने की बात यह है कि अभी तक के सभी कार्यों में कन्या मौन रही है ; सब कार्यों का कर्त्ता कन्यादाता ही है ; फिर इससे पहले आग्यौनी में "जयमाल" का जलसा करा देने से, उससे आगे होने वाले यह सब कार्य क्या निरर्थक और शून्य नहीं हो जाते ? फिर कन्यादान के लिये स्थान ही कहाँ है, आवश्यकता ही क्या है ; कन्या ने जयमाल डाल कर स्वेच्छा से वरण सम्पन्न कर ही लिया। भले ही "जयमाल" के बाद लाजा होम, सप्तपदी आदि अनुष्ठित करा दिये जाँय, पर कन्यादान नहीं हो सकता। वह 'ब्राह्म' न होकर गन्धर्व विवाह हो जायगा, क्योंकि 'ब्राह्म' में कन्यादान-क्रिया आवश्यक है।

यदि विवाह के लिये लग्न-शोधन में ग्रहादि-दोष के कारण ग्रह-शान्ति के लिये कुछ "दान" बताया गया हो, तो उसकी सामिग्री प्रस्तुत करके, वह वर अथवा कन्या, जैसा भी बताया गया हो, द्वारा कन्यादान से कुछ पहले ही सम्पन्न करा दिया जाता है।

कन्यादान के बाद कन्या की "वधू" संज्ञा हो गयी।

गोदान, आदि—कन्यादान जैसा बड़ा कार्य और गृह-यज्ञ सम्पन्न करने के उपलक्ष में कन्यादाता आचार्य, गुरु आदि को यथाशक्ति गोदान-द्रव्य, और उपस्थित ब्राह्मणों को 'भूयसी' दक्षिणा देता है। पहले कन्यादान की परात में से जल लेकर कन्यादाता एवं कन्यादात्री विष्णु-रूप श्रीवर व लक्ष्मीस्वरूपिणी वधू के पैर "पखारते" हैं और

यथाशक्ति द्रव्य श्रीवर को निम्न मंत्र के साथ "पाँव-पखरावनी" में भेंट करते हैं—

"ॐ अद्य कृतस्य कन्यादान कर्मणः सांगता सिद्ध्यर्थं गोनिष्क्रयी भूद्रव्यं अमुक गोत्रायामुक शर्मणे विष्णु रूपाय वराय तुभ्यमहं संप्रददे।"

पाँवपखरावनी के साथ दान-सांगता के पैसे परात के जल में छोड़ दिये जाते हैं। स्मरणीय है कि यह न्यौछावर के नहीं, दान-सांगता के पैसे हैं जो वर के गुरू को मिलते हैं। इनकी संख्या प्रति रुपया एक पुराना पैसा के हिसाब से होना चाहिये। साथ ही, हाथ में गन्धाक्षत-जल लेकर, कन्यादाता "यथा काले" ब्राह्मण-भोजन कराने का संकल्प करता है। लोकरीति के अनुसार यह कार्य लगे हाथों बारात जिमा कर पूरा कर दिया जाता है।

संकल्प है—

"ॐ अद्य कृतस्य कन्यादान कर्मणः समृद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्णता सिद्ध्यर्थं यथासंख्याकान् ब्राह्मणान् यथाकाले अहं भोजयिष्ये॥"

आचार्य को गोदान इस मंत्र के साथ दिया जाता है:—

"ॐ अद्य कृतस्य कन्यादान कर्मणः सांगता सिद्ध्यर्थं तत्सम्पूर्ण फल प्राप्त्यर्थं इदं गोनिष्क्रयी भूद्रव्यं अमुक गोत्रायामुक शर्मणे आचार्याय तुभ्यमहं संप्रददे॥"

इसी प्रकार ब्राह्मणों को "भूयसी" दक्षिणा इस संकल्प के साथ दी जाती है:—

"ॐ अद्य कृतस्य कन्यादान कर्मणः सांगता सिद्ध्यर्थं न्यूनातिरिक्त दोषपरिहारार्थं भूयसी दक्षिणां नानानाम गोत्रेभ्योब्राह्मणेभ्यः विभज्यदातुमह-मुत्सृज्ये॥"

बहन, बेटीं कन्या-दाता पर "आरता" [आरार्तिक] और "निछावर" आदि करतीं है; लड्डू आदि नैवेद्य उन दोनों—कन्यादाता और कन्यादात्रा—के "हाथ धरे" जाते हैं और मंडप-स्थान में उन दोनों का आज का कार्य समाप्त हो आता है। आगे का कार्य विवाह-होम[1] है।

१—यहाँ विवाह-होम का शास्त्र-विधान देख लेना असंगत न होगा। कुमारिल भट्ट कृत आश्वलायन गृह्यकारिका, अध्याय १ खंड २२ में, इस विवाह-होम की क्रिया इस भाँति लिखी है:—

"आत्मनो दक्षिणे पार्श्वे वधूं तामुपवेश्य च।
उपलेपादि कुर्वीत हविर्भुक्स्थापनान्तकम्॥ १॥
अग्नेः पश्चात्प्रतिष्ठाप्य दृषदं सोपलामथ।
उदकुम्भं निधायाग्नेः प्रागुदीच्यामतः परम्॥ २॥
आज्याधिश्रयणान्तं स्यादन्वाधानादि पूर्ववत्।
आज्येन सह लाजानां पर्यग्निकरणं भवेत्॥ ३॥
त्रिः प्रोक्षणं भवेत्तेषां केवलोत्पवने सति।
इध्माभिधारणान्तं स्यादाज्याद्य्‌ुद्वासनादिकम्॥ ४॥
वधूदक्षिणहस्तेन समन्वारब्ध एव सन्।
कुर्यादाधार पर्यन्तं चौलोक्ताज्याहुतित्रयम्॥ ५॥
अत्राऽऽज्यभागौ नैवेष्टावित्युक्तं पूर्वमेव तु।
हुत्वा त्वमर्यमेत्यन्यां प्रजापत इतीतराम्॥ ६॥
अथोन्नतमुखीं कुर्याल्लज्जयाऽवनताननाम्।
प्राङ्मुख्या उपविष्टायास्तिष्ठन्प्रत्यङ्मुखः स्वयम्॥ ७॥

अग्नि-स्थापन (विवाह होम)——अब कन्या को सिल पर से उठा कर वर के दाहिनी ओर पूर्वाभिमुख बैठाया जाता है। लोढ़ा सहित सिल अपने पूर्व-स्थान से उठा कर कन्या की पीठ-पीछे रख दी जाती है। वेदी के लिये शुद्ध मिट्टी और पात्रासाधन के हेतु सिकोरा, डबुआ आदि पात्र लाये जाते हैं। वर, आचमन, प्राणायाम आदि करके, देश-काल संकल्प करता है और उसके द्वारा गणपति-पूजन सम्पन्न कराया जाता है। अब वर की ओर की यदि कोई सुहागिन स्त्री हो तो वह, और न हो तो कन्या की ओर की सुहागिन बहन, भाभी आदि, रँगे हुये पीले चावल, एक रुपया और एक सुपाड़ी, वधू के अंचल में बाँध कर, उससे वर के डुपट्टे की पनत्थ की "गाँठ बाँध" देती है। गुरु-जी अट्ठारह अंगुल लम्बी-चौड़ी, कूर्मपृष्ठवत्, वेदी बनाते हैं और हवन के लिये यज्ञ-पात्रासाधन करते हैं। एक सुहागिन (मौन रहती हुयी) एक सिकोरे में धुआँ-रहित(निर्धूम)

उत्तानेनाथवा नीचेनोत्तानस्य करस्य तु।
अङ्गुष्ठादि तु गृह्णीयाद्‌गृभ्णामीत्येतया ततः॥ ८॥
उपस्तृणाति भार्याया अञ्जलौ प्रोक्षति वरः।
वधूभ्राताऽथवा भ्रातृस्थानो लाजान्द्विरावपेत्॥ ९॥
पंचावत्ती वरः स्याच्चेदञ्जलौ तांस्त्रिरावपेत्।
भ्रातृस्थानः पितृव्यस्य मातुलस्य च यः सुतः॥ १०॥
मातृष्वसुः सुतस्तद्वत्सुतस्तद्वत्पितृष्वसुः।
वरः शूर्पगतांल्लाजानवत्तांश्चाभिघारयेत्॥ ११॥
पठेच्चार्यमणं मन्त्रमथ पत्नी स्थिता सती।
कुर्वन्त्यञ्जलिविच्छेदमङ्गुल्यग्रैर्जुहोति तान्॥ १२॥
हविर्भुगक्षः कुम्भो तु दृषदं प्रदक्षिणम्।
वधूं परिणयेन्मन्त्रममोऽहमिति वै जपेत्॥ १३॥

अग्नि, जहाँ तक सम्भव हो कंडे की, दूसरे सिकोरे से ढक कर, ले आती है और उसे वेदी से अग्नि (पूर्व-दक्षिण) कोण की ओर रख देती है। गुरु-जी जल और गोबर से वेदी की शुद्धि करते हैं। फिर स्रुवा के पृष्ठ-भाग अथवा इध्मा से वर के द्वारा वेदी पर दक्षिण से उत्तर की ओर दोनों सिरों पर दो रेखा, उनके सिरों को मिलाती हुयी पूर्व से पश्चिम दो रेखा, और फिर उन रेखाओं से अलग पूर्व से पश्चिम, तीन छोटी- छोटी रेखा खिचवायीं जातीं हैं। अब वर अग्नि-स्थापन के हेतु विनियोग करता है :—

इममश्मानमारोहेत्येतेन प्राङ्मुखीं वधूम्।
उभाभ्यामपि पादाभ्यामारोप्य दृषदं पुनः॥ १४॥
उपस्तृत्यादि तद्वत्स्याद् दृषदारोहणान्तकम्।
वरुणंन्विति होमोऽञ्जल्युपस्तृत्यादि पूर्ववत्॥ १५॥
अश्मारोहण पर्यन्तं हवनं पूषणं न्विति।
प्रजापतिं चतुर्थ्यन्तं स्वाहायुक्तं वरः स्मरेत्॥ १६॥
शूर्पकोणेन शिष्टांस्तानभ्यात्मं जुहुयाद्वधूः।
जयन्तस्त्वाह हवनं चतुर्थं वरकर्तृकम्॥ १७॥

अर्थात्, अपने दाहिने पार्श्व में वधू को बैठा कर, उपलेपादि (हाथ पीले) करके अग्निस्थापन आदि हवन-कार्य करना चाहिये॥१॥ अग्नि के पीछे सिल-लोढ़ा रक्खे; अग्नि के उत्तर-पूर्व में जल-पूर्ण कलश रक्खे॥ २॥ घी को पिघलने के लिये [अलग] अग्नि पर रक्खे; आज्य के साथ धान की खीलों का पर्यग्निकरण करे॥ ३॥ तीन बार आज्य से खीलों का प्रोक्षण करे; इध्म को अभिघारण करे और आज्य को भली भाँति देख ले; और यदि उसमें कुछ बाहरी चीज़ पड़ी हो तो उसे निकाल दे॥ ४॥ वधू अपने दाहिने हाथ से वर के हाथ का स्पर्श करे और वर तीन आहुति आज्य की देवे॥ ५॥ यहाँ पर बचा हुआ आज्य-भाग जल में न डाला जाय। अग्नि, अर्यमा

"ॐ जुष्टोदमूना आत्रेयो वसु श्र तोग्निस्त्रिष्टुप् एहूयग्ने राहूगणो गौतमोऽग्निस्त्रिष्टुप् अग्न्यावाहने विनियोगः ॥"

फिर वर द्वारा वेदी पर अग्नि-स्थापन किये जाने का मंत्र है—

"ॐ जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण
इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या
शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥

[ऋग्वेद, मं० ५, सू० ४, मंत्र ५]

ॐ एह्यग्न इहहोता निषीदादब्धः सुपुर एता भवानः ।
अवतांत्वारोदसी विश्वमिन्वे
यजामहे सौमनसाय देवान ॥"

और प्रजापति के लिये यह आहुतियाँ [प्रदान करे] ॥ ६ ॥ पश्चात् वर पश्चिमाभिमुख बैठ कर पूर्वाभिमुख बैठी हुई वधू का लज्जा-से-झुका-हुआ मस्तक उठा कर ऊपर करे ॥ ७ ॥ वधू के हाथों को उठा कर वर अंगुष्ठादि पकड़ कर अपने हाथ से वधू के हाथों की अंजुलि बनवावे ॥८॥ वधू की अंजुलि को वर जल से सिंचन करे और वधू का भ्राता अथवा तत्स्थानीय अन्य व्यक्ति दो बार [धान की खीलें वधू की अंजुलि में डाले] ॥ ९ ॥ यदि पंचप्रवरी वर हो तो तीन बार वधू की अंजुलि में खीलें डाली जाँय । यदि भ्राता के स्थान में सहोदर न हो कर चचेरा अथवा ममेरा भाई हो, तब ॥१०॥ वर सूप में स्थित खीलों को धृत से सींच दे ॥ ११ ॥ फिर स्थित हुयी वधू "अर्यमणं" मंत्र को सुने और अंजुलि-बँधे हाथों को बीच में से अलग करके अग्नि में खीलों की आहुति दे ॥ १२ ॥ अब अग्नि-कुण्ड और जल-कुम्भ की, सिल-लोढ़ा हटा कर, "अमोहं" मंत्र के साथ [वर-वधू] प्रदक्षिणा करे ॥१३॥

[ऋग्वेद,* मं० १, सूक्त ७६, मंत्र २]

[अर्थ—हे अग्ने ! आप विद्वान हैं । घर आये हुये अतिथि के समान पूजनीय होकर आप हमारे इस यज्ञ में पधारें । हमसे शत्रुता-व्यवहार वर्त्तने वाले मनुष्यों का ऐश्वर्य छीन कर आप हमारे शत्रुओं का विनाश करें । हे अग्ने ! यहाँ, इस यज्ञ में, होता-रूप से विराजिये । आप पीड़ा-रहित होते हुये हमारे लिये अग्रणी बनें । सर्व-व्यापक आकाश-पृथिवी आपकी रक्षा करें । और महान प्रसाद प्राप्त करने के हेतु हम आपके माध्यम से देवताओं का अर्चन करें । [ऐसी कृपा कीजिये ।]

इस मंत्र द्वारा ऊपर ढकन वाले सिकोरे पर वर अक्षत छोड़ कर, उसे अलग कर देता है और फिर अग्नि-स्थापन का विनियोग करता है—

"ॐ समस्त व्याहृतीनां परमेष्ठो प्रजापतिः प्रजापतिर्बृहती अग्नि प्रतिष्ठापने विनियोगः ॥"

अब निम्न-मंत्र से वर वेदी पर अग्नि-स्थापन करता है (सिकोरे से वेदी पर स्थापित कर देता है)—

"ॐ भूर्भुवःस्वः । योजक नामाग्निं प्रतिष्ठापयामि ।"

जिन पात्रों में अग्नि लायी गयी है, अग्निस्थापन के पश्चात्, उनमें जल, रोली और अक्षत डाल दिये जाते हैं ; फिर बाँस की फुँकना[२] द्वारा अग्नि प्रज्वलित कर दी जाती है । हवनार्थ समिधा को हलके छींटे से मार्जन-पूर्वक शुद्ध कर लिया जाता है। फिर अग्निमूर्ति के स्वरूप का ध्यान-विनियोग है :—

* उपरोक्त मंत्र में "निषीदादब्धः" के स्थान पर "नि षीददब्धः" पढ़िये।

२—यज्ञाग्नि को वस्त्र, पंखा और मुख की वायु से प्रज्वलित करने का निषेध है। यथा—

"जुहुताश्वाय वर्णेन पाणि शूर्प पटादिनः
न कुर्यादग्नि धमनं तथाच व्यजनादिक ॥
मुखे नैवधवेदग्नि मुखदग्नि रजायतः ॥"

"ॐ चत्वारि श्रृङ्गा गोतमो वामदेवोग्निस्त्रिष्टुप्
अग्निमूर्त्ति ध्याने विनियोगः।"

और निम्न मंत्रों से यज्ञाग्नि का ध्यान किया जाता है :—

"ॐ चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्याँ आ विवेश॥

[ऋग्वेद, मं० ४, सू० ५८, मंत्र ३]

सप्तहस्तश्चतुःश्रृंगः सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः।
त्रिपात्प्रसन्नवदनः सुखासीनः शुचिस्मितः॥
स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधां तथा।
विभ्रद्दक्षिणहस्तैस्तु शक्तिमन्नं स्रुचं स्रुवं॥
तोमरं व्यजनं वामैर्घृतपात्रं च धारयन्।
मेषारूढ़ो जटाबद्धो गौर वर्णो महौजसः॥
धूम्रध्वजो लोहिताक्षः सप्तार्चिः सर्वकामदः।
आत्माभिमुखमासीन एवं रूपो हुताशनः॥
एषहिदेवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वोहि जातः सउगर्भेअंतः।
सविजायमानः सजनिष्यमाणः प्रत्यङ्मुखास्तिष्ठत
विश्वतोमुखः॥

अग्ने वैश्वानर शांडिल्य गोत्र मेषध्वज।
प्राङ्मुख योजक नामाग्नि मम सन्मुखो वरदो भवः।"

[अर्थ—यज्ञात्मक अग्नि के चार सींग, सवन-रूप तीन पाद, ब्रह्मोदन एवं प्रवर्ग्य-रूप दो शिर, तथा छन्द-रूप सात हाथ हैं। यह

देव सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। मंत्र, कल्प और ब्राह्मण, इन तीन बन्धनों में बंधे यह घोर शब्द करते हैं। ऐसे अग्नि-देव निज-रूप में मरण-धर्मा मनुष्यों के बीच विद्यमान हैं।

सात हाथ, चार सींग, सात जिह्वा, दो शिर और तीन पैर वाले अग्नि-देव सर्वदा पवित्र, प्रसन्न-वदन एवं आनन्द से विराजते हैं। स्वाहा-देवी इनके दाहिनी ओर, और स्वधा देवी बाँयी-ओर, शोभित हैं। इनके शक्तिवान दाहिने हाथ में स्रुची और स्रुवा और बाँये हाथ में तोमर, व्यजन के साथ घृत-पात्र शोभित है। जटाओं को बाँध कर यह गौर-वर्ण, महायशस्वी, धूम्र-ध्वज, लाल नेत्रों वाले यज्ञाग्नि देव मेषा पर आरूढ़, सभी के द्वारा पूजित और सभी की कामनाओं को पूर्ण करते हुए शोभायमान हैं। हे यज्ञाग्नि देव! मुझ यज्ञाकांक्षी के (इस वेद-मंत्र द्वारा) आवाहन पर आप पधारें और हे विश्वतोमुख! पूर्वाभिमुख आप विराजें। हे अग्ने! हे वैश्वानर! हे शांडिल्य-गोत्रीय योजक-नाम वाले मेषध्वज अग्निदेव! आप कृपया मेरे सन्मुख, पश्चिमाभिमुख हों, और मेरे लिये वर-दायक हों।]

फिर वेदी के ईशान-कोण में पल्लवयुक्त पूर्व-स्थापित कलश की पूजा होती है। अब वर अपने दाहिने हाथ में समिधा की दो लकड़ियाँ ले कर घी में डुबाता है; और जल-अक्षत लेकर संकल्प-सहित अन्वाधान का विनियोग करता है।

"ॐ विष्णुः....अद्य........ (देश कालौ संकीर्त्य) क्रियमाणे विवाह होमे देवता परिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये। अस्मिन् नन्वाहितेग्नौ जातवेद समग्निमिध्येन प्रजापतिं प्रजापतिचाधार देवते आज्येन अत्र प्रधानं त्रिरग्निं पवमानं सकृदग्निं प्रजापतिं चाज्येन अर्यमाग्निं वरुणाग्निं पूषाग्निं प्रजापतिं च लाज द्रव्येग चतुर्वारं

सूर्यासावित्रीमाज्येन शेषेणस्विष्टकृतमग्निमिध्मसंनहनेन रुद्रमयासमग्निं देवान् विष्णुं अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च एताः प्रायश्चित्तिदेवताः आज्येन ज्ञाताज्ञात दोषनिवर्हणार्थं त्रिवारमग्निं मरुतश्चाज्येनांग देवताः प्रधानदेवताः सर्वाः सन्निहिताः संतु एवं सांगोपांगेन कर्मणा समिद्भिः सद्यो यक्षे॥ ॐ समस्त व्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिः प्रजापति र्बृहती अन्वाधान समिद् होमे विनियोगः।"

फिर घी से भींगी समिधा निम्न मंत्र के साथ अग्नि में छोड़ दी जातीं हैं।

"ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम।"

अब पान में पानी ले कर वर ईशानकोण से दाहिनावर्त्तों (दक्षिण की ओर) वेदी के चारो ओर "ॐ परिसमूहनं परिसमूहनं परिसमूहनं" तीन बार पान से जल छिड़कता है; और फिर उसी प्रकार "ॐ पर्युक्षणं पर्युक्षणं पर्युक्षणं" तीन बार उलटी ओर (उत्तर की ओर) पान से जल छिड़कता है। इससे भूमि व स्थान की शुद्धि हो जाती है। इसमें वर को मौनधारण किये रहना चाहिये।

अब १६ कुश लेकर वेदी से आठो दिशाओं में दो-दो कुश इस प्रकार बिछाता है कि कुश का अग्र व पृष्ठभाग क्रमशः आगे-वाले कुश के अग्र व पृष्ठभाग से मिलता रहे। फिर प्रत्येक कुश-द्वय के बीच में, पीले चावलों की छोटी-छोटी ढेरी रख दी जातीं हैं, ताकि कुश अपने स्थान पर स्थित रहें।

यज्ञ-पात्र, जैसे प्रोक्षणी (जल-पात्र), प्रणीता (दूसरा जल-पात्र) आज्य-पात्र (घी का पात्र), १५ इध्मा, बर्हिषी (कुश बांध कर बनायी पिण्डी), स्रुवा आदि अग्नि के उत्तर की ओर वेदी से कुछ

दूरी पर रक्खे जाते हैं। प्रोक्षणी व प्रणीता-पात्र, एक के पश्चात् दूसरा, उलटे करके रख दिये जाते हैं। प्रोक्षणी से पूर्व की ओर इध्मा और बर्हिषी एक साथ रक्खे जाते हैं। प्रणीता से पश्चिम में आज्य-पात्र रक्खा जाता है; और उससे उत्तर में उलटा करके स्रुवा रक्खा जाता है। उसके पश्चिम में बाँस के सूप (जिसमें चमड़ा, तार अथवा ताँत न लगे हों), अथवा सूप के अभाव में बाँस की पलरिया, में धान की खीलें रक्खी जातीं हैं। एक लोटा शुद्ध जल रक्खा जाता है व पूजन-सामिग्री यथा-स्थान रक्खी जाती है। इस प्रकार कुशांडी की विधि पूरी कर लेने के पश्चात् वर, बाँये हाथ में रोली से रंगे चावल लेकर, दाहिने हाथ से, कुश-द्वयों पर लगी चावल की ढेरियों पर, अक्षत छोड़ कर उपस्थान करता है। मंत्र हैं :—

ॐ विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः। ॐ सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि। ॐ अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानः। ॐ अस्माकं बोध्यविता तनूनाम्। ॐ यस्त्वा हृदा कीरिणा-मन्यमानः। ॐ अमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि॥ ॐ जातवेदो यशो अस्मासु धेहि। ॐ प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्। ॐ यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवःस्योनम्। ॐ अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं न शते स्वस्ति॥

[ऋग्वेद, मं० ५, सूक्त ४, मंत्र ९-११]

[अर्थ—हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव! जैसे मल्लाह नाव द्वारा सबको नदी के पार लगाता है, वैसे ही आप हमको समस्त बाधाओं से पार लगाइये। अत्रि के समान हमारे स्तोत्र द्वारा नमस्कृत होकर आप हमारे अङ्गों की रक्षा करने वाले बनिये। हे अमर अग्ने! हम मनुष्य मरणधर्मा हैं। स्तुतियों से परिपूर्ण हृदय

से नमस्कार करते हुये हम बारम्बार आपका आह्वान करते हैं। हे ऐश्वर्यों के स्वामिन! हमको अन्न और यश प्रदान कीजिये। हे अग्ने! हम आपके अविनाशी स्वरूप का ध्यान करते हुये सन्तानों से युक्त होकर सदा स्थिर मन वाले रहें। हे ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले अग्निदेव! जिस उत्तम कर्म करने वाले यजमान पर आप कृपा करते हैं, वह यजमान अश्व, सन्तान, बल, गवादि पशु एवं अक्षय ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।]

वर शेष अक्षतों को माथे से लगा कर छोड़ देता है और हाथ धो लेता है।

प्रधानाज्य होम—प्रथमोक्त इध्मा की १५ लकड़ियों को हाथ में लेकर, उनसे बँधा कलाया खोल कर अलग[1] रख कर, उनके दोनों छोर व मध्य में घी लगाया जाता है। फिर उन्हे हाथ में लेकर, जल छोड़ कर, मंत्र द्वारा विनियोग किया जाता है :—

"ॐ अयंत इध्मेति मंत्रस्य वामदेवो ऋषिः जातवेदाग्निर्देवता त्रिष्टुपछन्दः इध्म हवने विनियोगः।

फिर घृत-लगी लकड़ियों को इन मंत्रो के साथ अग्नि में हवन किया जाता है।

"ॐ अयंत इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान्प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।

जातवेदसेग्नय इदं न मम्॥"

[आश्वलायन गृह्य-सूत्र, अ० १, खं १०, सू० १२]

अब स्रुवा में घी लेकर हवनाग्नि में आहुति दी जाती हैं; वायव्य से अग्नि-कोण की ओर, मन में प्रजापति का स्मरण करके,—

"ॐ प्रजापतय स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम्॥"

१—इध्म-बन्धन सम्हाल कर रखना चहिये। आगे इसकी आहुति होगी।

नै ऋत् से ईशान-कोण की ओर—

"ॐ प्रजापतय स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम्॥"

* उत्तर की ओर—

"ॐ अग्नये स्वाहा। अग्नये इदं न मम॥"

* दक्षिण की ओर—

"ॐ सोमाय स्वाहा। सोमाय इदं न मम्॥"

फिर प्रधान-हवन का विनियोग इस मंत्र द्वारा किया जाता है।

"ॐ अग्न आयूंषीति तिसृणां शतं वैखानसाः ऋषयः अग्निः पवमानो देवता गायत्री छन्दः विवाह कर्म प्रधानाज्य होमे विनियोगः।"

प्रधानाज्य-होम की पाँच आहुतियों के क्रमशः मंत्र हैं—

"ॐ अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥

अग्नये पवमानाय इदं न मम॥ १॥

"ॐ अग्नि ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा।

अग्नये पवमानाय इदं न मम॥ २॥

ॐ अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयिपोषं स्वाहा।

अग्नये पवमानाय इदं न मम॥ ३॥

[ऋग्वेद, मं० ६, सू० ६६, मंत्र १६, २०, २१]

[अर्थ—हे सोम! तुम हमारे रक्षक हो। असुरों को हमसे दूर भगाओ। हमको रस और अन्न प्रदान करो। स्वाहा। यह [आहुति]

---

* "ब्रह्मकर्मसमुच्चय" के मतानुसार "आज्य भागौ नस्तः"; यह दो आहुति न दी जानी चाहिये। आश्वलायन गृह्य सूत्र, अ० १, खं० १०, सूत्र १४ "उत्तरमाग्नेयं दक्षिणं सौम्यम्" प्रमाणानुसार यह आहुतियाँ दी जानी चाहिये।

पवमान अग्निः के हेतु है, हमारे नहीं ॥ अग्नि देवता ऋषियों, ऋत्विजों, चारो वर्ण वाले मनुष्यों और निषाद के हितैषी हैं। उन्ही अग्नि से हम अन्न और धनादि माँगते हैं। यह [आहुति] अग्निः पवमानः के हेतु है, हमारे नहीं ॥ हे अग्ने! तुम सुन्दर कर्म वाले हो, हमको तेजस्वी बनाओ और गौ तथा पुत्रादि प्रदान करो। यह [आहुति] अग्निः पवमानः के हेतु है, हमारे नहीं।]

फिर विनियोग है—

"ॐ त्वमर्यमा इति मंत्रस्य वसुश्रुतोग्निस्त्रिष्टुप् छंदः विवाह प्रधानाज्य होमे विनियोगः।"

और आहुति-मंत्र है—

"ॐ त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां
नाम स्वधावन् गुह्यं बिभर्षि।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभि-
र्यद्दम्पती समनसा कृणोषि। स्वाहा ॥
अग्नय इदं न मम ॥ ४ ॥

[ऋग्वेद, मं० ५, सूक्त ३, मंत्र २]

[अर्थ—हे अग्ने! आप कन्याओं के अर्यमा अर्थात् विधानकर्त्ता के तुल्य हैं और गोपनीय नाम धारण करने वाले हैं। आप [हम] पति-पत्नी को समान-मन वाले बनाते रहें, इस हेतु हम मित्रवत् आपको घी द्वारा आहुति देते हैं।]

और पाँचवी आहुति प्रजापति-देव की है। विनियोग है:—

"ॐ प्रजापतेति हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् विवाह प्रधानाज्य होमे विनियोगः।"

और आंज्य-आहुति मंत्र है—

"ॐ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो
अस्तु वयं स्याम् पतयो रयीणां। स्वाहा ॥
प्रजापतय इदं न मम ॥ ५ ॥

[ऋग्वेद, मं० १०, सू० १२१, मंत्र १०]

[अर्थ—हे प्रजापते। इन उत्पन्न पदार्थों को आपके सिवा अन्य कोई अपने वश में नहीं कर सकता। हम जिस कामना से आपका यज्ञ कर रहे हैं, हमारी वह कामना पूर्ण हो; एवं हम महान ऐश्वर्य के स्वामी हों।]

पाणिग्रहण—वधू का अङ्गुष्ठ-सहित दाहिना हाथ अपने हाथ में ग्रहण कर, वर, वधू को अपने सामने खड़ा करता है। स्मरणीय है कि वर-द्वारा वधू का साङ्गुष्ठ-कर, पूरा हाथ, पकड़ा जाना चाहिये। गृह्यसूत्रों के वचन हैं (देखिये पृष्ठ १११-११२) कि यहाँ केवल अग्रभाग, अर्थात् उँगलियाँ, पकड़ने से लड़कियों ही को सन्तति होती है, केवल अँगूठा पकड़ने से पुत्रों ही की सन्तति होती है; और अँगूठा के साथ पूरा हाथ, वहाँ तक जहाँ उलटी तरफ़ रोम प्रारम्भ होते हैं, पकड़ने से पुत्र और पुत्री दोनों की सन्तति होती है।

यहाँ प्रथम बार, बराबर-से कर्त्री-रूप में, वधू वर के साथ होती है। "जयमाल" की प्रथा अनुष्ठित करनी ही हो, तो उसका अवसर[1] यहाँ है, इससे पहले कदापि नहीं।

१—इस संदर्भ में शास्त्र-प्रमाण भी द्रष्टव्य है। कुमारिल भट्ट प्रणीत आश्वलायन गृह्यकारिका, प्रथम अध्याय के २१ वें प्रकरण "कन्यादान" में यहाँ लेख है:—

पाणि-ग्रहण का विनियोग है :—

"ॐ गृभ्णामीति सूर्या सावित्री सूर्या सावित्री त्रिष्टुप् वधू पाणिग्रहणे विनियोगः ।"

और पाणिग्रहण का मंत्र है—

ॐ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं-त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥

[ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त ८५, मंत्र ३६]

[अर्थ—हे वधू ! तुझे सौभाग्यवती बनाने के हेतु मैं तेरा हाथ पकड़ (पाणिग्रहण कर) रहा हूँ । स्थायी-रूप से मुझे स्वामी-रूप में प्राप्त-करती हुयी तू वृद्धावस्था तक सुखी रहे । भग, अर्यमा और पूषा देवताओं ने तुझको मेरे हेतु भार्या-रूप में प्रदान किया है ।]

"कन्या शिरस्थ माल्यस्य गृहीत्वा कौसुमं दलम् ।
सघृतं क्षीरसंमिश्रं कुर्यात्तिलकमुत्तमम् ॥
वरः कन्या ललाटे च कन्या वरशिरस्स्रजः ।
पुष्पस्य दलमादाय क्षीराज्याक्तं वरस्य तु ॥
ललाटे तिलकं कुर्यादच्चितैव मिथो मुखम् ।
कण्ठे मिथः शुभे माल्ये दम्पती प्रतिमुञ्चतः ॥

अर्थात्, कन्या अपने सिर की माला और दल युक्त पुष्प हाथ में ले, फिर घी-दूध मिश्रण [गंध] से वर के माथे पर उत्तम तिलक करे । इसी प्रकर वर कन्या के ललाट पर, और कन्या वर के ललाट पर, घी-दूध-मिश्रित-गंध से तिलक करें और पुष्प आदि से परस्पर एक-दूसरे को सम्मानित करें । ललाट पर तिलक करके भली भाँति अक्षतादि लगा कर, वर-कन्या परस्पर अपने गले की माला बदलें, वधू अपनी माला वर को पहनावे और वर अपनी माला वधू को पहनावें ।

लाजाहोम—भाँवरि—पाणिग्रहण के पश्चात् वर-वधू के हाथ, जल द्वारा, प्रक्षालित करा (धुलवा) दिये जाते हैं । वधू का भाई, अथवा तत्-स्थानीय पुरुष बिना ताँत-चमड़ा लगे सूप में, धान की खीलें [लाजा] लेकर, वधू के दक्षिण पार्श्व में, उत्तराभिमुख, खड़ा हो जाता है । श्रीवर उस लाजा पर स्रुवा से घृत डालते हैं, ताकि वह हवन-योग्य साकल्य हो जाय । स्मरणीय है कि यह लाजा ही रहे, धान नहीं, क्योंकि छिलका-सहित धान की अग्नि में आहुति नहीं दी जाती । कुछ गृह्यसूत्रों में लाजा के साथ सूखे शमी-पत्र (छेंकुर के पत्ते) मिला कर सूप में लेने का लेख है । आश्वलायनाचार्य जी ने शमी-पत्र का उल्लेख नहीं किया, इसी लिये चतुर्वेदी-ब्राह्मणों में केवल लाजा लेकर खड़े होने की प्रथा है । हवनाग्नि प्रज्वलित है । लोढ़ा सहित सिल वधू के पीछे स्थित है । हवन सदैव प्रज्वलित अग्नि में ही करणीय है ।

वधू अपने हाथों को मिलाकर अञ्जुलि बनाती है । शास्त्र-वचन के अनुसार वर को वधू के नीचे हाथ मिला कर अञ्जुलि बनानी चाहिये । अञ्जुलि में सब उङ्गलियाँ परस्पर मिली रहतीं हैं ताकि उसमें गिराया हुआ लाजा नीचे न गिरे ।

सूप में से दो मुट्ठी[1] लाजा लेकर वधू का भाई वधू की अञ्जुलि में भरता है ; श्री-वर स्रुवा से सूप एवं अञ्जुलि के लाजा को घी से सिंचित करते हैं ; और वधू अञ्जुलि से हवनाग्नि में आहुति प्रदान करती है । लाजा-होम का विनियोग है :—

"ॐ अर्यमणं नु वामदेवोऽर्यमाग्निरनुष्टुप् विवाह प्रधान लाज होमे विनियोग :"

१—वर यदि पंच-प्रवरी हो तो वधू का भाई वधू की अञ्जुलि में तीन-मुट्ठी लाजा डालता है । चतुर्वेदी-ब्राह्मणों में केवल भार्गव-गोत्रीय १२ अल्लें (देखिये पृष्ठ ६५) ही पंच-प्रवरी हैं ।

और आहुति, जो बाँयी ओर अंजुलि टेढ़ी करके दी जाती है ; उसका मंत्र है :—

"ॐ अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत ।
स इमां देवोऽर्यमा प्रेतो मुंचातु ना मुतः । स्वाहा ॥
अर्यम्णोग्नय इदं न ममः ॥

[आ० गृ० सू०, अ० १, खं० ७, सूत्र १३]

[अर्थ—अग्नि-देव की पूजा के साथ अर्यमा-देव इस कन्या को पितृ-कुल से अलग करके पति-कुल से मिला दें ।]

लाजा-होम की प्रथमाहुति के पश्चात् आगे-आगे वधू और पीछे-पीछे वर, धर्मग्रन्थि में बँधे हुए, चल कर कलश-सहित हवनाग्नि की परिक्रमा करते हैं । यह प्रथम भाँवरि है ; मंत्र है—

"ॐ अमोहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोहं द्यौरहं पृथिवी त्वं सामाहमृक्त्वं तावेह विवाहावहै । प्रजां प्रजनयावहै संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्य मानौ जीवेव शरदः शतम्॥"

[आश्वलायन गृ० सू०, अ० १, खं० ७, सूत्र ६]

[अर्थ—हे वधू ! जैसे मैं ज्ञानपूर्वक तुम्हें ग्रहण कर रहा हूँ, उसी-प्रकार तुम भी ज्ञान पूर्वक मुझे ग्रहण करो । मैं सूर्य के समान हूँ, तुम पृथ्वी के समान हो ; मैं सामवेद के समान हूँ, तुम ऋग्वेद के समान हो ; इस लिये हम परस्पर विवाह कर रहे हैं । हम उत्तम सन्तत्ति को प्राप्त हों, हम परस्पर एक-दूसरे में रुचि-प्रेम रखते हुये, सुन्दर-विचारों-से युक्त हो, सौ वर्षों तक जीते रहें ।]

भाँवरि-परिक्रमा समाप्त करके वधू अपने आसन के सामने आती है और वहाँ रक्खी पत्थर की सिल पर पैर रख कर खड़ी होती है । वर, वधू के पार्श्व से होकर, अपने स्थान—पटा—पर आ जाता है और वधू के शिलारोहण का मंत्र बोलता है :—

"ॐ इममश्मानमारोहाश्मेव त्वं स्थिरा भव ।
सहस्व पृत नायतोऽभितिष्ठ पृतन्यत ॥"

[आश्वलायन गृह्यसूत्र, अ० १, खं० ७, सूत्र ७]

[अर्थ—हे वधू ! इस पत्थर [की सिल] पर चढ़ ; और जैसे यह पत्थर दृढ़ और स्थिर है, उसी प्रकार तू दृढ़ और स्थिर [मति की] हो । यदि कोई अन्य हममें कलह की कामना करे, तो तू [दृढ़-मति रह कर उसकी कुचेष्टा को] विफल-मनोरथ कर । हम और तू आपस में परस्पर एक दूसरे के वशीभूत रहें ।]

इस प्रकार प्रथम भाँवरि सम्पन्न होने पर वधू की माता, अथवा तत्-स्थानीय महिला, वर को बूरे से भरा सवस्त्र पात्र [भँवरीला] भेंट करती है ; प्रत्यक्षशः आशय है, कि मैं तुम-दोनों को आशीर्वाद देती हूँ, कि तुम-दोनों सदा अन्न-वस्त्र और धन-धान्य से भरे-पूरे रहो ; और तुम्हारे परस्पर के सम्बन्ध सदैव बूरे की भाँति मधुर-मीठे रहें ।

फिर दूसरी लाजा-आहुति वरुण-देव के हेतु है । भाई-द्वारा दो-मुट्ठी खीलें वधू की अञ्जुलि मे डाली जातों हैं, वर उन्हें स्रुवा द्वारा घृत-से सिंचित करता है ; और वधू पूर्व वत् आहुति प्रदान करती है ।

विनियोग है :—

"ॐ वरुणं नु वामदेवो वरुणाग्निरनुष्टुप् विवाह प्रधान लाज होमे विनियोगः ।"

और आहुति-मंत्र है :—

"ॐ वरुणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत ।
स इमां देवो वरुणः प्रेतो मुंचातुनामुतः । स्वाहा ॥
वरुणाग्नय इदं न मम ॥"

[आ० गृ० सू०, १ ॥ ७ ॥ १३]

[अर्थ—अर्यमा के स्थान पर वरुण देवता करके शेष प्रथम मंत्र की भाँति] पहली-भाँवरि की भाँति द्वितीय-भाँवरि, उसी-मंत्र से, फेरी जाती है; और वधू उसी मंत्र के साथ शिलारोहण करती है। फिर वर को भँवरीला भेंट किया जाता है।

तीसरी लाजा-आहुति पूषण-देव के हेतु है। भाई द्वारा, सूप में से, दो-मुट्ठी खीलें वधू की अञ्जुलि में डाली जातीं हैं, वर स्रुवा द्वारा उन्हें घृत-से सिंचित करता है; और वधू पूर्ववत् आहुति प्रदान करती है।

विनियोग है—

"ॐ पूषणं नु वामदेवः पूषाग्निरनुष्टुप् विवाह प्रधान लाज होमे विनियोगः।"

और मंत्र है—

"ॐ पूषणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत।
स इमां देवः पूषा प्रेतो मुंचातुनामुतः। स्वाहा॥
पूष्णेग्नय इदं न मम॥
[आ० गृ० सू०, १॥७॥१३]

फिर प्रथम-दो भाँवरि की भाँति तृतीय-भाँवरि, उसी मंत्र से, फेरी जाती है और वधू उसी मंत्र के साथ शिला-रोहण करती है। वर को इस उपलक्ष में तृतीय-बार भँवरीला भेंट किया जाता है।

यही तीन स-मंत्र[1] स-आहुति भाँवरें हैं। जो कहते हैं कि आर्य-ऋषियों ने स्त्रियों को हवन करने का अधिकार नहीं दिया, वह देख

१—पारस्कर गृहय-सूत्र, काण्ड १, कंडिका ६ में, इन आहुतियों के क्रमशः निम्न मंत्र हैं:—

"ॐ अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत।
स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा॥
इदमर्यम्णे, अग्नये इदं न मम॥१॥"

सकते हैं कि लाजा-आहुति द्वारा यहाँ वधू ही हवन-कृत्य सम्पन्न करती है। मंत्राधिकार वर को है।

अब प्रजापति के हेतु वर-द्वारा आहुति प्रदान की जाती है। अवशिष्ट खीलों-सहित-सूप को वधू का भाई वर को दे देता है; श्रीवर सूप का मुँह अपनी ओर करके, उसे टेढ़ा कर, सूप के कोने से, अवशिष्ट खीलों की घृत-सहित आहुति हवनाग्नि में प्रदान करते हैं। मंत्र है:—

"ॐ प्रजापतय स्वाहा। प्रजापतय इदं न मम॥"

शिखा विमोचन—वधू के केश माँगरों (माङ्गल्य) में गुहे गये थे; और तब से आज तक उसी प्रकार वेणी-बद्ध हैं। अब श्रीवर उसकी लट खोलने के लिये प्रस्तुत होकर, उसका विनियोग करते हैं—

अर्थ - कन्यायें जिस पूजनीय अर्यमा-देव की पूजा करतीं हैं, वह अर्यमा-देव मुझे पितृ-कुल से अलग करें और पति-कुल के साथ मिला दें।

ॐ इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका।
आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयोमम स्वाहा।
इदमग्नये इदं न मम॥२॥

अर्थ—लाजाओं से हवनाग्नि में आहुति देने वाली यह नारी [पतिके] समीप कहती है कि मेरा पति आयुष्मान और दीर्घजीवी हो; और मेरे ज्ञातीय कुटुम्बी धन-धान्य से समृद्धिशाली हों।

"ॐ इमान लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव।
मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियꣳ स्वाहा॥
इदमग्नये इदंन मम॥३॥"

अर्थ—हे पति-देव! यह मैं आपकी समृद्धि के लिये इन खीलों की हवनाग्नि में आहुति दे रही हूँ। अग्नि-देव की कृपा से मेरा और आपका परस्पर अनुराग (प्रेम) सदा बना रहे।

"ॐ प्रत्वामुंचामीति द्वयो सूर्यासावित्री द्वितीयावनुष्टुप शिखाविमोचने विनियोगः।"

और निम्न मंत्र से प्रथम दाहिने पार्श्व की, और फिर बांये पार्श्व की लट खोलते हैं :—

"ॐ प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्येन
त्वाबध्नात्सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां
त्वा सह पत्या दधामि।"

[ऋग्वेद, मं १०, सूक्त ८५, मंत्र २४]

[अर्थ—हे वधू! सूर्य ने तुम्हें जिस पाश से बाँधा था, उस वरुण-पाश से मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ। यज्ञों के स्थान में तथा

१—इस विषय में भट्ट कुमारिल स्वामि प्रणीत आश्वलायन गृह्यकारिका, अध्याय १, खण्ड २३, में उल्लेख है—

"यदि बद्धे शिखे बद्ध्वा देशधर्मादिना ततः।
प्रत्वामुञ्चामि मंत्रेण दक्षिणां तु विमुञ्चति ॥ १ ॥
प्रेतोमुञ्चामि मन्त्रेण तत्तूरामपि मुञ्चति।
शिखे वरस्य बद्धे चेत्तूष्णीमिव विमुञ्चति ॥ २ ॥"

अर्थात्, यदि देश की प्रथानुसार वधू की दो शिखा बँधी हों, तो "प्रत्वामुचामि" मंत्र के साथ दाहिनी लट को खोल दे ॥ १ ॥ फिर "प्रेतोमुंचामि" मंत्र के द्वारा दूसरी बांयीं शिखा को भी खोल दे। अगले आधे श्लोकार्थ में मतभेद है। सीधा अर्थ है कि यदि वर की शिखा भी बँधी हो तो उसे भी चुप, अमंत्रक, खोल लेवे ॥ २ ॥ किन्तु चूँकि वर की शिखा से कुछ मतलब नहीं, श्लोकार्थ है वधू की शिखा खोलने के कृत्य में वर मौन रहें।

अन्य सुकार्यों में अरिष्ट-रहित मैं पतिभाव से तुम्हारे साथ [ही] रहूँगा।]

"ॐ प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥"

[ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त, ८५, मंत्र २५]

[अर्थ—पितृकुल से [इस] कन्या को मैं पृथक करता हूँ और पति-कुल में भली-भाँति प्रतिष्ठित करता हूँ। हे इन्द्र! यह कन्या सुन्दर भाग्य वाली और श्रेष्ठ सन्ततिवती हो।]

वचन—गुरू-जी भाषा में भली भाँति समझा कर सात वचन[1] पति द्वारा पत्नी को दिलाते हैं; और पाँच वचन पत्नी द्वारा पति को दिलाते हैं। गुरू-जी कह देते हैं कि हर-गौरी विवाह में भगवान शिव और माता पार्वती इन 'वचनों' में आबद्ध हुए थे, किन्तु पता नहीं कि गुरू-जी के इस ज्ञान का आधार-लेख कहाँ है। अस्तु! वह वचन इस प्रकार हैं। पति द्वारा पत्नी को वचन—

१—इस संदर्भ में एक जापानी प्रथा भी उल्लेखनीय है। विवाह के दूसरे दिन सवेरे, माता अपनी नव-विवाहिता बेटी को बारह उपदेश इस प्रकार देती है :—

(१) हे कल्याणी! विवाह के बाद अब तुम मेरी पुत्री नहीं रहीं। अभी तक तुम जिस प्रकार अपने माता-पिता की आज्ञाओं का पालन करती थीं, वैसे-ही अब अपनी ससुराल में सास-ससुर की आज्ञा का पालन करना।

(२) आज से तुम्हारे स्वामी ही तुम्हारे सर्वस्व हैं। स्मरण रहे! पति के सामने सदैव नम्र और विनीत बनी रहना, यही स्त्री का सर्वश्रेष्ठ गुण है।

(१) धर्म-कार्य और यज्ञ-कार्य सम्पन्न करने में आप सर्वदा मुझे अपने साथ रक्खेंगे।

(२) पुण्य-कर्म (यथा, कार्त्तिक-स्नान आदि), देव-दर्शन, तीर्थयात्रादि, शुभ-कर्म सम्पन्न करनें में आप सर्वदा मुझे अपने साथ रक्खेंगे।

(३) उपनयन, विवाहादि शुभ संस्कारों की क्रिया सम्पन्न के योग में, आप सर्वदा मुझे अपने साथ रक्खेंगे; विशेष कर यज्ञान्त-अभिषेक के समय।

(४) चारो दिशाओं में अपने पुरुषार्थ से जो धन आप उपार्जित करेंगे, उसे मेरे पास ही रक्खेंगे।

(५) प्रजा, अर्थात् पुत्र-पौत्रादि व अनुचर, भृत्य, गृहपशु आदि का, आप सुचारु रूप से पालन-पोषण करते रहेंगे।

---

(३) सास से सदा निष्कपटता का व्यवहार रखना; और सदैव उनकी आज्ञाओं का पालन करना।

(४) अपने पति के चरित्र पर कभी भी सन्देह न करना। ऐसा सन्देह तुम्हारे कौटुम्बिक सुख में कलह उत्पन्न कर देगा, अतएव सदा इससे बचना। पति के किसी कार्य पर क्रोध न करना। सहनशीलता धारण करके पति को कोमल वचनों द्वारा ही समझाना।

(५) अधिक वाचाल न होना। अधिक बोलना बुरी बात है। पड़ौसियों के सम्बन्ध में कभी बुरे विचार न रखना।

(६) बड़े सवेरे उठना; और घर के काम में लग जाना। रात्रि को सबके बाद सोना। दिन में कभी न सोना।

(७) पचास-वर्ष की आयु तक सभा-सोसाइटी में अधिक समय तक शामिल न होना; अपने आपको बुरी आदतों से सदा बचाना।

(८) ज्योतिषियों के चक्कर में न पड़ना। यह हरी-भरी गृहस्थी में अनेक सन्देह पैदा कर, दुःख, कलह और चिन्ता पैदा कर देते हैं।

(६) ऋतु-अनुकूल वस्त्र, आभूषण एवं खाद्यादि से आप मेरा समुचित पोषण करते रहेंगे।

(७) मेरे द्वारा कोई भूल या अपराध हो जाने पर, आप सखा-भाव से, एकान्त में समझा कर, मुझे क्षमा कर देंगे; सबके सामने मेरी भर्त्सना न करेंगे।

बदले में पति भी पत्नी से पाँच वचन लेता है:--

(१) निर्जन वन उद्यान में, गर्मी की दुपहरी में, अथवा जाड़े की रात्रि में, तुम अकेली न जाओगीं।

(२) मद्यपान किये हुये अथवा पागल मनुष्य, और मतवाले हाथी व वन्य-पशु, के सामने तुम न जाओगीं।

(३) पिता के घर [भी] तुम बिना बुलाये न जाओगीं।

(४) किसी से माँगे-हुये वस्त्राभूषण तुम न पहनोगीं; जो कुछ अपने घर का है, उसी में सन्तोष करोगीं।

(५) वृथा-हास्य आदि शीलभंग के कार्य तुम न करोगीं।

---

(९) अपनी गृहस्थी की मुखिया बन कर, घर के काम-काज को भली-भाँति सम्हालना। सदा किफ़ायत से ख़र्च करना।

(१०) तुम्हारा विवाह नयी युवावस्था में हुआ है; अतएव युवकों के सम्पर्क से अपने आपको सर्वदा बचाये रहना।

(११) भड़कीली और पतली पोशाक न पहनना। सदैव साफ़-सुथरे और साधारण वस्त्र पहनना।

(१२) अपने पिता के वंश, पद-मर्यादा अथवा धन का अपनी ससुराल में गर्व न करना।

नवविवाहित पत्नियों के अत्यन्त हित के उपदेश इनमें निहित हैं, जो भारतवर्ष के लिये भी पूरे-पूरे लागू हो सकते हैं। इसके साथ-साथ पति-देव को भी अपने योग्य कर्त्तव्यों का ध्यान रखना आवश्यक है।

विवाह को इक़रार-नामा मानने वाले व्यक्ति, परस्पर दिये इन "वचनों" पर दृष्टिपात करें। गृह-शान्ति और परस्पर-प्रेम-रक्षा के क्षेत्र में यह "वचन" कितने अच्छे सूत्र हैं।

और अब वर-वधू आर्य-विवाह के सर्व-मान्य दूसरे-महत्वपूर्ण अनुष्ठान—सप्तपदी[१]—के लिये प्रस्तुत हैं।

सप्तपदी——यज्ञ-वेदी के उत्तर-पूर्व, कुछ दूर, एक स्थान पर, परस्पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर चावल की सात छोटी-छोटी ढेरी लगा दी जातीं हैं। धर्मग्रन्थि में बद्ध वधू, वर की आज्ञा पर, अपने आसन से उठ खड़ी होती है; और उस स्थान पर आती है, जहाँ चावलों की ढेरी लगायीं गयीं हैं। वर कहता है—

१—सप्तपदी एवं उसके पश्चात् होने वाली विधि भट्ट कुमारिल स्वामि प्रणीत आश्वलायन गृह्यकारिका, अ० १, खं० २२ में इस प्रकार विहित है—

अभ्युत्क्रमयतीशान्यां वधूं सप्त पदानि च।
सा चाभ्युत्क्रमयेत्पूर्वं दक्षिणं पादमात्मनः ॥ १ ॥
इष इत्यादिभिर्मन्त्रैरनुषक्तैर्भवादिना।
सप्तमे क्रा(क्र)मिति तत्स्थः शिरसी संनिधाय च ॥ २ ॥
अथः कुम्भाम्भसा ते च शिरसी अवसिञ्चति।
आज्येन स्विष्टकृद्धोमं कृत्वा शेषं समापयेत् ॥ ३ ॥
होमादारभ्य यच्चैत्सा वाचं दृष्ट्वा ध्रुवादिकान्।
जीवपत्नीति सा वाचं विसृजेच्च ततः परम् ॥ ४ ॥
दंपत्योरतआरभ्य गृहवेशीयहोमतः।
ऊर्ध्वंत्रिरात्रमथवा द्वादशाहं भवेद्व्रतम् ॥ ५ ॥
अब्दं वा क्षारलवणवर्जितं भोजनं भवेत्।
अधश्च शयनं तद्वद्ब्रह्मचर्यं च वै भवेत् ॥ ६ ॥

"ॐ मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम"

[गोभिल गृ० सू०, प्र० २, कां० २, सूत्र १३]

[अर्थ—हे वधू! बाँये पैर से दाहिने पैर का उल्लंघन न करना।]

गुरूजी वधू को क्रिया समझा देते हैं। वधू को उन सात चावल की ढेरियों पर एक-एक डग देकर इस-प्रकार चलना है, कि उसके दाहिने पैर की घसिटन से सातो ढेरी एक-रेखा-कार, एक सीध में, हो कर परस्पर मिलती जाँय; और डग देने की घसीट में दाहिना पैर ही सदा आगे रहे, बाँया-पैर पूरी क्रिया में दाहिने-पैर के पीछे-पीछे चले। वर के मंत्र पढ़ने के साथ वधू ईशान-दिशा की ओर सात पद चलती है। सप्तपदी के मंत्र इस भाँति हैं, जो प्रत्येक डग पर एक-एक करके पढ़े जाते हैं:—

अर्थात् वधू को ईशान-कोण में सात-पद चलावे, जिसमें वधू प्रथम अपना दाहिना पैर उठावे ॥ १ ॥ "इष एक-पदीभव" आदि मंत्रों से सप्त-पद [साथ-साथ ?] चलने के बाद, वहाँ दोनों खड़े हो जाँय ॥ २ ॥ अब जल-कुम्भ में से जल ले कर दोनों के सिर पर सिंचन करे। फिर घृत से स्विष्टकृत हवन करके शेष कार्य समाप्त करे ॥ ३ ॥ हवन से आरम्भ करके ध्रुवादि तारागण का अवलोकन करने के पश्चात् "जीवपत्नी" मंत्र के साथ वधू मौन-भंग करे ॥ ४ ॥ अब पति-पत्नी गृहवेशीय-होम सम्पन्न करें और यहाँ से प्रारम्भ करके उन्हें तीन रात्रि, अथवा बारह दिन, पर्यन्त व्रत करना चाहिये ॥ ५ ॥ यदि हो सके तो एक वर्ष तक। [इस व्रत में] वह क्षार या लवण पड़ा हुआ भोजन न करें, भूमि पर शयन करें और ब्रह्मचर्य का पालन करें। [इससे ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है] ॥ ६ ॥

"ॐ इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव।
पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टय ॥१॥"

[आश्वलायन गृ० सू०, अ० १, खं० ७, सूत्र० १६]
[पारस्कर गृ० सू०, कां० १, कं ८]

[अर्थ—हे वधू! अन्नादि की प्राप्ति के हेतु प्रथम-पद चलने-वाली हो। तुम सदैव मेरे अनुकूल रहो। हम बहुत से पुत्रों का लाभ करें; और वह सब वृद्धावस्था तक दीर्घजीवी हों।

"ॐ ऊर्जे द्विपदी भव सा मामनुव्रता भव।
पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टय ॥२॥"

[अर्थ—हे वधू! बल-सम्पादन के लिये तुम द्वितीय-पद चलने-वाली हो। (तुम सदा मेरे अनुकूल रहो, आदि प्रथम मंत्रवत्)

"ॐ रायस्पोषाय त्रिपदी भव सा मामनुव्रता भव।
पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टय ॥ ३ ॥"

[अर्थ—हे वधू! धन और ज्ञान की वृद्धि के लिये तुम तृतीय-पद चलने-वाली हो (अवशेष पूर्ववत्)।]

"ॐ मायोभव्याय चतुष्पदी भव सा मामनुव्रता भव।
पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टय ॥ ४ ॥"

[अर्थ—हे वधू! सुख की उत्पत्ति के लिये तुम चौथा-पद चलनेवाली हो (शेष पूर्ववत्)।]

"ॐ प्रजाभ्यः पंचपदी भव सा मामनुव्रता भव।
पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टय" ॥ ५ ॥

[अर्थ—हे वधू! सन्तति पालन के हेतु तुम पंचम-पद चलने-वाली हो (शेष पूर्ववत्)।]

"ॐ ऋतुभ्यः षट्पदी भव सा मामनुव्रता भव।
पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टय" ॥ ६ ॥

[अर्थ—हे वधू! ऋतुओं [के अनुकूल व्यवहार करने] के हेतु तुम छठवाँ-पद चलने-वाली हो (शेष पूर्ववत्)।]

"ॐ सखा सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव।
पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टय" ॥ ७ ॥

[अर्थ—हे वधू! सखा-भाव [परस्पर प्रेम और मित्रवत् रहने] के हेतु तुम सातवाँ-पद चलने-वाली हो (शेष पूर्ववत्)।]

और इस प्रकार अन्नादि; बल; धन व ज्ञान; सुख; सन्तति; ऋतुओं [समय] के अनुकूल व्यवहार; और सभी कार्यों में सर्वदा प्रेमपूर्वक सखा-भाव से रहने के लिये वर-वधू दृढ़प्रतिज्ञ हो गये। प्रत्यक्ष है, कि इस भाँति रहने में यह दोनों धन-धान्य से सदा परिपूर्ण, सुखी, सौभाग्य-पूर्ण और सन्तित-वान रहेंगे। शुभमस्तु।

हिन्दू-क़ानून के अनुसार सप्तपदी की समाप्ति पर विवाह को परिपूर्ण (complete) माना गया है। अब वधू की "पत्नी" संज्ञा हो गयी। यहाँ पति-पत्नी आसन बदल लेते हैं और पत्नी पति के वाम-भाग में बैठा दी जाती है। कन्यापक्ष की एक सुहागिन महिला चाँदी के चार बिछुए (जो कन्या की ननसाल से डाले में आये थे) लेकर आती है। गुरू-जी उन पर रोली लगाकर, कलश-देवता से छुवाकर, वधू के सदा-सौभाग्य की प्रार्थना करते और आशीर्वाद देते हुये, महिला को लौटा देते हैं और महिला उन बिछुओं को वधू को पहना देता है।

यज्ञान्त-अभिषेक—वरपक्ष के गुरू-जी कलश में से पवित्र जल लेकर, पति-पत्नी पर छिड़क कर, उनका यज्ञान्त अभिषेक करते हुये आशीर्वाद देते हैं—

"ॐ शान्तिरस्तु, पुष्टिरस्तु, तुष्टिरस्तु, वृद्धिरस्तु, आयुष्यमस्तु, आरोग्यमस्तु, शिवंकर्मास्तु, कर्मसमृद्धि-रस्तु, धर्मसमृद्धिरस्तु, वेद-समृद्धिरस्तु, शास्त्रसमृद्धि-

रस्तु, पुत्र-पौत्र समृद्धिरस्तु, धन-धान्य समृद्धिरस्तु, इष्टसंपदस्तु, अरिष्टनिरसनमस्तु ।"

ध्रुव-दर्शन—खगोल में उत्तर-दिशा की ओर सप्तर्षि-मण्डल (Ursa Major) दर्शन देता है। चार-कोणों पर खाट की तरह का चतुष्कोण बनाते हुए चार तारे हैं ; और फिर उस चतुष्कोण के एक छोर पर पूँछ की आकृति में तीन तारे अलग-से हैं। यह सात तारागणों का समुदाय "सप्तर्षि-मण्डल" के नाम से प्रसिद्ध है। खाट-की आकृति में तारे हैं, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य और पुलः ; और एक छोर पर लटकते हुये तीन तारे हैं, क्रतु, वशिष्ठ और मरीचि। वशिष्ठ के ठीक पार्श्व में ही छोटी-सी तारिका का अरुन्धती नाम है। सप्तर्षि-मण्डल के और उत्तर की ओर चमकता-हुआ ध्रुवतारा अवस्थित है। विज्ञान-वेत्ताओं ने महर्षियों की प्राचीन-वार्त्ता सत्य मान ली है, कि ध्रुव सदा-स्थिर है और सप्तर्षि-मण्डल सदैव ध्रुव की परिक्रमा करते रहते हैं। इसी लिये सप्तर्षि-मण्डल कभी ध्रुव-तारे के पूर्व, कभी पश्चिम, कभी उत्तर और कभी दक्षिण में दर्शन देते हैं। एक और चमत्कार वैज्ञानिकों ने सत्य मान लिया है, कि अरुन्धती सदैव वशिष्ठ के पास रहती है ; और ध्रुव-परिक्रमा करते हुये स-अरुन्धती-सप्तर्षि-मण्डल में वशिष्ठ और अरुन्धती की परस्पर-सन्निकटता एक-सी बनी रहती है।

गृह्य-सूत्रों में (देखिये पृष्ठ ११६ से १२१) ध्रुव-दर्शन का विधान, वर के स्व-गृह आने पर, चतुर्थी-कर्म के पश्चात् और गर्भाधान से पूर्व, अनुष्ठित करने का है। "ब्रह्मकर्म समुच्चय" के अनुसार यह क्रिया चतुर्थी में स्विष्टकृतादि होम समाप्त करने पर होनी चाहिये[१]। आचार-प्रथा में वर-वधू को यहीं, मंडप-स्थान से वाहर की ओर ले जाकर, गुरू-जी ध्रुव-अरुन्धती दर्शन करा देते हैं।

१—देखिये, प्रकरण १५८, "विवाह चतुर्थ दिन कृत्यम्", पृष्ट २०६ ॥

वर वधू को ध्रुव तारा* दिखाते हुये कहता है

"ध्रुवंपश्य", अर्थात इस ध्रुव तारे को देखो। वधू ध्रुवतारे को देखते हुये मंत्र पढ़ती है :—

"जीवपत्नी प्रजां विन्देय"

यह मंत्र पढ़ कर वधू का मौन भंग होता है, वह मौन जो वरैई के पुतले पर अक्षत छोड़ने के साथ प्रारम्भ हुआ था। और वधू प्रार्थना करती[१] है।

ॐ ध्रुवमसि ध्रुवाऽहं पतिकुले भूयासम् अमुष्य असौ

(गोभिल गृह्य सूत्र, प्र० २, का० ३, सूत्र ८)

* पारस्कर के मत से केवल ध्रुवतारा दिखाया जाना ही प्रशस्त है ; गोभिल के मतानुसार ध्रुव और अरुन्धती दोनों का दर्शाया जाना विहित है। मानवग्रह्यसूत्रकार एवं आश्वलायनजी ध्रुव, सप्तर्षि-मण्डल एवं अरुन्धती के दर्शन कराना उचित मानते हैं। अरुन्धती दर्शाते समय वर कहता है "अरुन्धतीं, पश्य"। दर्शन करते हुए वधू कहती है "पश्यामि" और मंत्र पढ़ती है :—

ॐ अरुन्धत्यसि रुद्धाऽहमस्मि (अमुष्य असौ)

(गोभिल गृ० सू०, प्र० २, का० ३, सू० १०-११)

अर्थात् हे, अरुन्धती-जी ! जैसे आप सप्तर्षि-मण्डल में वशिष्ठ-जी के सर्वदा निकट रहतीं हैं, वैसे ही मैं अपने पति के सर्वदा पास रहूँ। ["अमुष्म, असौ" के स्थान पर वर और वधू का नाम-सङ्केत भी किया जा सकता है।]

१—वैसे ध्रुव दर्शन के अनेक सुन्दर-सार्थक मंत्र पढ़े जा सकते हैं ; यथा—

ॐ ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् ॥

[सा० मं० ब्रा० १ ॥ ३ ॥ ७]

[अर्थात, हे ध्रुव ! जैसे आप निश्चल दृढ़ हैं, वैसे ही मैं पति के कुल में सदैव निश्चल एवं दृढ़ होऊँ ।]

स्मरणीय है, कि वैदिक-विवाह-पद्धति में पत्थर की शिला पर आरोहण से यह भाव लिया है कि इहलोक में वधू-वर का यह विवाह-सम्बन्ध पत्थर की शिला की भाँति दृढ़ बना रहेगा ; और ध्रुव-अरुन्धती दर्शन से यह भाव लिया है कि अपर-लोक में भी वधू-वर-सम्बन्ध अविच्छिन्न बना रहेगा ; वह दोनों वशिष्ठ-अरुन्धती की भाँति सदैव साथ-साथ रहेंगे ।

गृह-प्रवेशनीय होम——जैसा नामकरण से स्पष्ट है, यह क्रिया पति-पत्नी के पति-गृह[1] पहुँचने पर, पतिगृह-प्रवेश के समय ही, सम्पन्न होती थी। गृह्य-सूत्रों में विधान है कि विवाह-वेदी की अग्नि बारात के साथ ले जायी जाती थी ; और फिर पति-गृह में पति-पत्नी उसी अग्नि में गृह-प्रवेशनीय-होम सम्पन्न करते थे। फिर, बाद में, इस अग्नि के ले जाने की असुविधा अथवा अन्य बातों को दृष्टिगोचर रखते हुए यह प्रथा चल गयी होगी कि [क्रिया लुप्त न होने पाये और] गृहप्रवेशनीय-होम पत्नी-गृह में विवाह की यज्ञ-वेदी पर ही अनुष्ठित हो जाय। अस्तु !

अर्थ—हे वरानने ! जैसे सौर-मण्डल में यह ध्रुव स्थिर है, पृथ्वी अपने स्वरूप मे स्थिर है, यह समस्त विश्व और जगत अपने स्वरूप में स्थिर है, पहाड़ आदि अपने स्थान पर स्थिर हैं, वैसे ही तुम पतिकुल में सदा स्थिर बनी रहो ।

"ॐ ध्रुवमसि ध्रुवं त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि मह्यन्त्वाऽदात्।
बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती सं जीव शरदः शतम् ॥"

[पारस्कर गृ० सू० १ ॥ ८ ॥ १९]

आदि अनेक मंत्र है (दृष्टव्य, पृष्ठ ११६ से १२१)

१—आश्वलायन गृह्यसूत्र अध्याय १, खण्ड ७ का अन्तिम २२ वाँ सूत्र है :—

अब फिर पत्नी को पति के दाहिने पार्श्व में बैठाया जाता है, क्योंकि धर्म-शास्त्र का विधान है—

सीमन्ते च विवाहे च चतुर्थी सहभोजने ।
व्रते, दाने, मखे, श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे ॥

गृहप्रवेशनीय-होम में वर द्वारा (देश-काल संकीर्त्य) "मम विवाहाग्ने-गृह्यत्व सिद्धि द्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं गृहप्रवेशनीय होमं करिष्ये" संकल्प के पश्चात् चार आज्य-आहुतियाँ सूर्या-सावित्री के हेतु दी जातीं है। मंत्र हैं "आनःप्रजा जनयतु", "अघोरचक्षु", "इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः" और "सम्राज्ञी श्वसुरे भवः" [पृष्ठ २०८ पर दृष्टव्य]।

फिर स्विष्टकृत् होमाहुति दी जाती है। विनियोग है—

"ॐ यदस्येति हिरण्यगर्भोऽग्निस्त्रिष्टुप् स्विष्टकृद्धोमे विनियोगः ।"

और मंत्र है—

"ॐ यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्।
अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वां त्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे ।

"ध्रुवमरुन्धतीं सप्तऋषीनिति दृष्ट्वा वाचं विसृजेत
जीवपत्नीं प्रजां विन्देयेति ॥"

व्याख्या है "समाप्ते होमे रात्रौ ध्रुवादीन्दृष्ट्वा वाचं विसृजेत 'जीवपत्नीम्' इति मंत्रेण । इदानीं वाग्विसर्जनविधानाद्धोमादारभ्यैतावन्तं कालं वाचो नियम इति गम्यते । कस्यायं वाग्विसर्गः । वध्वा।" स्पष्ट है, कि ध्रुवादि-दर्शन विवाह का अन्तिम कार्य है और उसके बाद ही वधू अपना मौन-भङ्ग करती है। मौन-भङ्ग 'जीवपत्नीं' मंत्र से होता है।

खण्ड ७ यहीं शेष होकर, खण्ड ८ का प्रथम सूत्र है—

"प्रयाण उपपद्यमाने 'पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्येति' यानमारोहयेत् ।"

अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कासान्त्समर्धय स्वाहा ॥
अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम ॥"

[आश्वलायन गृ० सू०, अ० १, खं० १०, सूत्र २२]
[शत० ; का० १४, अ० ८, प्र० ७, कं० ५]

[अर्थ—हे अग्ने ! इस क्रिया में जो भी मैंने कम, अधिक अथवा अकर्म किया हो, उस सब को साविधि सम्पूर्ण करके, मेरे कार्य को सफलीभूत कीजिये ; हमारे द्वारा प्रदान की गयीं आहुतियों को, सब प्रायश्चित्त रूप मान कर, कृपया ग्रहण कीजिये ;और हमारी कामनाओं को पूर्ण करते हुये हमें समृद्धिवान बनाइये ॥]

अर्थात्, वधू की विदा 'पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्येति' मंत्र के साथ करा कर वधू को रथ पर बैठाया जाय। व्याख्या में स्पष्ट किया है "विवाह होमानन्तरं स्वगृहं गन्तव्यम्" ; और फिर "शिविका" आदि की भी विधि वर्णित है। स्पष्ट है कि वधू-गृह में विवाह-अनुष्ठान-क्रिया समाप्त हो गयी और वर-वधू अपने—(वर के)—गृह चले जाँय।

इस प्रकार, विवाह-कार्य यहीं समाप्त माना गया है और इसके बाद के जितने कार्य समाज में अनुष्ठित होते हैं, यथा शाखोच्चार-जलसा, चतुर्थी, पहेना, भोज, आदि, वह सब आचार-प्राप्त, प्रथा-वश, होते हैं, शास्त्र की आज्ञा-वश नहीं। यदि ऐसा ही है, और यह लिखने में लेखक की कहीं भूल-भ्रान्ति नहीं, तो इन पश्चात्-वर्त्ती कार्य-क्रमों में, यदि समाज वांछनीय समझे, तो समयानुसार हेर-फेर कर सकता है। चूंकि प्रस्तुत पुस्तक का विषय प्रचलित-प्रथा का पूर्ण-रूपेण दिग्दर्शन कराना भी है, इस लिये पश्चात्-वर्त्ती कार्य यथा-प्रथानुगत लिखे जाते है।

फिर इध्म-बन्धन, जो इध्मा खोलने के समय सम्हाल कर अलग रख दिया गया था, की आहुति, वर द्वारा, दी जाती है :—

"ॐ रुद्राय पशुपतये स्वाहा।
रुद्राय पशुपतय इदं न मम ॥"

फिर वर अपने हाथ धो लेता है और स्रुवा से, निम्न मंत्रों द्वारा, आज्य [घृत] से सात प्रायश्चित्त-आहुति देता है। विनियोग है—

"ॐ अयाश्चेति विमदोऽया अग्निः पंक्तिः प्रायाश्चत्ताज्य होमे विनियोगः।"

और मंत्र हैं : –

"ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशास्तीश्च सत्यमित्व मया असि। अया सावयसकृतो या सन्हव्यमूहिपे यानो धेहि भेषजं स्वाहा ॥ अयासेऽग्नय इदं न मम ॥ १ ॥"

[अर्थ—हे अग्ने ! आप बाहर और भीतर सर्वत्र स्थित हैं और जिनके दोष न रहें, ऐसे प्रायश्चित्त-योग्य व्यक्तियों के आप पालक हैं। आप हमारे आश्रय-रूप हो कर हव्य को स्वीकार करते हैं। कृपया हमारे दुःखों का नाश कर सुखों को प्रदान कीजिये।]

फिर विनियोग है :—

"ॐ अतो देवा मेधातिथिर्देवा गायत्री प्रायश्चित्ता-ज्यहोमे विनियोगः।"

और आहुति मंत्र है :—

"ॐ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः। स्वाहा ॥
देवेभ्य इदं न मम ॥ २ ॥"

[ऋग्वेद, मं १, सूक्त २२, मंत्र १६]

[अर्थ—जिस सप्त धाम वाली पृथिवी पर विष्णु ने पादक्रमण किया था, उसी पृथिवी पर देवगण हमारी रक्षा करें ।]

फिर विनियोग है :--

"ॐ इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री प्रायश्चित्ताज्य होमे विनियोगः ।"

और आहुति-मंत्र है--

"ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
समूहमस्य पांसुरे । स्वाहा ॥
विष्णवे इदं न मम ॥ ३ ॥"

[ऋग्वेद, मं० १, सूक्त २२, मंत्र १७]

[अर्थ—श्रीविष्णु ने इस संसार को तीन पाँव में नाप लिया (विक्रमण किया) ; उनके धूलि लगे पैरों में ही पूरी सृष्टि समा गयी (वही श्रीविष्णु हमारी रक्षा करें) ।]

फिर विनियोग है :—

"ॐ व्यस्त समस्त व्याहृतीनां विश्वामित्र जमदग्नि भरद्वाज भृगव ऋषयः अग्निः वायुः सूर्यः प्रजापतयो-देवताः गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहत्यश्छंदांसिः सर्व प्रायश्चित्ताज्य होमे विनियोगः ।"

और मंत्र हैं :—

"ॐ भूः स्वाहा । अग्नय इदं न मम ॥४॥"
"ॐ भुवः स्वाहा । वायव इदं न मम ॥५॥"
"ॐ स्वः स्वाहा । सूर्याय इदं न मम ॥६॥"
"ॐ भुर्भुवःस्वः स्वाहा । प्रजाप्रतय इदं न मम ॥७॥"

इस हवन-कार्य के सम्पन्न करने में जान कर, अथवा बिना जाने, जो दोष, त्रुटि, कमी आदि रह गयी हो, उसके निवारण करने के हेतु निम्नलिखित मंत्रो से पाँच विशेष आहुति दी जातीं हैं । विनियोग है—

"ॐ अनाज्ञातमिति मन्त्रद्वयस्य हिरण्यगर्भोऽग्नि-रनुष्टुप् ज्ञाताज्ञातदोष निबर्हणार्थं प्रायश्चित्ताज्य होमे विनियोगः ॥"

और पाँच आहुति-मंत्र हैं—

"ॐ अनाज्ञातं यदा ज्ञातं यज्ञस्य क्रियते मिथु ।
अग्ने तदस्य कल्पय त्वँहि वेत्थ यथातथ ँ स्वाहा ॥
अग्नय इदं न मम ॥१॥"

[अर्थ—हे अग्ने ! बिना-जाने अथवा जानकर इस यज्ञ-कार्य में जो अपराध (मिथु) बन पड़ा हो उसे दूर करते हुये, आपके द्वारा यह यज्ञ-कार्य पूर्णता को प्राप्त हो ।]

"ॐ पुरुषसंमितो यज्ञो यज्ञः पुरुषसंमितः ।
अग्ने तदस्य कल्पय त्वँहि वेत्थ यथातथ ँ स्वाहा ॥
अग्नय इदं न मम ॥२॥"

[अर्थ—(त्रुटि-पूर्ण, अल्पज्ञ) मानव द्वारा सनातन-पुरुष (की प्रसन्नता) के हेतु अनुष्ठित इस यज्ञ-कार्य में जो अपराध बन पड़ा हो, उसे दूर करते हुये, हे अग्ने ! आपके द्वारा यह यज्ञ-कार्य पूर्णता को प्राप्त हो ।]

फिर-विनियोग—

"ॐ यत्पाकत्रेत्यास्य स्त्रितोऽग्निस्त्रिष्टुप् न्यूनातिरिक्त दोष परिहारार्थं प्रायश्चित्ताज्य होमे विनियोगः ॥"

और फिर आहुति मंत्र है —

"ॐ यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्टो देवाँ ऋतुशो यजाति स्वाहा ॥ अग्नय इदं न मम ॥ ३ ॥

[ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त २, मंत्र ५]

[अर्थ—हे अग्ने ! यह यज्ञ-कर्त्ता मानव (स्वभावतः) क्षीणोत्साह (कम-उत्साह वाला), अल्प-मन वाला और यज्ञ-विधान के ज्ञान से रहित है ; इस लिये हे यज्ञों का सम्पादन करने वाले अग्ने ! आपकी कृपा के द्वारा देवताओं के हेतु अनुष्ठित यह यज्ञ-कार्य यथा-योग्य पूर्णता को प्राप्त हो ।]

फिर विनियोग है —

"ॐ यद्वोदेवा अभितपा ऋषिःमरुतो देवता स्त्रिष्टुप्छन्दः मंत्र तंत्र विपर्यासादि निमित्तक प्रायश्चित्ताज्य होमे विनियोगः ॥"

और आहुति मंत्र हैं—

"ॐ यद्वोदेवाअतिपातयानि वाचा च प्रयुती देव हेळनं।
अरायो अस्माँ अभिदुच्छुनायतेन्यत्रास्मन्मरुतस्तन्निधेतन स्वाहा। मरुद्भ्य इदं न मम ॥ ४ ॥"

[देखिये, ऋग्वेद १०।।३७।।१२, किंचित पाठ-भेद]

[अर्थ—हे वायो (मरुद्गण) ! देवताओं के हेतु अनुष्ठित किये गये इस यज्ञ-कार्य में जो व्यतिक्रम (आगे-पीछे), अथवा किसी देवता के प्रति अपराध, अथवा क्रिया-विधि में न्यूनता (अराय) आदि बन पड़े हों, उन दोषों को दूर करते हुये आपके द्वारा यह यज्ञ-कार्य साविधि पूर्णता को प्राप्त हो ।]

शेष[१] आहुति प्रजापति का ध्यान-स्मरण करके दी जाती है ।

"ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा । प्रजापतय इदं न मम ॥५॥"

और फिर बाँयें हाथ से आज्य-पात्र ग्रहण कर, दाहिने हाथ में लिये हुये स्रुवा के सहारे, अवशिष्ट घृत होम दिया जाता है। मंत्र है--

"ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य स्वाहा ।
विश्वेभ्यो देवेभ्य इदं न मम ॥"

और रिक्त घृत-पात्र उत्तर दिशा में रख दिया जाता है ।

अब पूर्ण-पात्र [जिसमें आहुति के पश्चात् "इदं न मम" के साथ अवशिष्ट घृत-विन्दु पानी में टपकायी जाती है] को अपने सन्मुख रख कर, श्रीवर अपने दोनों हाथ उस पर रख कर, उसे दबा लेता है ; और मंत्र पढ़ता है :--

"ॐ पूर्णमसि पूर्णं मे भूयाः सुपूर्णमसि सुपूर्णं मे भूयाः । सदसि सन्मे भूयाः सर्वमसि सर्वं मे भूयाः । अक्षितिरसि मामे क्षेष्ठाः ॥

[अर्थ—जो सब प्रकार से पूर्ण (ब्रह्म) है, उसकी कृपा से मेरा कार्य परिपूर्ण हो ; और जिस प्रकार यह पूर्ण-पात्र जलादि से पूर्ण है, उसी प्रकार मेरे सब कार्य और इच्छायें पूर्ण हों। सभ्य-समाज में मेरे प्रति सद्भावना हो। हे पूर्ण-पात्र ! तू सभी तत्वों को जानता है, मेरे हेतु सभी पदार्थों का तू देने वाला हो। मेरे अङ्ग में कोई क्षति (चोट-फेंट आदि) न हो और मुझे संसार अच्छी भावना से देखे ।]

१—"ब्रह्मकर्म समुच्चय" में दो और विशेष आहुति निम्न संकल्प एवं मन्त्रों के साथ विहित हैं ; परन्तु प्रचलित पद्धति में नहीं पायीं जातीं :—

"ॐ यज्ञोपघातादौ प्रायश्चित्तानि । अस्मिन्कर्मणि कृमि कीट पिपीलिका मक्षिकाद्युपघात दोष परिहारार्थं द्वे मिंदाहुती होष्यामि" ॥

फिर पूर्ण-पात्र के जल से, कुश द्वारा, क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा ; व ऊपर ऊर्ध्व में छींटा देकर श्रीवर कहता है—

"ॐ प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्ताम्।"

"ॐ दक्षिणस्यां दिशि मासाः पितरो मार्जयन्ताम्॥"

पुनः, हाथ धोकर, उसी प्रकार जल छिड़कते हुये—

"ॐ प्रतीच्यां दिशि ग्रहाः पशवो मार्जयन्ताम्।

ॐ उदीच्यां दिशि आप औषधयोवनस्पतयो
मार्जयन्ताम्।

ॐ ऊर्ध्वायां दिशि यज्ञः संवत्सरः प्रजापति-
र्मार्जयन्ताम्॥"

[अर्थ—पूर्व-दिशा में जो विघ्न-बाधा हों, वह ऋत्विज और देवताओं की कृपा से दूर हो जाँय ; दक्षिणा-दिशा में जो विघ्न-बाधा हों, वह पितृश्वरों की कृपा से दूर हो जाँय ; पश्चिम-दिशा में मेरे अथवा पशुओं के हेतु जो विघ्न-बाधा हों, वह नव-ग्रहादिक की कृपा से दूर हो जाँय ; उत्तर-दिशा में जो विघ्न-बाधा हों, वह जल, औषधि व वनस्पतियों की कृपा से दूर हो जाँय ; और ऊर्ध्व अन्तरिक्ष में जो मेरे हेतु विघ्न-बाधा हों, वह यज्ञ, संवत्सर एवं प्रजापति की कृपा से दूर हो जाँय।]

तत्पश्चात्, अपने और वधू के शरीर पर उसी जल से कुश द्वारा छींटे देता हुआ वर मार्जन करता है :—

"ॐ यन्मआत्मनोमिंदाभूदग्निस्तत्पुनराहार्जातवेदा विचर्षणिः स्वाहा। मिंदवतेग्नय इदं न मम॥ ५॥"

"ॐ पुनरग्निश्चक्षुरदात्पुनरिन्द्रोवृहस्पतिः। पुनर्मे अश्विनायुवं चक्षुराधत्तमक्ष्योः स्वाहा। मिंदवतेग्नय इदं न मम॥ ६॥"

विनियोग है—

"ॐ आपो अस्मानिति देवश्रवा आपस्त्रिष्टुप्
मार्जने विनियोगः"

और जल छिड़कने का मंत्र है—

"ॐ आपो अस्मान्मातरः शुन्धयंतु घृतेननो घृतप्वः
पुनन्तु।

विश्वंहिरि प्रं प्रवहंति देवो रुदिदाभ्यः शुचिरा
पूत एमि॥"

फिर विनियोग—

"ॐ इदमापः सिंधुद्वीप आपोनुष्टुप् मार्जने विनियोगः"

और फिर उसी प्रकार जल छिड़कने का मंत्र है—

"ॐ इदमापः प्र वहत यात्किं च दुरितं मयि।
यद्वा हमभि दुद्रोह यद्वा शेप उतानृतं।

[ऋग्वेद, मं० १०, सूक्त ९, मंत्र ८]

सुमित्रियान आप औषधयः सन्तु॥"

और पश्चात् निम्न मंत्रो से—

"दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तुयोऽस्मान्द्वेष्टि।
यं च वयं द्विष्मस्तं हन्मि॥"

वर नैऋत्य-कोण में कुशाग्र से भूमि में जल छिड़क देता है।

वर उस पूर्ण-पात्र के जल को वधू की अञ्जलि में औंधा देता है ; वधू उसे ज़मीन पर गिराते हुये अपने नेत्र और सिर से लगा लेती है। मंत्र है—

"माहं प्रजां परासिचं यानः सयावरोः स्थन।
समुद्रे वोनिनयानि स्वं पाथो अपोथ।
ता आपः समुद्रं गच्छेयुः॥"

और गङ्गा आदि पुण्यद नदियों का मन-ही-मन स्मरण कर लेती है।

फिर पूर्ववत् वेदी की अग्नि का तीन बार परिसमूहन और पर्युक्षण कुश-जल से किया जाता है; और "विश्वानिनों" आदि मंत्र (देखिये पृष्ठ २२१) से गंधाक्षत दशों दिशाओं को चढ़ा कर, वर अपने माथे से लगाकर, पीठ-पीछे फेंक देता है।

और नमस्कारादि के साथ अग्न्युपस्थान करता है। विनियोग है—

"ॐ अग्नेत्वं न इति चतूसृणां गौपायना लौपायना वा बंधुः सुबंधुः श्रुतबंधुः विप्रबंधुश्चैकैकर्चा ऋषयः अग्निर्देवता द्विपदा विराट् छन्दः अग्न्युपस्थाने विनियोगः"

और मंत्र है—

"ॐ अग्ने त्वं नो प्रंतम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छानक्षिद्युमत्तमं रयिंदा॥"

फिर स्रुवा के पृष्ठ-भाग में वर यज्ञाग्नि-भस्म लगा लेता है; और अपनी दक्षिण-अनामिका में उस भस्म को लेकर, अपने मस्तक आदि पर, तिलकवत् लगाता है।

विनियोग है—

"ॐ मानस्तोके कुत्सो रुद्रो जगती विभूतिग्रहणे विनियोगः"

और मंत्र हैं—

"ॐ मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोष मानो अश्वेषुरिरिषः। मानो वीरान रुद्र भामितो वधीर्ह विष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥

[यजुः, अ० १६, मंत्र १६]

"ॐ त्रायुषं यमदग्नेरिति—ललाटे;
ॐ कश्यपस्य त्रायुषमिति—कण्ठे;
ॐ अगस्त्यस्य त्रायुषमिति—नाभौ;
ॐ यद् देवानाम् त्रायुषमिति—दक्षिण स्कन्धे;
ॐ तन्मे अस्तु त्रायुषमिति—वाम स्कन्धे;
ॐ शतायुषं—शिरसि।"

[यजुः; अ० ३, मं० ६२]

[भावार्थ—इस मंत्र में देवताओं से "त्रायुष" अर्थात् साधारण से तीन-गुनी आयु तक जीने की कामना की गयी है]

फिर वर अग्नि से पूजा-प्रार्थना करता है—

"ॐ स्वस्ति। श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां विद्यां बुद्धिं श्रियं बलं। आयुष्यं तेज आरोग्यं देहि मे हव्यवाहन। ॐ नमो नमः॥"

[अर्थ—हे अग्ने! आप मुझे कल्याण, श्रद्धा, मेधा, यश, प्रज्ञा, विद्या, बुद्धि, श्रेय, बल, दीर्घायु, तेज और आरोग्य प्रदान कीजिये। आपको नमस्कार है।]

अब नमस्कार के साथ यज्ञाग्नि का विसर्जन किया जाता है। मंत्र है—

"ॐ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वरः।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशनः॥"

फिर वर हाथ जोड़ कर प्राथना करता है—

"कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुध्यात्मनावा प्रकृति स्वभावात्।
करोमि यद्यत सकलं परस्मै
नारायणायेतिसमर्पयेतत्॥"-

[अर्थ—मैं मन, वचन, इन्द्रियाँ, बुद्धि, आत्मा, प्रकृति अथवा स्वभाव से जो कुछ भी कर रहा हूँ, वह सभी नारायण परमात्मा को समर्पण करता हूँ।]

**"ॐ यस्यास्मृत्याचनामोक्ता तपो यज्ञ क्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
श्री विष्णवे नमः श्री विष्णवे नमः श्री विष्णवे नमः ॥"**

[अर्थ—स्मृति से अथवा वचन से तप, यज्ञ आदि क्रिया में जो भी न्यूनता या कमी रह गयी हो, हे अच्युत ! आपकी कृपा से वह अभी-अभी पूर्णता को प्राप्त हो जाय ; मैं आपकी वन्दना करता हूँ। श्री विष्णु को बारम्बार नमस्कार है।]

अब गन्धाक्षत द्वारा आचार्य का पूजन कर, वर उन्हें गो-प्रदान, पूर्णपात्र, आचार्य-दक्षिणा आदि देकर प्रसन्न करता है

गुरू-जी आशीर्वाद में वर-वधू को गन्धाक्षत और बताशे देते हैं ; और वर-वधू मंडप-स्थान से उठ कर कन्यापक्ष की मातृका एवं कुल-देवताओं पर गन्धाक्षत चढ़ा कर पूजन-नमस्कार करते हैं।

विवाह-विधि इस प्रकार समाप्त होती है।

नोट—(१) पृष्ट १८९ पर मधुपर्क के मंत्र ऋग्वेद मंडल १, सूक्त ९० मंत्र ६, ७ एवं ८ भी उसी रूप में प्राप्त हैं।

(२) पृष्ट १९४ पर **"युवं वस्त्राणि"** मंत्र ऋग्वेद, मंडल १, सूक्त १५२ मंत्र १ पर प्राप्त है। इसमें **"युवोरछिद्रामं"** के स्थान पर **"युवोरच्छिद्रामं"** पढ़िये।

(३) पृष्ट २०८ पर **"अघोरचक्षु"** मंत्र की दूसरी पंक्ति में **"वीर सूर्देवकामा"** के स्थान पर **"वीर सूर्देवृकामा"** पढ़िये।

(४) पृष्ट २०९-१० पर **"सुमुद्रज्येष्ठाः"** आदि चार मंत्र ऋग्वेद, मंडल ७, सूक्त ४९ के मंत्र १–४ हैं। इनमें तीसरे मंत्र की प्रथम पंक्ति का शीर्षांश **"ज्ननानां"** के स्थान पर **"ज्ञनानां"** पढ़िये।

(५) विवाह-पद्धति के अन्य मंत्र भी ऋग्वेदीय ही हैं।

———

५

शाखोच्चार——एक सामाजिक जलसा

प्रबन्धगोष्ठी——विवाह के भोर मंडप जगाये जाने पर कन्यापक्ष के नये बोझ, चाय नाश्ता भेजने, की तैयारी सबसे पहले होती है। प्रातः सभी प्रबन्धकर्त्ता, घर-मालिक व घर-मालिकिन आदि, यदि सलाह कर दिन भर का प्रोग्राम, समय व व्यंजनादि [Menu], तय कर लें, तो बड़ी सुविधा रहती है ; और दिन भर का काम, सम्बन्धी के सहयोग से, समय पर सुचारु-रूप से होता रहता है। इसी में, किसे-किसे क्या-क्या काम करना है, प्रबन्ध किस व्यक्ति के ज़िम्मे रहेगा और उसे किस समय तक क्या-क्या प्रस्तुत कर लेना होगा, यह सब कार्य बँट जाते हैं।

चाय नाश्ता——यह नवीन युग और नयी रौशनी का कन्या-पक्ष पर नया-लादा-हुआ बोझ है। कुछ ही वर्षों पहले बारात के लिये सुबह की ठण्डाई और ऋतु-फल, नाश्ता आदि का प्रबन्ध बारात ले आने वाले, वर के घर-वाले, अपने व्यय पर करते थे। अब तो सर्वत्र यह कन्या-पक्ष के वैसे-ही-अधिक-बोझ से दबे कन्धों पर लद गया है। प्रातः चाय, गर्मियों में ठण्डाई, उसके साथ नमकीन व मीठा, दोनों प्रकार का, नाश्ता (फलाहारी या अन्नका, चाहे जैसा हो, क्योंकि बिना स्नान किये अन्नाहार न करने वाले तो अब दुःखद अल्प-संख्यक ही हैं) आदि, सब कुछ लड़कीवाले को जल्द से जल्द भेजना होता है। कहीं-कहीं तो "बिस्तरे की चाय" की माँग भी होने लगी है जिसका

सर्वराह (Supply) मंडप जगाने से पूर्व ही आवश्यक बताया जाता है।

जो भी इतर-जातीय भृत्य चाय-नाश्ता लेकर आते हैं, वर के घर-वाले उन्हें कुछ पैसे, एक-एक या दो-दो आना, दे देते हैं।

साथ ही, कन्यापक्ष के गुरू अथवा घरवाले अथवा ग्राम/नगर के कुछ विशिष्ट सज्जन आकर डेरों में किसी-वस्तु की आवश्यकता अथवा कमी-वेशी, अथवा असुविधा आदि, के बारे में वर-पक्ष से पूँछ लेते हैं ; और कुछ मालूम होने पर उसकी पूर्त्ति की जाती है।

इसी समय शाखोच्चार, कलेवा व रात्रि के प्रीति-भोज आदि कार्यों की समय-सूची पर प्रायः बात हो जाती है, ताकि उभय-पक्ष के सहयोग से सभी कार्य ठीक समय पर सम्पन्न होते जाँय। ध्यान रखने की बात यह होती है, कि शाखोच्चार ऐसे समय से तय किया जाय जिसमें बारात के लिये कलेवा, उससे प्रथम अथवा पश्चात्, ऐसे समय पर आ जावे जो अतिकाल न हो जाय। इसी के साथ-साथ यह भी ध्यान रखना पड़ता है, कि शाखोच्चार का जलसा ऐसे समय हो, जो अन्य परिवारों में "भोजन का समय" न हो और अपने यहाँ पूड़ी सिकने के कार्य में बाधा न पड़े ; क्योंकि कलेवा व पाँति की पूड़ी प्रायः अपनी महिलायें ही बेलतीं हैं। घरात के आगत नाते रिश्तेदारों व व्यक्तियों का, कन्या के घर पर ही, "चाय-नाश्ता", कलेवा, आदि होता है।

प्रीतिभोज का निमंत्रण—अपने ग्राम/नगर में अपने "व्यौहारी" व ग्राम/नगर के मान्य-भानैज, जिन्हे रात को होने वाले प्रीति-भोज के लिये निमंत्रित करना हो, उनकी एक लिस्ट बना कर अपने गुरू-जी को दे दी जाती है। वह सब के घर जाकर, चतुर्वेदियों के यहाँ हलदी से रँगे पीले अक्षत देहली पर छोड़ कर, और अन्य घरों में वैसे ही कह कर, बताये-अनुसार निमंत्रण दे आते हैं।

पाकालय की सम्हाल—यह कार्य जिसके ज़िम्मे होता है, वह तय किये हुये प्रोगाम के अनुसार सब वस्तुओं के प्रस्तुत करने की व्यवस्था करता रहता है।

शाखोच्चार का बोला—लड़कों अथवा नाई द्वारा, जहाँ जैसी प्रथा हो, अपने ग्राम/नगर में "शाखोच्चार का बोला" दिला दिया जाता है, ताकि भाई-बन्धु समय से शाखोच्चार के जलसे में सम्मिलित हो जाँय।

शाखोच्चार की तैयारी—इसके लिये घर में बुहारी आदि लगवा कर घर आँगन साफ़-सुथरा कराया जाता है। स्मरण रहे कि मण्डप के नीचे वेदी के आस-पास बुहारी नहीं फेरी जाती ; और वेदी भी नहीं उठायी जाती। साथ ही, पानी आदि जहाँ पड़ा या भरा हो, वहाँ मिट्टी, बोरे, तख्ते आदि बिछाकर, उसे सूखा बनाते हैं। फिर फ़र्श, जाजम, चाँदनी, गलीचे, मसनद, आदि यथास्थान बिछाये और लगाये जाते हैं। घर साफ़, स्वच्छ और सुन्दर दिखायी दे, यथा सम्भव ऐसी व्यवस्था की जाती है। यदि आवश्यक हो, तो धूप रोकने के लिये चाँदनी, तिरपाल, आदि बाँधे जाते ह। ऊपर, छत पर, महिलाओं के लिये ऐसा प्रबन्ध, बिछावन आदि, किया जाता है कि वह भली-भाँति शाखोच्चार का जलसा देख सकें। उधर पान लगा कर रख लिये जाते हैं। शरवत के लिये कण्डाल, डेग आदि, व पानी का, और गरमी में बरफ़ का, प्रबन्ध किया जाता है। इस अवसर पर शरवत के लिये यदि चीनी के स्थान पर ताज़े बक्खर (चाशनी) का प्रयोग किया जाय, तो शरवत सुस्वादु बनता है और चीनी भिंगाने व छानने की खटखट बचती है। शरवत बाँटे जाने के लिये बालटी, गंगासागर, जग (Jug) आदि, व पिलाने के लिये एक चाँदी का गिलास, लोटा, व कंचनपात्र (डबुआ) धुलवा कर रख दिये जाते हैं। इत्र, गुलाबजल, इलायची, तम्बाखू, लवंग

आदि लगाने, छिड़कने अथवा बाँटने की व्यवस्था व प्रबन्ध ठीक कर लिया जाता है। गरमी में बिजली-पंखे, अथवा ताड़ के बड़े पंखे मय हाँकने वालों के, और थोड़े खजूर अथवा ताड़ के हाथ से हाँकने वाले पंखों का भी प्रबन्ध किया जाता है। जूठे डबुआ उठाने के लिये बालटी व परिचारकों का भी प्रबन्ध किया जाता है।

साथ ही चार डुपट्टे, पहिरावन के, अथवा मलमल के थान में से फाड़े हुये, वर व कन्यापक्ष की ओर से शाखोच्चार पढ़ने वाले गुरू व मान्य के हेतु, प्रस्तुत कर लिये जाते है। हलदी में रंग कर पीले चावल भी प्रस्तुत कर लिये जाते हैं। एक थाली में रोली, अक्षत व एक लोटा पूजा का जल प्रस्तुत कर लिया जाता है। यदि कलश उठा कर अन्यत्र रख दिया गया हो, तो उसे भी मण्डप के नीचे यथास्थान रख दिया जाता है। कुछ बिना लगे पान और ऐपन का प्रबन्ध कर लिया जाता है। अभीष्ट समय से कम से कम एक घण्टा पूर्व डेरों में पहला बोला भिजवा देने, और उसके आध घण्टे बाद दूसरा और फिर कुछ देर बाद तीसरा बोला भिजवाने से, सम्वन्धीके सहयोग से, बारात प्रायः निश्चित किये हुये समय पर आ जाती है।

शाखोच्चार का जलसा—बारात आने की प्रथम सूचना, बाजा बजने की आवाज़, सुन कर, प्रथम बधू और फिर वर को मंडप के नीचे, विवाह-वस्त्रों में ही, यथास्थान बैठा दिया जाता है। बारात के आने पर, आग्यौनी की भाँति, घरातियों की पालागन करती हुयी द्विपंक्ति के बीच से, बारातियों की क्रमवद्ध-पंक्ति पालागन करती हुयी चलती है। कन्या के द्वार पर एक सज्जन बिनालगे पान एवं ऐपन लिये खड़े हैं, जिन्हे पान-ऐपन लगवाने में संकोच होता है वह हाथ जोड़ देते हैं। अब तो कुछ वयोवृद्ध ही इसमें संकोच नहीं करते और उनके, सामने छाती पर (कोई कोई इसके लिये वहाँ

अपना रूमाल लगा लेते हैं तो उसपर), कुछ ऐपन लपेट कर एक-एक पान "लगा" दिया जाता है। यह मंगल-चिन्ह है। अन्दर बारात-घरात को यथास्थान बैठाया जाता है और पंखा आदि हाँके जाने का प्रबन्ध किया जाता है। अपने स्थान से महिलायें मंगल गायन कर रहीं हैं। इसी बीच शरबत आदि प्रस्तुत कर बाँटा जाता है: प्रथम श्रीवर को चाँदी के गिलास में, फिर बारातियों और घरातियों को, अब, कंचनपात्र (डबुओं) में। इधर यह देखा जाता है कि डबुआ बाँटने का कार्य भृत्यों पर छोड़ दिया जाता है, किन्तु यह उचित नहीं प्रतीत होता। यह कार्य बान्धवों को स्वयं ही करना चाहिये। शरबत के बाद घरात व बारात की ओर से लगे हुये पान, सुपाड़ी, इलायची, लवंग आदि, व इत्र, गुलाब-जल आदि, से सभी उपस्थित बारातियों व घरातियों का सत्कार किया जाता है। साथ ही गुरू-जी के बुलाने पर पहले घरात के और फिर बारात के "मान्य" (भानेज अथवा दामाद आदि) को मंडपस्थान में कन्या-पक्ष का "पुरुषा" "तिलक" करता है और उन्हें एक-एक डुपट्टा देता है। फिर इसी प्रकार दोनों पक्ष के गुरू को भी तिलक के साथ शाखोच्चार का एक-एक डुपट्टा प्रदान किया जाता है। और गुरू द्वय बारी-बारी से, प्रथम वर व फिर वधू के, गोत्र, प्रवर, वेद, शाखा, कुलदेवी आदि के साथ प्रपितामह, पितामह व पिता का नाम लेकर "शाखोच्चार पढ़ते" हैं। असल में शाखोच्चार कन्यादान के पूर्व ही, विवाह के समय, पढ़ा जा चुका था, किन्तु विवाह-कृत्य में बाराती, घराती, पंच आदि उपस्थित न थे, और इसी लिये इस सार्वजनिक जलसे में शाखोच्चार की पुनः आवृत्ति की जाती है। अन्तर केवल इतना ही होता है, कि जलसे के शाखोच्चार में प्रथम कुछ मंगलाचरण के श्लोकादि और अधिक जोड़ दिये जाते हैं और यहाँ गुरू-जी बड़े ही मधुर और ललित स्वर में, लय के साथ, इसे "पढ़ते" हैं। बहुधा

यह देखा जाता है कि गुरू-जी द्वारा पढ़े जाने वाले शाखोच्चार का मधुर व कर्णप्रिय स्वर-संगीत उपस्थित समुदाय की परस्पर वार्त्तादि के उच्चस्वर एवं सत्कार-कर्त्ता व प्रबन्धकों के अति-उत्साह के कलरव में डूब जाता है, जो किसी भी प्रकार उचित नहीं मालूम होता। शाखोच्चार "पढ़ना" समाप्त होने पर उसकी दक्षिणा आदि दी जाती है। शाखोच्चार की दक्षिणा कन्या के गुरू-जी को भी वर-पक्ष द्वारा ही दी जाती है। अब वर-पक्ष की ओर से गौ-दान कराया जाता है, भूयसी दक्षिणा दी जाती है; और फिर पालागन-पंक्तियों में से हो कर बारात डेरों को वापस चली जाती है। बारात के लौट जाने पर, वर व कन्या को भी अन्यत्र ले जाकर कुछ विश्राम व जलपान आदि की व्यवस्था कर दी जाती है, ताकि पाँवपखरावनी के लिये उन्हें अत्यधिक श्रम न पड़े।

कलेवा——शाखोच्चार यदि भोजन के समय से प्रथम ही सम्पन्न हो गया हो, तो उससे बारात के लौटने पर, और यदि देर से हो तो उससे पूर्व ही, भोजन के समय, बारात के लिये "कलेवा" प्रस्तुत करके भेजा जाता है। यह भी कन्या-पक्ष के अति-व्यस्त-कार्यक्रम में एक और लादा हुआ बोझ है। कुछ-ही वर्ष पूर्व बारात स्वयं, सम्बन्धी द्वारा भेजे गये आटे-सीधे में से, एवं अन्य आवश्यक सामान सम्बन्धी-जी के यहाँ से मँगवा कर, डेरों में ही, "कलेवा" प्रस्तुत कर लेती थी; और तब उसमें केवल पूड़ी व एक या दो शाक होते थे। अब कन्यापक्ष को बताशे के साथ एक या दो मिष्टान्न, पूड़ी, शाक दो, तीन या चार, और रायते आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है। सम्बन्धी "कलेवा" के परिमाण का अन्दाज़ लगाते समय यह ध्यान में रखता है कि सब बारात व वरपक्ष के डेरों में आने-वालीं "लड़कियों" के लिये यही भोजन है। बारात में आने वाले छोटे-छोटे बच्चे तो रात को प्रीतिभोज से पहले ही सो जाते हैं और उनके लिये शाम

का भोजन भी इसी "कलेवे" में से होता है। यही सब विचार कर इतना परिमाण भेजना चाहिये जो न तो बहुत अधिक होने से नष्ट ही हो; और न बहुत कम पड़ जाय। कन्यापक्ष की ओर से गुरूजी अन्य लोगों द्वारा "कलेवा" ले जा कर वर के डेरों में पहुँचा देते हैं। साथ ही कन्यापक्ष के घरवाले व आगत सज्जनों को भी "कलेवा" कराने की व्यवस्था की जाती है। अब कहीं-कहीं 'डेरों' में ही चाय, नाश्ता और कलेवा प्रस्तुत करने के लिये, कन्या-पक्ष अपनी ओर से, हलवाई आदि का प्रबन्ध कर देता है, जिसमें देर-सवेर और कमती-बेशी का प्रश्न ही न रहे। यथा समय, यथा-इच्छा फ़रमाइश कीजिये और उतनी वही वस्तु वहीं प्रस्तुत होती जायगी।

पाँव-पखरावनी——मण्डपस्थान में वधू और श्री-वर को यथास्थान बैठाया जाता है; उनके बीचमे कन्यादान की जलयुक्त परात रख दी जाती है और फिर घरात की ओर से सभी कुटुम्बी, रिश्तेदार, ग्राम/नगर के लोग, बारात में आये हुये कन्यापक्ष के कुटुम्ब व ग्राम/नगर के दामाद, हितू, मित्र व कन्यापक्ष की महिलायें आदि, सभी वर-कन्या के पाँव "पखार", उनके तिलक कर के, श्रीवर को "पाँवपखरावनी" के रुपये "विष्णुरूपाय वराय तुभ्यमहं संप्रददे" संकल्प के साथ देते जाते हैं; और दान-सांगता के पैसे परात में छोड़ते जाते हैं। वर उन्हें अपने सामने रक्खे हुए सिकोरे आदि में रख लेता है। साथ ही, घरात का एक व्यक्ति पाँवपखरावनी का "चिट्ठा" लिखता रहता है कि किस-किस से कितने-कितने रुपये पाँव-पखरावनी में आये। इससे यह सुविधा भी रहती है कि आये हुए रुपयों की संख्या किसी समय भी ज्ञात हो सकती है और घर वाले पाँवपखरावनी जितने परिमाण और संख्या में भेजना चाहें उसकी पूर्त्ति किसी भी घरके व्यक्ति (एक दो आदमी इस हेतु सबसे पीछे के लिये Reserve रक्खे जाते हैं) से पाँव पखरवा कर पूरी कर देते हैं। समाप्त

होने पर चिट्ठा के जोड़ के साथ सिकोरेके रुपये गिन और मिला कर विवाह के समयं हुये पाँवपखरावनी व गोदान के रुपये भी उसमें मिला लिये जाते हैं। फिर वर-वधू को हाथ के चार-चार लड्डू दिये जाते हैं, जिन्हे (वधू के भी, क्योंकि अब वह पति-गृह की है) वर के गुरू डेरों में ले जाकर सम्हला देते हैं। कन्या-पक्ष के गुरू पाँवपखरावनी के रुपये डेरों में ले जा कर वर पक्ष को सम्हला देते हैं और प्रीतिभोज के लिये पीले अक्षतों द्वारा बारात का निमंत्रण दे देते हैं। इस उपलक्ष में वर की ओर से कन्या-पक्ष के गुरू-जी को दो पुराने पैसे प्रति [पाँव-पखरावनी के] रुपये के हिसाब से वरपक्ष से दक्षिणा मिलती है।

गौरि-पूजा—इसके पश्चात् कन्या आज का गौरि-पूजन करती है। आज का पूजन कन्या स्वयं ही करती है। उन्हीं गौरि की पूजा, जल, रोली, अक्षत आदि से की जाती है और सुख-सौभाग्य की प्रार्थना करते हुये उनके समक्ष कन्या अपनी माँग भरती है।

देहरी-पूजन—गौरि पूजन के पश्चात् कन्या के जलपान आदि की व्यवस्था होती है। तब तक उसे डेरों में ले जाये जाने के लिये डेरों से सवारी, बाजे आदि का प्रबन्ध हो जाता है। अपने बाल्यकाल का घर-द्वार छोड़ कर, नये पतिगृह जाते समय, कन्या द्वारा "मायके" की "देहरी" पुजवायी जाती है। भीतरी द्वार की "देहरी" लीप कर "सतिया" लगा दिया जाता है। कन्या का भाई, अथवा अन्य व्यक्ति, अपना मुट्ठी में धान भर-भर कर तीन बार कन्या के "पसे" में डालता है; और कन्या उन्हें देहरी पर गिरा कर विखेर देती है; मानों आशीर्वाद देती है कि यह देहरी सदा धन-धान्य से पूर्ण "भरी-पूरी" रहे। इस अवसर पर करुणा का सर्वत्र साम्राज्य रहता है। कन्या भी देहरी पुजाने वाले भाई से "मिलती" है; भाई एवं घर के और व्यक्ति उसे सम्बन्धी द्वारा

भेजी हुयी सवारी में बैठा देते है। और वह बाजे के साथ डेरों का ओर प्रस्थान करती है। विवाह के समय की धर्मग्रन्थि बँधा हुआ वर का डुपट्टा उसीके साथ डेरों में भेज दिया जाता है; और साथ ही साथ श्री-वर भी डेरों में चले जाते हैं। आश्वलायन जी द्वारा उल्लिखित विदा सम्भवतः यही है; क्योंकि "डेरा" पति-गृह है, और वहाँ जाकर फिर 'मायके' आने के लिये पितृ-गृह से किसी लड़के को 'बुलाने' के लिये भेजा जाता है। तभी वधू, श्वसुरादि की आज्ञा से, पुनः पितृगृह आती है।

ज़ेवर कपड़े की सम्हाल—डेरों से 'पहनावा' पहन कर लौटने पर सखी-सहेलीं व घर की औरतें, कन्या क्या क्या वस्त्राभूषण पहन कर आयी है, यह देखती हैं। फिर उसके वह वस्त्राभूषण सम्हाल कर, लिस्ट बना कर, उसी बक्स में रख दिये जाते हैं जिसमें सम्बन्धी-जी के यहाँ से आग्यौनी के ढरा का सामान आदि रक्खा गया है। जैसा लिखा जा चुका है, इससे पहेना सम्हलवाने में सुविधा होती है।

पहेने का चिट्ठा—अपने गुरू के हाथ कन्या-पक्ष द्वारा सम्बन्धी जी के पास सफेद, पीले अथवा लाल कागज के दो ताव (sheet) भेज कर उनसे प्रार्थना कर दी जाती है कि पहेने का चिट्ठा शीघ्र तैयार कर दें। गुरू जी यह भी पूँछ लेते हैं कि कितने बजे आकर मैं यह चिट्ठा ले जाऊँ।

———

६

चतुर्थी

गृह्यसूत्रों के मतानुसार चतुर्थी-कर्म विवाह के बाद, बारात लौटने पर, तीन दिन का क्षार-लवण-वर्जित भोजन-व्रत व ब्रह्मचर्य-पालन के पश्चात्, वर के घर पर ही अनुष्ठित करने का विधान सिद्ध होता है, जो गर्भाधान से पूर्व होने वाली क्रिया है। साथ ही, गृह्यसूत्रों में यह भी विधान प्राप्त है, कि चतुर्थी में स्थालीपाक एवं अन्य हवनादि विवाहाग्नि में ही आहुति देकर सम्पन्न हों, और विवाहाग्नि, प्रज्वलित अवस्था में वर-वधू के साथ, पीछे-पीछे, ले जायी जाय। जब हम अग्निहोत्री न रह सके, तब घर में अग्नि-स्थापना न रही। इसी हेतु, ज्ञात होता है, बारात के पाँच दिन ठहराने की प्राचीन-प्रथा चली होगी, कि विवाह से तृतीय और आग्यौनी से चतुर्थ दिन, वधू के गृह पर, चतुर्थी-कर्म विवाहाग्नि में ही विधिवत् सम्पन्न कर लिया जाय; और शास्त्र-क्रिया लुप्त न होने पावे। इसमें शास्त्रोक्त तीन-दिन का ब्रह्मचर्य, भूमि-शयन आदि सब निभ जाता था। हाँ! क्षार-लवण-वर्जित भोजन का व्रत निभता नहीं देखा। दिनों की संख्या घटाने के साथ चतुर्थी-कर्म कब और कहाँ हो, यह प्रश्न विचारणीय है। गर्भाधान से पहले यह अनुष्ठित हो अवश्य जाना चाहिये, ऐसी शास्त्राज्ञा है। अस्तु! यहाँ हमें यह लिख देना है कि प्रचलित लौकिक-रीति में चतुर्थी कन्या-गृह में ही सम्पन्न कर ली जाती है; और यह भी, कि उसमें क्या-क्या कैसे-कैसे होता है।

तैयारी——चतुर्थी की तैयारी में ब्यौहारियों में महिलाओं का "बोला," घर-आँगन साफ़ करना, कुछ बिछावन करना, शरबत बनाने के लिये चीनी या चाशनी, पात्र एवं जल, आदि, और 'म्हों-मड़यी' के लिये ऐपन तैयार करना है। नियत समय से कम से कम एक घण्टा पूर्व डेरों में बोला दे देना चाहिये, क्योंकि वरपक्ष सम्बन्धी-जी को "आँचल-वाली" को बुलाना है; और 'आँचल-वाली' अपने घर-ब्यौहार की महिलाओं के साथ ही आवेगी। "आँचल" लेने का अधिकार वर की माता, मौसी आदि का प्रथम है, फिर क्रमशः वर-गृह की अथवा गाँव की बहू, बेटी अथवा भानजी का।

चतुर्थी-कर्म——चतुर्थी-कर्म के दो अलग-अलग भाग हैं; प्रथम केवल लौकिक और दूसरा शास्त्रोक्त। लौकिक-कार्य में वर के साथ आयी हुयीं (आँचल-वाली एवं अन्य) महिलाओं का स्वागत वधू-गृह को महिलायें करती हैं। साथ आये गुरू-जी व नाई-बारी को बाहर छोड़ कर, श्रीवर और उनके साथ आयीं हुयीं महिलाओं को वधू-गृह के अन्दर ले जाया जाता है। "आँचल-वाली" वर की मातृस्थानीय होकर आज के लिये कन्या-पक्ष की "सम्बन्धिन" हो गयी। दोनों सम्बन्धिन—वर व वधू की मातृस्थानीय—परस्पर ऐपन लगा कर "म्हों-मड़यी" करतीं हैं—जो एक मांगलिक चिन्ह है—औंर एक-एक रुपया 'निछावर' करतीं हैं। कन्यापक्ष द्वारा की गयी निछावर आँचल-वाली की नाइन लेती है और आंचल-वाली द्वारा की गयी निछावर कन्यापक्ष की नाइन लेती है। फिर दोनों महिला-गोष्ठी, परस्पर एक दूसरे के हेतु, "गारी" गातीं हैं। कन्यापक्ष की ओर से शरबत द्वारा सत्कार होता है और आँचल-वाली को चार रुपये "समधौरे" के, एक पत्तल मिष्टान्न की, और साड़ी-जम्फर आदि वस्त्र भेंट किये जाते हैं। अब "आँचल-वाली", साथ-लायी हुयी महिलाओं के साथ, "डेरों" को वापस चली जाती है।

थापा (तोड़ा-धपकरा)——श्रीवर आकर मण्डप के नीचे
अपना आसन ग्रहण किये बैठे हैं। वधू को भी मंडप के नीचे
लाया जाता है और वर के दाहिनी ओर बैठा दिया जाता है। गुरू-
जी आदि भी मंडप-स्थान में बुला लिये जाते हैं। वर के द्वारा गणेश-
पूजन सम्पन्न कराकर वधू के वाम-स्कंध पर वर द्वारा ऐपन का चिन्ह
लगाया जाता है। अब वधू श्री-वर की पीठ पर ऐपन भरे दोनों हाथों से
"थापे" लगाती है। सहेलियाँ इसरार करती हैं "पूरे ज़ोर से", और
साथ ही हँसी के ठहाके लगते हैं। प्रचलित पद्धति की हस्तलिखित
पुस्तक में यह क्रिया "ततः वर तैल हरिद्राया तर्जन्यां गृहीतेने-
ति शिरसि निक्षिप्य; ततः कन्या द्वाभ्यां हस्ताभ्यां हरिद्रां गृहीत्वा
वरस्य पृष्ठभागे चिन्हयेत् लेपयेत" लिखी है। क्रिया-रूप में ऐपन
में तेल नहीं पड़ता।

शुद्धिस्नान——थापे का कार्य सम्पन्न करके वर एवं वधू को
शुद्धि-स्नान कराया जाता है। इस अवसर पर श्रीवर की ठोढ़ी क्षौर की
(बनायी) जाती है। वर की पहनी हुयी धोती, स्नानान्तर, कन्या-पक्ष
का नाई ले लेता है। उधर वधू के उतारे हुये कपड़े, वधू की
सहेलियाँ, ऊपर छत पर से, स्नानोद्यत वर पर, विनोदार्थ, फेंकने
की ताक में रहतीं हैं। स्नानान्तर वर वह 'खादी' धारण करता है
जो वधू ने विवाह के समय पहनी थी; और उसी प्रकार वधू वह खादी
धारण करती है जो वर ने विवाह के समय पहनी थी। गुरू-जी
श्री-वर को रँगा हुआ जनेऊ-जोड़ा पहनाते हैं। आज से पहले
वर तीन-लर का एक ही जनेऊ पहनने का अधिकारी था, आज से
वह दो एक अपना और एक वधू का—जनेऊ पहनने का अधिकारी
हो गया। कहा जाता है कि पहले ब्राह्मण-देवियाँ भी जनेऊ पहनतीं
थीं। कालान्तर में, प्रजनन आदि के कारण, वह जनेऊ की मर्यादा
की रक्षा न कर सकीं; और तब विधान बना कि पत्नी का जनेऊ भी

पति धारण करके, उसकी मर्यादा-रक्षा करेगा। काश! "शिक्षित"
बनने के बाद पुरुष ही जनेऊ की मर्यादा-रक्षा करने में सक्षम होता!

जुआ——वधू के मंडप-तले यथास्थान बैठ जाने के पश्चात्,
बुलाने पर, श्रीवर के साथ गुरू-जी भी आकर अपना स्थान ग्रहण
करते हैं। अब मंडप-स्थान चतुर्दिक ठसाठस भर जाता है, महिलाओं
और लड़कियों से, क्योंकि अब सबसे अधिक मनोरंजक कार्यक्रम
सामने है—जुआ। जुआ क्यों इसका नाम पड़ा, यह तो ज्ञात नहीं;
किन्तु इस कार्यक्रम में जुए का हानि-लाभ-भाग्यांश तो है नहीं। गणेश-
पूजन के उपरान्त सुपाड़ी, पीले-चाँवल व वर के गुरू द्वारा प्रदत्त
एक रुपया लेकर वर-वधू की "गाँठ जोड़" दी जाती है। वर-वधू
के बीच में रक्खी परात में भरे पानी में रोली-हलदी आदि घोल
कर, उसकी पार-दर्शिता (transparency) समाप्त कर दी जाती
है। वर के गुरू-जी १ कंजा, १ कौड़ी, १ सुपाड़ी, १ रुपया और
श्री-वर की एक अँगूठी अपनी मुट्ठी में बन्द कर के परात के पानी
में छोड़ देते हैं। श्री-वर दाहिने हाथ से और वधू अपने दोनों हाथों
से, पानी में से टटोल कर, अँगूठी पहले हथियाने की चेष्टा करते
हैं। अँगूठी जिसके हाथ लगी, उसी की "जीत" और अपर-पक्ष
की हार घोषित होती है। वधू के जीतने पर सहेलियों का अट्टहास
होता है। इस प्रकार तीन या सात बार दुहराया जाता है; और
प्रत्येक round में अलग-अलग हार जीत होती है। हार-जीत की
संख्या की शुमार क्यों की जाय, खेल-समाप्ति पर अँगूठी तो वधू
की उङ्गली की शोभा बढ़ा रही है, मानों श्री-वर ने सबके समक्ष
स्वीकार कर लिया कि हार हो या जीत, अन्तिम-जीत सभी अवस्थाओं
में स्त्री की ही है। अब परात में वर-पक्ष के गुरू दो पुराने पैसे
डाल देते हैं; रुपया गुरू-जी ने ले लिया और परात नाइन उठा
ले गयी।

चतुर्थी-हवन-कार्य——हवन-कार्य प्रारम्भ होने से पहले गुरू-जी नयी वेदी बनाते हैं, क्योंकि विवाह की वेदी पाँव-पखरावनी के बाद समेंट दी गयी थी, जो होना नहीं चाहिये था, क्योंकि इससे शास्त्रोक्त चतुर्थी-कर्म के लिये विवाहाग्नि तो न ही मिल सकी। जैसे विवाह में किया गया था (देखिये पृष्ट २१४), अग्नि-स्थापन, पात्रासादन (जिसमें आज एक अतिरिक्त चरु-पात्र और सम्मिलित होता है)और कुशाण्डी का कार्य उसी प्रकार विधिवत् सम्पन्न किया जाता है। केवल अन्वाधान का संकल्प विनियोग, विवाह के संकल्प (पृष्ट २१६)से कुछ भिन्न, निम्न-प्रकार होता है :—

"ॐ....अद्य तत्सत्....(देश कालौ संकीर्त्य) अस्मिन्कर्मण्यन्वाधान करिष्ये। अस्मिनन्वाहितेऽग्नौ जातवेद समग्निमिध्मेन प्रजापतिं चाधार देवते आज्येन अत्र प्रधानं अग्निं पृथिवीं महांतं वायुं अन्तरिक्षं महांतं आदित्यं दिवं महांतं चंद्रमसे नक्षत्राणि दिशी महांतं पुनरग्निं वायुं सूर्यं च एता प्रधान देवता आज्यद्रव्येण चरुद्रव्येण [अर्यमणं वरुणं पूषणं][1] प्रजापतिं भूरादि व्याहृतिश्चना शेषेण स्विष्टकृतमग्निमिध्म संनहनेन रुद्रं अया समग्निं देवान् विष्णुं अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च एताः प्रायश्चित्त देवताः आज्येन ज्ञाताज्ञात दोष निवरहणार्थं त्रिवारमग्निं मरुतश्चाज्येन विश्वान् देवान् संस्रावेणांग देवताः प्रधान देवताः सर्वाः सन्निहिता सन्तु एवं साङ्गो-

१ – एक मत से यह शब्द, व यह आहुतियाँ, आज आवश्यक नहीं।

पाङ्गेन कर्मणा समद्धभि सद्यो यक्ष्ये। ॐ समस्त व्याहृतीनां परमेष्ठी प्रजापतिः प्रजापतिर्व्याहृती अन्वाधान समिद्धहोमे विनियोगः ॥"

प्रधान आज्याहुति——अब वर प्रधान आज्य होम के हेतु, हाथ में जल अक्षत लेकर, विनियोग करता है :—

"ॐ व्याहृतीनां प्रजापति ऋषिः अग्नि वायुः सूर्य प्रजापतयो देवता गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् जगत्याच्छन्दांसि आज्य होमे विनियोगः।"

और वर स्रुवा में आज्य [घृत] लेकर निम्न मंत्रो से आहुति प्रदान करता है :—

"ॐ भूरग्नये पृथिव्यै च महते च स्वाहा।
अग्नये पृथिव्यै महत इदं न मम ॥"
"ॐ भुवोवायवे आंतरिक्षाय महते च स्वाहा।
वायवे अन्तरिक्षाय महत इदं न मम ॥"
"ॐ स्वः आदित्याय च दिव च महते च स्वाहा।
आदित्याय दिवे महत इदं न मम ॥"
"ॐ भूर्भुवः सुवश्चंद्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा।
चंद्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महत इदं न मम ॥"

चरु-होम——चरुपात्र में तीन मुट्ठी चावल, जल व घृत डाल कर वेदी पर ही चरु सिद्ध किया जाता है। सिद्ध हो जाने पर, वह दूसरे पात्र में उड़ेल कर, उसमें से प्रथम स्रुचि (स्रुवा की भाँति एक दूसरा हवन-पात्र) में श्रुवा से घृत डाल कर, वर अपनी

मध्यमा, अनामिका एवं अङ्गुष्ठ-पर्व की चुटकी में जितना चरु आ जाय, उतना दो बार* स्रुचि में रख कर, उस पर फिर स्रुवा से घृत डालता है। यह चरु-आहुति है। गृह्यसूत्रों में स्थालीपाक नाम से इसका विधान प्राप्त है। विनियोग है—

"ॐ अग्नि इति मंत्रस्य प्रजापतिऋषिः अग्नि-र्देवतानुष्टुप् छंदः चरु होमे विनियोगः ॥"

और आहुति-मंत्र है—

"ॐ अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि [ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम। उपधावामि][1] याऽस्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥
अग्नय इदं न मम ॥ १ ॥"

[अर्थ—हे अग्ने ! आप सब दोषों को दूर करने वाले हैं, क्योंकि इन्द्रादिक देवताओं में जो दोष होता है उसका आप ही अपहरण करते हैं। मैं, अमुक, ब्राह्मण [वेदानुयायी] हो कर आपकी आराधना करता हूँ, आशीर्वाद और ऐश्वर्य की कामना से। इसलिये, इस वधू में यदि पति को हानि पहुँचाने वाला कोई दोष हो तो उसका आप नाश कर दें। स्वाहा ॥]

"ॐ वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि [ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम। उपधावामि] याऽस्यै प्रजाघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा।
वायवे इदं न मम ॥ २ ॥"

* यदि वर पंच-प्रवरी है तो तीन बार।

१—यह अंश अपनी पद्धति-पोथी में प्राप्त नहीं, किन्तु पारस्कर गृह्य-सूत्र में प्राप्त है।

"ॐ सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि [ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम। उपधावामि] याऽस्यै पशुघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥ ३ ॥"*

[पारस्कर गृ० सू०, कां १, कं० ११, श्लो० १-३]

[अर्थ—श्लोक २ और ३ का अर्थ श्लोक १ की भाँति ही है; अन्तर केवल इतना है कि उनमें क्रमशः सन्तति और पशुधन को हानि पहुँचाने वाले दोष-मार्जन की वायु व सूर्य से प्रार्थना है।]

फिर क्रमशः अर्यमा,[1] वरुण,[1] पूषण,[1] और प्रजापति के हेतु चार आहुति, पृष्ठ २२७ से २३१ पर लिखे मंत्रों के साथ दी जातीं हैं। द्रष्टव्य है कि इस चरु-होम का विधान, इस प्रकार सिद्ध किये गये चावल-चरु की आहुतियों द्वारा करने का ही है। यहाँ जो शीघ्रता में बने-बनाये लड्डू मँगा कर आहुति दिलवा दी जाती है, वह उचित नहीं प्रतीत होती।

अवशेष चार भाँवरि—विवाह के समय, लाजा-होम के साथ, वर-वधू की तीन भाँवरि फेरी गयीं थीं (द्रष्टव्य, पृष्ठ २२७ से २३१)। यद्यपि शास्त्र में तीन ही समंत्रक-भाँवरि के मंत्र व विधान प्राप्त हैं

* पारस्कर गृह्यसूत्र में इनसे अगले दो मंत्र इस भाँति और हैं, जो अपने यहाँ नहीं पाये जाते। साथ ही, पाये जाने वाले उपरोक्त तीन श्लोकों में "ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम। उपधावामि" अंश नहीं पाया जाता।

"ॐ चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम। उपधावामि याऽस्यै गृहघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥
चन्द्राय इदं न मम ॥ ४ ॥"

"ॐ गन्धर्व प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम। उपधावामि याऽस्यै यशोघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा ॥
गन्धर्वाय इदं न मम ॥ ५ ॥"

१—एक मत से यह आहुतियाँ विवाह के समय समाप्त हो चुकीं और बाद नहीं दी जातीं।

(वर द्वारा प्रजापति की आहुति को लेकर भाँवरि-आहुतियाँ चार हैं), फिर भी, लोक में सभी जगह सात-भाँवरि ही कही जातीं हैं और प्रायः सभी वर्ण और जातियों में सात-फेरे ही फिराने की स्पष्ट प्रथा है। अधिकतर अन्य जातियों में सातो भाँवरें एक--विवाह के—ही दिन फिरा ली जातीं हैं। चतुर्वेदी-ब्राह्मणों में विवाह के दिन तीन, और चतुर्थी के दिन चार, इस प्रकार दो अवसरों पर यह तीन + चार = सात फिरायी जातीं हैं। कारण खोजने पर एक कथा[१] मिलती है जो इस सन्दर्भ में ठीक-ठीक घटित होती प्रतीत होती है :—

रघुवंश के महाराज रघु की जन्मपत्री में कुछ ऐसा योग पड़ा था कि विवाह-काल में सातवीं भाँवरि पूर्ण होते ही रघु का शिर फट जायगा। इस डर से महाराज दिलीप ने बहुत वर्षों तक रघु का विवाह न होने दिया। किन्तु वंश-लोप का भय था। गुरु वशिष्ठ-जी से दिलीप जी के प्रार्थना करने पर, गुरुदेव ने कुछ सोच कर, विवाह रचाने की आज्ञा दे दी। विवाह में ज्यों ही चौथी भाँवरि समाप्त हुयी, वशिष्ठ जी ने उस दिन का विवाह-कार्य वहीं समाप्त कर दिया। चतुर्थी-होम में वशिष्ट जी ने अवशेष तीन भाँवरि एक, दो, तीन कह कर फेरीं। इन भाँबरों में गुरु-देव ने वर-वधू के आगे-पीछे चलने का क्रम भी उलट दिया। और जन्मपत्री का योग इस-प्रकार वशिष्ठ-कृपा से झूँठा पड़ गया। उसी घटना का संकेत भरत-वाक्य "सो गुसाँइ विधिगति जेहि छेकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी" में इङ्गित है। रघुवंश में इस प्रकार दो दिन में सात भाँवरि पूरी करने की प्रथा बनी, जो चलती रही। कौन कह सकता है, कि हमारी यह प्रथा भी भगवान राम के विवाह पर आधारित हो।

क्रिया-रूप में, अपने यहाँ चतुर्थी में आज्य व चरु होम के पश्चात् चार अमंत्रक भाँवरें फेरी जातीं हैं। इनमें से प्रथम तीन में वधू

१—देखिये "मानस पियूष"; सम्पादक श्री अंजनी नन्दन शरण, श्री अयोध्याजी से प्रकाशित, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ६५४ (अयोध्याकांड, दोहा २५५-२५६)।

आगे, और ग्रन्थिबद्ध वर पीछे-पीछे चलता है। सूप में आज लाजा नहीं, धान (छिलका सहित) रहते हैं। वधू का भ्राता वधू की अंजुलि में दो मुट्ठी धान देता है; और भाँवरि में वधू अपनी अंजुलि से उन्हें परिक्रमा के साथ, अग्नि-वेदी से अलग, चारो ओर बिखेरती चलती है। प्रत्येक भाँवरि समाप्त होने पर कन्या-माता वर को विवाह-भाँवरि की भाँति "भँवरीला" भेंट करती है। आज की अन्तिम भाँवरि में वर आगे, और ग्रंथिबद्ध वधू उसके पीछे-पीछे चलती है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, यह भाँवरें अमंत्रक और बिना-आहुति की हैं, यद्यपि गुरू-जी, कभी कभी प्रदक्षिणा समझ कर, "प्रदक्षिणी दभिगृणंत" मंत्र पढ़ देते हैं, किन्तु वह यहाँ के लिये उपयुक्त नहीं है। आज की भाँवरों में अश्मारोहण (सिल पर वधू को चढ़वाना) नहीं होता। यज्ञाग्नि के चारो ओर धान बिखेरने का तात्पर्य है कि कन्या आशीर्वाद देती है कि मेरे ज्ञाति-कुटुम्बी धन-धान्य से समृद्ध रहें।

कहीं कहीं, दो-दिन के विवाह में, चतुर्थी नहीं भी अनुष्ठित होती देखी गयी है। एसे विवाहों में सातो भाँवरि एक ही—विवाह के—दिन फिरा ली जातीं हैं। चरु-होम सम्भवतः वहाँ अनुष्ठित नहीं होता। ऐसे विवाहों के पश्चात वर-गृह में चतुर्थी-हवन इत्यादि की क्रिया अभी तक अनुष्ठित होता हुयी नहीं देखी गयी।

विशेष-क्रिया——आज स्विष्टकृत होमाहुति भी (पृष्ठ २४३-४मंत्र के साथ) चरु एवं घृत से ही दी जाती है। तत्पश्चात् अन्य प्रायश्चित्त आहुति, अग्नि-पूजन, विसर्जन, भस्म-धारण आदि सभी कार्य विवाह की क्रिया (द्रष्टव्य पृष्ठ२४५ से २५७ तक) और उन्हीं मंत्रो से सम्पन्न किये जाते हैं। इस प्रकार चतुर्थी का हवन-कार्य सम्पूर्ण होता है।

निहोड़ा——नाइन अलता-महावर लेकर आती है और उससे वधू के पैरों का शृङ्गार करती है। साथ ही, श्रीवर के पैर के अंगूठे

के नाखून पर भी उसका एक चिन्ह लगाया जाता है। वधू की भावज, अथवा तत्स्थानीय कोई और महिला, जो अपने पति के साथ वधू से आज गौरि पूजन करायेगी, उसके पैरों का शृंगार भी इस अलता-महावर से किया जाता है। यही "निहोड़ा" है, जिसके नेग में वर के गुरू द्वारा नाइन को एक रुपया दिया जाता है।

गौरि-पूजन——जैसे आग्यौनी के पश्चात् गौरि-पूजन सम्पन्न हुआ था (पृष्ठ १७६-७), आज भी वधू द्वारा गौरि-पूजन उसके भाई व भावज सम्पन्न कराते हैं। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ भावज वधू की चुटकी में रोली ईंगुर आदि देती थी, वहाँ, आज, भावज ईंगुर अथवा रोली श्रीवर की दाहिनी चुटकी में देती है; और फिर श्रीवर उसे वधू की बायीं चुटकी में देता है। वधू, गौरि देवी पर चढ़ा कर, इस प्रकार दिये हुये ईंगुर अथवा रोली से अपनी माँग भरती है। स्मरणीय है कि आग्यौनी के व चतुर्थी के गौरि-पूजन के समय एक दौना में साबित धनियाँ व साबित जीरा भर कर गौरि-माता के सामने रख दिया जाता है। धनिये से धन-धान्य समृद्धि की याचना है और जीरे से जीर्णावस्था (वृद्धावस्था) पर्यन्त सौभाग्य की याचना है। आश्वलायन गृह्यकारिका अध्याय १ खण्ड २१ (द्रष्टव्य श्लोक २ फुट-नोट पृष्ठ १६६) में वर्णित गुड़-जीरा विवरण इस संदर्भ में द्रष्टव्य ज्ञात होता है।

गौरिहत छिरकना——इसी बीच में गौरिहत (गौरि-हित ?) में छिरके जाने वाली निम्नलिखित वस्तुयें मंडप के नीचे लगा दी जातीं हैं :—

एक पीतल का पात्र (कसेंड़ी, डेग अथवा बालटी), लहँगा साड़ी आदि, मय घाट (लाल ओढ़नी) के, पाँच गिदौड़ा, आटा, चावल, बेसन, बड़ीं, घी, मसाले आदि, एवं एक रुपया संकल्प के लिये।

गौरि पुजाने वाला भाई गुरू-जी द्वारा पढ़े गये संकल्प से भगवती गौरि के प्रीत्यर्थ, रुपया, चावल, सुपाड़ी, जल आदि हाथ में लेकर यह सब सामान "छिरक" देता है; अर्थात हाथ के जल-अक्षत उन पर "छिड़क" कर, उन्हें दान कर देता है। यह वस्तुएं डेरा में पहुचाये जाने के बाद वर के मामा को दे दी जातीं हैं।

अब चार-चार लड्डू चारो व्यक्तियों—वर, वधू, एवं पूजा कराने वाले भाई व भावज—के "हाथ धरे" जाते हैं। वधू की कोई छोटी बहिन या अन्य लड़की चारो व्यक्तियों का "आरता" करती है, जिसके लिये वरपक्ष के गुरू उसे एक रुपया भेंट देते हैं। फिर गुरू-जी अक्षतों द्वारा आशीर्वाद देकर सब के साथ उठते हैं। चतुर्थी कार्य सम्पन्न हुआ।

वर के गुरू कन्या-पक्ष के गुरू व पंडित आदि को दक्षिणा और नाई-नेगी आदि को नेगके पैसे आदि देकर, हाथ के लड्डू और भँवरीला आदि लेकर डेरों में जाकर सम्हला देते हैं। डेरों से बहू को बुलाने के लिये बाजे सवारी आदि (और कहीं कहीं एक छोटा लड़का भी) वधू के घर भेज दिया जाता है; और उसके साथ वधू डेरों में चली जाती है।

———

७

पहेंना—एक और सामाजिक जलसा

पहेंने की तैयारी—कुछ लड़के अथवा नाई, जहाँ जैसी प्रथा है, अपने भाई-बन्धुओं व व्यौहारियों के यहाँ 'पहेंने का बोला' दे आते हैं। पहेने की तैयारी में काम हैं—बाहर बारात के बैठने का स्थान साफ़ करके वहाँ बिछावन, जैसे फ़र्श, जाजम, चाँदनी, गलीचा, तकिया आदि बिछाना; गर्मी में खजूर के व बड़े ताड़-पंखे, उन्हे हाँकनेवाले, व कुछ छोटे हाथ पंखे, अथवा यदि बिजली हो तो बिजली-पंखों का प्रस्तुत करना; शरबत आदि छानने के लिये डेग, कंडाल, बालटी, जल, चीनी, कपड़ा आदि प्रस्तुत करना; शरबत पिलाने के लिये लोटा गिलास (एक चाँदी का भी), गंगासागर, झाड़ी, जग, आदि, व धुलवा कर कंचनपात्र (डबुआ) आदि, ठीक करना; लगे हुए पान, इलायची, लवंग, तम्बाखू, सुपाड़ी आदि व उनको बाँटने के लिये तश्तरी, ट्रे, आदि सम्हालना; इत्र, गुलाबजल व उनके लिये इत्रदान, गुलाबपाश वगैरह ठीक करना, आदि।

भीतर की तैयारी में मंडपस्थान साफ़ करके (चतुर्थी के बाद वेदी आदि समेंट कर कहीं रख दी जाती है, और फिर नदी, तालाब आदि में वह सामान 'सिरा' दिया जाता है), वहाँ चौक लगा दिया जाता है; और उसके तीन ओर बिछावन आदि बिछाये जाते हैं। पश्चिम की ओर, पूर्वाभिमुख, दो पटा, पूजा की थाली, कलश आदि रख दिया जाता है। बिछे हुए कपड़ों पर एक ओर "पहिरावन" (बारातियों

को भेंट करने के लिये वस्त्र), जितनी सम्बन्धी से आये हुये पहेंने के चिट्ठे में लिखी हों उस से तीन अधिक, रोली का चिन्ह लगा कर, रख दी जातीं हैं। एक ओर सम्बन्धी के यहाँ से कन्या के हेतु आया हुआ सभी सामान, वस्त्र, आभूषण आदि, पहले से बनाई हुयी लिस्ट से मिला कर, परातों में लगा दिया जाता है। साथ ही, अपने यहाँ से कन्या को देने वाली सभी वस्तुयें, दहेज के बर्त्तन, कपड़े, आभूषण आदि, व साथ भेजे जानेवाले पहले से सजाये हुये दोनों बकस, बिस्तर, सन्दूकची आदि (जिनका विवरण खंण्ड २ अध्याय १ दहेज के प्रकरण में लिखित है) रख दिये जाते हैं। दरवाज़े पर सम्बन्धी जी को कुलरीति के अनुसार भेंट दिये जाने वाले (सैकड़ा, पचसिहा आदि के) रुपयों पर रोली के मंगल-चिन्ह लगा कर उन्हें एक परात अथवा थाल (थरा) में सजा दिया जाता है। सन्बन्धीजी के यहाँ से आये हुए वापस करने वाले सामान में आग्यौनी के ढरा के रुपये व गिन्नी, चरुई की दुनियों के साथ आये हुए 'बेला' के रुपये, गिन्नी के साथ अपनी ओर से 'फिराई' का एक रुपया, कन्या को डेरों में से बुला कर लाने वाले लड़के को मिली हुई पिछौरी (जो एक से अधिक हों, क्योंकि एक सगुन की अपने यहाँ रख ली जाती है) व रुपये, चौथी में वधू द्वारा पहनी हुयी 'जुआ की अँगूठी', आदि भी रख दिये जाते हैं।

सब सामान मंडप के नीचे सजा दिये जाने के पश्चात् कन्यादाता अथवा कुटुम्ब का पुरखा सपत्नीक गाँठ जोड़ कर गुरू द्वारा पढ़े हुये संकल्प से "पहेना छिरकता" है; अर्थात् अपने द्वारा दान करने हेतु वस्तुओं पर हाथ के अक्षत-जल छिड़कता है। यहाँ यह ध्यान रक्खा जाता है कि अक्षत आदि उसी सामान पर छिड़कें जाँय जो अपनी ओर से दिया जा रहा है; सम्बन्धी-जी के यहाँ से आये हुए लौटाये जाने वाले सामान पर नहीं।

नियत समय से कुछ पहले से ही डेरों में अपने नाई द्वारा 'पहेंनेका बोला' प्रायः दो या तीन बार भेजना होता है।

पहेंना—बारात आने पर पंक्तिबद्ध पालागन आदि द्वारा उनका स्वागत किया जाता है। उनके बैठने व पंखा आदि का प्रबन्ध किया जाता है। शरबत होने के बाद दोनों (वर व कन्या) पक्षों की ओर से पान, सुपाड़ी, इलायची, लवंग आदि, व इत्र, गुलाबजल आदि से सत्कार होता है। कन्यापक्ष के गुरू-जी भीतर से "देवी-देवतान्" की पाँच पहिरावन लाकर वर पक्ष को देते हैं और उनके "मान्य" को बुलाते हैं। साथ ही, कन्यापक्ष का 'मान्य' भी बुलाया जाता है; और दोनों को 'पहिरावन' दी जाती है। फिर 'चिट्ठा' में लिखे क्रम के अनुसार 'जोड़ीं' मंडप के नीचे आतीं हैं और 'पटा' पर बैठ, तिलक करा, पहिरावन लेतीं चलतों हैं। इसमें यह ध्यान रक्खा जाता है कि कन्यापक्ष का सगोत्र, रिश्तेदार अथवा अन्य-जातोय बाराती पहिरावन लेने के लिये प्रायः मंडपस्थान में नहीं जाता, और इस हालत में उसकी पहिरावन बाहर हो उसे दे दी जाती है। यदि वह अन्दर जाता भी है, तो पटा पर नहीं बैठता, नाचे बैठ, तिलक के साथ, पहिरावन ले आता है। चिट्ठा के शेष की ओर "सम्बन्धी" जोड़ी (वर पक्ष के बड़े) जाते है, जिनके साथ वरू-जी कवित्त पढ़ते हुये जाते हैं। उनके मण्डपस्थान पर पहुँचने पर वहाँ उपस्थित कन्यापक्ष के सभी सज्जन उठ कर खड़े हो, हाथ जोड़ कर, उनका स्वागत करते हैं और उन्हे भी उसी प्रकार पटा पर बैठाल, तिलक लगा कर, पहिरावन दी जाती है। साथ ही, वर के नाई, बारी (यदि हो तो) व वरू-जी (जो उनके साथ ही जाते हैं) को पहिरावन दी जाती है। भृत्य आदि, यदि 'चिट्ठा' में लिखे गये हों, तो उनकी पहिरावन बाहर वर-पक्ष के 'बड़े' के पास भेज दी जाती है। फिर श्रीवर को बुला कर, पटा पर तिलक के साथ, उन्हें रेशमी वस्त्र भेंट

किया जाता है। सब से पश्चात् वर पक्ष के गुरू, कन्या पक्ष के गुरू और (कहीं कहीं) कन्या पक्ष के पंडित को पहिरावन दी जाती है। पहिरावनों में चिट्ठा की संख्या से जो तीन अधिक रखने के लिये अन्यत्र लिखा गया है, वह कन्यापक्ष के मान्य, गुरू व पंडित जी को भेंट कर दी गयीं।

थराद्वार—"थरा" ले कर कन्यापक्ष के गुरू-जी आते हैं। वरपक्ष का "पुरखा" अपने सामने एक डुपट्टा (प्रायः पहिरावन का ही) फैला कर बैठता है और गुरू-जी एक दो तीन... करके 'थरा' के रुपये गिना देते हैं, यह अलग पोटली बाँध दी जाती है। फिर इसी प्रकार गुरू-जी वर पक्ष की ओर से कन्या को पहनाये गये, व आग्यौनी के ढरा में आये हुये, आभूषण और वस्त्र सम्हाला देते हैं; यह सब वस्तुयें वर-पक्ष सम्हाल कर रख लेता है। पश्चात्, कन्या पक्ष की ओर से "दहेज" में दिये जाने वाले आभूषण, वस्त्र, बरतन व अन्य वस्तुएँ वर-पक्ष को दी जातीं हैं, परन्तु उस समय वरपक्ष उन्हें देख कर वापस लौटा देता है कि कल वधू की विदा के साथ सब वस्तुयें आ जाँयगी। वर पक्ष अपने वस्त्र आभूषणों में से वधू के "रास्ते में पहनने" के हेतु कुछ ले लिये जाने की प्रार्थना करता है; पर कन्या-पक्ष केवल नथुनिया (या अन्य छोटी चीज़) लेकर हाथ जोड़ देता है। अब ढरा के रुपयों में से दशमांश रुपये कन्या के गुरू के माँगने पर दे दिये जाते हैं। अभिप्राय है कि 'थरा' के रुपये वर की 'आय' है; और वर की सभी प्रकार की आय का दशमांश वधू का धन है। यह रुपये वधू के साथ जाने वाली "सिन्दुकिया" में रख दिये जाते हैं। अब पहले कन्या-पक्ष की ओर से उनके गुरू वर-पक्ष की, और फिर वर-पक्ष की ओर से उनके गुरू कन्या-पक्ष की, "विनती" करते हैं; और उभय पक्ष एक दूसरे की प्रशंसा व बड़ाई करते हैं।

अब वर-पक्ष की ओर से थरा-द्वार सम्हालने वाला, अपने रुपये की थैली में से (थरा के रुपयों से नहीं), सर्वप्रथम कन्या-पक्ष के गुरू-जी को, और फिर अपने गुरू-जी को, सैकड़ा ब्याह में चार-चार और पचसिहा में दो-दो रुपया दक्षिणा देता है। कन्यापक्ष के पंडित को गुरू से आधा, कहीं-कहीं बराबर, द्रव्य दक्षिणा में मिलता है। साथ ही, नाई, बारी, मालिन, धीमरि, दरजी, पंखा लाने वाला, मनिहार आदि को उनके नेग के पैसे (जैसा अन्यत्र वरपक्ष कार्य विवरण में लिखा है) दिये जाते हैं। वरू-जी को थान, पाग, रुपया आदि दिया जाता है। श्रीवर, पनत्थ के डुपट्टे सहित, उनका सहबोला कुँवरकलेवा के लिये, व पिता, अथवा तत्स्थानीय व्यक्ति गोद भरने के लिये, यहीं ठहर जाते हैं और अवशिष्ट बाराती, यदि प्रीतिभोज का प्रबन्ध पहेंने के साथ ही न किया गया हो, डेरों को चले जाते हैं।

गठजोरा—पहेंने के पश्चात् वर-वधू की दो बार गाँठ जोड़ी जाती है। कन्या का नाई पहेंने के साथ आये हुए ढरा को लेकर अन्दर दे आता है। ढरा में आये हुए चार रुपये प्रायः उसी समय वर-पक्ष को लौटा दिये जाते हैं। ढरा में आये हुये वस्त्राभूषण वधू को पहनाये जाते हैं। साथ ही, वरपक्ष के चढ़ाये के सामान में से रास्ते के लिये ली हुई नथुनिया या तो उसे पहना दी जाती है, अथवा हाथ में दे दी जाती है। मंडप के नीचे पटा पर वधू के बैठ जाने के पश्चात्, बाहर से वर व उनके गुरू-जी को बुलाया जाता है। वर बधू के (वामपार्श्व में) बैठ जाने पर उनके गुरू-जी द्वारा दिये हुये दो पुराने पैसे, अक्षत व सुपाड़ी लेकर, वधू की छोटी बहिन आदि वर-वधू की गाँठ "जोड़" देती है। फिर वर के पिता या तत्-स्थानीय अन्य व्यक्ति को बुलाया जाता है और वह बताशों से वहू की "गोद भरते" हैं-और एक रुपया न्यौछावर करते हैं। गोद भरने

से पहले, लाये हुये बताशों में से, एक मुट्ठी "अछूते" की निकाल कर अपने कुटुम्ब/ग्राम की किसी लड़की को दे दी जाती है। वर के पिता इसके बाद बारात के यहाँ चले जाते हैं; और वधू को उठाकर अन्यत्र ले जाया जाता है।

फेर-पटा—अब वधू जिस पटा पर बैठी थी, वह पटा वरके लिये रख दिया जाता है; और वर अपना पटा हटा कर इस पर बैठ जाता है। वर के द्वारा हटाया हुआ पटा वधू के बैठने के स्थान पर (वर के दाहिनी ओर ही वधू के बैठने का स्थान रहता है) रख दिया जाता है।

उधर वधू को, ढरा के कपड़े आदि उतरवा कर, दहेज में दिये हुये घाट-लँहगा, आभूषण, आदि से सज्जित किया जाता है। यही सब पहन कर कन्या की विदा होगी; और वह श्वसुर-गृह में प्रवेश भी इन्हीं वस्त्राभूषणों से करेगी। वर के पार्श्व में अपने स्थान पर लाकर, दुबारा फिर, वर-वधू की "गाँठ जोड़ी" जाती है। यह गाँठ एक रुपया (जो वर के गुरू देते हैं), सुपाड़ी, अक्षत आदि से कन्या की बहिन आदि "जोड़तीं" हैं। इस प्रकार गाँठ-बँधा हुआ यह डुपट्टा वर-वधू के साथ जाता है। वर के घर पर, "पनीछा" के बाद, वर की बहिन आदि यह गाँठ खोलतीं हैं और वही यह रुपया ले लेतीं हैं। दोनों ही बार "गठजोरे" के पश्चात् गुरूजी वर-वधू से गणेश-पूजन कराते हैं।

बाती-मिलाई व कुँवर-कलेवा—यह दोनों कार्य लौकिक व्यवहार के ही हैं और पहेंने से पहले भी होते हैं। श्रीवर, व उनके साथ एक सहबोला (छोटा लड़का), कन्या के घर आते हैं।

"मानस" में गोस्वमी-जी ने –

"कोहबरहि आनें कुँअर कुँअरि सुआसनन्हि सुख पाय कें।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कें।

लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास विलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥"
में इसका वर्णन किया है। "सुख पाइ के'" की व्याख्या करते हुए*
"मानस-पियूष"-कार लिखते हैं—

"कोहवर में कोई पुरुष नहीं है जिनको देख कर संकोच हो, अतः सुवासिनियाँ सुख पा रही हैं कि एकान्त में खूब अच्छी तरह दर्शन करेंगी, बोलेंगी, बातचीत करेंगी और हास्य करेंगी। इनका हास्य करना उचित है, इसी से सुखी हो रहीं हैं।" आगे "अति प्रीति" की व्याख्या में कहा है—"कोहवर में वेदरीति या कुल-रीति नहीं होती, केवल लोकरीति होती है, बत्ती मिलायी जाती है, अर्थात एक दीपक में दो बत्तियाँ जलाई जातीं हैं, वर से उन दोनों को मिलाने के लिये कहा जाता है इत्यादि"। "लौकिक रीति" की व्याख्या में कहा है "........इसमें जो उचित अनुचित व्यवहार होते हैं वह हास्य-निमित्त किये जाते हैं, इसमें वे दोष नहीं माने जाते। कोहवर की रीति प्रान्त-प्रान्त की कौन कहे थोड़ी ही थोड़ी दूर में नयी-नयी देखने में आती है। कन्या के मुख में गरी, सुपारी आदि रखा कर, फिर उसी को पान में रख कर, वर को खिला देती हैं। कहीं मिस्सी पान में छोड़ कर खिलातीं हैं और इसके द्वारा फिर बहुत हास्य करतीं हैं। कहीं कन्या के वस्त्र विछावन के नीचे बिछा देतीं हैं ओर उसी से वर का मुँह पौछतीं हैं........" आगे चल कर— "कोहवर में वर से कई प्रकार से हास विलास किया जाता है—यथा कपड़े में छिपा कर उसी की जूती उसी से धोखे से पुजाना चाहना ....।" "जानकीमंगल" में भी गोस्वामी-जी ने "चतुर नारिवर कुँवरिहि रीति सिखावहिं। देंहिँ गारि लहकौरि समय सुख

* मानस पियूष, द्वितीय संस्करण, अङ्क १२, सम्पादक श्री अंजनीनन्दन शरण जी, श्रीअयोध्या जी से प्रकाशित, बालकाण्ड, दोहा ३२७, छन्द २, पृष्ठ-संख्या ३२७-२८।

पावहिँ॥ जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह। जीति-हारि मिस देंहिँ गारि दुहुँ रानिन्ह" में इसका वर्णन किया है।

बाती मिलाई में श्रीवर को वधू के मातृका-स्थान में बैठाया जाता है। सामने एक दीपक रहता है जिसमें दो बत्तीं अलग-अलग जलतीं रहतीं हैं। श्रीवर इन दोनों बत्तियों को मिला कर एक कर देते हैं, जो दोनों साथ मिल कर जलतीं रहें। ज्ञात होता है कि दो जलती बत्तियों को दो जीवन—वर और वधू के—माना गया है, जो आज तक अलग-अलग यापन होते रहे थे। आज से वह दोनों, मिली-बत्तियों की भाँति ही, एक हो कर रहेंगे। अथवा दो असम्बन्धित कुल-कुटुम्ब, जो आज इस विवाह द्वारा एक-सूत्र में बँध कर सम्बन्धी हो गये, या कुछ और अभिप्राय व मन्तव्य रहा हो। बाती-मिलाई में श्रीवर को द्रव्य, आभूषण (अँगूठी आदि) और अन्य उपयोगी वस्तुयें सास व अन्य महिलायें भेंट करती हैं। कहीं-कहीं तो वर इस समय अपनी "माँग" भी पेश कर देते हैं; और श्वसुर-पक्ष द्वारा सानन्द उसकी पूर्त्ति भी की जाती है। किन्तु "माँग" करने की प्रथा अब बहुत ही कम देखने में आती है।

कुँअर-कलेवा—कुँअर-कलेवा का भी श्रीराम-विवाह-प्रकरण में गोस्वामी जी ने "मानस" में सरस उल्लेख किया है। यह मंडप के नीचे सम्पन्न होता है। महिलाओं द्वारा "टौना" गान, व वधू की सहेलियों की ठिठोली, पूर्ववत् जारी रहती है। मिष्टान्न की पत्तलें श्रीवर व सहबोला के सामने रक्खी जातीं हैं; और वह उसमें से एकाध ग्रास ग्रहण कर लेते हैं। अवशेष मिष्टान्न वर का नाई ले लेता है, जिसे उस "जूठिन" के साथ कन्यापक्ष की ओर से एक रुपया दिया जाता है। कुँवर-कलेवा के उपलक्ष में, बाती-मिलाई की भाँति ही, द्रव्याभूषण व उपयोगी वस्तुयें महिलाओं द्वारा श्रीवर को भेंट में दी जाती हैं।

अपनी प्रथा में यह दोनों कार्य श्रीवर के हैं। गुरु अथवा वधू की उपस्थिति इनमें आवश्यक नहीं।

प्रीतिभोज की तैयारी——महिलायें अपने ग्राम/मुहल्ले व्यौहार में "गालियों" का बोला देने जातीं हैं। छत, अथवा अन्यत्र, जहाँ भोजन कराने की व्यवस्था हो, पर "मुग़ल पसारे" जाते हैं। मुसलमानी राज्यकाल में अन्य हिन्दुओं के साथ चतुर्वेदी-पुरुषाओं को भी अनेक बार अपने धर्म को रक्षार्थ यवनों से लोहा लेना पड़ा था। ऐसा ही एक संघर्ष खिरिया (ज़िला एटा के एक ग्राम) में हुआ था। नव-विवाहिता अन्य-जातीय एक वधू का "डोला" उन्मत्त मुसलमानों द्वारा लूटे जाने का कुप्रयास चतुर्वेद-कुल-भूषण बुचई सिंह ने अपने बाहुबल से व्यर्थ किया; और इस हेतु वह फ़रुख़ाबाद के मुसलमान नवाब के कोप-भाजन बने। नवाब के बल और सेना का पार न था। आक्रमण हुआ और वीर बुचई सिंह अपने पुत्र विजन व परिवार के व्यक्तियों के साथ, तलवार लेकर युद्धस्थल में आ गये। लोहा टकराया और कई-गुने मुग़ल-सैनिकों को मार कर बुचई-परिवार के युद्धोन्मत्त नर वीरगति को प्राप्त हुये। यह देख वीर-नारी—बुचाकर रानी—रणचण्डी की भाँति युद्ध के मैदान में कूद पड़ीं। स्तम्भित मुग़ल कट-कट कर जूझने लगे; और अन्त में संख्या के बल पर वीर-माता भी वीर-गति को प्राप्त हुयीं। परिवार में बचीं विजन सिंह जी की गर्भवती पत्नी, जो मायके में थीं। आज भी वरू-जी सभी विवाहों में, प्रीतिभोज के अवसर पर ही, वह वीर वर्णन गा-गा कर सुनाते है जो उस सत्यानाशी युद्ध से लौटे हुये वरू-जी ने विजन सिंह-जी की गर्भवती पत्नी को सुनाया था:—

"बाजिय तेग विजन अरिअन सन मनहुँ दमकि दामिनि दर्रानी।
काटीं हैं कड़ीं जिरह-बख्तर की मारे हैं मुगल बुचाकर रानी॥
नेकु न डिगी कहूँ भारत में, कोटि काटि कलि में घहरानी।
चच्चर किये सिंह बुचई के रुधिर माँझ निज साँघ अघानी॥"

इसी युद्ध में, कभी विराम के समय, मुग़ल-शवों की छाती पर बैठ कर, चतुर्वेदी-शूरों ने भोजन किये थे; और तब से आज तक, बारात के प्रीति-भोज के हेतु छत पर, अथवा अन्यत्र, जहाँ बारात को बैठा कर भोजन कराने का प्रवन्ध हो, कन्या-पक्ष की महिलायें गेहूँ के आटे से मुग़ल-आकृतियाँ "पसार" देतीं हैं, और बारात उन्हीं की छाती पर बैठ कर भोजन करती है। अस्तु! बिछावन आदि ठीक करके पत्तल, दौना, सिकोरा, डबुआ आदि धोकर रख दिये जाते हैं। परसने के लिये जल व गंगासागर, बालटी आदि का प्रवन्ध कर लिया जाता है। साथ ही पक्वान्न खाद्यवस्तुयें व उनके परसने के लिये बरतन आदि ठीक किये जाते हैं। परसने वाले "चतुर सुआर" पहले से ही ठीक कर लिये जाते हैं। और स्त्रियाँ, कहीं ऊँचे तिखने आदि पर बैठ कर, "मंडप" गान आरम्भ कर देतीं हैं। बारात बुलाने के लिये पहले धोती-पन्ना (धोती-उपरना) का बोला गुरू द्वारा, और उसके बाद "जीमने का बोला", दो बार, "मशाल" या अन्य रोशनी के साथ जाने वाले नाई द्वारा, कन्यापक्ष की ओर से डेरों में भेजा जाता है। एक व्यक्ति बारात को लगाने के हेतु चन्दन आदि घिस कर तैयार कर लेता है। एक चौकी पर परात में जल रख कर "पैर धोने" का प्रबन्ध होता है। कन्या-परिवार का एक व्यक्ति आज प्रातःकाल से इस "पैर धोने" रूपी पुण्यकार्य करने हेतु उपवास किये रहता है।

प्रीतिभोज——प्रति-भोज में, परसउअल हो जाने पर, कन्या-पक्ष के सभ्रान्त व्यक्ति अपने 'पुरुषा' को आगे कर, वरपक्ष के पुरुषा के सामने जाकर, समधौरे के रुपये हथेली पर रख कर खड़े हो जाते हैं। वर-पुरुषा खड़े हो, हाथ जोड़ कर, रुपये उठा लेता है, अपनी परोसा पत्तल पर कन्या के पुरुषा को आदर पूर्वक बैठा लेता है; और स्वयं 'पत्तल बदल' कर, पास में प्रथम से ही अलग परसवायी पत्तल पर, बैठ जाता है। एक से अधिक प्रीतिभोज हो, (जब बारात दो से अधिक

दिन रक्खी जाय), तो यह "पत्तल बदलने' का कार्य एक ही दिन होता है—अधिक नहीं। मानस में वर्णित[†] है—

"पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती।
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा॥
सादर सब के पाँय पखारे। जथा जोगु पीढ़न्ह बैठारे।
धोये जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिँ बरना॥
बहुरि राम-पद-पङ्कज धोये। जे हर हृदय-कमल महुँ गोये।
तीनउ भाइ राम सम जानी। धोये चरन जनक निज पानी॥
आसन उचित सबहिं नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे।
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे॥
सूपोदन सुरभी सरपि, सुन्दर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सबके परुसि गे, चतुर सुआर विनीत॥

पंचकवलि करि जेंवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे।
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिँ जाहिँ बखाने॥
परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन विविधि नाम को जाना।
चारि भाँति भोजन विधि गाई। एक एक विधि बरनि न जाई॥
छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती।
जेंवत देहिँ मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥
समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा।
येहि विधि सबही भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा॥
देइ पान पूजे जनक, दसरथु सहित समाज।
जनवासे गमने मुदित, सकल भूप सिरताज॥"

इसका पूरा-पूरा चित्र अपने प्रीतिभोज* में देखने को मिलता है। यहाँ वर-पक्ष के ध्यान रखने की बात है कि आज "आमोद" के स्थान पर "उच्छृङ्खलता" न दिखायी दे जाय। परोसनेवालों को अधिक न छेड़ा जाय ; "हँसत राउ सुनि सहित समाजा" के स्थान पर उच्च

† बाल काण्ड, दोहा ३५९ के पश्चात्।

* अपने समाज में मथुरा में "जेवनार" शब्द शुभ कार्य के प्रीतिभोज के लिये प्रयोगमें नहीं लाया जाता, इसी लिये प्रस्तुत पस्तक में इस "पाँति" को प्रीतिभोज के नाम से सम्बोधित किया गया है।

अट्टहास्य व, कहीं-कहीं और कभी-कभी, सुन लिये जाने वाले स्वर में "गालियों" के उपालम्भ का उत्तर, अथवा उस पर टिप्पणी आदि न कर दी जाय। बारात को इस समय शील व संयम से काम लेना चाहिये ; और बारात के वयोवृद्धों को युवकों के प्रति उचित शिक्षा-उपदेश आदि द्वारा इस बढ़ती नयी बीमारी को रोकने का यथा-सम्भव प्रयत्न करना चाहिये।

यहाँ यह भी लिखना उचित प्रतीत होता है कि कन्यादान के समय कन्या-दाता ने ब्राह्मण-भोजन कराने का संकल्प किया था। वह ब्राह्मण-भोजन, नारायण-स्वरूप यज्ञस्तम्भ की सन्निधि में, उसी विवाह-मंडप के नीचे होना अभीष्ट है ; इसी लिये दोनों पक्ष के गुरू व "विष्णुरूप" वर का उसी मण्डप के नीचे बैठ कर जीमना सर्वथा उचित है।

एक और बात का उल्लेख किया जा सकता है, कि भोजन के बाद पान देना सम्मान और आवश्यकता दोनों दृष्टि से उपयोगी है। इस लिये कन्या-पक्ष को और सब प्रबन्ध के साथ, भोजन के बाद पान का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये।

बारात का प्रीतिभोज समाप्त होने के बाद इधर परसने वाले "चतुर सुआरों" को जिमाया जाता है ; और उधर, एक ओर, अलग स्थान पर, स्त्रियों के जीमने का प्रबन्ध हो जाता है।

विदा की तैयारी—वरपक्ष सम्बन्धी जी-के यहाँ से पहेंने के साथ आये हुये ढरा के वस्त्राभूषण सम्बन्धी-जी को डेरों में ले जाकर सम्हलवा दिये जाते हैं। कन्या के साथ भेजने के लिये पूरी, पुआ आदि "पेंड़े" में बाँध दिये जाते हैं। एक घल्ला (छोटा घड़ा) मिठाई भर कर, मुँह पर उलटा सिकोरा रख कर, ऐपन आदि लगा कर, बन्द कर दिया जाता है। यह कन्या के साथ भेजे जाने के लिये "लाढ़-मथनियाँ" है।

विदा—अवसर का करुणा-प्रवाह जैसे लेखनी की गति शिथिल करता है। तृतीय खण्ड, वर-पक्ष के कार्यों में, यह वर्णिति है।

८

स्फुट विचार और सुझाव

मानव और मान्यताओं का सम्बन्ध वृक्ष और बीज न्याय की भाँति है; कौन कारण है और कौन कार्य, कौन पहले और कौन फलस्वरूप पीछे, यह सोचना सहज नहीं। मान्यताओं के बदलने से मानव बदलता है, अथवा मानव के बदलने से मान्यतायें बदलतीं हैं, इस दार्शनिक विचार-धारा को छोड़ कर, यह तो स्वीकार करना ही होगा कि विगत कुछेक वर्षों मे भारत में मानव और मान्यतायें क्रमशः द्रुत-तर गति से बदलती हुयीं इतनी बदल गयीं हैं, कि "तब" की "अब" के साथ कुछ तुलना या समता नहीं की जा सकती, पहचान ही नहीं हो सकती।

विशेष कर समाज, सामाजिक-मर्यादा और सामाजिक-एकता के क्षेत्र में, जहाँ कुछेक वर्षों पहले का बन्धु बड़े से बड़ा त्याग व तपस्या करने को सहर्ष तैयार था, वहाँ आज का "मानव" कुछ भी करने के लिये प्रस्तुत नहीं दिखायी देता। समाज के लिये श्रद्धा और भातृ-प्रेम, दोनों ही, झिरझिरी अंजुलि के सिकता-कणों की भाँति, बुरी तरह घट रहे हैं। समाज की एक छोटी इकाई ले लीजिये—ग्राम, अथवा कुटुम्ब ही। निजी सुविधा के सामने सभी नगन्य है। व्यक्तिवाद, घोर व्यक्तिवाद, का युग है। और हमें इसी युग से, इसी मानव से, इन्हीं मान्यताओं से मतलब है, क्योंकि विगत तो गत हो चुका; वर्त्तमान का स्वागत है।

हम लीक तोड़ने चले, और लीक टूट गयीं; अच्छी भी और बुरी भी। यदि उसके साथ, अथवा पश्चात्, निर्माण का युग आता, तो उन्हीं भग्नावशेषों पर नयी स्वस्थ सबल लीक निर्मित हो जातीं। उस ओर प्रयत्नशील अथवा फलवान न होने से हम रिक्त (Vacuum) में पहुँच गये। सुविधा-पसन्दी मनमानी की जननी है।

फिर? क्या अब भी समाज सोच कर, विचार कर, नयी परम्परायें, नयी स्वस्थ सबल लीक, स्थापित न करेगा? "नहीं" में समाज का समाज-रुप से विलय स्पष्ट है; और "हाँ" में प्रयास का हिमालय! कोई बढ़े, कोई करे, करना है और करना होगा। समाज की इकाई के सामने विलय अपनी चुनौती फेंक रहा है।

आज आर्थिक समस्या ही सबसे बड़ी—और भयप्रद भी—समस्या है। दैनिक आवश्यक व्ययों—भोजन, वस्त्र, शिक्षा और स्वास्थ—का, और साथ ही नैमित्तिक—सिनेमा, चाय-पाटी, सैर, पिकनिक आदि—व्यय एवं सरकारी करों का भार इतना बढ़ गया है, कि भारत के मानव को जैसे उस से ऊपर उठ कर और कुछ देखने की शक्ति ही नहीं रही। अब कलकत्ता-समाज की "अँगौछा-सभ्यता" (जिसमें कर्त्ता सब कुछ उपार्जन करते हुये भी, सभी-शारीरिक-आवश्यकताओं और व्यसनों से दूर, साधारस से 'बासा' में, अँगोछा पहन कर रहता था और उसके गाँव में उसकी हवेलियाँ गढ़ी जातीं थीं) कलकत्ते में भी नहीं दर्शन देती। मानव बदल गया, और साथ ही मान्यतायें भी। हवड़ा-पुल के नीचे से प्रत्येक क्षण भागीरथी का जल समुद्र की ओर निरन्तर बहता ही जाता है।

दैनिक और नैमित्तिक व्यय एवं करों के बढ़े हुये भार से विवाहादि के व्यय वहन करने में समाज आज अपने को असमर्थ पा रहा है। टीस सी उठती है, किन्तु मवाद छुपाने से दर्द तो कम नहीं होता।

प्रश्न होता है, कि क्या हम सब मिल कर, सबके लिये सुगम और सर्वमान्य, सरल रास्ता नहीं ढूँढ़ सकते। विवाहादि के ख़र्च इन्हीं ने, इसी पीढ़ी ने, बढ़ाये हैं, अधिकांश पुरानी प्रचलित प्रथाओं को तोड़ कर; नयी-नयी, सुन्दर-लगने-वाली, प्रथाओं की सृष्टि कर; और दूसरे समाजों की नकल पर उतारू हो कर। तो हमें ही सोचना भी होगा, सुखद हो अथवा दुःखद।

अभीतक समाज के सम्मुख कोई लिखित रिकार्ड न था, कि विवाह में क्या-क्या कैसे-कैसे ख़र्च होता है। हम भावनाओं से प्रेरित होकर "सुधार" पर उतारू हुये थे। प्रस्तुत पुस्तक में विवाह-क्रिया का प्रत्येक कार्य ब्यौरे-बार लिख दिया गया है, ताकि सोचने-समझने में सुविधा हो। मरम्मत अथवा पुनर्निर्माण से पहले जैसे कोई पुराने मक़ान का पूरा-पूरा नक्शा बना ले; और फिर उसे इन्जीनियरों के सामने रख कर तोड़-फोड़ और नवीन-निर्माण पर विचार करे!

और मापने वाली स्केल लेकर पहले इस नक्शे की पैमाइश कर ली जाय। साधारण वित्त के घर में लड़की के विवाह (पचसिहा) में किस-किस मद्द में कितना-कितना ख़र्च होता है, पहले यह देख लेना उचित है:—

धार्मिक संस्कार-अनुष्ठान में—मँडवार २; बाँस ११ अथवा
__ख़र्च__ २) १०)

१६; मूँज के पूरा, कड़ब अथवा छावन; दाब या मूँज की डोरी;
२) ।५०

पीतल की घंटी; लाल टूल; रोली; कलाया; सुपाड़ी; धूप;
२) १) १) १) ५) १)

नारियल (गड़गड़ा); शहद; तिल; यव; धान; धान की खीलें;
१) ।५० २) १) १) १।

मुनक्का; सूखे आँवले; बताशे; कुश; बिना चमड़े का सूप;
१) ।५० २) ।५० १)

पान; दूब; फूल; आम्रपत्र; दही; घृत; समिधा;
१) — १) — ।५० २०) ।५०

पीली मिट्टी; कुशासन; सफ़ेद कपड़ा; चावल; हलदी;
— १) १) १) १)

गुरू-जी को दक्षिणा; पूजा के पैसे; अन्य खुदरा खर्च = कुल
३५) ५) ११)

जोड़ ११५)

दहेज का सामान—__(१) बरतन__:—१ कलशा; एक झाड़ा
__ख़र्च__ ३५)

अथवा गंगा-सागर; दो लोटे; एक गिलास; सात भँवरीले;
१०) १०) ४) १०)

एक बड़ा बरतन (डेग आदि)। एक परात; एक थाल;
१२०) ३०) १५)

दो पीतल की बालटीं (काका-मामा को); एक कँसेड़ी अथवा डेग
२५) २१)

(गौरिहत की) = जोड़ २८०)

__(२) आभूषण__—सोने के १२ तोला; चाँदी के ६० तोला मय बिछुआ;
२०००) २००)

पान-जनेऊ, सोने का; काँच की चूड़ा = जोड़ २२४५)
४०) ५)

__(३) वस्त्र__—नौ धोतीं कुड़तीं; समधिन की साड़ी; घाट-लहँगा;
१०८) ५०) १००)

आँचल-वाली की साड़ी-कुड़ती; गौरिहत की साड़ी; कन्या के साथ
३०) ३०)

को १० सेट (धोती-कुड़ती); दो पिछौरा; तौलिया-रूमाल आदि;
१२०) २५) १७)

पहिरावन १०० ; दो थान मलमल ; श्रीवर के दरवाज़े का सामान =
२५०) ४०) १५०)
जोड़ ६२०)

(४) अन्य वस्तुयें—दो बकस ; एक सन्दूकची ; आभूषण-पेटिका ;
२०) १०) १५)
होल्ड-आल ; एक दरी ; दो चादर ; दो तकिया ; एक गद्दा ;
२०) १०) १०) १०) १५)
एक लिहाफ़ ; शृङ्गार-वस्तुयें (डबिया-टिपरिया) ; खेल-खिलौने ;
१५) ४५) ४०)
मेवा-आदि ; सिन्दुकिया में नगद रुपये = जोड़ ३५५)
४४) १०१)

१+२+३+४ का जोड़ = २८०) + २२४५) + ६२०) + ३५५) = ३८००) दहेज-वस्तुओं के हेतु व्यय होते हैं।

खाद्य-सामिग्री——यह माना गया है कि ७५ बाराती हैं और १५० घराती, जिसमें आये हुये ४० रिश्तेदार सम्मिलित हैं, जो बारात से एक दिन पहले आये हैं और एक दिन बाद जाँयगे। आवश्यक खाद्य-सामिग्री का हिसाब इस प्रकार है, यदि विवाह केवल दो दिन में समाप्त हो जाय।

चावल १० किलो ; चीनी २ क्विन्टल ; गुड़ १० किलो ;
१०) २७५) १०)
घृत ४ मन ; मैदा १० किलो ; बेसन-सूजी १० किलो ; गेंहूँ ३ क्विन्टल ;
१२६०) १०) १०) २२५)
चना १५ किलो ; उड़द १० किलो ; मूँग १० किलो ; अरहर की दाल १५
१०) १२) १२) १५)
किलो ; तेल आदि ; वेजीटेबल-घी १ टीन ; चाय ५ किलो ;
२१) ५०) २५)
दूध २॥।८ मन ; दही १८ मन ; मावा ३० किलो ; शाक-तरकारी आदि ;
७५) ४०) ७५) १५०)

मसाले ; ईंधन ; मेवा व अन्य सामान ; पत्तल-सिकोरा आदि ;
८०) १००) ५०) १००)
हलवाई की मजूरी ; नौकरों की मजूरी ; खुदरा खर्च = जोड़ २६००)
१२५) ५०) ११०)

नगदी—माला-मुँदरिया के; दरवाज़े के ; पहेने के ; निछावरि ;
२५) २५) ५०) २१)
बाती-मिलायी ; कुँवर-कलेवा ; गूत-छुड़वायी ; पाँव-पखरावनी
४१) ४१) ५१) ४५१)
(गोदान के साथ) ; विवाह में अन्य ख़र्च ; आये हुये नाते-रिश्तेदारों
१००)
के टीका-पटा ; बहन-बेटी को बुलाने में ; उनकी विदा में = कुल जोड़
२५) १००) १५०) १०८०)

इस प्रकार, केवल दो दिन के मामूली विवाह का ख़र्च, जनवरी सन १६६६ के यू० पी० के बज़ार भाव में, ११५) + ३८००) + २६००) + १०८०) = जोड़ ७८६५) का है। घर-वाले परदेश में रहते हों तो आने जाने का सफ़र ख़र्च और खुदरा अन्य ख़र्च इसमें और जुड़ जाते हैं। दो से अधिक दिन बारात रखने में प्रत्येक दिन का भोजन-ख़र्च १०००) के हिसाब से बढ़ता है। द्रष्टव्य है कि इस प्रकार ६०००) रुपये के कम-से-कम ख़र्च के जोड़ में संस्कार-अनुष्ठान का ख़र्च कुल ११५) रुपया है।

कमी कैसे हो ?——किस मद में कितना ख़र्च होता है, यह जान कर यह स्पष्ट है कि आज के बढ़े हुये कर व दैनिक व्यय-भार से दबे मध्य-वृत्ति गृहस्थ के लिये यह अत्यधिक है। अब यह सोचना है कि ख़र्च में कमी कैसे हो ? 'सुधार' अथवा चाहे जो नाम दे लीजिये इसे ; उद्देश्य है ख़र्च में कमी। इसके उलटे को रूढ़िवाद नाम देकर तथाकथित सुधारकों की पहुँच (approach) ग़लत रही है। कड़े शब्द बुरी भावनाओं की सृष्टि करते हैं, और हमें वह समय

भी याद है जब पाँच और चार दिन को लेकर गाँव-गाँव और घर-घर में अवांछनीय कटुता की सृष्टि हो गयी थी। रूढ़िवाद को बुरी दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं है। वह तो बहुत अंशों में अच्छी वस्तु है, जो हमें पतन से रोक-कर अपने स्थान पर स्थित रखती है। परन्तु जहाँ बूते का प्रश्न है, वहाँ सोचना ही बुद्धिमानी है।

संस्कार-ख़र्च——जहाँ तक शुद्ध संस्कार का प्रश्न है, वह शुद्ध-रूप में अवश्य ही अनुष्ठित होना वांछनीय है। हम जो गुरू-जी से प्रीतिभोज की अबेर बचाने के हेतु चतुर्थी में शीघ्रता करने को कहते हैं, वह हमारी भूल है। संस्कार ही तो विवाह का मुख्य अंश है। भोजन व जलसा दोंनो गौण हैं। संस्कार हमें विशद रूप से अनुष्ठित करना चाहिये। प्रचलित-पद्धति तो बहुत ही छोटे-रूप में बना कर हमारे पद्धतिकार ने गागर में सागर भर दिया है। यज्ञ-आहुतियाँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उनको तो बढ़ाया ही भले जाय, घटाने का प्रश्न न उठाना चाहिये। जहाँ हम अग्नि-होत्री थे, नित्य आहुतियाँ देकर देवताओं को सन्तुष्ट रखते थे, वहाँ आज यज्ञोपवीत विवाहादि में भी नहीं देना चाहते, अथवा उनका महत्व नहीं समझते, तो यह शोचनीय हो जायगा। मंत्रादि के अर्थ वर-वधू को भली भाँति समझा दिये जाँय, ताकि हवनादि-कार्य में वह यन्त्रवत् न होकर मन, वाणी और सक्रिय-रूप से अनुष्ठान में भाग लें। इसी दृष्टिकोण और उद्देश्य को लेकर, प्रस्तुत पुस्तक में, विवाह की प्रचलित-पद्धति यथावत् उद्धृत कर के, कहाँ से क्या मंत्र लिया गया है के साथ, यथासम्भव मंत्रार्थ भी दे देने की चेष्टा की गयी है; एवं क्रिया-विधि को सरल भाषा में लिख दिया गया है। संस्कार के ख़र्च का जोड़ कम से कम यथावत् तो अवश्य रहना चाहिये, उसकी ओर कटौती की दृष्टि से देखने की भी आवश्यकता नहीं है। गुरू-जी की दक्षिणा काफ़ी मात्रा में बढ़ायी जानी चाहिये, ताकि गुरू-जी को निर्वाह-

दृष्टि से इस कार्य की ओर रुचि रहे; अन्यथा हमें चतुर्वेदी-गुरु मिलना मुश्किल हो जायगा। केवल मथुरा में कुछ गिने-गिनाये घराने आचार्य-कार्य में लगे हैं। अन्य स्थानों के आचार्य-कुल ने हमारी भाँति ही नौकरी अथवा व्यवसाय को अपना लिया है। हम यह भी चाहते हैं कि हमारे आचार्य-याज्ञिक और पंडित हों, वेद-मंत्रों का उच्चारण व अर्थ उनके द्वारा ठीक-ठीक हो। यज्ञ की क्रिया एवं विधि का उन्हें विस्तार से ज्ञान हो। अब जैसे-तैसे कार्य से यजमान सन्तुष्ट नहीं होगा। किन्तु आचार्य-दक्षिणा जब तक हम ज़माने के हिसाब से नहीं बढ़ाते, तब तक और कुछ आशा नहीं की जा सकती। गृह्य-सूत्रों ने आचार्य-दक्षिणा एक गौ का मूल्य रक्खी है। यह हमें बढ़ा ही देनी चाहिये।

संस्कार अनुष्ठान का व्यय वर-पिता का है——गौंड़ा चुकाने के साथ वर-पिता साढ़े-चार-आने कुड़ेरी के देता है। यह कुड़ेरी मिट्टी की वह ९ प्याली हैं जो कुम्हार द्वारा कन्या-पिता के घर दे दी जातीं हैं, और वरेंई के पुतले के सामने बैठी हुयी "कन्या" द्वारा अनुष्ठित हर-गौरी-शची पूजन के अवसर पर "छिड़की" जातीं हैं। इनमें रखने के लिये नौ टका पैसे और ९ सुपाड़ी भी वर-पक्ष के गुरू-जी ही देते है। स्पष्ट है, कि कन्यादान के पश्चात् संस्कार-अनुष्ठान आदि का जितना भी व्यय है—हवन-सामिग्री, पूजन-सामिग्री, दक्षिणा आदि—यह सब वर-पिता का ही है, कन्या-पक्ष का नही। वर-पक्ष के गुरू-जी ही यह सब संस्कार सम्पन्न कराते हैं, कन्या-पक्ष के गुरू-जी का इसमें कुछ भाग नहीं। अन्य समाजों में यह देखा जाता है कि हवनादि का सब सामान वर-पिता ही भेज देता है। मथुरा के चतुर्वेदी-गुरू-समुदाय में भी चतुर्थी के होम का सामान वर-पिता द्वारा ही एक परात में लगा कर भेजा जाता है। बङ्गाल में विवाह-हवन के हेतु घृत भी वर-पिता भेजता है।

दहेज-खर्च—(१) बरतन—केवल परात और डेग, कुछ छोटी करके नित्य के उपयोग की वस्तु हो जाय। और कुछ कमी की गुंजायश नहीं है, क्योंकि सभी वस्तुयें नयी गृहस्थी जमाने के लिये आवश्यक हैं ; और यही उद्देश्य इस प्रथा के मूल में है।

(२) आभूषण—पितृकुल से सम्बन्ध छोड़ कर कन्या अब नयी परिस्थितियों में नया-घर बसाने जा रही है। अपने पितृगृह में जो भी पहना-ओढ़ा हो, नये श्वसुर-गृह में जाते समय वह ढूँड़ी तो न जायगी। कम से कम नित्य के व्यवहार के आभूषण उसे देने ही होंगे—तब तक, जब तक कि महिलायें आभूषण पहनना क़तई छोड़ दें। इस मद्द में भी कमी की अधिक गुंजाइश नहीं दीखती। हाँ! यदि हम ग़रीब-अमीर सब के लिये सोने-चाँदी का वज़न एक-सा तय कर लें और उसे मानें, अमल में लावें, तो यह स्तुत्य कार्य होगा।

(३) वस्त्र—दस और दस, बीस धोती-कुड़ती के सेट दिये जाते हैं। इनमें से बहुत-सीं तो वर-गृह में बहन-बेटी को विवाह-स्मृति रूप में बँट जातीं हैं। श्री-वर के दरवाज़े का सामान भी अब उपयोगी ही दिया जाता है। पहिरावन भले ही बन्द या कम की जा सकतीं हैं। मथुरा में चतुर्वेदी-गुरु-लोगों में प्रथा है कि बाराती की संख्या कितनी भी क्यों न हो, पहिरावन कुल मिला कर चालीस ही दी जातीं हैं।

(४) अन्य वस्तुयें—और सभी वस्तुयें आवश्यक व उपयोगी हैं। केवल खेल-खिलौने ही ऐसी वस्तु हैं जहाँ उँगली दिखायी जा सकती है। क्या यह प्रथा इसकी प्रतीक है कि कभी खिलौनों से खेलने-वाली वयः में ही कन्या-विवाह अनुष्ठित कर दिया जाता था? अथवा इस बात का, कि बारात लौटने पर वर-गृह में जब सबको सम्बन्धी के यहाँ से मिले हुये वस्त्रादिक बाँटे जाँयगे, तो छोटे-छोटे बच्चे ही क्यों बाक़ीं रह जाँय? उन्हे भी उनकी उपयोगी वस्तु मिल जाय।

इस प्रकार देन-दायजे में भी विशेष कमी की गुंजायश नहीं दिखायी देती।

नगदी ख़र्च—माला-मुँदरिया, दरवाज़े व पहँने के रुपये, मामूली हैं ; और रुपये के आज के घटे हुये मूल्य को दृष्टिगोचर रखते हुये कुछ भी अधिक नहीं। टीका-पटा व बहिन-बेटी को बुलाना और विदा का ख़र्च भी उचित ही है। ब्याही बहिन-बेटी रोज़-रोज़ तो पितृ-गृह आतीं नहीं, विवाहादि के अवसर पर आ जातीं हैं तो अपनी अन्य बहिनों और सहेलियों से इसी बहाने परस्पर मिल-भेंट लेतीं हैं। यह ख़र्च भी उचित ही है। पाँव-पखरावनी की संख्या यदि कुछ एक-सी (ceiling) निर्धारित कर दी जाय तो अच्छा है, क्योंकि यही एक रबड़-जैसी बढ़ने-वाली (Elastic) चीज़ है जो वर-बाज़ार की तेज़ी (Dearness) में सम-विषम स्थिति का प्रश्न उठा कर दृष्टिकोण बदल देती है ; और जन्मपत्र देने या न देने के उत्तर का एक कारण बन जाती है।

खाद्य-सामिग्री में ख़र्च—यही एक ऐसा विषय है जहाँ कई प्रकार की बातें सोचनी हैं। बारात की संख्या, बारात रहने के दिन, कार्य-पद्धति, आदि सभी विषय इस मद्द पर विचार करने के अन्दर आ जाते हैं। इस विचार मंथन में हम कई प्रकार के पहलुओं और सम्भावनाओं (alternatives) को सोच लें।

(१) प्राचीन प्रथा—पाँच दिन की बारात—इस मानी में सुन्दर थी कि उसमें विवाह से तृतीय रात्रि शास्त्रोक्त चतुर्थी-कर्म अनुष्ठित हो जाता था ; और वर-वधू का विवाहान्तर तीन रात्रि का ब्रह्मचर्य आदि पालन हो जाता था—यद्यपि शास्त्रोक्त लवण-क्षार-बर्जित भोजन का विधान पालन होते नहीं देखा। सम्भवतः वह भी कभी होता रहा हो, क्योंकि कुँवर-कलेवा—जिसमें क्षार-लवण-वर्जित खाद्य ही परोसा जाता है—उसी नियम का प्रतीक ज्ञात होता है ; और

कुँवर-कलेवा के बाद फिर श्रीवर पङ्क्ति से पृथक, मंडप-तर, बैठ कर क्षार-लवण-वर्जित भोजन ही करते होंगे।

किन्तु बाद को बढ़ायी-हुयी "करनो" से यह प्रथा भारी होती गयी; और फिर वह इतनी बोझिल हो गयी कि साधारण आदमी के कन्धे दब गये। इधर हमारे रहन-सहन व मानसिक वृत्तियों में भी परिवर्त्तन हुये। यह स्पष्ट है कि लड़की-वाले के ग्राम/नगर में बारात एक-दम और सब समय कन्या-पक्ष के भर नहीं है। कन्या के ग्राम/नगर में "डेरा" लड़के-वाले का "घर" और उन्हीका ग्राम/नगर है। इस प्रकार "डेरा" में ठहरी हुयी बारात वर-पक्ष को अतिथि है, कन्या-पक्ष की नहीं। कन्या-पक्ष जब चाहता है, उन्हे बुला लेता है; और जब बारात कन्या के घर-दरवाज़े पर होती है, तभी वह कन्या-पक्ष की अतिथि होती है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार, बारात ले-जाने, बारात का चाय-पानी, नाश्ता और भोजन आदि के व्यायका भार, यह सब वर-पिता के ज़िम्मे है। हाल-पहुँची बारात में भोजन बनाने का प्रवन्ध न हो सकेगा, यह सोच कर कन्या-पक्ष "साधारण" पौनछक भेज देता था। आटा-सीधा छिरकना भी, कन्या-दान के साथ, अन्न आदि दान-करना ही है, बारात के कलेवा का भार सहना कदापि नहीं। इस प्रकार कन्या-पक्ष पर बारात के जलपान या भोजन का कुछ भी भार नहीं। कन्यादान के समय किये हुये "यथाकाले" ब्राह्मण-भोजन के संकल्प की पूर्त्ति में यदि कन्या-दाता ब्राह्मण-भोजन अनुष्ठित करता है और उसमें बारात को जीमने का निमंत्रण देता है, तभी बारात, भोजन के हेतु, कन्या-पक्ष की अतिथि हो सकती है; अन्य किसी भी समय नहीं। अन्य सभी-समय वह वर-पिता की अतिथि है, जो उसे अपने साथ लाया है। वर-पक्ष द्वारा चलते समय "गौंड़ा" चुका कर, "डेरा" का बारात के दिनों के लिये ख़र्च देना इस बातका साफ़

सबूत है कि डेरा वर-पक्ष का था; और उसका सारा ख़र्च भी वर-पक्ष को वहन करना उचित है।

यदि उपरोक्त तथ्य ठीक मान लिये जाँय—जो लेखक के विचार में ठीक होने चाहिये—तो स्वागत में पौनछक और ब्राह्मण-भोजन की एक दावत देना भर कन्या-पक्ष का कर्त्तव्य शेष रह जाता है; बाक़ी बारात के सत्कार और भोजनादि का सब व्यय वर-पिता का है। इस प्रकार दोनों पक्ष यदि अपने-अपने भार को ठीक-ठीक सम्हाल लें, तो केवल ख़र्च की कमी के उद्देश्य से दिनो की संख्या आदि की कमी की आवश्यकता नहीं, यदि वर का पाँच दिन रहना, चतुर्थी को विवाह से तृतीत और आग्यौना से चतुर्थ दिन वधू-गृह में, विवाहाग्नि में ही, अनुष्ठित करना, आदि अभीष्ट अथवा आवश्यक मालूम होता हो। कन्या-पक्ष अपनी ओर से भले ही कहे, कि आप हमारे अतिथि हैं, हम पर कृपा कीजिये, किन्तु वर-पक्ष को दृढ़ता और प्रेम के साथ समझा देना है कि विवाह बेटी और बेटा दोनों का है; इस लिये बारात-सत्कार का सौभाग्य और सुख दोनों ही पक्षों को बाँट लेना उचित है।

(२) चतुर्थी-कर्म में बारात की आवश्यकता नहीं। वर-पक्ष यदि चाहे, तो विवाह-रात्रि को कन्या-पक्ष द्वारा अनुष्ठित ब्राह्मण-भोजन के एक—और केवल एक ही दिया जाय, संकल्प में रोज़-रोज़ की बात नहीं है--प्रीतिभोज के बाद बारात को विदा करा कर ले जा सकता है, अथवा भेज सकता है। वर, और चतुर्थी के हेतु आवश्यक दो-चार व्यक्ति वर के साथ रह जाँय, जो सब कार्य समाप्त होने पर, पीछे, वर-बहू की विदा में साथ चले आवें।

(३) एक और प्रश्न Time का उठाया जाता है। कहा जाता है कि अन्य जातियों में तो केवल कुछेक घंटो में विवाह-कार्य समाप्त कर बारात के साथ वर-वधू लौट कर अपने घर आ जाते हैं।

सजावट और विद्युत-प्रकाश (जिसके ख़र्च का अन्दाज़ शायद सबको मालूम नहीं) में कुछ "सांस्कृतिक" आयोजन और एक दावत (बूफ़े हो तो और भी आधुनिकता आ जाती है) ही यथेष्ट बतायी जाती है; और हममें से कुछ का झुकाव आज उसी तड़क-भड़क और चटाख़-पटाख़ की ओर बढ़ रहा है। किन्तु यहाँ यह याद नहीं रक्खा जाता कि अपने समाज में अधिकांश विवाह अभी दूरस्थ ग्रामों में हो अनुष्ठित होते हैं, बारात अन्यत्र, दूर, से आती है; और हममें से अधिकांश अभी साधारण-आर्थिक-स्थिति के गृहस्थ ही हैं। खाने-खिलाने के ख़र्च में कमी करके तड़क-भड़क में यदि ख़र्च बढ़ा दिया, तो उद्देश्य को पूर्त्ति तो नहीं हो हुयी! फ़िर हमारी वैदिक-विवाह-पद्धति भी पूर्ण-रूपेण गृह्यसूत्रोक्त है। अन्य समाजों में इतना विस्तार नहीं होता। उनके यहाँ कन्या-वरण पहले ही हो जाता है और आग्यौनी नहीं होती। आहुति आदि नाम-मात्र की हैं।

(४) प्रथम प्रश्न यह है, कि क्या विदाई के हेतु वर और बारात को अलग किया जा सकता है? यदि हाँ, तो उपाय सहज है; बारात तीन-चार घंटों में आग्यौनी समाप्त कर और पौन्छक द्वारा सत्कारित हो कर विदा ले सकती है। वर, वर-पिता, वर का एक छोटा भाई, गुरू व नाई रह जाँय। इनके भोजनादि का व्यय कन्या-पक्ष वहन कर लेगा। संस्कार-कार्य महूर्त्त से और विधि पूर्वक निर्वाहित होता रहे।

(५) विदाई के लिये यदि वर और बारात को अलग न किया जा सके, तो ३६ घंटे का कार्यक्रम निकल ही आया है। परन्तु इसमें हमें प्रचलित functions की संख्या घटा देनी होगी। प्रथम दिन का प्रोग्राम ठीक ही है—आग्यौनी व पौन्छक। वर-पिता मातृका-पूजन आदि डेरों में अनुष्ठित कर सके, इस प्रकार समय-विभाग करना होगा। पौन्छक में शाक-संख्या कुछ कम भले ही हो जाय। रात्रि में विधि-पूर्वक विवाह, सातो भाँवरि के साथ, सम्पूर्ण हो जाय।

दूसरे दिन सामाजिक जलसा एक ही हो, दो नहीं। बारातियों को तिलक के साथ पहिरावन शाखोच्चार में ही दी जा सकतीं हैं। पहेंने की जलसा-रूप में उपयोगिता नहीं। Gold Control Order क़ानून भी ध्यान में रखने की वस्तु है। शाखोच्चार के बाद वर-वधू डेरों में आवें; मातृका-नमस्कार, पहिरावा, देवी-पूजा आदि कार्य यथावत् अनुष्ठित हों। फिर बाती-मिलायी और कुँवर-कलेवा। बाती मिलाते समय चतुर्थी का मनोरंजक-प्रोग्राम, आँचल, म्हौं-मड़यी एवं जुआ-अंश, अनुष्ठित किया जा सकता है। अन्तिम कार्य हो बारात-घरात का एक प्रीतिभोज। और यहीं कन्यापक्ष का भार शेष हो जाय। परन्तु आवश्यक और सुन्दर यह है कि वर के गुरू बारात के साथ वर-गृह जाँय। वहाँ वर-वधू तीन दिन का क्षार-लवण वर्जित भोजन कर, ब्रह्मचर्य और भूमि-शयन का व्रत पूरा निबाहें। वर-गृह में तत्पश्चात् गृहप्रवेशीय-होम व चरु-होम के चतुर्थी-कार्य विधिवत् अनुष्ठित हों। ओर यदि व्रत न हो सके तो गृह-प्रवेशीय व चरु-होम बारात लौटने पर पनीछा के साथ ही वर-गृह पर अनुष्ठित करा दिया जाय। और वह भी सम्भव न हो, तो विवाह-वेदी पर अन्य हवनों के साथ चरु-होम भी अनुष्ठित कर लिया जाय।

(५) भोजन-व्यय-भार को और भी कम किया जा सकता है, यदि हम यह निश्चय कर लें कि प्रीति-भोज में कन्यापक्ष के ब्यौहारी—१८ वर्ष से अधिक वय के—भोजन-ग्रहण न करेंगे। अन्य बहुत से समाजों में यही नियम बरता जाता है।

(६) क्या बारात की आवश्यकता है ही? यदि श्रीवर, उनके पिता, काका, मामा, एक छोटा भाई, गुरू-जी व एक नाई आ जाँय, तो सात आदमी की बारात में सभी कार्य उत्तम-रूप से सम्पादित हो सकते हैं। फिर प्रीतिभोज बिलकुल ही बाद किया जा सकता

है। शुद्ध संस्कार-अनुष्ठान और कन्या-पक्ष द्वारा साधारण-भोजन का व्यय। बाजे, आतिशबाज़ी आदि की आवश्यकता नहीं।

यह, तथा ऐसी ही अन्य कई प्रकार की स्कीमों पर विचार किया जा सकता है।

हम निश्चय कैसे करें—सभा के एक-दो दिन के अनुष्ठान में किसी वस्तु पर ठीक-ठीक विचार-विनिमय पूरा नहीं हो पाता। यह विचार-मंथन हमें घर में व बाहर, चबूतरों और अथाइयों पर, परस्पर बात-चीत करके ही करना होगा। महिलायें भी सक्रिय-रूप से इस विचार-मंथन में भाग लें। सामाजिक-पत्र "चतुर्वेदी" के माध्यम से भी सुन्दरता-पूर्वक विचार-मंथन किया जा सकता है। परन्तु यह ध्यान रखना उचित है कि लेखों में कड़े शब्द किसी हालत में प्रयोग न किये जाँय,वरना हमारा प्रयास असफल हो जायगा। दूसरी मंजिल स्थानीय सभाओं की है। गाँव व नगर की स्थानीय सभा अपना निश्चय अथवा पसन्द व्यक्त कर सकतीं हैं। जब यह सब प्रस्तुत हो जाय, तब तीसरी मंजिल, समस्त समाज के सम्मेलन-आह्वान की है, जो अपनी महासभा के माध्यम से सरलता पूर्वक सम्भव हो सकता है। यदि इस प्रकार सोच-समझ कर हम स्वस्थ, सबल "लीक" बना सकें, तभी सामाजिक एकता और एक-रूप-अनुष्ठान सम्भव हो सकेंगे। विघटन का युग समाप्त कर हमें संगठन की आवश्यकता है।

तृतीय खण्ड

[रीति-भाँति]

→पुत्र-विवाह←

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥

[अथर्व०, का० १४, अ० २, सू० २, श्लो० २६ व २७]

[अर्थ—हे वधू! तू कल्याण-मयी, पति को सुख देने वाली, घर का कार्य चलाने वाली, श्वसुर और सास के लिये सुखमयी होती हुयी गृह-प्रवेश कर। तू पति को सुख देने वाली हो, घर के लिये मङ्गलमयी हो, श्वसुर के लिये कल्याणकारी हो; तू सब सन्तानों को सुख दे और उनका पोषण करती रहे।]

१

आवश्यक-वस्तु संग्रह

पुत्र-विवाह में निम्नलिखित सामिग्री एकत्र करने की आवश्यकता है। खाद्य-वस्तु आदि का परिमाण एकत्र-होनेवाले कुटुम्बी-रिश्तेदारों की संख्या, और ले जाये जाने वाले वारातियों की संख्या, पर निर्भर करता है।

घर के लिये——चावल, गेंहूँ, चना, चीनी, दालें, साबित उर्द, साबित मूँग, घृत, तेल कड़ुआ ; आलू, घुइया आदि रखने वाले शाक; मसाले (सभी) ; पत्तल, दौना, सिकोरा, डबुआ आदि ; अन्य खाद्य-सामिग्री एवं चाय, दूध आदि ; माँगरों के लिये कंघा, रिबन, बेंदी और कटोरों, यदि देने की रस्म हो तो।

नाई-बारी को विदा के लिये——कन्यापक्ष की ओर से यदि पचसिहा-विवाह हो, तो नाई-बारी की विदा में एक थान (मलमल आदि का) दस गज़ का, एक लाल पाग और पीतल का एक बरतन (साधारणतः बालटी) दिया जाता है। यदि विवाह "सैकड़ा" हो, तो उपरोक्त सामान के अलावा नाइन के लिये लहँगा-डुपट्टा (अथवा साड़ी) एवं एक और पीतल का (वैसा ही) बरतन। इसके अतिरिक्त नगद रुपये, पचसिहा मे १२) और सैक़ड़ा में २४) विदा के "नेग" के, और यदि लगुन लेकर नाई आये, तो पान-तमाखू के व ख़र्च के कह कर ४) या ६) और दिये जाते हैं।

श्रीवर के लिये——एक मौर व तीन "मौरीं", पहनने के कपड़े आदि, एक सफ़ेद पाग; झगा आदि; डुपट्टा (पनत्थ उसमें लगा दी जाय)

बारात में साथ ले जाने के लिये——वरू-जी के लिये एक दस गज़ का कपड़े का थान व लाल पाग; नाइन-बारिन (और कहीं कहीं धीमरि भी) के लिये एक-एक साड़ी; वधू के लिये वस्त्र-आभूषण आदि, "चढ़ाये व ढरा" के, जिनमें चार चाँदी के बिछुए और पहेंने की चुनरी आदि अवश्य हों [चढ़ाये के लँहगे और पेटी कोटों में (इज़ारबन्द) "नरा" घर से ही डाल लिये जाँय]; पिछौरी रंगीन (पचसिहा के लिये चार और अन्य विवाहों के लिये पाँच—वैसे यदि बारात दो दिन से अधिक रहे तो उतनी ही अधिक); लाल टूल (पूजा के लिये), सफ़ेद कपड़ा (पूजा के लिये); डोरी-चौकी अथवा उसकी जगह दूसरा आभूषण; गिन्नी अथवा मोहर (एक आग्यौनी के ढरा के लिये और यदि बहू को मुंह-दिखरावनी में देनी हों तो वैसी); पोत का पूंज; अम्बा-गौरि सलम्बा-गौरि (यह कलाये से पटवा बना देता है); तार-भोंर का गुरिया (यह चाँदी के दो गुरिया सुनार से लेकर पटवा से कलाये में पुहवा लिये जाते हैं); रोरी; ईंगुर; सूखी पिसी मेंहदी; कलाया; सुपाड़ीं (यदि काका मामा की गोद के लिये लेनी हों तो उस हिसाब से भी); पान आदि के लिये कटी हुयी सुपाड़ी; कत्था; चूना (अथवा यह सम्बन्धी जी के यहाँ से मँगाना पड़ता है); पान (प्रायः ६००); सिंदौरी-सिंदौरा; लगुन व उसके साथ आया नारियल; वधू के लिये शृंगार-सामिग्री (जैसे कंधा, शीशा, तेल, पाउडर, लाली, नख-लाली, क्रीम, अलता, बेंदा, चुटीला ४, इत्यादि); पाँचौ मेवा (जैसे मखाने, छुहारे, मुनक्का, बादाम, काजू आदि); साबित गरी-गोला ५ या ६; बारातियों की ख़ातिर के लिये साबुन, तेल, बादाम, ठण्डाई, गुलकन्द, काली मिर्च, मुनक्का आदि

(वैसे अब यह ख़र्च भी लड़की-वाले पर लद गया है); शाखोच्चार व पहेंने के जलसे के लिये इलायची, लौंग, तम्बाकू (बनी व ज़रदा), चिकनी सुपाड़ी, सौंफ आदि; इत्र, गुलाबजल, आदि मय इत्रदान, गुलाब-पाश, spray, आदि के; दो चाँदी की तश्तरीं, एक चाँदी का कटोरा, एक चाँदी का गिलास; ट्रे वगैरह अथवा थाल (पान बाँटने को); दो नये अंगौछे अथवा वस्त्र, पान आदि बाँध कर ले जाने के लिये; बूरा क़रीब ५ किलो; बताशा क़रीब ५ किलो; चौथी में बाँटने के लिये लड्डू (यदि बारात ऐसी जगह जा रही हो जहाँ बूरा, बताशा, लड्डू आदि सुविधा से ख़रीदे जा सकें तो यह वस्तुएं वहीं से ख़रीदीं जा सकतीं हैं); फर्श, जाजम आदि; पेट्रोमेक्स लालटेन (जैसी आवश्यकता हो, अथवा डेरों में बिजली हो या अन्य प्रबन्ध हो जाय तो आवश्यकता नहीं); कुएं से पानी खींचने (यदि नल न हों तो), और मोटर-बस से (यदि बारात मोटर द्वारा ले जाई जाय) सामान बाँधने के लिये लेज, रस्सी; कागज़, क़लम, नोटबुक; "पैंड़ा" रखने के लिये एक डला; पानी के लिये लोटा, बाल्टीं; शाक परोसने के दो चार चमचे; चार खाली बोरा, मय सूजा-रस्सी के; टार्च; हाज़मे के चूर्ण आदि; अमृतधारा; नगद रुपये व नये नोटों की गड्डीं; रेज़गी; बहू के लिये "कुथरिया"; डेरों के लिये ताले-चाभी; बारात का रास्ते में सत्कार करने के हेतु कलेवा, मिठाई आदि।

२

विवाह-कार्य—वर-पक्षीय—वर के ग्राम/नगर में

पीली-चिट्ठी—सगाई सम्बन्ध पक्का हो जाने के बाद, विवाह कार्य, वर के घर, कन्या-पक्ष के यहाँ से पीली-चिट्ठी आने पर निश्चित समझा जाता है। "पीली-चिट्ठी", जिसे "सोध" भी कहते हैं, कन्या-पक्ष के यहाँ से विवाह की मिती आदि की सूचना है; और इसके मिलने पर दोनों ओर विवाह की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। प्रायः यह समाचार भी इसके साथ आ ही जाता है—और आ जाना चाहिये—कि लग्न-पत्रिका अमुक दिन की लिखी भेजी जायगी, क्योंकि औपचारिक रूप से विवाह की कार्यवाही लग्न-पत्रिका आने पर ही प्रारम्भ होती है। यदि किसी कारण-वश लग्न-पत्रिका भेजने का मुहूर्त्त शुभ न बनता हो, जैसा पृष्ठ १४७-८ पर लिखा जा चुका है, तो लग्न के स्थान में "रैवा" भेज दिया जाता है; और लग्न-पत्रिका कन्या के ग्राम/नगर के बाहर बारात पहुँचने पर "खेत लगुन" दे दी जाती है।

दिन धरना—पंडितजी के बताये हुये शुभ-मुहूर्त्त व दिन में, घर-कुटुम्ब की स्त्रियाँ इकट्ठी होकर, मंगल-गान के साथ चावल बीनना, दाल सम्हालना आदि, खाद्य-वस्तु-सम्बन्धी वैवाहिक-कार्य करना प्रारम्भ कर देतीं हैं।

लगुन चढ़ाना—कन्या पक्ष की ओर से लग्न पत्रिका भेजे जाने पर, वह "वर" को "चढ़ायी" जाती है। उपयुक्त मुहूर्त्त में

भाई-बन्धुओं को बुलावा दिया जाता है। "वर" द्वारा गणपति पूजन-कार्य आदि किया जाता है। महिलायें छत पर चढ़ कर मंगल-गीत गातीं हैं। "लगुन चढ़ाते" समय कहीं-कहीं तो यह प्रथा है कि लगुन किसी "मान्य" अथवा 'भानजे" के हाथ पर पहले रक्खी जाती है, और कहीं (जैसे मैंनपुरी में) वह अपने मुहल्ले के पाँच संभ्रान्त—एक-एक कुटुम्ब का एक-एक सबसे वयस्क व्यक्ति—"पंचों" के हाथ पर पहले रक्खी जाती है। फिर वर के हाथ पर रखने के पश्चात् "पंडित-जी" द्वारा वह भाई-बन्धुओं को सुनाई जाता है। इस अवसर पर अपने कुटुम्ब/मुहल्ला/ग्राम के मान्य-भानजों को गुड़ की एक-एक डली, घी में डुबा कर, भेंट की जाती है; एवं लगुन ले कर आये हुए नाई को भी ऐसी ही एक डली दी जाती है। साथ ही, यदि इस ग्राम/नगर में वधू के कुटुम्ब का कोई मान्य भानेज आदि उपस्थित है, तो लगुन लेकर आने वाला नाई उसकी भी गुड़ की डली लेकर उसके घर पहुँचा देता है।

शुभ मुहूर्त्त में "लगुन" चढ़ाने के बाद, उसकी सूचना पत्र द्वारा कन्या-पक्ष के सम्बन्धी-जी के यहाँ भेज ही जाती है।

इसके बाद एकत्रित भाई-बन्धुओं को "बताशे" (और कहीं-कहीं बिना लगे पान) बाँटे जाते हैं।

विवाह की तैयारियाँ—लगुन के पाश्चात् ही विवाह की असली तैयारियाँ प्रारम्भ हो जातीं हैं, जिसे कहते हैं विवाह "छिड़" जाता है। अपने नाते-रिश्तेदार—दामाद, भानजे वगैरह—व अपने स्वजन, घरके एवं सम्बन्धी, प्रेमी आदि जनों को विवाह में सम्मिलित होने के लिये कुंकुम-पत्र भेजे जाते हैं। जो गुरूजी विवाह-कार्य सम्पन्न करायेंगे उनको पत्र भेजा जाता है। अपने घर की ब्याहीं लड़कियाँ और भानजीं, जो अपने श्वसुरालय में हैं, उनकी विदा के हेतु पत्र भेजे जाते हैं, और स्वीकृति आने पर उनको बुलाकर

घर लाने का प्रबन्ध किया जाता है। बाजे, आतिशबाजी, नौकर आदि का प्रबन्ध, जैसे जो करना हो, तथा बारात ले जाने और वापस लाने के लिये सवारी आदि का प्रबन्ध किया जाता है। वर की ननसाल "न्यौतहार" के लिये जो पत्र जाता है, उसके साथ मिठाई के लिये दो या पाँच रुपये भेजे जाते हैं, जिसे "डाले की चिट्ठी" कहते हैं। फ़र्श, दरी, जाजम, पेट्रोमेक्स लालटेन, आदि का जैसा प्रबन्ध करना हो, वह किया जाता है। अपने मकान की सफ़ाई पुताई आदि, यदि आवश्यक हो, की जाती है।

बाजे, आतिशबाजी, रौशनी व नौकर आदि के प्रबन्ध के विषय में सम्बन्धी-जी की भी सहायता ली जा सकती है, क्योंकि यह सब प्रबन्ध उनके ग्राम/नगर का है।

बारात के लिये बुलावा——कहीं कहीं (जैसे मैनपुरी में) ऐसी प्रथा है कि "लगुन चढ़ने" के बाद अपने "व्यौहार", मुहल्ला, ग्राम आदि में बारात के लिये तैयार होने का बुलावा देने जाते हैं। उस दिन तो सभी को यह "बोला" दिया जाता है ; बाद में जिसे-जिसे ले जाना हो, उससे कई बार कहा जाता है। कहीं-कहीं (जैसे सिकन्दरपुर आदि में) कुटुम्ब के व्यक्ति हलदी में रँगी सुपाड़ीं लेकर अपने 'व्यौहारियों' व प्रेमियों के घर "बारात" का "बोला" देने जाते हैं ; और सुपाड़ी की झोली उसके सम्मुख उपस्थित कर बारात के लिये प्रस्तुत होने की प्रार्थना करते हैं। जिसके यहाँ से जितने आदमीं बारात जाँयगे, वह उतनी ही सुपाड़ीं उठा लेता है। वर के कुटुम्बी इसका हिसाब रखते हैं कि किस "घर" में कितनी सुपाड़ीं "उठायीं" गयीं ; इससे उनको यह मालूम हो जाता है कि उस घर से हमें इतने "बाराती" ले चलने हैं। कहीं-कहीं (जैसे होलीपुरा में) वर के घर वाले अपने "व्यौहार" में जाकर "कपड़ा धुलाई" के चार चार (पुराने) पैसे बाँटते हैं ; और बारात के लिये तैयारी करने की

प्रार्थना कर आते है। जहाँ जैसी प्रथा हो, वहाँ वैसा किया जाता है।

गीत बधाए——विवाह का दिन धरने, अथवा लगुन चढ़ने के दिन से, जो भी पहले हो, रोज़ शाम को स्त्रियों द्वारा घर में गीत-बधाये गाये जाते हैं।

ननसाल से डाला——विवाहार्थी-पुत्र की माता यह बाट देखती रहती है ; कि कब उसके पित्रालय से "डाला" आता है। इस डाले में प्रायः निम्न लिखित वस्तुयें रहतीं हैं :—

१ जोड़ा घाट-लँहगा, वर की माता के लिये ;
३ अन्य जोड़ा, लहँगा-डुपट्टा अथवा साड़ीं, ज़नानी ;
१ जोड़ा, बढ़िया, लहँगा-डुपट्टा अथवा साड़ी, जो नव-वधू के लिये होता है ; और यह आग्यौनी के ढरा में रखकर जाता है ;
१ थान, अद्धी मलमल आदि, वर के झगा के लिये ;
१ लाल पाग, वर के लिये ;
१ डुपट्टा, मय लाल पनत्थ के, वर के लिये।

इसके अलावा नगदी, पचसिहा व्याह में १०), सैकड़ा में १५) ; सौ-सवैया में २०) और सौ-दुसैया में २५) ; अथवा जैसी घर की रस्म हो।

मिठाई के लिये (प्राय : ५) रुपये, अथवा मिठाई।

इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं डोरी-चौकी के रुपये भेजे जाते थे, पर अब प्रायः नहीं भेज जाते।

वर के हेतु आये हुये वस्त्रों में से ही उसकी "इकताई" व्योंती जाती है, व झगा आदि बनते हैं ; तथा इन्हीं वस्त्रों कों पहन कर (अपने घर की सफेद पाग लगा कर) वर व्याहने जाता है।

माँगर (मांगल्य)——वधू और वर के माँगर एक ही दिन, एक ही समय होते हैं, इस लिये "माँगर" का मुहूर्त्त लग्न-पत्रिका अथवा रेवा में लिखा रहता है। माँगर मुख्यतः स्त्रियों का जलसा है। घर

व्यौहार की स्त्रियाँ इकट्ठी हो कर सर में तेल-कंघी करती हैं। इसके उपलक्ष में आगत स्त्रियों को एक-एक कंघा, रिबन, बेंदी आदि दी जाती है। पहले "माँगर" में "वर" के भी सर में कंघा कर दिया जाता था, मगर अब "वर" इसमें एतराज़ करते देखे जाते हैं।

इकताई——प्रथा ऐसी है (सम्भवतः हिन्दू मात्र में) कि अपने घर के कपड़े पहन कर विवाह-कृत्य नहीं होता। बहुधा ननसालसे आये हुये "डाले" में आये कपड़े का "झगा" बनवाया जाता है। "झगा" का नाप दर्जी द्वारा "इकताई" में लिया जाता है। शुभ मुहूर्त्त में भाई बन्धुओं को बुला कर, घर के "बड़े" द्वारा गणपति-पूजन आदि होता है; फिर घर का "बड़ा" उस डाले में आये हुए "थान" को गणेश-रूप कलश से छुला कर, उसमें से थोड़ा सा टुकड़ा 'अछूता' निकाल कर, मान्य अथवा किसी लड़की को देकर, शेष का दरजी को "झगा" नपा देता है। इसके उपलक्ष में पंडित, दरजी व आगत सज्जनों को मिठाई बाँटी जाती है।

ताई-मूरबान——यह भी मुख्यतः स्त्रियों के कार्य हैं; और कन्या व वर दोनों के घर एक ही दिन एक ही मुहूर्त्त में होते हैं। असल में इसमें दो कार्य हैं: प्रथम क्षेत्रपाल पूजन (छेई) एवं द्वितीय तापिका (ताई) की सन्तुष्टि के निमित्त रात्रि-जागरण। क्षेत्रपाल-देवता भैरव नाथ जी का ही नाम है; और क्षेत्रपाल पूजन उन्हीकी अर्चना है। व्यवहार में यह परिपाटी है कि कुटुम्ब-मुहल्ले की स्त्रियों को साथ लेकर घर की स्त्रियाँ, रात्रि के पूर्वभाग में, पूजा की थाली ले, मंगल गायन करती हुयीं, घर से बाहर कहीं "घूरे" या अन्य नियत स्थान पर जाती हैं; वहाँ एक लोहे की कील गाढ़ दी जाती है; और स्त्रियाँ वहाँ पूजन करती हैं। ज्ञात होता है कि "क्षेत्रपाल" का किसी शब्दार्थी पंडित ने 'खेत पालन करने वाला', एसा अर्थ लिया; और फिर उस हेतु "घूरा" (जहाँ गोबर आदि खाद खेत में देने के अर्थ इकट्ठा किया

जाता है) ही क्षेत्रपाल पूजन का उपयुक्त स्थान निर्णीत किया; और तब से घूरे पर यह पूजा होने लगी। कुछ विचारवान व्यक्तियों का यह भी मत है, कि "घूरे" की पूजा में यह शिक्षा निहित है, कि विवाह-कार्य की अवधि में "घूरे" जैसे सहनशील और मौन बने रहो। इसके साथ ही तापिका (ताई), जो चौंसठ योगिनियों की नायिका है, की सन्तुष्टि के हेतु घर के दरवाज़े पर ऐपन के चिन्ह बना कर पूजा की जाती है; और फिर रात्रि-भर जागरण किया जाता है; जिसके लिये संगीत-नृत्य आदिका आयोजन होता है। अभिप्राय है कि योगिनियाँ दरवाज़े से बाहर ही रहें, अन्दर कृपा न करें; और शुभ-कार्य में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न करें। मौरी-बन्धन उत्सव का नाम ही 'मूरबान' है।

मौर, मौरी आदि लेना——मालिन को पहले से ही समाचार दे दिया जाता है ताकि वह ताई, सपठौनी के समय तक १ मौर व ३ मौरी बना कर पहुँचा दे। वर के घर यह वस्तुयें आने पर वर की माता, या तत्-स्थानीय अन्य महिला, मालिन को "आखत" (कुछ अन्न आदि) देकर, उन्हें लेकर सुरक्षित रख देती है।

तेल——तेल की संख्या व मुहूर्त्त भी लग्न-पत्रिका में लिखे रहते हैं। वर और वधू के तेल चढ़ने की संख्या व प्रारम्भ का मुहूर्त्त एक ही होता है। सात सुहागिन स्त्रियाँ, वरके घर, हलदी मिला तेल वर के पैर व घुटनों पर "चढ़ातीं" हैं। यदि बारात चलने के बाद भी वर के तेल चढ़ाना आवश्यक हो, तो यह कार्य सात (अ-रँड़ुआ) विवाहित बारातियों द्वारा किया जाता है। पूड़ी बाँटे जाने की भी प्रथा थी, किन्तु अब प्रायः यह बन्द हो गयी है। तेल चढ़ाने के उपलक्ष में घर कुटुम्बियों की "जेंमाजूठी" भी होती है, मगर इसका पालन भी अब उतना कठोरता से नहीं किया जाता।

सपठौनी, निकरौसी——सपठौनी (अथवा निकरौसी) में वर शुभ-मुहूर्त्त में विवाह-हेतु यात्रा के लिये अपने घर से प्रस्थान

करता है। इसमें टोले-मुहल्ले की स्त्रियों को बुलाया जाता है। पंडित-जी व दरजी को बुलाया जाता है। गणपति-पूजन आदि के पश्चात् घर का "बड़ा" वर को विवाह के हेतु बने हुये नये कपड़े—झगा, पाग, सेहरा, "मौरी" आदि—पहनाता है। वर की भावज उसे पान खिलाती है; एवं उसकी आँखों में काजल लगाती है। वर विवाह-यात्रा के लिये प्रस्तुत है। बुआ या बहिन "आरता" करती है। यदि "मान्य" उपस्थित हो, तो वह वर पर चौंर ढुराते हैं। दरजी को कपड़े बनाने के, भावजों को पान खिलाने व काजल लगाने के, "मान्य" को चौंर ढुराने के, एवं बुआ या बहिन को "आरता" करने के उपलक्ष में रुपये दिये जाते हैं। घर की सब स्त्रियाँ व नाते-रिश्ते-दार वर के "तिलक" करते हैं और उसे द्रव्य भेंट करते हैं। अब वर-माता, अथवा माता-स्थानीय अन्य महिला, सूप में चना की दाल, गुड़, आदि घोड़ी को खिला कर, रोली अक्षत से उसकी पूजा कर, घोड़ी के मस्तक पर खजूर की "मौरी" बाँध देती है; फिर वर का "आँचल" (डुपट्टे से बँधी हुयी "पनत्थ") ले लेती है। आगे-आगे परिचारक "कलश" ले कर चलता है; फिर घोड़ी पर वर, "आँचल" ले कर माता, और पीछे-पीछे गायन करतीं हुयीं स्त्रियाँ, अपने किसी भाई-बन्धु के घर (जिसकी उस बन्धु को प्रथम ही सूचना दे दी जाती है) जातीं हैं। वर वहीं ठहरता है, जब तक कि वह बारात के साथ कन्या के ग्राम/नगर को प्रस्थान करे। यह याद रखने की बात है कि "श्रीवर" इससे पहले अपना साथ-ले-जाने वाला बकस व सामान ठीक सँजोकर रख दे, ताकि वह सब ठीक-ठीक बारात के साथ ले जाया जा सके।

बारातियों के तिलक——वर के घर वाले अपने भाई-बन्धुओं व हितू-मित्रों को बारात के "तिलक" के लिये बुलाते हैं; और "तिलक" कर के मिठाई देते हैं। यदि तिलक करने के साथ-साथ बारातियों की एक सूची तैयार कर ली जाय, तो बारात निकालते समय व पहुँचने

के लिये चिट्ठा बनाते समय वह बहुत सहायक सिद्ध होती है। "तिलक" करते समय बारातियों को "बारात" के प्रस्थान के समय आदि की सूचना दे दी जाती है, ताकि वह समय पर प्रस्तुत हो सकें; और उनके कारण बारात "निकालने" में निरर्थक देर न हो।

कलेवा का प्रबन्ध——बारात के पहुँचने में कितनी क्या देर लगेगी, उसी हिसाब से रास्ते में बारात के सत्कार के लिये शरबत, कलेवा आदि का प्रबन्ध घर से ही कर लिया जाता है (इसके लिये पत्तल, दौना, डबुआ आदि भी साथ ले लेने चाहिये)। कहीं-कहीं तिलक बारात चलते समय ही किये जाते हैं; और तिलक करने के साथ ही "बाराती" को भोजन वर के घर पर ही करा दिये जाते हैं; और वहीं से वह बारात को रवाना हो जाते हैं। इस हालत में कलेवा साथ बाँध कर नहीं ले जाना पड़ता।

बारातियों का सामान इकट्ठा करना——बारात चलने के समय से कुछ पूर्व ही, अपने आदमी अथवा सवारी भेज कर, बारातियों का सामान इकट्ठा कर के, सवारी का जैसा प्रबन्ध हो, यथा-स्थान रखने का प्रबन्ध किया जाता है व बारातियों को इकट्ठा करके यात्रा के लिये तैयार किया जाता है।

वर के "उठावना" व तिलक——सपठौनी के बाद वर जहाँ ठहरा है, वर की माता (या अन्य महिला), वहीं जाकर वर पर "उठावना" करती है; जिसमे पाँच पैसे (या जो लेना हो) ले कर वर के चेहरे के सामने "उतारे" जाते हैं और देवी-देवताओं से प्रार्थना की जाती है कि समस्त कार्य निर्विघ्न समाप्त होकर सब बारातियों व वधू के साथ वर सकुशल घर लौटे। इसके बाद रुपया, मिठाई व गोला भेंट देकर वर के "तिलक" किया जाता हैं। अब है बारात की यात्रा का श्रीगणेश—कन्या के ग्राम/नगर की ओर।

———

३

वर-पक्ष के कार्य—कन्या के ग्राम/नगर में

खेतलगुन—यदि मुहूर्त्त ठीक न होने के कारण लग्नपत्रिका वर के घर पर न आ कर केवल "रेवा" आया हो; तो कन्यापक्ष यह देखता रहता है कि बारात उसके ग्राम/नगर के बाहर कब पहुचती है। ग्राम/नगर के बाहर बारात पहुँचने के समाचार पाने पर कन्या पक्ष का नाई लग्नपत्रिका, एक रुपया और एक नारियल लेकर वर-पक्ष को दे देता है। सुविधा इसमें होती है कि इस समय कन्यापक्ष का नाई यहाँ चौक पूरने के लिये आटा, पूजा के योग्य जल, दूब, फूल, रोली, अक्षत, बताशे आदि साथ लेता आवे, क्योंकि इसी समय लगुन "चढ़ानी" होगी; और वर-पक्ष तो रास्ते में है, उनका सामान सब बँधा पड़ा है। सामान मिलते ही वर पक्ष का नाई वहीं कहीं थोड़ी जगह साफ़ करके जल छिड़क देता है; और "गुरूजा" सतिया लगा; गणेश-पूजन कर, "लगुन" "चढ़ाते" हैं। लगुन "चढ़ाने" माने वर के हाथ पर रखना। साथ का रुपया व नारियल वर-पक्ष रख लेता है और "लग्न-पत्रिका" गुरू जी पढ़ कर सब को सुना देते हैं। इसमें मुख्यतः इस बात का ध्यान रखना होता है कि कन्यादान का मुहूर्त्त कितने बजे का है। यदि लग्नपत्रिका रजिष्ट्री-पोस्ट द्वारा भेजी गयी हो, तो कन्या-पक्ष लगुन का नारियल वरपक्ष को बारात पहुँचने पर भेज देता है।

बधइया—बारात के ग्राम/नगर से बाहर पहुँचने पर (बड़े शहरों में सम्बन्धी के घर से कुछ ही दूर पर, और ग्रामों मे सम्बन्धी

के ग्राम से बाहर) बारात "ठहर" जाती है; और वरपक्ष का नाई कन्या पक्ष के घर बारात-आगमन के सुसमाचार, "बधाई", देने भेज दिया जाता है।

अगवानी—कन्यापक्ष की ओर से कुछेक सज्जन, अथवा लड़के, उनके गुरू के साथ आकर बारात की "अगवानी" स्वागत करते हैं। दोनों पक्ष के लोग यथा-योग्य अभिवादन आदि करने के पश्चात् यह वरपक्ष को उनके लिये निश्चित किये हुए "डेरों" में ठहराने के लिये ले जाते है।

शिष्टाचार—बारात डेरों में पहुँचने के साथ ही वरपक्ष के कुछेक प्रतिनिधियों का सर्वप्रथम कार्य है, कन्या के ग्राम/नगर में जिन चतुर्वेदी-बान्धवों की मृत्यु की "वर्ष" हो (अर्थात् मृत्यु के बाद प्रथम वार्षिक श्राद्ध न हुआ हो) उनके दरवाज़े, डेरा में पौनछक आने से पूर्व ही, "शिष्टाचार" के लिये जाना। इस कार्य के लिये ४-६ प्रौढ़ व्यक्ति जाते हैं और "शिष्टाचार" में मृतक के कुछ गुण कह कर प्रशंशा की जाती है, व मृत्यु पर शोक व्यक्त किया जाता है। इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि बारात पहुँचते ही कोई बाराती बिना बुलाये किसी ऐसे घर न पहुँच जाय जहाँ किसी व्यक्ति की मृत्यु की "वर्ष" न हो; वरना उस कार्य को उस घर वाले बुरा, अशिष्ट और अपशकुन मान सकते हैं। बाराती अपने हितू-मित्र के घर प्रथम दिन बुलाने पर हा जाते हैं।

समधौरा—इसके पश्चात् वर-पक्ष का प्रथम कर्त्तव्य है "समधौरा" भिजवाना। जिस परिवार में अपने परिवार की कोई लड़की अथवा भानजी व्याही हो, उसका (और प्राचीन प्रथा तो थी कि उस ग्राम का), व्याही-लड़की के घर अथवा ननसाल वाले, जो उस लड़की से बड़े हों, अन्न-जल आदि ग्रहण नहीं कर सकते। इस ग्राम में बारात आये हैं, अन्न जल भी ग्रहण करना होगा, इस

लिये इसकी छुट्टी करने के हेतु, ब्याही लड़की भानजी के परिवार को "समधौरा" भेज दिया जाता है। पहले तो सभी बाराती अपने-अपने सम्बन्धी के यहाँ "समधौरा" भेजते थे ; किन्तु अब यह मान्य है कि जिस परिवार का "वर" ब्याहने आया है, वह परिवार ही (अन्य बाराती नहीं) केवल अपने कुटुम्ब की लड़की भानजी के सम्बन्ध से "समधौरा" भेजे। वर-पक्ष, अपने गुरू द्वारा, अपने कुटुम्ब की इस ग्राम/नगर मे ब्याही बहिन/लड़की/भानजी के सम्बन्ध से, उस लड़की/भानजी की ससुराल "समधौरा" भेजता है। वर-पक्ष को उचित है कि बारात चलने से पहले अपने घर से ही विचार कर के यह लिख कर लिस्ट बनाले कि "समधौरा", चरुई, बराती, आदि किस-किस के यहाँ देनी होगी। बहिन व लड़की के सम्बन्ध से "समधौरे" में, जिसके यहाँ पचसिहा विवाह होता है उसके यहाँ से दो रुपये, जिसके यहाँ सैकड़ा विवाह होता है उसके यहाँ से चार रुपये व जिसके यहाँ सैकड़ा से अधिक विवाह होता है उसके यहाँ से पाँच रुपये, भेजे जाने का नियम है। वैसे अब पचसिहा-वाले भी चार रुपये ही भेजते हैं। भानजी का समधौरा लड़की से आधा है, किन्तु वह भी अब लोग पूरा ही भेज देते हैं। किसी-किसी कुटुम्ब में अधिक रुपये भेजने की भी परिपाटी है।

तेल-बत्ती——जहाँ तक सुना जाता है, डेरा में तेल-बत्ती का प्रबन्ध बरपक्ष को अपने खर्च पर ही करने का नियम था ; परन्तु क्योंकि बारातें ऐसे ग्रामों में भी जातीं थीं, जहाँ तेल रुई आदि बिकने की दूकान न होती थी, इस लिये वरपक्ष बाले अपने नाई को भेज कर कन्या-पक्ष बालों से तेल, रुई, सिकोरा आदि लेकर डेरे में प्रकाश का प्रबन्ध कर लेते थे। इस तरह अब लोग इसे कन्यापक्ष का कर्त्तव्य समझने लगे हैं। किन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है। वरपक्ष को, यदि सम्भव हो तो, स्वयं ही इसका प्रबन्ध करना चाहिये। कन्या पक्ष

वर-पक्ष की सुविधा के लिये, एवं अपने किये हुये सत्कार को सम्पूर्ण करने की दृष्टि से, प्रायः इसका भी प्रबन्ध कर देता है। फिर भी, गैस के हण्डे, लालटेन आदि, यदि किराये पर मँगाये जाँय, तो वरपक्ष को उनका किराया दे देना चाहिये।

पुण्याहवाचन, मातृका-पूजन एवं नान्दीमुख——डेरों में बुलायी हुयी घर-कुटुम्ब की अथवा ग्राम/नगर की कोई लड़की, डेरा में, पवित्र-स्थान "कौरे" पर पूर्वाभिमुख मातृका "रखती" है ; और वर-पिता अथवा अन्य पुरुष, जो श्राद्ध करने के योग्य हो, विधिवत् पुण्याहवाचन, मातृका-पूजन एवं नान्दीमुख सम्पन्न करता है। कुटुम्ब-परिवार में शौचाशौच, अथवा वर-माता के रजस्वला होने की आशंका प्रकट हो जाय, तो वर-पक्ष बारात चलने से पूर्व अपने घर पर ही, कपड़े पर मातृका स्थापित करा, यह पूजन सम्पन्न कर लेता हैं। और फिर कपड़े पर स्थापित उन्हीं मातृका को बारात के साथ लाकर डेरों में स्थापित कर लिया जाता है। माँये रखने-वाली लड़की अथवा महिला को इस हेतु एक रुपया दिया जाता है।

पौनृछक (पाहुन-छाक)——बाजे बजने लगे। पौनृछक आगयी। वरपक्ष लेने के लिये तैयार है। वरपक्ष का एक आदमी रेजगी की थैली लिये खड़ा है। कुछ आदमी सब चीज़ ले-ले कर यथा-स्थान रखते जाते हैं। पौनृछक रखने का स्थान व देने के लिये रेजगी-पैसे सम्हाल कर पहले से प्रस्तुत कर लिये जाँय, तो उसमें हिसाब व प्रबन्ध दोनों की सुविधा होती है।

यदि लग्न-पत्रिका कन्या पक्ष का नाई न लाकर रजिष्ट्री द्वारा आयी हो, अथवा "खेतलगुन" आई हो, तो पौनृछक में तो अवश्य आपको पता लग जायगा कि यह विवाह कन्यापक्ष के यहाँ पचसिहा है अथवा उससे अधिक, क्योंकि पचसिहा की पौनृछक में शरबत का एक कलश (घड़ा) आता है ; और उस से अधिक (सैकड़ा, सौ-सवैया, सौ-दुसैया,

घोड़ा-चूरा आदि) में शरबत के दो कलश (घड़े) आते हैं। प्राचीन आर्य-संस्कृति के अनुसार द्विज-वर्ण में पाहुने अतिथि का सत्कार आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन व मधुपर्क से किया जाता था। पाद्य, अर्घ्य अर्थात पैर हाथ धोने के लिये जल, आचमन अर्थात मुँह धोने (कुल्ला-करने) के लिये जल और आसन—यह सब वस्तुएं यहाँ बरात आने से पहले "डेरा" में संग्रहीत हैं। मधुपर्क का प्रतीक यह शरबत-कलश है।

ज्ञात होता है कि किसी समय "आज" केवलमात्र यहीं तक कन्यापक्ष द्वारा सत्कार था। मथुरा में "गुरु" चतुर्वेदियों में अभी तक यही प्रथा प्रचलित है। कान्यकुब्ज-ब्राह्मणों में सम्भवतः यही परिपाटी है, कि इस समय के भोजन का प्रबन्ध वरपक्ष स्वयं ही करता है। अपने यहाँ अग्यौनी में कन्या के दरवाज़े पर बारातियों का केवल जल द्वारा सत्कार किया जाना भी इसी की पुष्टि करता है। चूँकि बारात दूर से नये ग्राम में आती थी, इसी लिये कन्यापक्ष ने बना-बनाया पाहुन-छाक भेजने का प्रबन्ध 'करनी' के लिये किया होगा; और अब यह परिपाटी सी बन गयी है। अस्तु! कन्यापक्ष के भाई-बन्धु भी यदि स्वयं पौनछक लाये हों, तो उन्हें छोड़ कर शेष इतर-जातीय भृत्य आदि, जो पौनछक लाते हैं, उन्हे वर-पक्ष की ओर से निम्न द्रव्य दिये जाने की प्रथा है—

पचसिहा में, गुरू-जी को आठ आने, नाई बारी को चार-चार आने, पंडित-जी को चार आने, शरबत वाले को पाँच आने, पूड़ी के पला वालों को दो-दो आने, साग आदि के घड़ा वालों को एक-एक आना और साग आदि के खला वालों को दो-दो पुराने पैसे। सैकड़ा आदि में और सब वही है, केवल गुरू को एक रुपया, नाई-बारी को आठ-आठ आना, पंडित को आठ आना, व शरबत वाले दो व्यक्तियों में प्रत्येक को पाँच-पाँच आने दिये जाते हैं।

अछूता—पौनछक में से वर-पक्ष की ओर से प्रथम एक पत्तल "अछूती", "जो कोई देवी देवता पुरुषा आदि हमारे हाथ का आसरा करे हों उनके हेतु" निकाल दी जाती है। इसे लेने के अधिकारी "मान्य" अथवा "लड़की" हैं। साथ ही, वर-पक्ष के गुरू-जी "डेरा" में संस्थापित मण्डप-रूपी मँड़वार को "जिमा" देते हैं। बारात यदि किसी मन्दिर आदि में ठहरी है, तो एक पत्तल परोस कर भगवान के भोग के हेतु पुजारी जी को दे दी जाती है।

पौनछक का बुलावा—साथ आये बारातियों के अतिरिक्त इस ग्राम/नगर में जो अपने ग्राम/नगर के घरू व ब्यौहारी, अपने कुटुम्ब के दामाद, भानजे, भानजीं, रिश्तेदार आदि; और अपने ग्राम/नगर की लड़कियाँ जो इस ग्राम/नगर में ब्याहीं हैं, उपस्थित हैं, उन सबको अपने नाई द्वारा, पौनछक जीमने के हेतु बुलावा दिया जाता है। वह सब आज डेरों में ही पौनछक जीमते हैं।

आग्यौनी (आगमनी) का बुलावा—कन्या-पक्ष के यहाँ आग्यौनी की तैयारी होने पर उनका नाई डेरों में बुलावा देने आता है। प्रथम बुलावा आने के साथ ही वरपक्ष का नाई "कन्या-पक्ष' के घर "ढरा" माँगने जाता है, जो कन्या-पक्ष वाले उसे दे देते हैं। "ढरा" दाब या भूँज से हाथों द्वारा बनायी हुयी एक रंगबिरंगी डलिया होती है, अथवा और भी किसी तरह की डलिया भेजी जा सकती है।

ढरा सँजोना—इसके पश्चात् वर-पक्ष का कार्य है ढरा सँजोना। आज ढरा में निम्न लिखित चीज़े सजा कर रक्खीं जातो हैं—रोली, सूखी मेंहदी, कलाया, ईंगुर, "मौरी", सिन्दौरी सिन्दौरा (यह काठ के बने होते हैं जिनमें एक में रोली और दूसरे में ईंगुर रख दिया जाता है), सुपाड़ीं, पान (पचसिहा में २५-२५ व सैकड़ा आदि में ५०-५०), लग्न-पत्रिका, लग्न-पत्रिका के साथ आया हुआ (और

साथ न आया हो तो नया) नारियल, पोत का पूँज, डोरी-चौकी, अम्बा गौरि सलम्बा गौरि (जो कलायें से बनतीं हैं), तार भौंर के गुरिया (चाँदी या सोने के दो गुरिया, जो कलाये में पुहे होते हैं); हँसुलिया (शायद यह पीछे चली होगी ; और अब उसकी जगह हार, मंगल-सूत्र आदि कोई गरदन में पहनने का आभूषण रख देते हैं), बधूके लिये साड़ी, ब्लाउज़, पेटीकोट अथवा लँहगा, बाडी, डुपट्टा, उसके साथ के लिये ढिँगधर की साड़ी अथवा लहँगा डुपट्टा, एक गिन्नी, चार रुपया व कलश-वालों के लिये (पचसिहा में एक, सैकड़ा आदि में दो) रंगीन पिछौरी। यदि श्रीवर का द्वितीय विवाह हो, तो एक स्वर्ण-निर्मित छोटी सी पुतली लाल-धागे में पिरो कर रक्खी जाती है। काका व मामा द्वारा गोद भरने के लिये कम से कम दो सेर सुपाड़ी और श्रीवर की पनत्थ का डुपट्टा साथ ले लेना चाहिये। रुपये पैसे की थैलीं भी साथ ले जायीं जातीं हैं।

आग्यौनी (अगमनी)——विवाह का सर्व-प्रथम सामाजिक जलसा होने के नाते यह विशेष महत्व रखता है। वरपक्ष की ओर से वर के पीछे बाराती व दामाद, भानजे, मान्य, बन्धु-बान्धव बाजे-गाजे के साथ कन्या-पक्ष के दरवाज़े पर जाते हैं।

आग्यौनी के लिये वर की प्रथानुसार-पोशाक तो झगा, लाल पाग, सेहरा आदि ही है, जो उसे सपठौनी में पहनायी गयी थी ; किन्तु आज-कल अधिकतर शिक्षित वर इस पोशाक को पसन्द नहीं करते ; और मनमानी पोशाक पहन कर जाते हैं। चूंकि यह पहला ही सामाजिक जलसा है, इस लिये झगा आदि पहने होने से कन्या-पक्ष के स्त्री-पुरुष सब बिना पूँछे ही वर को पहचान जाते हैं। समझ में नहीं आता कि जब कोर्ट में वकील होकर "गाउन" पहनने में, अथवा क्रिकेट के "अम्पायर" होकर चुगा पहनने में, संकोच नहीं होता तब दूल्हा बनकर झगा पहनने में संकोच क्यों होता है। जो भी हो, वर

की पोशाक ऐसी विशेष होनी चाहिये जो प्रत्येक स्त्री-पुरुष देख-कर ही वर को पहचान ले, क्योंकि वर देखने की उत्सुकता सभी को रहती है।

खरवर तेल——हरिद्रा-तेल लेपन में अन्तिम तेल "खरवर तेल", जिसे सीधी भाषा में "खैरोली का तेल" कहते हैं, होता है ; जिसको आग्यौनी के बाद और विवाह से पहले भेजे जाने की प्रथा है। अब विवाह में समय की बचत के लिये कार्यक्रम एक के बाद एक, काफ़ी जल्दी होने के कारण अधिकतर यह नहीं चढ़ाया जाता। परन्तु लौकिक प्रथानुसार इसके हेतु एक परात में, कटोरी में सरसों का तेल, हलदी, ७ गुड़ की ढेली, ७ सुपाड़ी, ७ सादा पान, सात टका पैसा एवं कुछ बताशे सँजोये जाते हैं। फिर बाजे के साथ यह सब सामान की परात लेकर वर का नाई वधू के घर जाता है; और यथावत् यह तेल वधू पर चढ़ाया जाता है। फिर उस परात में से और सब चीज़े निकाल कर केवल तेल वापस कर दिया जाता है। यह तेल डेरों में लाया जाकर सात अ-रँडुआ विवाहित पुरुषों द्वारा "वर" पर "चढ़ाया" जाता है।

पाणिग्रहण की तैयारी—वरपक्ष की ओर से विवाह की तैयारी में अपने गुरूजी को पूजन आदि के लिये रुपये पैसे—जिनकी संख्या ग्यारह से पन्द्रह रुपये तक व दो रुपये की रेजगी होती है—एवं सुपाड़ी देनी होतीं है। बुलावा आने पर बाजे के साथ वर, गुरू व नाई जाते हैं। वर की पोशाक झगा, मौर, सफेद-पाग आदि होती है। कुटुम्ब-विशेष में सफेद पाग न बाँध कर पीली अथवा लाल पाग बाँधते हैं। शास्त्र के मत-से वर विष्णु-रूप माना गया है। भगवान विष्णु का "शुक्ल वर्णं सुहाङ्गम्" है, इसी लिये वर के सभी वस्त्र श्वेत-वर्णके होते हैं। इस सम्बन्ध में आश्वलायन जी के प्रमाण-वचन हैं—"स्वलंकृतः सितच्छत्रो"[१] अर्थात "श्वेत पाग के

१—देखिये पृष्ट १८२, श्लोक २

साथ"। यहाँ यह आवश्यक है कि नीचे धोती अथवा पाजामा, गंजी, कुरता आदि जो भी वस्त्र पहने जाँय, वह "नये" होने चाहिये; अर्थात धोबी के धुले न हों। बंगाली, नागर आदि, समाजों में विवाह के समय सिला हुआ कपड़ा नहीं पहनते, वह शुद्ध नई रेशमी धोती व डुपट्टा ("जोड़") पहन कर शादी करते हैं। बंगाल में मौर खजूर का न हो कर "शोला" लकड़ी का होता है। लेखक को काफ़ी पढ़े-लिखे और वयस्क (बंगाल में लड़के की शादी की उम्र २५ से ३५ वर्ष तक की है) बंगाली युवकों के विवाह देखने का अवसर प्राप्त हुआ है, किन्तु कभी भी ऐसा नहीं देखा कि वर ने शादी की प्रथानुसार औपचारिक पोशाक न पहन कर मनमानी पोशाक पहनी हो। एक और विशेषता है। विवाह-आदि सामाजिक जलसों में बंगाली भद्र-लोग धोती-कुड़ता, अपनी स्वदेशी-चाल की पोशाक, में ही आते हैं; कोट-पतलून क्या, कमीज़-पाजामा भी कहीं देखने को न मिलेगा।

विवाह के लिये वर की यात्रा डेरों में स्थापित मातृका के चरण छूकर प्रारम्भ होती है।

वरपक्ष की ओर से प्रथम दिन का यही कार्यक्रम है। विवाह-कार्य सम्पन्न होने पर "श्रीवर" को कन्या के घर पर ही रात्रि-निवास करना होता है; और फिर वह दूसरे दिन, शाखोच्चार व पाँव-पखरावनी के पश्चात्, वधू को साथ लेकर, अपने डेरे में वापस आता है।

४

अन्य कार्य

मंडप-जगाना——विवाहान्तर प्रातः सर्वप्रथम वरपक्ष के बाजेवाले "मंडप जगाने" के लिये कन्या-पक्ष सन्बन्धी के यहाँ भेजे जाते है; और वह बाजा बजा कर "मंडप जगाते" हैं। कहा जाता है कि जब तक मंडप नहीं जगाया जाता तब तक और कुछ विवाह-कार्य आरम्भ नहीं होता। इसका आशय तो यही मालूम होता है कि मंगल-वाद्य के साथ सब लोग जाग कर अपने-अपने काम में लगें। वहाँ से लौट कर बाजेवाले डेरों में भी उसी प्रकार मंडप जगाते हैं।

पौनूछक की पूड़ी बटवाना——अपने ग्राम/नगर की जितनी लड़कियाँ, अथवा परिवार की भानजीं, अथवा वर के ननसाल-पक्ष की लड़कियाँ, जो इस ग्राम/नगर में ब्याहीं हैं और यहाँ उपस्थित हैं, अथवा इस ग्राम/नगर की लड़कियाँ जो अपने ग्राम/नगर में ब्याहीं है किन्तु अभी इस ग्राम/नगर में उपस्थित हैं, उन सब के घर पौनूछक की ४-४ पूड़ी, थोड़े बताशों के साथ, भेजीं जातीं हैं। यह काम वर पक्ष की ओर से नाई कर आता है।

डेरों का बोला——साथ ही, अपने ग्राम/नगर की लड़कियाँ अथवा परिवार की भानजीं अथवा वर के ननसाल-पक्ष की लड़कियाँ, जो इस ग्राम/नगर में ब्याहीं हैं और यहाँ उपस्थित हैं, उनके लिये उनके घर वरपक्ष की ओर से डेरों में आने का बुलावा भेजा जाता

है ; जो वरपक्ष का नाई दे आता है। प्रायः यह कार्य पौनछक की पूड़ी बाँटने के साथ ही कर दिया जाता है।

शाखोच्चार की तैयारी——शाखोच्चार की तैयारी में पान लगवाना एक समय-लेने-वाला कार्य है, जो सुविधानुसार पहले हो कर लिया जाता है। साथ ही इलायची, तम्बाखू आदि सत्कार का सामान ; इत्र, गुलाब-जल व यह सब बाँटने के लिये बरतन आदि सब ठीक कर लिये जाते हैं। रुपये-रेज़गी की थैली साथ ले-ली जाती है।

शाखोच्चार——चूँकि यह जलसा कन्या के घर होता है, इसलिये इसके बारे में कन्यापक्षीय विधि में उल्लेख है। वर-पक्ष की ओर से कन्यापक्ष वालों का, अथवा साथ में यदि कोई और बारात हो (दो या आधिक विवाह एक साथ होने पर) तो उसका ; और अपनी बारात का स्वागत-सत्कार इत्र, गुलाब-जल, इलायची, पान आदि के द्वारा किया जाता है।

मान्य——गुरू द्वारा शाखोच्चार प्रारम्भ होने से प्रथम, कन्या पक्ष की ओर से वर एवं कन्या-पक्ष के मान्य बुलाये जाते हैं, जिनके तिलक करके, उन्हे एक-एक पहिरावन अथवा वस्त्र भेंट किया जाता है। साथ ही, दोनों ओर के गुरू-जी को भी तिलक के साथ यही वस्त्र भेंट किया जाता है। देखने में यह आता है कि कहीं-कहीं यह वस्त्र बहुत ही छोटा कर दिया जाता है, जो शोभनीय नहीं मालूम होता।

शाखोच्चार की दक्षिणा——शाखोच्चार पढ़े जाने के पश्चात् उभय-पक्ष के गुरू आशीर्वाद के अक्षत घराती-बारातियों पर डाल कर अपने-अपने यजमानों को देते हैं। फिर दोनों गुरू, वर के "बड़े" के पास आते हैं ; और वर का गुरू अपने यजमान से कन्यापक्ष के गुरू को शाखोच्चार की दक्षिणा देने के लिये कहता है। प्रथा ऐसी है कि इस समय वर की ओर से नियत दक्षिणा से अधिक द्रव्य कन्यापक्ष

के गुरू को दिया जाता है, जिसे वह अपने यजमान "पंचो" के सम्मुख ले जाते हैं। "पंच" उन्हे नियमानुसार दक्षिणा रख कर शेष रुपये लौटाने को कहते हैं। नियम, पचसिहा में छै रुपये, सैकड़ा व उच्चतर विवाहों में बारह रुपये (कहीं कहीं दस रुपये), दक्षिणा देने का है। कन्यापक्ष के गुरू यह दक्षिणा अपने पास रख, शेष रुपये वर के बड़े को वापस लौटा देते हैं। वर-पक्ष अपने गुरू को भी उतनी ही दक्षिणा वहाँ, अथवा डेरों में आने के पश्चात्, दे देता है ;

गौदान——पणिग्रहण-कृत्य के अन्तर्गत शाखोच्चार द्विपक्षीय गुरू पढ़ लेते हैं। कोई तो पहले ही, विवाह को जाते समय, गौदान करने के लिये रुपये और लिस्ट गुरू को दे देते हैं ; और उस हालत में गुरूजी गौदान उसी समय करा देते हैं। किन्तु अधिकतर गौदान शाखोच्चार के जलसे के बाद, उसी मन्डप के नीचे, वरपक्ष व कन्यापक्ष के सभ्रान्त सज्जनों के सन्मुख कराने की परिपाटी है। गौदान में अधिकतर प्रथम चार—वर के गुरू व पंडित और कन्या के गुरू व पंडित—बड़े और बराबर के होते है, जिनका द्रब्य श्रद्धा पर निर्भर है ; अधिकतर दस रुपये देखे जाते हैं। बाद में, वर के ग्राम/-नगर के एवं कन्या के ग्राम/नगर के पूज्य व्यक्ति, स्थान अथवा संस्थायें, "चतुर्वेदी" पत्रिका, आदि के हेतु श्रद्धानुसार गौदान का संकल्प कराया जाता है। इसमें कन्यापक्ष यह दृष्टिगोचर रखता है कि अपने मण्डप के नीचे वरपक्ष से अधिक रुपया ख़र्च न कराया जाय ; और इसी हेतु कन्या पक्षके बड़े-बूढ़े सज्जन वर पक्ष से अधिक गौदान न करने का आग्रह करते हैं। "गौदान" के पश्चात् वरपक्ष के गुरू दान-सांगता के निमित्त अपने यजमान से कुछ पैसे लेकर गौदान मिलने वालों को बाँट देते हैं।

भूयसी——गौदान के पश्चात् शाखोच्चार का जलसा समाप्त हुआ और दोनों पक्ष, वर सहित, कन्या के घर से बाहर निकले। बाहर

निकलते ही कन्या के दरवाज़े पर पंचो के सम्मुख वरपक्ष "भूयसी" बाँटने के लिये आग्रह करता है। कन्या-पक्ष के लोग उनसे रुपये आदि लेकर विवाह की प्रथा के अनुसार उपस्थित गुरू, पंडित, ब्राह्मण आदि को बाँट देते है। भूयसी का विधान सभी जातियों में देखा जाता है। विवाह एक यज्ञ है। यज्ञान्त में समस्त उपस्थित ब्राह्मणों का दक्षिणा द्वारा सत्कार करना ही "भूयसी बाँटना" है। परम्परा ने इसे प्रथा-रूप में इस प्रकार मर्यादित कर दिया है :—

पचसिहा में गुरू, पंडित, वरू, एवं उपस्थित सभी ब्राह्मण आदि को चार-चार आना। सैकड़ा-विवाह में आठ-आठ आना व सौ-सवैया में एक-एक रुपया दिया जाता है। कुछ स्थानों (जैसे होली-पुरा) में पंडित जी को औरों से दूनी भूयसी दी जाती है। यदि वरू एकाधिक हों, तों भूयसी एक को पूरी व शेष को उससे आधी-आधी दी जाती है। साथ ही, कुछ पैसे अन्य जातीय उपस्थित बालकों में भी बाँट दिये जाते हैं। मथुरा में गुरु-वर्गों ने यह प्रथा बन्द कर दी है। तत्पश्चात् वर और अपने गुरू को पाँव-पखरावनी आदि के हेतु वहीं छोड़ कर, बाजे के साथ बारात अपने डेरों में वापस आ जाती है।

पाँव-पखरावनी की सम्हाल——कन्या-पक्ष के यहाँ पाँव-पखरावनी समाप्त होने पर, वरपक्ष के गुरू, वर व वधू के हाथ के लड्डू लाकर अपने यजमान को देते हैं ; व साथ ही पाँव-पखरावनी के रुपयों की संख्या बता देते हैं। कन्यापक्ष के गुरू पाँव-पखरावनीं के रुपये लेकर डेरों में आते हैं, और वरपक्ष के "बड़े" को इन रुपयों को गिन कर सम्हला देते हैं। वरपक्ष को ओर से कन्यापक्ष के गुरू को पाँव-पखरावनी कराने की दक्षिणा-रूप में पाँव-पखरावनी के प्रति-रुपये पर दो पुराने पैसे के हिसाब से दिया जाता है। वर-पक्ष के गुरू को पाँव-पखरावनी की परात के दान-सांगता के पैसे—केवल एक आना

नाइन को देकर—मिलते हैं। नियम यह है कि पाँव-पखरावनी करने-वाला पाँव-पखारने के प्रति-रुपये पर दान-सांगता का एक पुराना पैसा पाँव-पखरावनी की परात में डाल दे।

प्रीति-भोज का निमंत्रण——पाँव-पखरावनी की सम्हाल के उपरान्त, "पीले अक्षत" द्वारा कन्यापक्ष के गुरू वरपक्ष के "बड़े" को बारात के प्रीति-भोज में जीमने का निमंत्रण देते हैं। कहीं-कहीं कार्याधिक्य में गुरू इसे भूल जाते हैं। एक स्थान पर ऐसी भूल होने पर विनोद-प्रिय लोगों ने विनोद-रूप में कन्या पक्ष के यहाँ चका, बेलन, कड़ाह, साग, आटा, घी वगैरह की माँग के लिये अपने नाई को भेज दिया। पूँछने पर कन्या-पक्ष को गुरू-जी की ग़लती का हाल मालूम हुआ। कुछ लोगों ने गुरू-जी को अधिक छान जाने के लिये आड़े हाथों लिया ; और कन्यापक्ष के कुछ लोग गुरू को साथ लेकर तुरन्त बारात का निमंत्रण करने आये। फिर क्या, यह तो विनोद था और अच्छा खासा विनोद रहा।

वधू के लिये बुलावा——कन्यादान, पाणिग्रहण, भाँवरि और सप्तपदी के बाद वधू वर के घर-गोत्र की हो गयी ; इसी लिये उसके हाथ के लड्डू भी वर के घर आ गये। वरपक्ष का घर इस ग्राम में उनका डेरा है। वरपक्ष, इसलिये, वधू को अपने डेरों में बुलाने के हेतु अपनी ओर से बाजे, सवारी आदि कन्या के घर भेजता है। कहीं-कहीं बाजे के साथ अपने घर का कोई छोटा बालक भी वधू को बुला लाने के हेतु भेजा जाता है। न भेजने वालों के मत से उनकी ओर से स्वयं "श्रीवर" वधू को साथ लाने के हेतु वहाँ उपस्थित है।

मूठि-लुटाई व वार-रुकाई—वर और वधू दोनों साथ-साथ डेरों में आते हैं। डेरे के दरवाज़े पर दामाद, भानजे, लड़कियाँ, व भानजीं "वार-रोकतीं" हैं। इतनी खुशी का समय है। वधू को लेकर वर अपने घर आया ; परिवार में एक नये सदस्य की वृद्धि

हुयी। इस अवसर पर दामाज, भानजे, लड़कियाँ, भानजीं इन सबको पहले "वार-रुकाई" दी जाती है, जैसी जिसकी श्रद्धा हो; तब कहीं वर-वधू डेरे के अन्दर पैर रखते हैं। वधू के साथ में अन्य-जातीय स्त्रियाँ व लड़के-लड़की भी आते हैं। उनके लिये इस अवसर पर "श्वसुर" वधू पर तीन बार मुट्ठी भर-भर कर पैसे-रेजगी से "मूठि लुटाते" हैं। "वार" द्वार का ही नाम है और द्वार-रोकने पर ही वार-रुकाई दी जाती है।

वर-वधू प्रवेश——डेरे में घुस कर वर-वधू साथ-साथ सीधे मातृकास्थान में जाकर मातृका पर अक्षत छोड़ कर प्रणाम करते हैं; और यथाशक्ति द्रव्य—कम से कम एक रुपया—मातृका पर चढ़ाते हैं, जिसे गुरू-जी ले लेते हैं। वधू की भी आज से यही मातृका हुयीं। डेरे में आयी हुयीं लड़कियाँ बधू को अलग एक स्थान पर ले जातीं हैं, जो परदा वगैरह डाल कर पहले से इस हेतु तैयार कर दिया जाता है। वर, गुरू और अपने सब "बड़ों" के चरण स्पर्श करता है।

पहिरावा——वधू केवल खादी-बरेइया पहन कर डेरों में आयी है। अब डेरों मे वधू का पहले श्रृङ्गार होता है। कंघा, शीशा, तेल, पाउडर, अलता, महावर, नख-लाली, बेंदी, चुटीला, हेज़लिन, क्रीम इत्यादि, जो वर-पक्ष घर से लाया है, उस की सहायता से डेरों में आयी हुयीं लड़कियाँ नववधू का श्रृंगार करतीं हैं। तत्पश्चात् वधू को सोने-चाँदी के विविधि आभूषण और सुन्दर-वस्त्र पहनाये जाते हैं।

नववधू को वस्त्राभूषण भेंट करना शास्त्रोक्त है। हिन्दू-क़ानून के अनुसार विवाहाग्नि की सन्निधि में भेंट किया हुआ धन, आभूषण, वस्त्र इत्यादि वधू का स्त्रीधन हो जाता है, जिसका उत्तराधिकार एक विशेष प्रकार का है। इस लिये, इस अवसर पर वही भेंट किया जाना उचित है, जो विशेष कर इस नव-वधू के हेतु प्रस्तुत किया

गया हो; क्योंकि वह सब इसकी एकमात्र (exclusive) सम्पत्ति हो जायगी। मगर देखने में कुछ और ही आता है। घर के या बाहर के तमाम आभूषण ला कर "पहिरावे" में पहना दिये जाते हैं। और बारात से वापस आने पर वह "जहाँ के तहाँ" चले जाते हैं।

पहिरावे को यदि हम क़ानून के इस कड़े रूप में न लें, तब इसका दूसरा रूप यह होगा कि नव-बधू वर के घर की एक व्यक्ति हो कर वर के घर में आ गयी है। अब जब वह डेरों से अपने "मायके" वापस जाती है, तो हम अपनी इज़्ज़त रखने के लिये उसे अच्छी तरह "पहना उढ़ा कर" भेजते हैं। हिन्दू जाति में सम्मिलित-परिवार होने के कारण परिवार की सब सम्पत्ति—जिसमें आभूषण भी शामिल हैं—सम्मिलित-कुटुम्ब की होती है। इसलिये उसे पहनने-ओढ़ने का क़ानूनी अधिकार कुटुम्ब की प्रत्येक बहू को है। फिर जब नवबधू उन्हे पहन कर "मायके" जाती है, तो आपत्ति की क्या बात है? विवाहाग्नि की सन्निधि में तो चढ़ाया चढ़ा नहीं।

जो भी हो, बाहर से माँगे वस्त्राभूषण "चढ़ाना" किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

बहू को कलेवा——जब बहू "पहिरावा" पहन चुकती है, तब उसे मेवा से वधू-कलेवा कराया जाता है। चाँदी के कटोरे में मेवा आदि, व चाँदी के गिलास में जल, बहू के सामने रक्खा जाता है। बहू, शकुन के लिये, कुँअर-कलेवा की भाँति, एक किशमिश खा लेती है। शेष "जूठिन" बहू के साथ आयी हुयी नाइन की होती है, जिसके साथ उसे एक रुपया "जूठिन का" भी दिया जाता है। साथ ही, एक रुपया श्रृंगार का, और एक रुपया न्यौछावर का, नाइन को दिया जाता है। बाराती भी इस समय नव-वधू पर "न्यौछावर" करते हैं, वह द्रव्य भी, गिनकर, नाइन को ही दे दिया जाता है। साथ ही, नाइन-बारिन (कहीं कहीं धीमरि) को एक-एक साड़ी दी जाती है।

मूँठ भरना--यह सब होने के बाद श्वसुर (वर के पिता या अन्य बड़े) को बहू के सामने बुलाया जाता है। नगद रुपयों की थैली में हाथ डाल कर बहू अपनी मुट्ठी भर के रुपया निकालती है; और वह रुपया गिना जाता है। ऊनी संख्या निकलने पर शुभ माना जाता है, कि नववधू का हाथ घर के लिये "बरक़त" का होगा। पूरी संख्या निकलने पर दूसरी और तीसरी बार तक यह कार्य दुहराया जाता है।

मुँह-दिखरावनी--श्वसुर एवं वर के बड़ों द्वारा इस समय बहू का मुँह देखे जाने की प्रथा है; और इस अवसर पर बहू को द्रव्य अथवा आभूषण भेंट किये जाते हैं।

गोद भरना--श्वसुर सवा सेर बताशे से, अथवा मेवा या अन्य मिठाई से, बहू की गोद भरता है और उसे सौभाग्य का आशीर्वाद देता है।

वहू की वापसी--बहू के "मायके" से बहू को बुलाने के लिये भेजा हुआ कोई लड़का आता है; और फिर उसके साथ डेरों से बहू अपने "मायके" वापस जाती है। इस समय बहू की "बरेइया" में करीब एक सेर बूरा बाँध दिया जाता है; तथा बहू के साथ "कुथरिया" (एक विशेष प्रकार की बनी हुयी रेशमी थैली) मेवा से भर कर भेजी जाती है।

वहू को बुलाने के लिये जो लड़का आता है, उसे एक पिछौरी, एक गोला और एक रुपया "तिलक" का दिया जाता है।

बाती-मिलाई व कुँअर-कलेवा--बहू के यहाँ से बुलावा आने पर श्री-वर को बाती मिलाने और कुँअर-कलेवा करने के लिये भेजा जाता है। कुँअर-कलेवा के लिये वर के साथ एक छोटा लड़का (सहबोला) भेजा जाता है। वर अपने साथ २५ सुपाड़ीं रूमाल में बाँध कर ले जाता है।

प्रीतिभोज--प्रीतिभोज की तैयारी में पान लगवा कर तैयार करा लिये जाते हैं। जब बारात जीमने जाती है, तब यह पान "गारीं" गाने वालीं महिलाओं के पास भिजवा दिये जाते हैं।

यहाँ से आगे का कार्यक्रम बारात के दिनों पर निर्भर करता है। डेढ़ दिन का ब्याह हो, तो बाती-मिलायी, पहेंना, कुँअर-कलेवा व प्रीतिभोज के साथ कार्य समाप्त है। यदि दो से अधिक दिन का कार्यक्रम हो, तो चतुर्थी, पहेंना आदि कार्यक्रम तीसरे दिन होते हैं और उस दिन भी पहिरावा, प्रीति-भोज आदि होता है। वह कार्यक्रम नीचे लिखा जा रहा है।

आँचल की सूचना--यह तो बारात रवानी होने से पहले घर से ही निश्चित कर आना चाहिये कि आँचल कौन लेगा और चरुई बराती किसे-किसे देनी है। आँचल लेने का अधिकार माँ का है। माँ तो यहाँ होती नहीं, माँ की बहिन, भावज, वगैरह, अथवा ममेरी बहन आदि कोई होती हैं, तो आँचल वह लेतीं हैं। वह न होने पर घर की, कुटुम्ब की अथवा गाँव की कोई ब्याही लड़की अथवा भानजी, जिसका वर से सबसे निकट का सम्बन्ध हो, आँचल लेती है। "आँचल" वाली को चौथी के समय की, और आँचल लेने की, सूचना निश्चित समय से पहले ही भेज देनी चाहिये। आँचल लेने वाली, अपने साथ सम्बन्धी के यहाँ चलने के लिये, वहाँ अपने सब "ब्यौहारियों" के यहाँ बोला देती है।

पहिरावन का चिट्ठा--सम्बन्धी के यहाँ से दो ताव कागज़ इस कार्य के लिये भेज दिये जाते हैं और चिट्ठा माँगा जाता है। यह कार्य भी इस प्रकार होना चाहिये कि चिट्ठा बनाने में किसी का नाम बाक़ी न रह जाय ! इसके लिये पहले एक ऐसी सूची बना लेनी चाहिये, जिसमें अपने सब बारातियों, जो किसी भी दिन बारात के साथ बाराती रूप में सम्मिलित हुए हैं, के नाम लिख लिये जाँय। चिट्ठा

"ॐ" "श्री गणेशाय नमः" के साथ प्रारम्भ होकर "श्रीचिट्ठा पहिरावन शुभ विवाह चिरंजीव——, — (सम्बन्धी का ग्राम/नगर), शुभ मिती........" और तत्पश्चात्—

५ { श्री बिहारी जी महाराज एवं श्री देवी-देवता जी
(भदावर में प्रायः १ श्री भदावर महाराज का नाम भी होता है)

१ श्री मान्य।

२ (यहाँ से आयु के अनुसार जोड़ीं, छोटे से क्रमशः बड़े की, प्रारम्भ होती हैं)।

अन्तिम जोड़ी वर के अपने "बड़ों" की होती है, अर्थात सम्बन्धी की; उसके बाद—

१—श्रीवर।
१—गुरू जी।
१—वरू जी।
१—नाई व....नौकर आदि।

अन्त में सब पहिरावनों का जोड़ लिख दिया जाता है। मान्य की पहिरावन प्रथम अलग लेने के साथ ही, बाराती रूप में उसका नाम फिर "जोड़ी" में आवेगा और उसे पहिरावन दुबारा मिलेगी।

चिट्ठा शीघ्र तैयार कर के सम्बन्धी जी के यहाँ भेज देना चाहिये।

चौथी के लिये लड्डू——चौथी में वर व आँचल-वाली के साथ जितनी महिलायें व बच्चे जाते हैं उनको, महिलाओं में प्रत्येक को चार व बच्चोंमें प्रत्येक को दो, लड्डू बँटते हैं। इसके लिये वरपक्ष को चतुर्थी से पहले ही लड्डू का बन्दोबस्त कर लेना पड़ता है। इस प्रबन्ध का बोझ सम्बन्धी पर किसी भी प्रकार लादना उचित नहीं। यह लड्डू आँचलवाली चौथी से लौटने पर डेरों में बाँटती है। पहले लड्डू के स्थान पर "चबैनी" बाँटी जाती थी, जो वरपक्ष अपने घर से बनवा कर ले जाता था। अब प्रायः चबैनी नहीं बनायी जाती।

चतुर्थी——विवाह के अवसर की पोशाक पहन कर वर, डेरों में, "मातृका" के सम्मुख सर नवाता है। उसी स्थान से आँचल-वाली उसके डुपट्टे में बँधी "पनत्थ" पकड़ लेती है। साथ की महिलायें मधुर स्वर में प्रारम्भ करतीं हैं "लीली रे मेरी लीलरिया ...."। गायन के शब्दों से मालूम होता है, सम्भवतः वर लीली घोड़ी पर सवार हो कर जाता था। अब घोड़ी पर चढ़ने की प्रथा देखने में नहीं आती। गुरू-जी पूजा के हेतु आवश्यक रुपये-पैसे (आठ नौ रुपये) एवं सुपाड़ी लेकर साथ जाते हैं। पोशाक में वर जो धोती (या पाजामा) पहन कर जाता है, वह चतुर्थी में स्नान कर लेने पर कन्या-पक्ष का नाई ले लेता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि विवाह के समय श्रीवर को मिली हुयी "खादी" भी नाई के हाथ उनके साथ भेज दी जाय।

वधू को बुलावा——चौथी समाप्त होने पर वधू को "मायके" से बुलाने के हेतु वरपक्ष का एक लड़का बाजे आदि के साथ भेजा जाता है। चूँकि वर-वधू द्वारा स्थानीय देवी पूजन कराना है (जो वधू आग्यौनी के "ढरा" में वरपक्ष द्वारा दिये गये कपड़ों को पहन कर करती है) इस लिये बुलावे के साथ यह कहला देना चाहिये कि वधू (जो खादी बरेइया ही पहन कर डेरों में आती है) के साथ आग्यौनी के कपड़े भी भेज दिये जाँय।

देवी-पूजा——डेरों में आयी हुयीं अपने ग्राम/नगर की लड़कियाँ वर-वधू को देवी पूजन के लिये देव-स्थान पर ले जातीं हैं। इसके लिये सवारी की व्यवस्था वर-पक्ष को पहले ही कर लेनी चाहिये। बहू को डेरों में बुलाने व देवी-पूजा को भेजने में सवारी आदि का जो ख़र्च होता है वह वर-पक्ष का है। देवी-पूजा के लिये सामान, एक रुपया गाँठ जोड़ने को, १ रंगीन पिछौरी, १ गोला, १ रुपया, रोली, अक्षत, फूल, नैवैद्य आदि भेजे जाते है। जितनी अन्य-जाति की औरतें

साथ जातीं हैं, उनको वहाँ एक-एक आना पैसे दिये जाते हैं। इसके लिये रेज़गी साथ भेज देनी चाहिये। वहाँ से लौटने पर सभी साथ जाने वाली स्वजातीय महिलाओं, बच्चों, तथा सन्बन्धी की नाइन बारिन, धीमरि आदि को, एक-एक "दुनियाँ" (पत्ते से बना छोटा "दौना") दी जाती है जिसमे बूरा भरा होता है और दो-एक दाना मेवा या मखाना रक्खा होता है। देवी-पूजा वर-वधू की गाँठ जोड़ कर दोनों द्वारा ही सम्पन्न करायी जाती है, इस लिये वर-वधू के साथ वर का पनत्थ-वाला डुपट्टा ले जाया जाता है।

सम्बन्धी के घर "दुनियाँ" भेजना--चौथी के उपलक्ष में उपरोक्त प्रकार से बूरा भर कर व मेवा या मखाने रख कर सम्बन्धी के घर की महिलाओं के लिये, सैकड़ा या उससे अधिक ब्याह में एक-सौ और पचसिहा ब्याह में पचास "दुनियाँ", सम्बन्धी के घर भेजीं जातीं हैं; जिनमें से आधी सम्बन्धी के यहाँ रख लीं जातीं हैं और आधी डेरे में वापस आ जातीं हैं। कार्य सरल करने के लिये अब सैकड़ा या उससे अधिक ब्याह में पचास और पचसिहा में पच्चीस दुनियाँ ही भेज दी जातीं हैं, जो सब वहीं रख ली जातीं हैं। यह दुनियाँ एक परात में लगा कर, उनके बीच में एक कटोरा बूरे से भर कर रख दिया जाता है, तथा उस कटोरे में दो गोला के चार बराबर के अधा काट कर उनमें भी बूरा भर व मेवा या मखाना डाल कर रख दिये जाते हैं, तथा चार रुपये और चार टका पैसे रख दिये जाते हैं। यह सब सामान वरपक्ष का नाई बाजे के साथ सम्बन्धी-जी के घर दे आता है। पहले दुनियाँ के साथ दुनियाँ की संख्या के बरावर पूड़ीं व लिढ़ना, कसार एवं चबैनी आदि भी भेजने की प्रथा थी, किन्तु अब यह वस्तुयें देखने में नहीं आतीं। ज्ञात होता है कि गोला बूरा आदि "चरुई" के है। "चरुई" शब्द सम्भवतः "चरु" से उत्पन्न हुआ है। चतुर्थों में अनुष्ठित हवन में "चरु"

(अर्थात हवन की वेदी के ऊपर घृत, पानी और चावल रख कर इस प्रकार बनाया हुआ हव्य, कि उसका जल आदि उसी में निःशेष हो जाय, पसाना न पड़े) की भी आहुतियाँ दी जातीं हैं; और फिर यही "चरु" प्रसाद रूप में वर-वधू को एवं सम्बन्धी-जी की महिलाओं व अपने कुटुम्ब की इस ग्राम/नगर में विवाहिता उपस्थित बहन बेटियों को बाँटा जाता है। इसी चरु से "चरुई" शब्द की उत्पत्ति हुयी ज्ञात होती है; सम्भवतः इसी "चरुई" के स्थान पर सन्बन्धी के यहाँ बूरे से भरा कटोरा व गोला काट कर भेजे जाते हैं। चार रुपये समधौरे के हैं, जो सम्बन्धी आदर के लिये स्वीकार तो कर लेता है, किन्तु पहेंने पर सब वस्तुओं के साथ इन्हे भी लौटा देता है। चार टका पैसे, जो इस परात में रक्खे जाते हैं, वह सम्बन्धी परात लाने वाले नाई को ही दे देता है।

पहिरावा--यदि विवाह दो से अधिक दिन का हो, तो देवी-पूजा पिछले दिन अनुष्ठित होती है। इस हालत में देवी-पूजा से वापस आने पर बहू का, प्रथम दिन की तरह, शृंगार किया जाता है तथा उसे "पहिरावा" पहिना कर पूर्वोक्त प्रकार से "कलेवा" कराया जाता है। फिर "न्यौछावर" होती है और श्वसुर या "बड़े" द्वारा बहू की गोद भरी जाती है। आज भी पहले दिन की तरह "जूठिन" में एक रुपया या आठ आना डालने होते हैं। आज नाइन वारिन को साड़ी नहीं देनी होती। बहू के साथ प्रथम दिन की तरह मेवा भर कर "कुथरिआ" भेजी जाती है तथा उसकी "वरेइया" में सेर भर के करीव "बूरा" बाँध दिया जाता है। वहू के घर से जो लड़का बहू को वापस "मायके" लिवा जाने के लिये भेजा जाता है, उसे प्रथम दिन की तरह ही एक रंगीन पिछौरी, एक रुपया और एक गोला दिया जाता है। उसके साथ बहू फ़िर अपने "मायके" वापस चली जाती है।

पहेंने को तैयारी—पहेंने के लिये पान लगवाने पड़ते हैं; पान कुछ अधिक लगवा लिये जाँय तो रात को प्रीति-भोज के समय फिर दुबारा मेहनत नहीं करनी पड़ती। जो बचते हैं, वह प्रीति-भोज के समय "गारी" गाने वाली महिलाओं को भेज दिये जाते हैं। साथ ही, इलायची, तम्बाखू, इत्र, गुलाब-जल आदि, व उनको दिखाने के लिये बरतन आदि भी ठीक करने पड़ते हैं।

चरुई-बराती—"चरुई" क्या है, यह ऊपर लिखा जा चुका है। "बराती" सम्भवतः बारात में आकर जो मुलाक़ात-भेंट हुयी, उसके उपलक्ष में "भेंट" अथवा "भिठायी" देना है। चरुई व बराती घर-कुटुम्ब के उन दामाद, और भानजों, की होती है जो इस ग्राम/नगर में उपस्थित हैं (चाहे बारात में, किसी दूसरी आयी हुयी बारात में, घरात में, या ग्राम/नगर में अन्य किसी रिश्तेदार के यहाँ आगत हैं); तथा उन घर-कुटुम्ब की लड़कियों की, जो इस ग्राम/नगर में ब्याहीं हैं, चाहे वह यहाँ उपस्थित हैं या नहीं। चरुई-बराती में दो रुपये व एक गिँदौरा के साथ कुछ "बरीं" (जो आटे-सीधे में आतीं हैं) दी जातीं हैं। चीनी पर कन्ट्रोल होने के समय से गिँदौरा व "बरीं" की जगह आठ आने पैसे दे दिये जाते हैं; इस प्रकार अढ़ाई रुपया दे दिया जाता है। इसके अलावा अपने ग्राम/नगर के दामाद व भानजे, जो बारात, घरात या इस ग्राम/नगर में उपस्थित हैं, तथा अपने ग्राम/नगर की लड़कियाँ जो इस ग्राम/नगर में ब्याहीं हैं (चाहे वे उपस्थित हैं या नहीं), उनको केवल "बराती" दा जाती है, जिसमे एक रुपया व गिँदौरा आदि दिया जाता था, जिसकी जगह अब डेढ़ रुपया दे दिया जाता है। अब कहीं-कहीं अपने ग्राम/नगर के दामाद/भानजों को बराती देना बन्द हो गया है। यह चरुई-बराती वर पक्ष की ओर से घर व बरात के चार-छै वयस्क व्यक्ति जा कर बाँट आते हैं।

पहेंने का बुलावा—पहेंने के लिये बुलावा आने पर सबसे पहले वरपक्ष को अपना नाई भेज कर सम्बन्धी-जी के यहाँ से "ढरा" मँगा लेना होता है। "ढरा" आ जाने पर वह "सँजोया" जाता है; जिसमें रोली, ईँगुर, सूखी पिसी मेंहदी, कलाया, पान और सुपाड़ीं (पचसिहा में २५ व सैकड़ा में ५०) "गठजोरे" के लिये लहँगा, बाडी व चुनरी, ढिँगधर की साड़ी, दो जोड़ी चाँदी के छोटे बिछिया, (व कहीं-कहीं हाथों में पहनने के लिये एक सोने का ज़ेवर जैसे दुआ, कंगन आदि) व चार रुपया रक्खे जाते हैं। ढरा से अलग वरू-जी के लिये थान-पाग, यदि लगुन की विदा अब तक न दी गयी हो तो उसका सामान, इत्र, इलायची, सत्कार का सामान, पान आदि व रुपया-रेज़गी की थैली और वर का पनत्थ का डुपट्टा व गठजोरे की गोद भरने के लिये बताशे साथ ले जाये जाते हैं।

पहेंना—तीसरे बोले पर बारात पहेंने के लिये तैयार हो कर चल देती है। वर की पोशाक कोई विशेष न हो कर साधारण होती है। किन्तु रूमाल में बाँध कर पच्चीस सुपाड़ीं साथ में ले लेनी चाहिये। शाखोच्चार की तरह पंक्ति-बद्ध बारात का घरातियों के पालागन की द्विपंक्ति द्वारा सत्कार होता है। "ढरा" व "थैली" आदि वर पक्ष के "बड़े" के पीछे चलती है।

वरू-जी का सत्कार—'थरा द्वार" की सम्हाल व "विनती" आदि के पश्चात् वर-पक्ष की ओर से वरू-जी का सत्कार थान, पाग व रुपयों की दक्षिणा के द्वारा होता है। पचसिहा ब्याह में पाँच, सैकड़ा में दस, व सौ-सवैया में पन्द्रह रुपये वरू जी को दिये जाते हैं। यदि इस समय "राय" उपस्थित होता है, तो उसका भी सम्मान कम से कम दो रुपये से किया जाता है।

अन्य भेंट व नेग—इसके अतिरिक्त निम्न दक्षिणा अथवा "नेग" दिये जाते हैं। गुरू-जी को विनती की दक्षिणा चार रुपया

(पहले सभावतः सैकड़ा के चार व पचसिहा के दो रुपये थे), पंडित-जी को दक्षिणा दो रुपया ; नाई-बारी दोनों को मिला कर एक रुपया, मालिन को एक रुपया, धीमरि को, चौथी के समय यदि स्नान-कराई का न दिया गया हो, तो एक रुपया, और मनिहार (पंखा लाने वाले) को एक रुपया पहेंने में दिया जाता है।

गठजोरे की गोद्——पहेंने का सब कार्य समाप्त होने पर (यदि प्रीतिभोज का प्रवन्ध पहेंने के साथ ही साथ न हो), बारात डेरों में चली जाती है ; गठजोरे के लिये वर, कुँअर-कलेवा में साथ के लिये सहबोला (एक छोटा लड़का) ; व गठजोरे की गोद् भरने के लिये वर का पिता, अथवा और कोई "बड़ा", वहाँ ठहर जाता है। पहेंने के ढरा के कपड़े (चुनरी आदि) जब वधू को पहनाये जा चुकते है (बिछिया, दुआ आदि छोड़ कर), तब वर को अन्दर बुला कर वर-वधू की एक टका (दो पैसे) से गाँठ जोड़ी जातीं है ; और उसे ढरा में आये हुए बिछिया, कंगन आदि कोई सुहागिन महिला पहिनाती है ; फिर वर के पिता (अथवा अन्य वड़ा) वधू की गोद् बताशों से भरता है और एक रुपया न्यौछावर करता है।

कुँवर-कलेवा——पहले दिन की तरह ही यह होता है, वर पचीस सुपाड़ी दे हेता है व "कुँवर कलेवा" करता है।

पत्तल बद्लना——जैसा अन्यत्र वर्णित है, प्रीतिभोज में प्रमुख कार्य पत्तल बद्लने का है। वर की ओर से वर के कुटुम्ब का सब से बड़ा व्यक्ति (यदि वह इस ग्राम/नगर का दामाद् या भानजा नहीं है) सम्बन्धी की हैसियत से पत्तल बद्लता है। प्रायः यह वही व्यक्ति होता है जो वर की ओर से "थराद्वार" सम्हालता है। प्रथा यों है कि यह व्यक्ति अपने पार्श्व में एक और पत्तल परोसवा लेता है। परसना समाप्त होने पर, मण्डप जिमाये जाने के पश्चात्, कन्या-पक्ष की ओर से पत्तल बद्लने वाला व्यक्ति (उस कुटुम्ब का

सब-से बड़ा व्यक्ति, यदि वह वर के ग्राम/नगर का दामाद् या भानजा नहीं है) अपनी ओर के दो चार अन्य व्यक्तियों के साथ आता है और अपने दोनों हाथों की हथेली मिला कर (एक पर एक धर के) उनके ऊपर समधौरे के रुपये (पचसिहा के दो अथवा चार, सैकड़ा के चार और उससे ऊपर वाले विवाह के पाँच ; अथवा उसके घर में यदि कुछ और प्रथा हो तो उतने) रख कर वर पक्ष "सम्बन्धी" जी के सामने पेश करता है। उस समय वर-पक्ष 'सम्बन्थी" एवं उनके आस-पास वाले सब लोग अपनी-अपनी जगह खड़े हो जाते हैं। वर पक्ष "सम्बन्धी" हाथ जोड़ कर रुपये उठा लेता है और अपनी पत्तल पर कन्या पक्ष "सम्बन्धी" को हाथ पकड़ कर बैठा लेता है; एवं स्वयं पहले से ही पार्श्व में परोसी हुई पत्तल पर बैठ जाता है। और तभी "कर्णप्रिय" मधुर शब्द सुनायी पड़ता है "जय श्री लक्ष्मी नारायण की"।

साज-सम्हाल और बाँधा-छोरी——विवाह के सब काम, और यह आनन्दमय सम्मिलिन समाप्त हो गया ; अब तो उत्सव का अवसाद है। वरपक्ष को अपना बिखरा हुआ एवं विवाह में मिला हुआ सामान ठीक करना है ; और सम्हाल करके बाँधना है। पहेंने के समय ही कन्या-पक्ष से बात करके यह तय कर लिया जाता है कि बारात की विदा किस समय हो सकेगी। उस समय से पहले ही अपनी साज-सम्हाल, बाँधा-छोरी, सवारी व यात्रा आदि का प्रबन्ध कर लिया जाता है। इस कार्य में दोनों पक्षों को एक दूसरे की सुविधा का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है, और खास कर वधू की सुविधा का।

वधू की विदा——यों तो इस दिन के पहले से ही घर में विदा की छाया और सजल नयन दिखायी देते हैं, किन्तु विवाह के उत्सव और काम में वह बात दबी रहती है ; और कन्यापक्ष के सभी स्त्री-पुरुष

यंत्रवत् काम में व्यस्त रहते हैं। किन्तु विदा के दिन तो प्रातः से पहले ही कुहराम आरम्भ हो जाता है। बेचारी वधू, आज तक का घर, देहरी, माँ, बाप, बहिन, भाई, सखी, सहेली, सबसे छूट कर, अलग होकर, एक बिलकुल नये घर, नयी परिस्थितियों में, जा रही है, उसे विछोह का दुःख होना तो स्वाभाविक ही है। माँ, बहिन, भावज, आदि हो क्या, सभी स्त्रियों की दशा विदा के दिन एक-सी रहती है। और क्या स्त्री क्या पुरुष ; विदा विदा ही है ; जिसमें कण्व से महर्षि और सीरध्वज जनक से विदेह का भी धैर्य छूट गया था। किन्तु संसार का मार्ग और प्रथा ऐसी ही है ; और रुदन व शोक के बीच में ही लाड़ली बेटी की विदा करनी होती है। क्या कोई भी व्यक्ति—वरपक्ष या कन्या-पक्ष का—ऐसा होता है, जिसका धैर्य इस समय उसका साथ दें, जो स्वयं को निर्लिप्त रख सके, अथवा जिसके नेत्र इस अवसर पर भींग न जाय। "धीरज हू कर धीरज भागा" वाली लोकोक्ति चरितार्थ होती है। इस अवसर पर कहीं-कहीं यह प्रथा है कि वर की ओर से वर के पिता व अन्य बड़े अपने सम्बन्धी के घर "वधू" की विदा कराने आते हैं ; और विदा होते समय वधू पर "मूँठे" लुटाते हैं। अन्यथा कन्यापक्ष के लोग वरपक्ष की प्रार्थना पर वधू को स्वयं ही घर से ले आकर वरयात्रा की सवारी पर पहुँचा देते हैं। धीमरि वधू को पानी पिलाती है, जिसके लिये वर-पक्ष की ओर से उसे एक रुपया दिया जाता है।

गूत व गोंड़ा——घर से वधू की विदा होने के पश्चात् वर को अपनी ससुराल "गूत छुड़ाने" के हेतु बुलाया जाता है ; और इधर बाराती व घराती परस्पर मिल-भेंट कर विवाह-कार्य की एक दूसरे की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ; यही अपनी संस्कृति और सभ्यता है। लड़की वाला दैन, लैन, ख़ातिर आदि में अपने वश कुछ उठा नहीं रखता। वर के घर के व बारात उसके एक-एक कार्य की सराहना

करते हैं ; और वह यही कहता है कि आप से सज्जन पा कर हम धन्य हुये। आपने हमें "निबाह" लिया।

इसी में गोंड़ा चुकता है। जिसमें वर-पक्ष, यदि सम्बन्धी के मारफ़त बाजे, आतिशबाजी, रौशनी, नौकर, सवारी आदि का प्रबन्ध किया गया हो, तो उसका हिसाब दे देता है ; और बाद में "गोंड़ा चुकाने" के रुपये—जो पचसिहा में छ रुपये, व सेकड़ा व उससे अधिक में बारह रुपये होते हैं—तथा "कुड़रियाँ" के साढ़े चार आने (पुराने) पैसे दे देता है। साथ ही गुरू-जी को एक रुपया, पंडित-जी को आठ आने, दक्षिणा-रूप में, व नाई बारी को आठ-आठ आने व चौकीदार, मेहतर आदि को यथावश्यक द्रव्य इनाम-रूप में दिया जाता है।

विदा——और तब तक "गूत" छोड़ कर वर वापस आ जाता है। "गूत" मण्डप में एक ओर लटकती रस्सी की गाँठ है, जिससे मण्डप बाँधा गया है। वर वह रस्सी की गाँठ खोल देता है। इस अवसर पर उसे बूरे से भरा चाँदी का गिलास व द्रव्य, सास आदि महिलाओं द्वारा, "तिलक" में मिलता है। "गूत-छोड़ना" मण्डप-स्थान का Symbolic possession कन्या-पक्ष को देना है। संस्कार-अनुष्ठान वर के घर व ख़र्च पर होना उचित था। कन्या-पक्ष की सुविधा के हेतु यह कन्या-पक्ष के घर में अनुष्ठित हुआ, किन्तु अनुष्ठान के हेतु बना मण्डप उतने समय के लिये कन्यापक्ष ने वर को दे दिया था, और अब "गूत छोड़" कर वह उस भूमि को कन्या-पक्ष को लौटा रहा है ; कुछ ऐसा भाव सुना है। कन्यादान के पश्चात् के सभी वैवाहिक कार्यों की दक्षिणा, (शाखोच्चार पढ़ने की कन्या-पक्ष के गुरू-जी की दक्षिणा भी), वर-पक्ष द्वारा ही दी गयी है। अब परस्पर यथोचित अभिवादन करते हुये बरात विदा होती है।

———

५

विवाह-कृत्य—वर के घर पर

विवाह-कृत्यों को छाया—बारात कन्या के ग्राम में है। असली विवाह-कार्य सब कन्या के ग्राम में ही सम्पन्न होते हैं; सभी जलसे व "कृत्य" वहीं हो रहे हैं। "कृत्यों" में मुख्य हैं, आग्यौनी, कन्यादान, विवाह व चतुर्थी। वर के घर पर भाई-बन्धु रिश्तेदारों की सभी महिलायें व लड़कियाँ एकत्रित हैं। विवाह "कृत्य", जब जब जैसे-जैसे कन्या के ग्राम/नगर में हो रहे हैं, इधर वर के घर पर सभी महिलायें मिल-कर उनकी छाया उपस्थित कर अपना मनोरंजन कर लेतीं हैं।

छाया-आग्यौनी—स्त्रियाँ अपनी छत पर चढ़ कर आग्यौनी के गीत गातीं हैं, उसी स्वर से, जैसे गीत कन्या के दरवाज़े इस समय हो रहे होंगे।

खोरिया—छाया-विवाह—विवाह के दिन स्त्रियाँ छाया-विवाह भी अनुष्ठित कर लेतीं हैं। इसी उपलक्ष में उस दिन वर के घर प्रीतिभोज—"खोरिया की पाँति"—का आयोजन होता है, जिसमें सब "व्यौहारी" स्त्री-पुरुष सम्मिलित होते हैं। साथ ही, चौसठ-योगिनी-भय-निवारणार्थ नृत्य, गायन, वाद्य आदि चलते रहते हैं; इस दिन मानों आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता है, जिसमें सब कुछ क्षम्य है।

छाया-चौथी—चौथी के दिन वर के घर पर छाया-चौथी होती है। घर कुटुम्ब की चौथी की "जेमाँजूठी" भी होती है। इस

दिन भी गायन आदि चलते हैं। छत्तीस घण्टे के विवाह में यहाँ भी चौथी नहीं होती।

पनीछा (परिछन)—सब कृत्य सानन्द समाप्त हो कर, बहू को लेकर, बारात अपने ग्राम/नगर में वापस आ गयी। चारो ओर आनन्द उमड़ पड़ा। "वर" और "बहू" अपने घर "पनीछा" के बाद आयेंगे। तब तक उन्हें (अधिकतर) उसी घर में ठहरा दिया जाता है, जहाँ वर सपठौनी होकर बारात जाने से पहले ठहरा था। लड़कियाँ एवं स्त्रियाँ वहीं नयी बहू का देखने आतीं हैं। उत्सुकता है, बहू कैसी है, क्या क्या लायी है? सास और वह महिलायें बहू को देखने वहाँ इस लिये नहीं आतीं, कि वह पनीछा के चौक पर औपचारिक-रूप से बहू का मुँह देखेंगी और उस हेतु उसे भेंट देंगी। फिर शुभ मुहूर्त्त में (किसी-किसी के यहाँ उसी समय, यथाशीघ्र, "अघूरे-पाँइन") पनीछा होता है।

अमुला आदि किस लिये?—वर-गृह के प्रवेश-द्वार पर दो हाथी अंकित किये जाते हैं, और सामने की दीवाल पर चित्रकारी-आदि करके "अमुला" अंकित होता है। अमुला में सुवा आदि विहंग-पक्षी दिखाये जाते हैं; और काले, पीले, लाल, हरे आदि रँगो से रँग कर विविधि आकृतियाँ चित्रित को जातीं हैं। यह अमुला-अंकन की प्रथा कहाँ से और कैसे चली, इसकी पृष्ठभूमि क्या है, इन प्रश्नों का उत्तर हमें ठीक-ठीक प्रामाणिक-रूप में नहीं मिलता।

ग्रन्थादि अवलोकन करने पर, लेखक का मत है कि, अमुला-अंकन की प्रथा के मूल में शास्त्रोक्त नाग-बलि-प्रयोग है, जो वर-वधू के प्रथम बार घर-घर-आगमन पर अनुष्ठित होना चाहिये। अब भी गोस्वामी और भट्ट आदि ब्राह्मणों में यह विधिवत् अनुष्ठित होता है। विस्तार बचा कर, संक्षेप में, यह प्रयोग निम्न-लिखित रूप में अनुष्ठित होता है।

नागबलि-प्रयोग कैसे होता है ?——"प्रयोग-पारिजात" ग्रन्थ में, वधू के प्रथम बार वर के घर आने पर, "नागबलि-प्रयोग" इस प्रकार विहित किया गया है। यह गृह-प्रवेश, विवाह-रात्रि से कम से कम चतुर्थ दिवस, एवं सम (चार, छै, आठवें) दिन, चतुर्दशी, संक्रान्ति, व्यतीपात्, आदि बचा कर, अनुष्ठित किया जाता है। गृह के मध्य, एकसी जगह में, चतुर्भद्र-संज्ञक मानसरोवर का आलेख किया जाता है ; इसके बीच में एक अष्टदलकमल आँका जाता है, जिसके कोणाग्र-भागों में हंस, तोता (शुक) आदि चित्रित किये जाते हैं। नैऋत्य (या दक्षिण) में सफ़ेद चावलों का एक हाथी, और उत्तर में नमक का बना एक हाथी, खड़ा किया जाता है। मानसरोवर में काले, सफ़ेद, हरे, लाल और पीले रँगे अक्षतों से रँग भरे जाते हैं। अष्टदल-कमल की बाहरी रेखाओं में सफेद चावल से कर्णिका (बाहरी गोल आकृति, जैसे सतिया लगा कर उसके सिरों को गोलाकार मिलाया जाता है) बनाकर, उसमें ब्राह्म्यादि सप्त-मातृका स्थापित की जातीं हैं। एक सिल पर चावल से सोलह खाने अंकित कर, उनमें दाक्षायणी आदि षोडस देवी-देवता (यथा, महादेवी, महाकली, सांकरी, ब्राह्मणी, सावित्री, शंकर, उमा, लक्ष्मी, नारायण, इन्द्र, शची, कपालिनी आदि) का, लोकपाल, अप्सरा, सोम, एवं गन्धर्व सहित, आवाहन किया जाता है। कर्णिका के मध्य में कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्य मिश्रित जल से पूर्ण कलश स्थापित किया जाता है। दाक्षायणी आदि सप्त-मातृका का उक्त कलश पर आवाहन एवं पूजन किया जाता है ; एवं सिल पर स्थापित षोडस देवी-देवताओं का गुड़, जीरा, फल, गन्ध, पुष्पादि द्वारा पूजन किया जाता है। पुआ और गुलगुला लाकर सिल पर स्थापित देवताओं का भोग लगाया जाता है। एक क्षुरिका (कटार, छुरी) की भी स्थापना-पूजा होती है। मान-सरोवर और सिल के चारो ओर तेतीस डबुआ (भोलुआ) सुगंधति जल भर कर

रक्खे जाते हैं ; और वह एक-एक सिकोरा से ढक दिये जाते हैं। साथ ही, तेतीस दीपक जलाकर उसी प्रकार रख दिये जाते हैं।

श्वेतवस्त्रालंकारों से सज्जित कन्यामाता बैठ कर उन डबुओं पर रक्खे तेतीस सिकोरों में से प्रत्येक में एक-एक पुआ और एक-एक गुलगुला रख देती है। एक और सौभाग्यवती वृद्धा पूर्वाभिमुख खड़ी होती है ; और हाथ में जल-अक्षत लेकर पीछे की ओर (अपने कंधे से पीछे, विना देखे हुये) वर-वधू पर तीन बार छोड़ देती है। वर की माता वस्त्रादिक से सन्मानित कर उस सौभाग्यवती को विदा करती है। अब वर-वधू, जो पहले से ही स्नानान्तर शुद्धि के साथ पनीछा कर के लाये गये हैं और अष्ट-कमल आदि के सामने चौक पर बैठे हैं, संकल्प एवं देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं ; और साथ लायी हुयी विवाहाग्नि की स्थापना-पूजा करते हैं। एक दूसरी सौभाग्यवती महिला एक थाल में पान के बीड़े लाती है, और वर-वधू को देकर उपस्थित महिलाओं को देती है ; फिर वस्त्रादिक व आभूषण वर-वधू को भेंट कर, उन्हें आशीर्वाद देकर, चौक से उठाया जाता है। अब ब्राह्मण-भोजन एवं कुटुम्ब-भोजन होता है और सम्बन्धी-जी के यहाँ से आये हुये वस्त्रादिक सौभाग्यवती स्त्रियों को बाँटे जाते हैं।"

अपने यहाँ पनीछा में क्या होता है ?——यह पहले लिखा जा चुका है कि बाहरी सदर दरवाज़े पर दो हाथियों के चित्र अंकित किये जाते हैं, और प्रवेश-पौरि में रंग-विरंगा अमुला अंकित किया जाता है। यह भी लिखा जा चुका है कि वधू का वर-गृह में प्रथम-प्रवेश उन्हीं घाट-लहँगा आदि वस्त्राभूषणों में होता है, जो वह पहँने के गठजोरे के समय पहने थी ; और वहीं से वही गाँठ-बँधी पनत्थ का डुपट्टा ज्यों का त्यों वधू के साथ आता है।

पनीछा (परिछन) के लिये यह अमुला आदि प्रस्तुत करने के पश्चात्, (जो बारात पहुँचने से पहले ही हो जाता है) जहाँ "चौक" अंकित है, भीतरी प्रवेश-द्वार से चौक तक, "पाँवड़े" बिछाये जाते हैं। अर्थात्, स्थान गोबर से लीप कर एक रङ्गीन वस्त्र, धोती आदि, बिछा दिया जाता है; फिर उस पर एक-एक डग की दूरी पर सात कच्चे आटे की पूड़ीं, एक-एक टका पैसा ऊपर रख कर, उन पर सात कच्ची मिट्टी के सिकोरे औंधा दिये जाते हैं।

बाहरी प्रवेश-द्वार पर वर-वधू के उपस्थित होने पर, वर-माता अथवा तत्स्थानीय महिला देहली पर से वर-वधू पर तीन बार मूँठें (मुट्ठी में पैसे-रेज़गी भर कर फेंकना) लुटाती है। अब वर-वधू से पौरि में अंकित अमुला की पूजा करायी जाती है। वर-वधू की गाँठ पहेंने-से ही जुड़ी है। फिर, अन्दर, पाँवड़ों पर पैर रखते हुये, वर-वधू आङ्गन मे "चौक" पर बैठाये जाते हैं; और वहाँ उनके द्वारा कलश-पूजन सम्पन्न कराया जाता है। अब वर-माता, अथवा तत्स्थानीय अन्य महिला, चौक पर, गुना के बीच में से (यह गुना आटे से बनाया, गोलाकृति का, circle होता है जो पूड़ी-पुआ के साथ घी में सेक लिया जाता है) बहू का मुँह देखती है, और इसके उपलक्ष में उसे स्वर्ण-आभूषण आदि भेंट देती है। उसके पश्चात् घर की अन्य महिलायें नयी-बहू का मुँह देखतीं हैं, और बहू को द्रव्य, स्वर्ण, आभूषण आदि उपहार देतीं हैं। अब वर की बहिन, अथवा तत्-स्थानीय, वर-वधू की बँधी-गाँठ खोलती है; और गाँठ-में-बँधा रुपया ले लेती है। उपस्थित सभी महिलायें बहू को आशीर्वाद देतीं हैं।

वेद भगवान के आशीर्वाद जैसा—

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृतायकम्॥
[अथर्व०, कां० १४, सूक्त १, मंत्र ४२]

[अर्थ—हे वधू! तू सन्तान, धन, सौभाग्य और प्रसन्नता की कामना-वाली होकर पति के अनुकूल रह; और इस अमृतमय सुख को अपने वश में कर।]

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु॥
[अथर्व०, कां० १४, सू० १, मंत्र ४९]

[अर्थ—हे वधू! सविता तेरे हाथ को ग्रहण करें; सोम तुझे सुसन्तति-वती बनायें; अग्नि तुझे वृद्धावस्था तक पति के साथ रहने वाली सौभाग्यवती बनायें।]

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥
[अथर्व०, कां १४, सू० २, मंत्र १८]

[अर्थ—हे वधू! पति और देवर को हानि न पहुँचाने वाली, पशुओं का हित करने वाली, सन्तति-वती, शोभन-कान्ति-वाली, सुख देने वाली होती हुयी, एवं देवर का अहित-चिन्तन न करने वाली होती हुयी, तू गार्हपत्य अग्नि का पूजन करने वाली हो।]

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्॥
[अथर्व०, कां १४, सू० २, मंत्र ६४]

[अर्थ—हे इन्द्र! इन पति-पत्नी को चकवा-चकवी के समान परस्पर प्रीति-करने वाले बनाओ। इन्हें सुन्दर गृह और सन्तान से युक्त रक्खो। यह जीवन-भर विभिन्न भोगों को भोगते रहें।]

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन्।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु॥
[अथर्व०, का० १४, सू० २, मंत्र ७३]

[अर्थ—वधू को देखने की इच्छा से इस दहेज के समीप आनेवाले पितर, इस शीलवती वधू को सन्तान-युक्त होने का आशीर्वाद और कल्याण प्रदान करने वाले हों।]

१

सर्व-माङ्गलिक गीत

वेद-मंत्र और गीत-साहित्य—"जहँ वेद की झनकार सुनि कें, गीत गावें कामिनी" हमारे "वलि पाहुनरे" गीत की ही कड़ी है। सभी संस्कार-उत्सवों के समय, वेद-मंत्रों के मधुर स्वरों के साथ, हमें ठिक के गीतों का नपा-तुला स्वरारोहण अवश्य ही सुनने को मिलता है। दोनों का सम्बन्ध कुछ ऐसा है, जैसे मृदङ्ग और मंजीरा। गोस्वामी जी ने भी कहा है—"सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं वेदधुनि विप्र पुनीता"।

वेद-भगवान अपौरुषेय, भगवत्कृत, हैं और गीत मनुष्य-कृत। वेद-भगवान अनादि हैं और ठिक के गीत अपेक्षा-कृत आधुनिक, यही कोई पाँच-सात सौ वर्ष के अन्दर ही के काल में रचे गये। फिर भी, कुछ विन्दु ऐसे हैं, जहाँ दोनों में समानता भी दिखायी देती है। जैसे वेदान्त-साहित्य पारङ्गत ऋषि-महर्षियों के स्वाध्याय-चिन्तन-प्रवचन आदि से प्रस्फुटित होकर वृद्धि को प्राप्त हुआ, वैसे ही गीत-साहित्य भी कितने-कितने अ-नामा अ-जाने कवि-कवियित्री-गण की गम्भीर अनुभूति-चिन्तन व मधुर-भावनाओं द्वारा ही प्रवाहित होता आया है। जैसे प्रस्फुटित होते समय आगम-निगम आदि न लिखे जा सके, प्रवाहित होते समय गीत-साहित्य भी न लिखा जा सका। दोनों ही—वैदिक-साहित्य और गीत-साहित्य—एक-दूसरे से सुन कर, गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा, प्रचलित होते रहे, और अब हमें इसी रूप में उपलब्ध

हैं। जहाँ वेद-भगवान दैवी शक्ति से सम्पन्न हैं, वहाँ गीत मानवी-भावुकता के सागर की हिलोरें हैं।

अलग-अलग गीत, अलग-अलग राग——ठिक के गीत संख्या में कम नहीं; सैंकड़ों की संख्या है। फिर भी, किन्हीं दो गीतों के स्वर, लय, राग आदि एक से नहीं मिलते। जितने गीत हैं; उतने-उतने ही स्वर, लय, राग आदि हैं; प्रत्येक के अलग-अलग, अपने-अपने निजी, विशेष।

इनमें से कुछ तो गद्य-गीत हैं (जैसे "सीआ-दोआ")। कविता, तुक, छन्द, मात्रा आदि की कुछ भी बन्दिश नहीं, केवल स्वर-प्रधान। स्वरों के विशेष प्रकार के आरोह-अवरोह (चढ़ाव-उतार) पर गीत चलता है। जो कविता, छन्द, मात्रा आदि साथ लिये पद्य-गीत हैं, वह भी स्वर-प्रधान ही हैं, अर्थात स्वरों के आरोह-अवरोह पर ही गीत पूर्ण-रूपेण अवलम्बित हैं। और इसी लिये इन गीतों में सर्वदा सब जगह यह गुंजायश रहती है कि घर-कुटुम्ब-सम्बन्धी आदि व्यक्तियों के विशेष नाम, पूरे के पूरे, उपयुक्त स्थान पर, उन्हीं स्वरों में ले लिये जाँय (जो प्रत्येक कुटुम्ब और अवसर के लिये अलग-अलग होते हैं), और फिर भी गीत के स्वर, लय आदि जैसे के तैसे स्थिर रहें; और संगीत की लहरों में कहीं भंग न हो। इन गीतों की लय एवं स्वरारोह आदि सब बँधे-बँधाये, गुरु-शिष्य परम्परागत, हैं; और आज यदि अच्छे-अच्छे विजातीय पक्के गायक चाहें कि एक-बार सुन कर कोई गीत वह जैसे का तैसा दुहरा दें, तो यह उनके लिये भी कठिन-साध्य होगा।

मृदङ्ग का साथ त्याज्य——इन गीतों में मृदङ्ग आदि का साथ त्याज्य, छोड़ा हुआ, है। ढोलक अथवा मृदङ्ग के ताल की आवश्यकता नहीं है। इससे क्या यह ज्ञात नहीं होता कि हमारे पूर्वज पूर्ण-रूपेण अहिंसा-प्रिय थे—यहाँ तक, कि विवाहादि अवसर पर अशुद्ध-चमड़ा लगे रहने के कारण मृदंग, ढोल आदि वाद्य त्याज्य हो गये? एक बात

और है; जिन सौम्य स्वरों में गीत की संगीत-लहरी (Tune) बैठायी गयी है, उससे यह अन्दाज़ अवश्य होता है कि सम्बन्धित गीत-कार संगीत-शास्त्र के पूरे पण्डित थे; नहीं तो इतने लचीले, मृदु, हृदयग्राही स्वरावरोहण इस सरसता से कैसे बैठा सकते थे!

शृङ्गार-रस——शृङ्गार-रस, श्लेष और अश्लीलता के बीच की दीवारें अधिक ठोस नहीं। एक से क्रमशः दूसरे में प्रवाह चल सकता है। ठिक के गीतों में साहित्य-सौन्दर्य के साथ-साथ शृङ्गार-रस कहीं-कहीं बहुत ही अच्छे रूप में पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप "अति प्रचण्ड की गारी", "घूँघटा" आदि गीत उच्च-साहित्य की वस्तु हैं और शृङ्गार-रस से ओत-प्रोत हैं। इसके बाद श्लेष की गणना है। इसकी भी अपने गीत-साहित्य में बहुतायत है। वर की माता पर तो न जाने कितने व्यङ्ग और श्लेष हैं। उदाहरण के लिये "सुनि दूल्हा रे", "बाती", "काननि कुण्डल" आदि गीत ले लीजिये; दूल्हा का सब साज-सामान ही "ओछे कर्म कराय" द्वारा इकट्ठा कर दिया गया। और कहीं-कहीं अश्लीलता भी घुस आयी है; इसके उदाहरण "नन्नी झुरमुट", "बड़े साजन", "नन्नी बूँदें", "सारिंग" "देश" आदि हैं। वैसे भाँवरि के बाद ही, शाखोच्चार, टौना, प्रीतिभोज आदि के गीतों में, कहीं-कहीं, अश्लीलता घुस सकी है; और वर-गृह में भी "खोरिया" में। क्या इसका भी कोई विशेष कारण है?

संस्कार-गीतों के संस्कार की आवश्यकता——लिखे न होकर, केवल सुने हुये, गुरु-शिष्य-परम्परा पर अवलम्बित होने के कारण, यह स्वाभाविक है कि हमारे गीत-साहित्य का रूप कहीं-कहीं विकृत हो गया है। निर्जन मन्दिरों की देव-प्रतिमा की भाँति इनकी उतनी साज-सम्हाल न हो सकी; और कई कारणों से इनके शब्दों में हेर-फेर आदि हो गये। अर्थ न समझने के कारण कुछ के कुछ शब्द गाये जाने लगे। स्वर-लय-प्रधान होने के कारण, यदि

कुछ शब्द छूट भी गये, तो संगीत-लहरी में अन्तर न आया; और क्रमशः वह शब्द लुप्त हो गये। सुश्री मनोरमा देवी मिश्र ने "माथुर-गीतावली" छाप कर समाज का बहुत उपकार किया है, और प्रस्तुत पुस्तक में ठिक के गीत उन्हीं की पुस्तक से, साभार, लिये गये हैं। लिखते समय जैसा कुछ शब्दों का अन्तर समझ में आया, स्वान्तः सुखाय (ग़लत-सही) शब्द बदल दिये गये हैं; एवं हीनांग-पूर्ति भी करने की चेष्टा की गयी है। यह शब्द आदि, पहचान के लिये "*[ ]" कोष्ठक में चिन्हित कर दिये गये हैं। फिर भी, यह कार्य अन्य लेखनी द्वारा ही ठीक-ठीक सम्भव हो सकेगा। समाज के प्रकाण्ड काव्य-मर्मज्ञ, भावुक कवि, जानकार महिलायें आदि, सभी जब इस पर विचार-मन्थन करें, तभी यह कार्य ठीक-ठीक हो सकेगा। संस्कारित संस्कार-गीत, अर्थ समझे जाने के पश्चात्, आज की पढ़ी-लिखी महिलाओं में पुनः अपना स्थान प्राप्त कर सकेंगे, विशेष कर भावमय ग्राम्य-गीतों के बढ़ते प्रचार के इस युग में, ऐसी आशा है।

अर्थ और अवसर——गीतों के शब्दार्थ और अवसर, भाव, आदि की पृष्ठ-भूमि जानने से गीत का सौन्दर्य निखरता है। इसी उद्देश्य से, "सीया-दोआ," "हरे-हरे बाँसनि की छबरियाँ," व "कुकुरा" गीत विस्तार से, पृष्ठ–भूमि, दृश्य, कथोपकथन आदि रूप में लिखे गये हैं। परन्तु सब गीतों का इस प्रकार लिखना पुस्तक के विस्तार को और भी अधिक बढ़ा देता। इसी भय से, बाद के गीत, केवल छोटी-छोटी टिप्पाणी के साथ लिखे गये हैं। अर्थ ठीक-ठीक समझने के लिये फुटनोट में कुछ शब्दार्थ दे दिये गये हैं।

यों तो, जैसा आगे लिखा जा चुका है, ठिक के गीत बहुत हैं; परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में नमूने के तौर पर केवल कुछ ही दिये जा सके हैं। विवाह में कन्या-पक्ष की स्त्रियों द्वारा, वरपक्ष की स्त्रियों के लिये जो परम-प्रेम-मय अनूठे उपालम्भ प्रयुक्त होते हैं, उनका वर्णन यों

तो फीका और अश्लील-सा लगता है; परन्तु अवसर की पृष्ठभूमि में वहाँ वह असुन्दर नहीं लगता। गोस्वामी जी के शब्दोंमें—
"फीकी पै नीकी लगै, ज्यों विवाह में गारि"।

❋

* सीआ-दोआ *

भगवती सीता और भगवान राम! माता यशोदा और कन्हैया-कृष्ण!! युग-युग से, त्रेता और द्वापर की यह झाँकीं, आर्य-जनजीवन का प्राण और आर्य-संस्कृति की आधार-शिला रहीं हैं। किसी भी मंगल-कार्य के हेतु जब कोई भी चतुर्वेदी बालक "चौक" पर बैठता है, तो हमारी देवियाँ "सीआ-दोआ" मङ्गल-गान में प्रथम इन्हीं शुभ झाँकीं-द्वय का स्मरण-ध्यान करतीं हैं। "सीआ-दोआ" गद्य-गीत है, पद्य-गान नहीं। किसी भी साहित्य में गद्य-गीत यदा-कदा ही मिलते हैं; इस हिसाब से "सीआ-दोआ" की महिमा और भी अधिक हो जाती है। गीत के शुद्ध शब्द हैं:—

सीया दोआर राजें तोरन खम्भा;
    आँगन चन्दन चरचियौ।
"आसन मोर-सिंहासन देउ;
    बाँह मोरियौ कूम-कलिस सों;
ठकुरु श्री जसरथ जायौ पूतु,
    लड़ौईं कौसिल्या उर धरे॥
बामन वेद पढ़ायें जहाँ;
    सो तौ छवछिन मङ्गल नित करैं॥"

अर्थात्, सीता-जी के द्वार पर शोभा पा रहें हैं तोरण और खम्भा, मंगल-चिन्ह, और अन्दर आँगन सुगन्धित चन्दन से सींचा-हुआ है। [वहाँ पधारे हैं, वर-वेष में] क्षत्रिय-राज श्रीदशरथ के, प्रिया कौशिल्या से उत्पन्न, पुत्र। अतः "श्रीमान् ! [विदेहराज सीरध्वज जनक को गुरू शतानन्द जी का सम्बोधन है, कि वर के विवाह-हेतु पधारने पर प्रथम क्रिया "ॐ विष्टरो विष्टरो विष्टर :" कह कर आसन देने की है, सो आप श्री-वर को] मयूर-सिंहासन शुभ-आसन प्रदान कीजिये; और [फिर विवाह-पद्धति के अन्य कार्य विधिवत् सम्पादित करते हुये] बाँह मोड़ कर, कुम्भ-कलश से [जल की अनवरत धारा गिरा कर, प्रधान—कन्यादान--कार्य सम्पादित कीजिये।] श्रीमान ! जिन घरों में ब्राह्मणों द्वारा नित्य वेद-पढ़ा-पढ़ाया जाता है, उन घरों की पुत्रवती महिलाओं के यहाँ नित्य ही ऐसे मङ्गल-कार्य अनुष्ठित होते रहते हैं।"

त्रेता की इस विवाह-झाँकी के लिये 'तुलसी' का शुभ आशीर्वाद हमारी देवियाँ अक्षरशः सत्य मानतीं हैं—

"उपवीत ब्याह उछाह मंगल मुनि जे सादर गावहीं।
वैदेहि-राम प्रसाद ते जन सर्वदा सुख पावहीं ॥

* * *

सिय-रघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिनकहँ सदा उछाह, मंगलायतन राम-जस ॥"

और इसी लिये प्रत्येक मंगल-कार्य के प्रारम्भ में यह "मंगलायतन राम-जस" गा कर, 'सीआ-दोआ' नाटकीय पट-परिवर्त्तन के साथ हमें द्वापर की एक दूसरी पवित्र झाँकी दिखाता है :—

[कन्हैया का कुछ उत्सव-संस्कार है आज—सम्भवतः "चौल" (मुण्डन) है। सारी रात यशोदा-माता को सोचते ही बीती है। कैसे क्या होगा, कैसे आने वालों का स्वागत-सत्कार, कैसे कन्हैया का मुण्डन ! और वह क्या सीधे-सीधे मुण्डन कराने देगा ? रोज़ तो

चोटी को नापता है; "किते दिना मोहि दूध पियत भये यह अजहूँ है छोटी"। जागते ही जागते भोर हो गया—शुभदिन।] गीत चलता है।

हरियो गोबरु पियरी-सी माँटी हो
घोर्‌यो जसोमति-मातु लीपनौं।
लीपनरौ सोहै गज-मोंतिन के चौकनि हो;
चौक रम्यान्यों है सोने के कलिस सों;
कलिस रम्यान्यों है अमुला की डारनि हो;
डरिया रम्यानी है पाँच फरेलुआँ ॥

अर्थात्, हरा-ताज़ा गोबर और सुन्दर पीली-सी मिट्टी मिला कर यशोदा-माता ने [अपने हाथ से] लीपनाँ प्रस्तुत किया [क्योंकि देवी-देवता का काम दास-दासी पर नहीं छोड़ा जा सकता।] अपने हाथ से लीपे आँगन की निराली शोभा निखर उठी। फिर उस लिपे-आँगन में यशोदा माता ने [गेहूँ के आटे से नहीं] गज-मुक्ता बिखेर-कर, सँजोकर, चौक पूरा; जिससे उस लिपे-आँगन की शोभा बढ़ी। "चौक" पर माता ने सोने का जल-पूरित कलश स्थापित किया, जिससे "चौक" की शोभा बढ़ी। फिर 'कलश' पर आम का टोहाँ [डार] रक्खा, जिससे कलश की शोभा बढ़ी। अब आम के टोंहे पर माता ने "पंच-फर"[1] स्थापित किये। इससे आम के टोंहें की शोभा निखर उठी।

[कन्हैया और नाई का आगे का हठ छोड़ कर "सीया-दोआ" हमें त्रेता और द्वापर से जैसे बरबस खींच कर, आज के—घर में अनुष्ठित हो रहे—कार्य की ओर लाता है। अब न त्रेता का "दशरथ-धन सुनि

१—गेहूँ का आटा सान कर बनायी हुयीं पाँच गोल-गोल मूर्त्ति, जो एक पाव में गेहूँ भर कर, उस पर रक्खी जाकर, कलश के ऊपर स्थापित कर दी जातीं हैं; और वहाँ "पाँच-देवताओं" की प्रतीक-रूप में पूजित होती हैं।

धनद लजाई" वाला वैभव है, और न द्वापर के गज-मुक्ता के चौक हैं। फिर भी—]

> चूल रम्यानों है दूध दहिय के माँटनि हो,
> बहुअ रम्यानों है लौने पूत सों।
> चौके बैठे लढ़गहिले अमुकि चन्द दुलहियाँ
> सब फुफुआँ रम्यानीं भतीजे के आरतें।

अर्थात्, गेहूँ के चून से बनाये चौक पर बैठे लाड़ले अमुकिचन्द अपनी धर्मपत्नी के साथ शोभा पा रहे हैं; और धर्मपत्नी की गोद में है एक सुन्दर, मोद-से-किलकता बालक, पुत्र। सच है; जैसे चौके-चूल्हे [चूल] की शोभा दूध-दही से भरे माटों से होती है, वैसे ही स्त्री की शोभा, माता बन कर, गोद में मोद-भरे सुन्दर पुत्र से होती है। और इस शोभा का आनन्द, शोभा की शोभा, हैं अमुकिचन्द की यह बहनें, लौने-पूत की यह बुआ [फुफुआँ], जो इस मङ्गल-मोद के अवसर पर (सम्भवतः नामकरण अथवा मुण्डन है) अपने भतीजे का आरता करने को प्रस्तुत हैं। [पर करें कैसे? नेग तो मिले पहले! उपस्थित महिलायें समझा कर कहतीं हैं—]

> "माँगि लै बेटी जो मन भावै सोई"
> "थोरौ न लैहों वीरन मेरे!
> गज हथियन के मोल, अवध-रँग चूनरी।"

"बेटी! जो माँगना हो माँग ले, जो भी तेरे जी में आवे" [किन्तु काम निबटा]। एक बहन कहतीं है "उहुँक! भाई साहब!! आज थोड़ा नहीं, [बहुत लूँगी! मेरे भतीजे का 'काज' जो हो रहा है] अवध की रँगी चूनरि ही लूँगी, भले ही हाथी के मोल मिले"। [बहन ने कुछ बहुत तो नहीं माँगा। उपस्थित महिलायें अमुकिचन्द से शिफ़ारिश करती हुयीं कहतीं हैं—]

> "इतनां तुम देउ अमुकि चन्द के पूत;
> अमुक-दे को कान्तु ठकुरु जग-जानिये।"

"इतना तो तुम दे ही दो, बहन का नेग! देखना!! तुम्हारा और तुम्हारी पत्नी अमुक-दे का यह लौना-पूत ऐसा यशस्वी होगा कि संसार-भर में इसकी ख्याति फैलेगी।"

किस भावुक-भक्त की लेखनी-प्रतिभा का प्रसाद भरा आशीर्वाद है हमारा यह "सीआ-दोआ"?

* हरे-हरे बाँस की छबरियाँ *

भगवान राम और कन्हैया-कृष्ण के साथ ही, आर्य-जनजीवन में, "माता-मैया" की भी वैसी ही घरेलू-भाव में मानता है। यह आदि-शक्ति की पूजा है, वह शक्ति जो विश्व को धारण कर उसका नियंत्रण करती है। शुम्भ-निशुम्भ जैसे अहंकारी का सैन्य-मद एक हुंकार-मात्र से क्षण-भर में नष्ट कर देने वाली देवी-दुर्गा, अपने क्रोध से त्रिभुवन को कँपा देने वाली कराली-काली, और शाक्तों की अति-प्रचण्ड तारा, हमारे घर-की इन "शीतल-दे" में, अपना सब क्रोध छोड़कर, शीतला हो कर, जैसे हमारे घर, द्वार और बाल-बच्चों की रक्षा करने के लिये अपना वरद-हस्त लेकर उपस्थित हैं; और गाँव-गाँव में बने हुए अनन्त मन्दिरों में विराज कर हमारी नित्य-पूजा ग्रहण करनेवाली "जलप-दे", "झलक-दे" हो गयीं हैं। एक लोटा जल और दो चार अक्षत! फूल, नैवेद्य न भी हो, तो यही पर्याप्त है,

क्योंकि अब तो यह अपनी ही—घर परिवार की—माता-मैया जो हो गयीं।

यह उपयुक्त ही है, कि घरेलू शुभ-कार्य में हम इनका सदा स्मरण करें, नाम जपें, कार्य-सिद्धि के हेतु ऋद्धि की देवी की आराधना करें; बाल-बच्चों की हारी-बीमारी में इनके नाम के पैसे उठा धरें, और इनकी कृपा से आरोग्य लाभ होने पर इनकी 'जात', पूजा-अर्चना, करें।

प्रत्येक शुभ कार्य में हमें रोटी-पराँउठी के स्थान पर "पूड़ी" के दर्शन हो जाते हैं। और जहाँ शुभ-कार्य के अनुष्ठान में पूड़ी सेकने के लिये कढ़ाह में घी डाला गया, कि महिलाओं ने सौम्य-स्वर में स्मरण किया —

हरे-हरे बाँस की छबरियाँ हो, दोंना मरुअ के फूल।

अपने घर में कुछ शुभ कार्य प्रारम्भ होने के साथ, जैसे हमारे गीत की यह गृह-महिला, गाँव से बाहर, निर्जन-स्थान-स्थित मन्दिर की ओर, माता-मैया की पूजा के हेतु अकेली चली। कार्य में व्यस्त तो आज दिन भर रहना ही है। प्रातः, पहले, पूजा का कार्य सम्पन्न कर आये। उसने हरे-हरे बाँस की एक छबरिया (डलिया) ली; और उसमें पुष्प—दोंना मरुआ जैसी डखुर गन्ध वाले—आदि लिये, और चल पड़ी गाँव के बाहर के रास्ते पर, निर्जन देवी-मन्दिर की ओर!

परन्तु हमारी माता-मैया तो केवल पाषाण-प्रतिमा नहीं; उन्हें तो मालूम है कि उनकी यह भक्त-महिला अपने घर के उत्सव में आज कितनी व्यस्त रहेगी! और इसके समय का मूल्य समझ कर, क्वाँरी-कन्या का रूप रख कर, मन्दिर की माता-मैया साकार-साक्षात-रूप में, महिला को निर्जन रास्ते के किनारे ही मिल गयीं। लेकिन? ईश्वर को पहचानना भी तो एक समस्या है!! पूजार्थी-महिला न पहचान सकी। पूँछ ही बैठी, उन्ही से—

"कै तुम मालिनि बेटियाँ हो, कै बनजारे की धीय?"

माता-मैया को तो महिला के समय की बचत करनी थी। फ़ौरन ही अपना पूरा परिचय दे दिया। कहा, "भक्त-महिला!"

"ना हम मालिन बेटियाँ हो, ना बनजारे की धीय।
हम तौ बेटी "जलप-दे" हो, जिन सिरजो संसार।
अहो! एक संसार अनंत बढ़ारू, रहसे मारग जाय।
दूध पूत घर सम्पति लोरै, इच्छा करै सोई पावै।"

"मैं मालिन की बेटी नहीं, और न बनजारे की बेटी ही हूँ। मैं तो तुम्हारी अपनी—घर की—माता-मैया हूँ, जलप-दे! जिनका सृजन किया हुआ सारा संसार है। एक ऐसा संसार, जो अनन्तगुना बढ़ता हुआ, अपने आनंद [रहस्] के मार्ग पर निरन्तर आगे चलता जाता है। मेरी पूजा करने से तुम्हारे घर में दूध, पूत और सम्पत्ति हिलोरें लेती है। मेरा नियम है, कि मैं अपने भक्तों की मनोवांछा उसी समय पूरी करती हूँ; और उन्हें उनकी मनचाही वस्तु देती हूँ।"

स्फूर्ति और सिहरन से जड़वत् स्तम्भित हो जाती है पूजा के लिये जाती हुयी यह सरला भक्त-महिला! इष्ट-देवी स्वयं प्रकट हो कर, सामने खड़ीं होकर, कह रही हैं "वरं ब्रूहि"! "वर माँग!! मैं तेरी इच्छा, मनोवांछा, अभी पूर्ण करती हूँ"। यहाँ पूजिका आर्य-नारी की कसौटी उपस्थित हो गयी। क्या माँगे वह? धन, सम्पत्ति, पुत्र? ना···यह तो सभी अपने स्वार्थ की वस्तुयें हैं। आज, जब सब-संसार की सृजन-कारी माता सामने हैं, तो तुच्छ स्वार्थ और सुख का क्या वरदान माँगना? और वह अपने उच्च आदर्श को छू उठी—

"जौ तुम साँची जलप-दे हो, निधनिन कौं धन देउ!
अहो निधनिन कौं धन देउ मेरी माता! चारि[1] भुवन की रानी!!
चारि[1] भुवन नौ-खण्ड बखानें, सुमिरैं खेरे की रानी!"

१—भुवन (लोक) १४ हैं; सात स्वर्ग [भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य] और सात पाताल [अतल, सुतल, वितल,

"आँख उठा कर अपने बनाये संसार को देखो माँ! यदि तुम सचमुच साक्षात जलप-दे हो, तो तुम्हारे पुत्र अन्न-वस्त्र के लिये निर्धन न रहें! मैं अपने लिये नहीं माँगती, तुम अपने निर्धन-पुत्रों को धन दो चारो भुवनों की रानी माँ! ऐ खेरे की रानी! एसी कृपा करो कि तुम्हारी सृष्टि के नवौ खण्डों में कोई निर्धन गृहस्थ अन्न-वस्त्र का कष्ट न पावे। ऐसा करो माता! जिससे चारौ भुवन, नवौ-खण्डों में तुम्हारी कीर्त्ति अक्षय रहे; और सभी लोग हमारे खेरे की रानी का ही स्मरण करते रहें।" कहती गयी महिला—

"जौ तुम साँची जलप-दे हो, अँधरिन नैना देउ;
अहो अँधरिन नैना देउ मेरी माता! कोढ़ कलँक हरि लेउ;
हरहु पाप चन्द्रावलि-बदनी! चारि भुवन की रानी!
चारि भुवन नौ-खण्ड[1] बखानें, सुमिरें खेरे की रानी!!

"यदि तुम सचमुच जलप-दे ही मेरे सामने प्रकट हो कर वरदान देने को प्रस्तुत हो, तो अपने बनाये संसार को देखो माँ! और जहाँ दुःख और कष्ट से तुम्हारे बालक पीड़ित हैं, वहाँ कृपा कर उनका दुःख और कष्ट दूर कर दो। अन्धों को आँखें और दृष्टि दो;

गर्भास्तमत्, महातल, रसातल, और पाताल]। एक मत के अनुसार भुवन तीन [स्वर्ग, मर्त्य और पाताल] हैं। "चारि" के स्थान पर यहाँ "तीनि" हो अथवा "चौदह" हो, तब शुद्ध हो; किन्तु गीत में "चारि" ही कहा जाता है।

१—गीत का "चौ-खण्ड" "नौ-खण्ड" होना चाहिये; क्योंकि भारतवर्ष के नौ भाग हैं; यथा—(१) इन्द्र-द्वीप; (२) कसेरु; (३) ताम्रपर्ण; (४) गभस्तिमान्; (५) नागद्वीप; (६) सौम्य; (७) गन्धर्व; (८) वारुण; एवं (९) जम्बूद्वीप [विष्णु-पुराण, अ०३, श्लोक ६-७]।

कोढ़ियों के अङ्ग से उनका कोढ़ दूर कर, उन्हें पूर्ण स्वस्थ कर दो। ऐसा ही करो हे चन्द्रावलि-बदनी [चन्द्रमा जैसी उज्वल-कान्तिवाली!] तुम्हारी कृपा से तुम्हारे बालकों के सब पाप-दोष शान्त हो जाँय, उनका शरीर पूर्ण आरोग्य लाभ करे। ऐसा करो माँ! जिससे चारौ भुवन के लोग पाप और रोग से मुक्ति पाकर तुम्हारे यश गाते रहें; और हमारे खेरे की रानी, तुम्हारा, स्मरण करते रहें!" और कहती गई महिला—

"जौ तुम साँचीं जलप-दे हो, पूत सपूता देउ;
अहो! पूत अमर करि देउ मेरी माता, चारि भुवन की रानी!!
चारि भुवन नौ-खण्ड बखानें, सुमिरें खेरे की रानी!!"

"यदि तुम सत्य-साक्षात जलप-दे ही कृपा कर मुझ से वरदान माँगने को कह रहीं हो, तो ऐसा करो माँ! कि संसार की सभी स्त्रियाँ पुत्रवती हों; उनके पुत्र सद्गुणी-सुपुत्र हों; और वह स्वस्थ, सफल और दीर्घजीवी हों। ऐसा करो माँ! जिससे नौ-खण्ड, चारो भुवनों में, तुम्हारा यश बढ़े और लोग हमारे खेरे की रानी, तुम्हारा, स्मरण करते रहें।"

वरदान-माँगना और मौन-वरदान-देना तो हो गया। मगर वह पूजा, जिसके लिये महिला घर से निकली थी, अभी तक अनुष्ठित नहीं हुयी। परन्तु "तस पूजा चाहिय जस देउता" वाली बात! "मन्दिर की मूर्त्ति तो मूक रहना जानती है, लोटा-जल और छबरिया-फूल से ही सन्तुष्ट हो जाती। यह तो साक्षात-प्रकट हैं; और इनकी उचित-पूजा का आयोजन मेरे पास कुछ नहीं"! सोच कर अधीर हो गयी महिला—

"वा मलिया सें यों जाइ कहियो, मेरी माता को बाग लगावै।
अहो! भलौ करि बाग लगाइयौ हो, उपजे हैं दाड़िम दाख;
दाड़िम दाख सदा फल लटकैं, छुटकि रहे हैं अनार;

औंधे सूधे परि बल चटकें ; चोखे नागर पान ;
हरौ-भरौ यह दल तुलसा को, मेरी माता कौ बाग रम्यान्यों।"

छबरिया के फूल पर्याप्त नहीं। "कोई जाकर माली से कहो कि मेरी माता-मैया के लिये एक बगीचा लगाये ; अच्छी तरह, भली-प्रकार, ऐसा, कि जिसमें रसभरे अनार और अङ्गूर के पौधे पैदा हों ; और उनकी डालियों में रसीले अनार-अङ्गूर सदा सर्वदा झूमते रहें ! अपनी डालों से पके-पके अनार औंधे गिरे या सीधे, गिरते ही धमक से चटख़ जाँय, इतने रसीले और बड़े हों वह ! उस बाग़ में नागर-बेलि लगाये, जिसमें माता की पूजा के लिये सुन्दर पान पैदा हों। और हरे-हरे तुलसी के विरुला, पौधे, जिनमें सुन्दर तुलसी दल लगे हों। मेरी माता के बाग़ की शोभा अपूर्व होनी चाहिये।" और अधीर होने लगी महिला।

यह तो हुआ छबरिया में रक्खे पुष्पादि के बदले में। और लोटा का पानी भी तो इस पूजा के उपयुक्त नहीं—

"वा ओड़ा सों यों जाइ कहियो, मेरी माता कौ ताल खुदावे ;
भलौ करि ताल खुदाइयौ हो, घिय-गुर पारि बँधावे।
अहो ! पारि बँधाइ सियरि मन-भाई, जातियरे बसि जाँय ;
गउएँ छवाछिन पानीं पीवें, भगत करें असनान ;
बम्मन बरुआ धोती धोवें, भरी सुहागिल न्हाँहि ;
चकई-चकवा केलि करत हैं, मेरी माता को ताल रम्यान्यों।"

"गदहों पर मिट्टी खोद कर बेचने वाले [ओड़ा] से कहो कि वह मेरी माता-मैया के हेतु उसी बगीचे में एक तालाब खोदे। उस तालाब को अच्छी तरह खुदवाया जाय ; और जैसे घी-गुड़ से उसके किनारे [पारि] बँधवा दिये जाँय। ऐसे किनारे बनाये जाँय, कि तालाब का पानी हमेशा मन-भावना ठण्डा रहे [सियरि मनभाई], ताकि जो भक्त माताजी

को जात करने आवें [जातियरे], वह वहाँ भली भाँति रात्रि-बसेरा कर सकें। ऐसा तालाब बने कि उसमें अपनी बछियों के साथ [सवाछिन] गौयें पानी पी कर तृप्त हों, भक्त स्नान करें, स्नातक [बरुआ] और ब्राह्मण स्नान कर धोती भी धो लें ; और बालबच्चे-वाली [भरर या भरी ?] सुहागिल-स्त्रियाँ स्नान करें। उस तालाब पर चकवी-चकवा परस्पर केलि करते रहें, मेरी माता के ताल की शोभा [अपूर्व] होनी-चाहिये।"

अच्छा ! इतना तो महिला अपने ख़र्च से पूरा कर लेगी। बाग़ लग जायगा ; तालाब बन जायगा ; मगर मैया का मन्दिर ? वह तो गाँव के निर्जन किनारे पर पुराना-धुराना पड़ा है ! उसे बनवाना तो महिला की सामर्थ्य के बाहर की बात है। मगर राजा जो है : तमाम प्रजा से कर लेकर, सम्पत्ति का स्वामी बना है, गाँव का राजा। तो फिर ? निश्चित किया महिलाने—

"वा राजा सों यों जाइ कहियो, मेरी माता को कोट उठावे।
भलौ करि कोट उठाइयो हो, सोने को छत्र चढ़ावे।
अहो ! छत्र चढ़ायौ सबहि मन भायौ, छतरी गई है अकास ;
वामें जलप-दे की चन्दन पलकियाँ, लंगुर ढोरें बायु ;
[वामें सीतल-दे की लाल पलिकियाँ, दूल्हा ढोरे बायु।]
दीपक बरें चतुरदिक सोहें, मेरी माता को भवन रम्यान्यों।"

"चलो ! उस राजा से कहो ! वह मेरी माता के मन्दिर की नयी दीवारें [कोट = परकोटा] उठवावे ; अच्छी-तरह मन्दिर बनवा कर माता पर सोने का छत्र चढ़ावे, ऐसा छत्र चढ़ावे जो सब "वाह वाह" कर उठें ; और उस मन्दिर का कलश [छत्र = छतरी] जैसे आकाश से बातें करे। इतना ऊँचा विशाल हो मन्दिर ; जिसमें मेरी माता-मैया की सवारी चन्दन की पालकी में चढ़ कर अन्दर जा सके। मैया के प्रिय-भक्त लंगुर-बीर इन पर ठण्डी-ठण्डी हवा करके चँवर-

व्यजन आदि डुलाते चलें। उस मन्दिर में चतुर्दिक—चारो ओर—दीपक जलें। मेरी माता के भवन की—मन्दिर की—शोभा अनुपम हो।"

और बाग़, ताल और मन्दिर की साकार-कल्पना के उल्लास में महिला भूल गयी, कि उसके घर में आज कुछ काज—उत्सव—है; वह माता-मैया के मन्दिर में पूजा करने जा रही थी, उसका समय बचाने, उसे धन्य और सनाथ करने, के हेतु माता-मैया ने उसके सामने साक्षात प्रकट हो कर उसे दर्शन दिये; खड़ीं रहीं कृपा कर माता-मैया! कि भक्त-महिला अपने लोटे का पवित्र जल, अपने हरे-हरे बाँस की छबरिया के सुन्दर-सुगन्धित-पुष्प चढ़ा कर पूजा का मनचाहा अनुष्ठान वहीं पूर्ण कर ले। किन्तु महिला तो अपनी कल्पना के उल्लास में खोयी हुयी थी। भूल गयी महिला, कि कब वह कुसुम-कोमल बालिका उसकी भक्ति का गंगाजल और श्रद्धा के पुष्प की पूजा ग्रहण कर, मन-ही-मन प्रसन्न-आशीर्वाद देती हुयी चली गयी, अपने उसी पुराने खँडहर मन्दिर में विश्राम करने। भूल गयी सब कुछ वह महिला! उसके सामने तो उसकी कल्पना का बाग़, विचारों का तालाब और हर्ष का राज-मन्दिर खड़ा था, आकाश-छूता, जिसमें अपूर्व श्रृङ्गार धारण किये माता-मैया विराज रहीं थीं; इतना भारी श्रृङ्गार, उन चतुर्दिक जलते हुये दीपों की गरमी में, कि—

"माता कौ विषम उतारियो हो, चढ़त पसीजे अंग!
अहो! अंग पसीजै कप्पड़ भींजै, निरमल भयौ शरीर।"
अहो! बाट सुहाये पंछी बोलें, रिमझिम बरसै मेह।
रिमझिम रिमझिम मेह बरसि गयो, पनियाँ कहाँ समाय;
आधौ जाय पताल पहोंचौ, आधौ सियर दरबार।

"मैया का यह धारण-किया भारी [सोने-चाँदी] का बहु-मूल्य उत्सव-श्रृङ्गार जल्दी उतारो। माता-मैया को गरमी जो लग रही है;

उनके अङ्ग से पसीना निकल रहा है; नींचे पहने हुए सब कपड़े भींग गये; पसीने में जैसे नहा गयीं हो माता; और इस प्रकार उनका श्री-अङ्ग और भी निर्मल हो गया हो।" [परन्तु माता को गरमी क्यों? प्रकृति तो उनकी चेरी है। बात की बात में ठण्डी हवा चलने लगी।] माता के भवन का रास्ता सुहावना हो गया, चारो ओर पक्षियों की बोली सुनायी पड़ने लगी। रिमझिम, रिमझिम, धीरे-धीरे पानी बरसना बढ़ा। पहला झोका तो प्यासी पृथ्वी पी गई; पाताल तक जा पहुँचा पानी; परन्तु अधिक बरसा कहाँ समाये? बढ़ चली भवन की ओर बह पानी की धार; और वह निज-दरबार में मधुर-शीतलता बिखेरने जा पहुँची।

कितने आनन्द का दिवस है—सोचती ही गयी महिला—जब ऐसा बाग़, ताल, मन्दिर, आनन्द-दर्शन आदि प्रस्तुत हैं, तो कौन मन्दभाग्य ऐसा रहेगा, जो इस समय माता की पूजा करने न दौड़े। देखते-देखते मेला लग गया माता-मैया के दरबार में; जात-देने वालों की खचाखच भीड़! और कल्पना के नेत्रों से देखा महिला ने कि उसकी माता का मन्दिर करौली की कैला-देवी का मन्दिर हो गया। वही यात्रियों की भीड़, वही मेला, वही जय-जयकार। और ढूँढ़ा महिला ने, कि हमारे कुल-कुटुम्ब वालों ने माई की साविधि "जात" सम्पूर्ण की या नहीं! सुखी हुयी महिला, अपने कल्पना-नेत्रों से देखकर,—

"धनि धनि हो सब पुरिखा नन्दन, जिनको बढ़ै परिवारु;
तुम चिर जियहु अमुकिचन्द जाती! माता परसि घर आये।
अहो! सियरि परसि घर आये जाती! कहा रे निसानी लाये;
लाड़ु अरे लर संकर लाये, और लाये अखरोट,
हरेअ बाँस के डाले लाये, खेमकुसल घर आये;
खील बतासा गुटगुटियाँ लाये, चवत-चवत घर आये।"

"धन्य हैं इस घर के पितृ-पुरुष" [यहाँ गाने वाली महिलायें गीत में कुटुम्ब के मृत-पुरुषों के नाम लेती हैं] "जिनका परिवार [माता की कृपा से सदा] बढ़े। और तुम सब" [गाने वाली महिलायें यहाँ जीवित कुटुम्बियों के नाम लेती हैं] "चिरंजीव हो, जो माता के भवन-पथ के 'जाती' होकर, माता का स्पर्श-पूजन [परसि] कर के, घर वापस आये। अहो शुभ जाती ! सीतल-दे की पूजा करके घर आते समय क्या-क्या प्रसाद-निशानी लाये हो ? ठीक है, हरे-हरे बाँस के डलों में लड्डू आदि मिठाई, और अखरोट आदि मेवा, लाये हो। चलो, अच्छा किया। बड़ी कृपा हुई मैया की ; जो उस भीड़-भरे मेले-ठेले में से खेम-कुशल पूर्वक लौट कर घर वापस पहुँच गये। और हाँ ! मैया का निज-प्रसाद ; खील-बताशे ; ठीक है, वह तो रास्ते में चबाते ही आये हो।" सत्यनारायण की कथा में पंडित-जी सुनाते हैं, कि देवी देवता का निज-प्रसाद सब काम छोड़ कर, श्रद्धा-पूर्वक, उसी समय खाना चाहिये, सोच कर सन्तुष्ट हुयी महिला।

और उसी प्रकार रास्ते में मिलने वाली वस्तुओं की याद में महिला की कल्पना फैलती गयी ; और अन्त में—

"माता पूजि महादेउ पूजे ; ज्वाला पूजि घर आये ;
पंथवारीं पूजीं [लंगुर पूजे][1] घिय भरि दियला देय ;
ऐपन-वारौ भरि करुआरौ, [खम्भन सतिये लगाये][1] ;
चँदन मिलोये मोतिन के अच्छित, सब जाती घर आये।
फागुन उतरौ होरिय बढ़ायी, पड़िवा चाँचरि खेली।
द्वैज बहिन मिलि तिलक सँजोयो, लोचन दही जमायो ॥"

सन्तुष्ट हो गयी महिला, सोच कर, कि उसके सब परिवार वालों ने, जिनके वह अभी-अभी एक-एक नाम गान कर चुकी है, साविधि माता की "जात" पूरी की ; माता का विधिपूर्वक पूजन किया ; शिव-पूजन

१—यह शब्द गीतावली में नहीं हैं, किन्तु टूट पूरी करने के लिये जोड़ दिये गये हैं।

किया ; पंथवारी[1] देवी का पूजन किया, लङ्गुर-बीर का पूजन किया, ज्वाला-देवी[2] (जलप-दे) का पूजन किया ; फिर घी के दिये जला कर सब की आरती की, करओ (मिट्टी का बरतन) भरा शुद्ध एपन घोर कर [उनसे मन्दिर-स्तम्भों में थापे लगा कर] पूजन किया, चन्दन आदि चढ़ाया और चावल के बदले चन्दन-मिले मोतियों के अक्षत चढ़ाये ; इस प्रकार पूजा सम्पूर्ण कर सब जाती अपने घर वापस आ गये। फागुन शेष हुआ ; होली जलायी गयी ; सबने मिल कर गा-बजा कर धुलेड़ी [चाँचरि] खेली। और माता-के-धाम के "जातियों" की बहिने, अगले दिन, भैया-दूज को, ऐसे भक्त-भाइयों से मिलने के लिये ; उनके हेतु भाई-दूज का रक्षा-तिलक सँजोये, जैसे अपनी आँखो में आशा व प्रतीक्षा का दही जमा कर, प्रसन्नता-पूर्वक मिल रहीं हैं।

"लोचन दही जँमायो" सी सुन्दर उपमा क्या विश्व-साहित्य में अन्यत्र मिलती है ? दही के जमने के लिये आवश्यक है कि वह घण्टों बिना हिले-डुले एकसा स्थिर रहे। "लोचन दही जमायो" में यही सुन्दरता है, कि भाई की प्रतीक्षा में बहिन की आँखे बिना-पलक-गिराये घण्टों एक-सी स्थिर रही हैं। "हरे हरे बाँस की छबरियाँ" हमारा शुभ, सदा-हरा-भरा, भरा-पूरा, जातीय-संगीत है। प्रत्येक शुभकार्य में, एवं करौली-माई की "जात" को जाने-वालों के घरों में, सर्व-प्रथम "हरे-हरे बाँस की छबरियाँ" ही सुनायी पड़ता है।

❋

१—पंथवारी-देवी का आगरे में मन्दिर है ; और करौली की कैला-देवी की यावा (जात) को जाने-वाले पथिक, पहले पंथवारी-देवी पूज कर तब करौली जाते हैं।

२—ज्वाला-देवी से सम्भवत: कैला-माई की "जात" (यावा) का मतलब है। भदावर और राजस्थान में कैला-माई की जात सभी मनोरथों की पूर्ण-कर्त्री मानी जाती है। यह "जात" चैत की नौदेवियों में दी जाती हैं।

२

त्रिकाल मंगलगान

विवाह-कार्य में माँगर (मांगल्य) अनुष्ठित होने के दिन से तेल चढ़ने के दिन तक, त्रिकाल-संध्या की भाँति, महिलायें प्रातः, दो-पहर व सन्ध्या को, त्रिकाल मङ्गल-गान करतीं हैं। उनमें से कुछ निम्न-लिखित है :—

* कुकुरा *

प्रातः, ऊषा की प्रथम किरण के साथ, यह मंगल-गान किया जाता है ; और चूँकि वह समय कुक्कुट (मुरगा) बोलने का है, इस लिये इस गान का विषय और नाम ही "कुकुरा" हो गया। ब्रह्म-महूर्त्त, इष्टदेव के ध्यान-अर्चना का समय है। ब्रजवासी होने के नाते भगवान-कृष्ण से चतुर्वेदियों का सखा-सम्बन्ध है। और प्रातः इनके जन्म-गान से अधिक मङ्गल-कारी और हो क्या सकता है ? अतः—

भरे रे भादों घन गरजियो, निशि-अँधियारी है राति,
देव चतुर्भुज अवतरे ! जल-थल बूँद सुहावनी।
भादों कीं पहली अष्टमी रे, रोहिणी नछत, बुधवार,
देखौ है रूप सरूप [हरि] ! हाथ पद्म, मुख सरसुती ;
"कान्ह गोकुल लै जाउ ! वाचा री कीन्हों मोसों महरि ने।"

अर्थात्, भरे भादों के मेघ घुमड़ और गरज रहे हैं, घोर-अँधेरी रात साँय-साँय कर रही है ; जल-थल में रिमझिम रिमझिम सुहावनी वर्षा की सुखद बूँदें पड़ रहीं हैं ; भादों की पहली [कृष्ण-पक्ष की, जैसे इसी जन्म के कारण पक्ष भी कृष्ण-पक्ष हो गया] अष्टमी है, बुधवार और रोहिणी नक्षत्र है ; ऐसे सुखद-समय में चतुर्भुज विष्णु-भगवान ने अवतार लिया। माता देवकी ने वह अति-सुंदर शंख-चक्र-गदा-पद्म धारी चतुर्भुज विष्णु-रूप देखा [और देखा कि वही रूप उनके बालक के रूप में परिणत हो गया।] माता देवकी के मुख पर जैसे सरस्वती ने बैठ कर वसुदेव-जी से कहलाया ; "आर्यपुत्र ! इस बालक को [क्रूर कंस के हाथों मृत्यु-से बचाने के हेतु] गोकुल ले जाओ ! यशोदा-मेहरि के यहाँ ; उन्होने मुझे वचन दिया है, वही इस बालक की रक्षा करेंगी।"

कौरेनु सूते हैं पौरिया, नगर सूतौ कोतवाल ;
वसुदेव बालक लै चले, जमुना उठी घहराय ;
"हूँ" को शबद बालक कियो ; अरु जमुना गई ठहराय ;
वसुदेव पार उतरि गये, [पहुँचे हैं नँद-घर धाय ;]
वसुदेव बालक सौंपियो हो, कन्या लई है उठाय !

देवकी की बात सुन कर वसुदेव सिहर उठे। देखा चारो ओर ! [कारागार के उन्मुक्त द्वार के] किनारे, कोने से लगे पौरि-रक्षक, द्वारपाल, सो रहे है ; बाहर पहरेदारों का मुखिया, नगर-कोतवाल, भी सोया है। वसुदेव जी बालक को लेकर चले, यमुना, घुमड़ कर, घहराने लगी। परन्तु जैसे बालक ने हुंकार शब्द किया हो ; [ऐसा शब्द हुआ] और यमुना जैसे ठहरा गयी। वसुदेव जी पार हो गये और [जल्दी से गोकुल में नन्द-घर पहुँच गये।] वहाँ भी सर्वत्र नींद का वही हाल ; और वसुदेव जी ने यशोदा जी के पार्श्व में बालक सुला दिया और उनकी नवजात-शिशु-कन्या को उठा कर वह

प्रिया देवकी के पास चले आये। इस प्रकार बालक-बदल होने पर ही—

पौरिन जागे हैं पौरिया, नगर जग्यो कोतवाल।
"उठहु नन्द-जू! भोरु भयो! उठि किन दच्छिना देउ;
भाटन चटक पिछौरिया; पुरोहित कपिला गाय;
सुभद्रा को अगरु गढ़ाइयौ, [और दाऊ कौं नूतन साज][1]!"

[सब काम पूरा होने के बाद] कारागार के पौरि-रक्षक जागे; और बाहर पहरेदारों का मुखिया कोतवाल जागा। उधर गोकुल में जगार हुयी और लोग दौड़ कर नन्द-बाबा को सुसमाचार दे कर जगाने लगे; "बाबा! बाबा!! उठो!!! सुभद्रा और बलदाऊ के भाई का जन्म हुआ है; खूब दान दक्षिणा दो; बन्दी-मागध-भाटों को चटक-रँगी बहुमूल्य पिछौरीं दो; पुरोहित-ब्राह्मणों को कपिला गउयें दान करो; सुभद्रा के लिये आभूषण गढ़ाओ; बलदाऊ के लिये नई पोशाक! यशोदा मेहरि के सुन्दर पुत्र जन्मा है।"

"छँठये दिना छठिया भई; दसयें भयो दष्ठौन;
मास द्यौस के प्रभु भये, झूलत पलना री माँझ।
प्रभु के सबद सुनु कूकरा॥
बरस दिना के प्रभु जब भये, दौरे रसुइन जाय;
हाँड़िन कों चुरकुट कियौ, घिरत दिये ढुरकाय।
प्रभुके पहर बोलौ कूकरा॥
तीन बरस के प्रभु जब भये, दौरे पढ़ैरिनु जाय;
पारिन को चुरकुट कियौ, कलिस दिये ढुरकाय।
प्रभु के वचन सुनि कूकरा॥
चारि बरस के हरि जब भये; खेलैं री गोप दुआर;

१, माथुर-गीतावली में यह शब्द नहीं है, किन्तु क्रम और छन्द के हिसाब से यह शब्द लिख दिये गये हैं।

[खूँटन सों बछरा छुटै, गैयन रहे हैं चुखाय।][1]
प्रभु के वचन सुनि कूकरा॥
पाँच बरस के प्रभु जब भये, पढ़न चले चटसार;
चटियन सो किरकिच कियौ, पाड़े रे दये हैं रुठाय।
प्रभु के वचन सुनि कूकरा॥
सात बरस के प्रभु जब भये, काली कौं नाथौ है जाय;
काली को मर्दनु कियौ, [गेंद निकारी है साथ][1]
प्रभु के वचन सुनि कूकरा॥"

और दिन-दिन, बरस-बरस, की बाल-लीला, जिसे देख कर गोकुल के नर और नारी कभी तृप्त न हुये; सूरदास जैसे श्रेष्ठ कवि-पुङ्गव जिसके वर्णन में प्रेम-रस-सागर बहा गये; उसी मीठी बाल-लीला का प्रातः-स्मरण, इस अपवित्र-वस्तु-भक्षी कुक्कुट को नसीब हो गया, तो इसमें गत-आलस्य ब्रह्म-बेला-जागरण ही कारण-भूत कहा जा सकता है। जैसे कुक्कुट प्रभु की बाल-लीला के वचनों को ध्यान से सुन ही रहा है। छठवें दिन छठी का, और दसवें दिन दष्ठौन का अनुष्ठान, एक-मास के शिशु का पालना-झूलन आदि सभी स्मरणीय है। और एक साल के वयस्क कृष्ण रसोई में जाकर भँड़ेरी का भुरकुस कर देते हैं,। यहलो! सब घी फैल गया। अब तो लाला घुटनों चलते हैं न; और हाथ तो रहते हो नहीं; इधर को चीज़ उधर, उधर की इधर। तीन साल के वयस्क कृष्ण ऊँची चीज़ उठाने के लिये पैरों उचक भी सकते हैं। पढ़ैरी पर उचक कर उसकी कोर-किनार ही गिरा दी; और पानी के बरतन पढ़ैरी के ऊपर से भड़ाभड़ नीचे। परन्तु पाँच बरस के कृष्ण को तो पाठशाला जाना पड़ा। तो इससे क्या हुआ? पाठशाला के अन्य लड़कों से रोज़ किचकिच या खेल; पढ़ाने-वाले पण्डित ही रूठ कर पाठशाला छोड़ बैठे। सभी

१—यह शब्द छन्द-भङ्ग बचाने के हेतु जोड़ दिये हैं।

बालक प्रसन्न, दौड़ चले घर ; आज की छुट्टी ! और खेल-कूद ! पर सात बरस के कृष्ण से जब खेल-खेल में गेंद यमुना में गिर गयी, और गेंद-मालिक बालक ने अपनी गेंद लाने का हठ किया ; तो कूद पड़े कृष्ण काली-दह में, और कालिय-नाग को निर्विष कर नाथ लिया।" [और महिलाएँ तन्मय हो कर अपने कूकरा को कृष्ण-लीला के "बचन" सुना रही हैं]।

> "बारह बरस के प्रभु जब भये, ब्याहीं रुकमिनि नारि ;
> नये नये बाँस कटाइ कें, ऊँची रे सीकुर छाय ;
> पोढ़े श्री-कृष्ण भोगिया, तुमरे हैं प्रदुमन के बाप ;
> बहुअ रुकमिनी को बालओं ॥
> पोढ़े वे सूरज सत्रु सेन भोगिया, अनुद कनुद सुग्रीव के बाप ;
> बहुअ सावित्री रोहिन-दे को बालओं ।
> पौढ़े वे महादेव भोगिया, तुमरे गनपति के बाप ;
> बहुअ गवरि-दे को बालओं ॥
> पोढ़े वे रामचन्द्र भोगिया, तुमरे लव-कुश के बाप ;
> बहुअ सीता-दे को बालओं ॥"

और वयः-प्राप्ति के साथ जैसे सभी का विवाह अनुष्ठित होता है ; जैसे सूरज-शत्रु सेन का किशोरी सावित्री व रोहिणी के साथ विवाह अनुष्ठित हुआ और उनसे अनुद, कनुद व सुग्रीव सन्तान-प्राप्ति हुयी ; जैसे श्री महादेव का किशोरी-गौरी के साथ विवाह हुआ और उनसे गणपति-बालक की प्राप्ति हुयी ; जैसे भगवान रामचन्द्र का बालिका सीता से विवाह हुआ और फिर उनसे लव व कुश बालकों का जन्म हुआ ; इसी प्रकार, सुनले कूकरा और कूकरी ! बारह बरस के कृष्ण का रुकमिनी-रानी से विवाह हुआ था ; तब नये-नये बाँस कटा कर ऊँची अटरिया छवाई गयी थी ; और उसी में दम्पति रात्रि-वास करते थे। फिर उनके भी प्रद्युम्न नामक बालक का जन्म हुआ था।

> "कुकुरारी तोहि हनवाइहों, लै गङ्गाजल नीर ।
> कुकुरारी तोहि चुनवाइहों, चोखी दाख मँगाय ।
> कुकुरारी तोहि बँधाइहों, रेशम डोरि मँगाय।
> प्रभु के पहर बोलौ कूकरा ॥

हों अपवित्र कुक्कट-कुक्कटी भले ही ! जिसने भगवान श्री-कृष्ण का चरित्र और नाम सुन लिया, वह भला अपवित्र कैसे रहा ? फिर भी लोक-दिखावे के लिये "हे कुक्कुटी ! मैं तुझे गङ्गाजल से नहलाऊँगी ; बड़ी-बड़ी, सुन्दर, दाखें मँगाकर तुझे चुगाँऊगी ; रेशम की डोरी में बाँध कर अपने पास रक्खूँगी, क्योंकि तू रोज़ मेरे प्रभु के प्रहर में, रात्रि के शेष प्रहर में, ब्रह्म-मुहूर्त्त में बोलती है"। मगर नहीं...........दैया रे ! यह तैंने क्या किया ?

> "कुकुरारी तोहि मरवाइहों, लै तुलसी की डार ।
>
> * * *
>
> कूकरा सों साँठि बौले रैनि बैनि सुबिजनीं !
> अरे पिसाची छाँड़ि हाँसी, कृष्ण उनींदे पंछी तें कियो ।"

"मैं तुझे पिटवाऊँगी ! पर तुलसी-बिरुला की डाल से, क्योंकि तू कृष्ण-लीला सुन कर पवित्र हो गयी है। पर है तू बड़ी बेशरम ! अपने कूकरा से साँठि-गाँठि करके रात को ही "कुकुड़ूँ-कूँ" में प्रेम-कथा करती है। मगर पिशाची ! छोड़ यह मसखरी, तेरी आवाज़ से मेरे कृष्ण की कच्ची नींद टूट गयी। अरी दुष्ट पक्षी !"

रस की सरिता है या सागर ? अपवित्र मुरग़ी-मुरग़े के साथ प्रातः कृष्ण-लीला की यह इष्ट-वार्त्ता ! घर-द्वार सर्वत्र जैसे पुनीत-पवित्र हो गया।

* वृन्दावन कौ कूकरा *

बालक कृष्ण को बड़े भोर ही कच्ची नींद जगा देना कुकरारी का अक्षम्य अपराध था, परन्तु किसी बड़भागिनी के घर चैन से सो रहे, युवक कृष्ण को निद्राभंग के प्रयत्न के हेतु "वृन्दावन के कूकरा" से गोप-बालाओं का अनुरोध है ? सरस, साहित्यक और भाव-मय—

श्री वृन्दावन के कूकरा, घनश्यामें जाय जगाइयौ ॥
गयो घनश्याम जगाय कें, सब गोपिन मन कूर रे ।
पाँय भरत के घुँघुरू जाकें, माथे कमल कौ फूल रे ॥
पंछी तोसों कहति हों, करि सब कौ उपकार रे ।
रंग-महल तू साँवरे के, जैओ फाँदि कगार रे ॥
एक समय हरि यों जगे, पंछी गयौ जगाय रे ।
केश लच पची छबि बनी, शोभा बरनी न जाय रे ॥
उडगन तारे डगमगे, दीपक मद्धिम जाग रे ।
जाके गृह मोहन बसे, सो बिरहुलि बड़भाग रे ॥
बालापन की टेव है, चोरी कौ अति चाव रे ।
कहउ तौ कहत न आवये, जानि न जात सुभाव रे ॥
इत उत चितउत जात हौ, कहा चितऔ चित-चोर रे ।
शरद् निशा ऊपर, भयौ राधे मन बैराग रे ॥ वृन्दावन के० ॥

* कोयल *

प्रातः यदि कुक्कुट-पक्षी के बोलने का समय है, तो दो-पहर आम्रकुंज से कोकिल की पंचम-स्वर में "कुहू" "कुहू" पुकार कितने कवियों को क्या-क्या आनन्द-व्यथा देती रही है, जिससे संसार का साहित्य भरा पड़ा है। माँगर से तेल के दिन तक नित्य दो-पहर

को हमारी महिलायें "कोयल" की याद में पंचम-स्वर में ही गीत उठातीं हैं। गीत में महिला की, अपने पिछवारे के अगरु-वृक्ष पर बैठी, कोयल से बात-चीत है।

मेरे पिछवारें अगरु कौ री बिरुला, ता चढ़ि कोयल बोलियो।

मेरे घर के पिछवार आम्रकुंज नहीं, अगर का एक छोटा सा बिरुला (पौधा) है, पर आज उसी पर चढ़ कर कोयल बोल रही है।

"छाँड़हु कोयल मेरो पिछवारो, लेहु नँदन-वन वासु हो;
उड़ि किन बैठो अम्ब की डरियाँ, कुहुक-कुहुक रस लेउ हो।"

"कोयल-रानी ! तुम मेरा पिछवार छोड़ो ! कहीं नन्दन-वन में वास करो ! उड़ जा कर कहीं मंजरी-से-लदी आम की डाली पर क्यों नहीं बैठतीं, जहाँ "कुहू" "कुहू" के साथ तुम्हे रस भी प्राप्त हो ?" परन्तु कोयल तो वहीं जमी बैठी है। "अच्छा, तो बताओ बहिन !"

"कौन स कोयल रँगई वे बुवई, कौन स के रँग राँचियो ?
कौन स कोयल बिरियाँ खवाईं, रचइ कोयल के दन्त हो ?"

"तुम्हें इस सुन्दर चमकीले श्याम रँग में किसने रँगा, और तुम स्वयं किसके प्रेम-रंग में प्रसन्न, शोभा पा रहीं हो। और यह तुम्हारी सुन्दर लाल चोंच ! किसने तुम्हें जैसे पान के बीड़े खिला दिये हैं जो आज इस तरह तुम्हारे दाँत रचे हैं ?"

और कोयल उत्तर देती है :—

"दशरथ कोयल रँगई वे बुवई, रामचन्द्र के रँग राँचियो ।
दुलहा अमुकि चन्द[1] बिरियाँ खवाईं, रचइ कोयल के दन्त हो ॥"

"सुनो बहिन ! अपने बालक राम को प्रसन्न करने के हेतु दशरथ-जी ने मुझे यह सुन्दर श्याम रंग में रँगा दिया था ; और तब से मैं उस राम-प्रेम के रँग में रँगी मस्त हूँ। मगर पान के बीड़े मुझे तुम्हारे अमुकिचन्द, जो दूलह बनने जा रहे हैं, ने ही खवाये हैं, जिससे मेरे दाँत रच कर रह गये हैं"।

१—कन्या पक्ष में यहाँ "दुलहा उढ़रि-पुत" कहा जाता है।

सुन कर प्रसन्न होती है महिला। और पूँछती है,—

"कौन स पायौ है शहर इटायौ, कौन स पाई गुजरात हो ?
कौन स पायी है रानी सी दुलहिन, तपिबे कों राम-रसोई हो?"

"तो सुन लो"—कोयल तो उड़-उड़ कर सब जानती-देखती है न ! बता देती है चट से—

"लछिमन पायौ है शहर इटायौ, भरत पायी गुजरात हो।
रामचन्द्र[2] पायी है रानी सी दुलहिन, तपिबे कों राम-रसोई हो।
सीतल-दे[3] पायौ है राजा सो दुलहा, करिबे कचैरी दरबार हो।"

फ़िर पूँछ बैठी चिन्तित महिला—

"मेरी दुलहिया भूँखी रे प्यासी, को रे कलेवा देइ हो ?"

"पर इस छोटी सी कन्या-दुलहिन को तो बड़े-सवेरे ही भूख लगती है। इसकी माँ ने लाढ़ में रोज़ सवेरे-सवेरे कलेवा दे कर इसको ऐसी आदत कर दी है।"

और तत्काल उत्तर भी मिल गया—

मायल ह्व सों सासु मयाछुर, लाड़ू कलेवा देइ हो।
सारी दुलहा की नैन आँजने, नँहछत काजरु देइ हो।

"पर इससे क्या हुआ ? वर-गृह में इसे सास तो मिलेगी ; वह तो इसकी माँ से भी अधिक लाढ़-करने-वाली [मयाछुर] है ; सवेरे-सवेरे इसे कलेवे में लड्डू खिलायेगी। और उधर वर की साली (होने वाली पत्नी की बहिन) भी कैसी रसिक है, जो आँखों में काजर लगाने के बहाने दुलहा के गाल पर नखच्छत (नाख़ून का चिन्ह, एक-प्रेम क्रिया) ही लगा देती है।"

२—वर के घर यहाँ वर का नाम लिया जाता है।

३—कन्या के घर यहाँ "कन्या" का नाम लिया जाता है।

❋ साँझोली ❋

दो कमनीय कुलवधू की जोड़ी ; सूर्य-भगवान का अस्ताचल पयान ; घर के साधारण कार्य, जैसे दिया जलाना, भंडार सम्हालना, कुएँ से पानी भरना, भगवान के भोग के लिये रसोई प्रस्तुत करना, आदि ; इन्ही दैनिक साधारण कार्यों की पृष्ठभूमि लेकर, संध्या को सरस सुन्दर बनाते हुये, "साँझोली" गीत "ओरी रे जोरी" से आरम्भ होता है—

ओरी रे जोरी[1] द्वै साँझोली, जोरें[2] रे दियलु[3] उजेरि।
तौ अहिलौनी[4] साँझोली[5]॥
ओरी रे जोरी[1] द्वै ओवरीं,[6] जोरें[7] सँचइ[8] भँडार ॥तौ०॥
ओरी रे जोरी द्वै कूअटीं,[9] जौंरे[10] रे भरइ कहार ॥तौ०॥
ओरी रे जोरी द्वै कुल-वधू, जौंरे[10] रे करइँ रसोइ ॥तौ०॥

और फिर यह शाम, ओवरी, कुअटीं और कुल-वधू की शोभा दिखा कर, गीत द्वापर-युग की उसी शुभ कृष्ण-यशोदा-झाँकी पर आ जाता है ; पवित्र पुण्यद स्मरण-ध्यान !

घोर्‌यौ मेरी बहुअ जसोमति लीपनों,
जौंरे[10] श्री कृष्ण के अहलाद ॥तौ०॥
देउ न बेटी सुभद्रा दीवला,[3]
जोरें[10] रे बड़े प्यौसार[11] ॥तौ०॥

परन्तु संध्या की शोभा का वर्णन प्रिय-मिलन के बिना अवश्य अधूरा और रस-विहीन रह जाता—

१—जोड़ी, दो। २—जलावें। ३—दीपक। ४—सुन्दर दिखायी देने वाली। ५—शाम। ६—कोठरीं, कमरे। ७—जोड़ना, इकट्ठा करना। ८—संचित करना। ९—छोटे कुआ। १०—पास-पास। ११—पिता का घर।

साँझुलिया होइ रम्यानी,[१]
गैया-बच्छा[२] जो मिलें।
साँझुलिया होइ रम्यानी[१]
मेहरी[३] मुनसा[४] जो मिलें।
साँझुलिया होइ रम्यानी,[१]
मइया[५] पूत[६] जो मिलें ॥तौ०॥

और फिर सूर्य-देवता का स्मरण, जो सुबह-शाम के कर्त्ता, कारण-भूत, हैं। और सुबह-शाम के प्रथम कार्य ! सुबह पहले घर लीपा जाता है, और शाम को पहले दीपक उजेरा जाता है—

उअतइ[७] घोर्‌यो[८] लीपनों[९] ;
अथउत[१०] दियल उजेरि ॥तौ०॥

❋

* वायस-राज ! *

पक्षियों में वायस-राज, कौवा, सगुन-सूचना के लिये सर्व-मान्य है। विवाह-गृह में जब कोई मेहमान आशान्वित होता है, अथवा आता है, महिलायें कौवे की याद करतीं हैं—

उड़ि उड़ि रे मेरे वायस-रा ! मेरें को-को न्योंते आवे रे ?
दल-परिवार सों, लोग कुटुम-सँग, साजन न्योंते आये रे।
गाड़ीं, डुलियन, लाल पलिकियन, अमुकिचन्द्र / अमुक-कुँअरि न्योते आये / आयीं रे।

❋

१—शोभित, सुन्दर। २—गाय और बछड़ा। ३—पत्नी। ४—पति। ५—माता। ६—पुत्र। ७—उदय होते ही। ८—जल मिला कर प्रस्तुत किया। ९—गोबर व पीली मिट्टी से प्रस्तुत लीपने का मिश्रण। १०—अस्त होते ही।

३

कन्या के घर—ठिक के गोत

* चोला *

जैसे शुभ-कार्य के हेतु चौक पर बैठते समय "सीया-दोआ" गान होता है, वैसे ही, कन्या के हाथ लगुन धरने के हेतु चौक पर बैठते समय महिलायें "चोला" गातीं है :—

"मेरें री चोला ढीला, धुर कश्मीर सें आयौ।
मेरी पाँच बरस की लड़िलरी, चोला जा ऊपर वारों।"

"देखो तो ! कैसा चोला (ऊपर पहनने का वस्त्र) मँगाया है बाबा ने। मँगाया तो दूर काश्मीर से है, मगर बिना-नाप का, ढीला-ढाला। कहाँ मेरी छोटी सी पाँच वर्ष की, [लाढ़ में उम्र भी छोटी ही दीखती है] लाड़ली बेटी ! और कहाँ यह बड़ा-सा ढीला-ढाला चोला। निछावर कर दूँ अपनी बेटी पर यह चोला !"

बाबा ! देउ वारी अति पियारी, रूप-गुन की आगरी ;
पहिराय चोला चौक बैठी, चिर जिअहु लड़िलरी के आजुला।
तेरे आजुल ये हो चिर जीवौ, जिन यह द्रव्य सँजोयो।
जिन द्रव्य सँजोयो लोक लीनें, दिये हैं मुहरनि दायजे।
रनियाँ तिलोचन दुलहु आवे, चिर जिअहु लडिलरी के बाबुला।

❋

* लगुन *

और फिर गणपति-पूजन, कलश-पूजन आदि के पश्चात्, पंडित-जी "लगुन" कन्या के हाथ धरते हैं। महिलाओं का मंगल-गान है—

बोलि बाबा! सोधि[1] पण्डित, सोध-लगुन[2] लिखाउ रे।
अरे हाँ! बाबुला दिन धराउ[3] रे॥
दूब, अच्छित, हरद-पियरी, सोने-सूत[4] मढ़ाउ[5] रे।
अरे हाँ! बाबुला दिन धराउ रे॥
भात के परकोट[6] बाबा, मूँगनि उठे हैं पहाड़ रे॥बाबा०॥
सिकरन[7] शरबत नदियाँ बहति हैं, घिरत बहे हैं पनारे॥बाबा०॥

और जहाँ बाबा ने बारात के सत्कार का ऐसा सुप्रबन्ध किया, वहाँ यह छोटी-वय की कन्या-वधू, जो अभी गुड़ियों का खेल खेलने के वय की है परन्तु व्याह-कर श्वसुर-गृह जा रही है, गाँव से बाहर के रास्ते पर अपने पड़ौसी चरवाहे-पुत्र को खेलते देखती है; और उस चरवाहे-पुत्र के द्वारा अपनी उन सहेलियों को सन्देश भेजती है, जो अभी-अभी मंडप-स्थान में उसके साथ थीं; और अब उससे बिछुड़ गयीं—

"गइयन के चरवैया भैया! मो घर एक सन्देश रे।
गुड़िया तो छोड़ी मैंने उहरे बरुठवा सहेलरी मड़ये माँझ रे।
गुड़िया तो मेरी गङ्ग सिरइयौ, सहेली ससुरें जाय रे॥"

"ऐ गाय-चराने वाले भाई! मेरे घर जाकर मेरा एक संदेश कह देना, मेरी उन सहेलियों से, जो मंडप-स्थान में अभी-अभी मेरे साथ थीं।

१—ज्योतिष द्वारा शोध कर। २—शोध-पत्र, लग्न-पत्रिका। ३—विवाह के हेतु दिन धरना। ४—स्वर्ण-सूत्र, कलाया, मौली। ५—चारो तरफ़ से लपेटो। ६—परकोटा, बाहरी दीवाल। ७—शिकरन, श्री-खण्ड, दही से प्रस्तुत।

कहना कि खेलने-वाली अपनी गुड़िया मैंने उधर की बैठक [बरुठवा] में छोड़ दी है। मेरी गुड़िया को गङ्गाजी में सिरा देना। बालापन और गुड़ियों-का-खेल अब सदा के लिये पीछे छूट गया। कह देना! कि तुम्हारी सहेली तो अब ससुरे जा रही है।"

गीत में भी विदा की करुणा जैसे बरबस आँखों से आँसू खींच लाती है।

* गहिलौ *

और कन्या के हाथ लगुन धरने की क्रिया और पूजन साविधि सम्पन्न करा कर, पंडित-जी ने सीधी भाषा में कहा "बिटिया! जि लगुन नाऊ के हाथ में दै देउ; चल रे ललमनियाँ…लै…"। इस समय महिलाओं का मङ्गल-गान है, "गहिलौ", जो लढ़गहिलौ शब्द का ही शेषांश है, जिसमें दुलहा को बुलाने की, और दुलहा के यहाँ आने में कितनी कठिनाई, और उनके हल, आदि की प्रेम-वार्त्ता है—

तू तौ गहिलौ[1] रे आवे रे! महुँ-रावरि[2] के राऊँ[3]।
हों तौ क्यों करि आऊँ रे, गोरीधन[4] धूप घनेरी[5]?
तोकों[6] बिचबिच छतिरु[7] तनाऊँ रे, उढ़रिपुत[8] आउ गहिलौ।
हों तौ क्यों करि आऊँ रे, नवल-धन[4] भूख घनेरी?
तो कों बिच-बिच लड़ुअ छिकाऊँ रे, उढ़रिपुत आउ गहिलौ।

१—लढ़-गहिलौ, लढ़ैता, प्रिय। २—हम लोगों के। ३—रौआँ, पास। ४—प्रिये। ५—अधिक। ६—तेरे हेतु, तेरे लिये। ७—छत्र, छाता। ८—उढ़रि=पुंश्चली (छिनाल) स्त्री का पुत्र [यथा "मुये चाम पर चाम कटावे, भुइँ सकरी माँ सोवे। घाघ कहें ये तीनों भकुआ, उढ़रि गये पर रोवे"]। कन्या-गृह में भाँवरि-से पहले दुलहा का नाम न लेकर उसे "उढ़रि-पुत" कहा जाता है।

हों तौ क्यों करि आऊँ रे, सरस-धन प्यास घनेरी ?
तोकों बिच-बिच कुअट खुदाऊँ रे, उढ़रिपुत आउ गहिलौ ।
हों तौ क्यों करि आऊँ रे, गोरीधन नींद घनेरी ?
तोकों बिच-बिच पलँग बिछाऊँ रे, उढ़रिपुत आउ गहिलौ ।

और इस-प्रकार प्रेम-आह्वान पर, वर द्वारा आने में कठिनाइयों के वर्णन और उनके उचित उत्तर-आश्वासन पाने के बाद, कुछ दूर पर आते हुये चार लोगों को गौर से देखते हुये सहेलियाँ बातें करतीं हैं—

वे तौ आवत है चारि जने, उपरारे की गैल[१] ।
आगिलरौ नाऊ, वातें बारी, अरु पाछिलरो जेठ[२] ।
वह तो माँझिलरो[३] सु-वर, चेरो लड़िलरी को !
वह सोनो-रूपौ[४] विसावे,[५] लड़िलरी को [दुलहा] मोलु न जाने !
वह मोती-चुन्नी[६] विसावे, उढ़रि-पुत दुलहा मोलु न जाने !
वह सारी-चुनरी विसावे, उढ़रिपुत दुलहा मोलु न जाने !

और अब यह निश्चित हो गया कि "माँझिलरौ" वही है, जिसके लिये प्रेमाकर्षण हो रहा था : श्रीवर– और अब वर द्वार पर आकर उपस्थित है—

तुम तौ रानिन के राइया,[७] अमुकिचन्द मोल करौ जे ।
बु तो सोन-दे के घोड़िला पलानों,[८] वर ऊब्यौ[९] है द्वार !
बु तो ए लचके[१०] कपड़े पहिरें, वर ऊब्यौ है द्वार !

१—ऊपर का रास्ता, उठनियाँ-धसनियाँ। २—दूलह का बड़ा भाई, ज्येष्ठ। ३—उनके बीच में चलने-वाला। ४—सोना-चाँदी। ५—विसहना = मोल लगाना, दाम लगाना, क्रय करने के हेतु। ६—जवाहरात की वस्तुयें। ७—राजा। ८—घोड़े पर जीन कस कर प्रस्तुत करना। ९—खड़ा। १०—ज़री के काम किये कपड़े पहन कर।

परन्तु यह तो आनन्द की बात है। प्रेमाकर्षण और बुलावा सफल हुआ। अब—

वे सोने के कलश धरे, धन बैठेंगीं चौक।
वे दिल्ली की चुनरी पहिरि, धन बैठेंगीं चौक।

और वर अपने स्वागत पर प्रसन्न हो कर श्वसुर-जी से कहता है—

"हों जानों चेरो[१] तुम्हारौ, अमुकि चन्द बाँदो[१] तुम्हारौ !
मोहि आपनरौ शहर दिखावहु, मेरो जिय बहुत हुलास !
मोहि आपनरी धियर[२] बिआवहु,[३] मेरी उत्तम जाति ।"

और विवाह की प्रार्थना ले कर वर की माँ, सम्बंधिन, कन्या के पिता के दरवाज़े पर आ कर हठ करने लगी—पसर गयी।

वह तो नइ गई अम्ब अँगुलियाँ, मुरकि गई डार।
वह पसरि गई दारी[४] अमुकिया,[५] अमुकि चन्द[६] द्वार ॥
तू तो उठइ न दारी....समधिन उठि घर जाय।
तो कौं भरत के बिछुआ मँगाऊँ, दारी समधिन पहरि घर जाय ॥
तो कौं दिल्ली की चुनरी मँगाऊँ, दारी समधिन की गाँठ-जुड़ाऊँ।
तो कौं मथुरा के पेड़ा मँगाऊँ, दारी समधिन की गोद भराऊँ ॥
तो कौं कामा के चूरे मँगाऊँ, दारी समधिन की बाँह भराऊँ।
तो कौं रपरी[७] कौ मुगल बुलाऊँ, दारी समधिन की भगत कराऊँ।

[नोट—"कन्या दान" गीत, उपयुक्त अवसर पर, विवाह प्रकरण में द्रष्टव्य]

१—सेवक। २—कन्या। ३—व्याह दीजिये। ४—कुलटा [यथा, "आपनौ पति छाँड़ि औरन सों रति, ज्यों दारन में दारी"—स्वामी हरिदास]। ५—यहाँ वर की माता आदि का नाम लिया जाता है। ६—वर के पिता अथवा बड़े का नाम। ७—शिकोहाबाद-नारंगीबाह सड़क पर मुसलमानों का ग्राम, रपड़ी।

* माँगर *

आज माँगर [माँगल्य] का ठिक है। मुहल्ले-टोले की स्त्रियाँ इकट्ठी होकर कन्या के साथ अपनी भी कंघी-चोटी कर रहीं है :--

माँगर वारी रुकमिनी, तो माँगर उन कियो।
वे भले माँगर देयँ, तो भइया भतीजे गोद लै ॥

[और दूसरा]

सीस सम्हारौ अमुक कुँअरि[1] आज हो।
तुम चिर जिअहु अमुकिचन्द[2] जिन रे रँगाई है घाट[3]।
तुम चिर जियहु अमुकिचन्द,[4] जिन सुख पहिरी है घाट[3]।
तुम अहिवाती अमुक कुँअरि,[5] जिन रे लईं दस मास।
तुम चिर जियहु अमुकिचन्द,[6] जिन मेरी पुजई[7] है आस।

* हरदी-तेल *

और अब सात सुहागिन महिलायें कन्या के हलदी मिला तेल चढ़ातीं हैं। गीत है—

१—कन्या का नाम। २—कन्या-पिता आदि का नाम। ३—लाल ओढ़नी। ४—दूलह का नाम; ५—कन्या की माता का नाम। ६—कन्या के पिता का नाम। ७—पूरी की।

मेरी हरदी है हिरदय मोल, बनजारिन[1] आनि सँचारियो[2]।
भरि उलदी[3] है सब पुरिखा, फलाने दास[*] घोरियो[4]।
तुम लेउ अमुकिचन्द[5] मोल,[6] लड़िलरी[7] के पग चढ़ै।
बाजौ बाजौ[8] न रे मेरे मानिक, मदरा[9] सबद सुनायौ।
वे रामचन्द्र महादेव बालइयाँ, सीतल-दे तेल चढ़ायौ।
चढ़ाऔ सहोदर, माँ-के-जाये, गोद खिलाये।
बहुअ घर आये, मेरो मन ररियाँ[10] है रह्यौ ॥

❋

* रिमझिम *

माता की प्रतीक्षा पूरी हुयी। उसके 'मायके' से 'डाला' आ गया। चौक पर बैठ कर, हर्ष से फूली कन्या-माता, अपने भाई का भेजा भात (डाला) ग्रहण कर रही है। गीत की हर पंक्ति का स्नेह भरा प्रारम्भ है—

बीरा मेरे—

रिम-झिम, रिमि-झिम वरसेगौ मेह सोहिल[11] बटियाँ[12] चलइँ सुहावनी।
बटियाँ[12] रे, बटियाँ[12] रे उपजी है दूब,[13] सोहिल अधबिच उपजौ है केवरौ[14]।
दूब है, दूब बछेड़न[15] जोग, सिर बँधाओ अमुकिचन्द[16] केवरो[14]।

१—बनजारों ने। २—संचय की है। ३—उड़ेली। *—यहाँ सब पुरखों के नाम लिये जाते हैं। ४—घोरी, पानी मिला कर तैयार की। ५—कन्या के पिता, भाई आदि का नाम। ६—ख़रीद कर। ७—कन्या का नाम। ८—बजने दो, बजने दो। ९—मृदंग। १०—प्रसन्न। ११—शोभा देने वाली। १२—रास्ता, बाट। १३—दूर्वा, घास। १४—केवड़े की झाड़ी। १५—जवान घोड़े। १६—मायके वालों के नाम लिये जाते हैं।

संकरी[१] है, संकरी है तुमरी[२] पुरखा-पौरि,[३] पुरखा[४] परिगह[५] अति बड़ौ।
ऊँची है, ऊँची तुमरे ससुर की पौरि, बाबुल ऊँची है पनिहरी[६]।
ठाड़ी हैं, ठाड़ी हैं सीय दुआरें, सोहिल मैले-से काँचुअरेन[७] अनमनी।
को मेरी, को मेरी चिकट[८] उतारे, सोहिल को घर लै चलै।
पितिये[९] के, पितिये के बोल हैं बोल, सोहिल जननी के जाये बीर ढूँढ़ले[१०]।
उठि पिय, उठि पिय घुड़िला पलानि, सोहिल जननी के जाये बीर ढुँढ़ले।
वे मेरी, वे मेरी चिकट उतारें, सोहिल घर भीतर लै चलें।
ढूँढ़ौ है, ढूँढ़ौ है देस विदेस, सो तिल[११] तिल ढूँढ़ौ दिल्ली आगरौ।
पाये हैं, पाये सराफ की हाट, मोहरें भनावें अपनी बहिन कों।
पाये हैं, पाये बजाजे की हाट, कपड़ा विसावें[१२] अपनी बहिन कों।
पाये हैं, पाये रँगरेजे की हाट, सोहिल घाट रँगावें अपनी बहिन कों।

और सराफ, वजाज, रँगरेज आदि के यहाँ से आवश्यक सामान ख़रीद कर भैया अपनी बहिन के घर इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आ गये—बहु-प्रतीक्षित "डाला" लेकर—

आये हैं, आये हैं आधी सी रात, सोहिल गरजत आये गरुये[१३] मेह ज्यों।
गरजे हैं, गरजे हैं अपने देश, सोहिल बरसे बहिन के देश में।
लेओंगी, लेओंगी ढोल बजाय, सोहिल जग जाने मेरो भातई[१४]।
पहली रे, पहिली पमरि[१५] पहिराउ सोहिल, सासु ससुर की पनिहरा[१६]।

१—संकीर्ण, तंग। २—कन्या-माता की ससुराल वालों के नाम लिये जाते हैं। ३—पुरखों के मकान का दरवाजा। ४—कन्या-माता के मायके के पुरखों के नाम लिये जाते हैं। ५—कुटुम्बी, परिवार। ६—पढ़ैरी, पानी रखने का स्थान। ७—ऊपर पहने जाने वाले वस्त्र ८—चीकट, मैल। ९—चचा, पिता के भाई। १०—खोजने, ढूँढने। ११—तिल-तिल, नेंक-नेंक। १२—ख़रीदें। १३—भारी। १४—भात देने वाला। १५—"पामरी" = उपरना, डुपट्टा। १६—पानी भरने वाली, पनिहारिन।

दुसरी रे, दुसरी पमरि पहिराउ, सोहिल द्योर-जिठानी[१] के झुण्ड में।
तिसरी रे, तिसरी पमरि पहिराउ, सोहिल सों बहनोई तेरे-भानजे।
पाछें रे, पाछें बहिन पहिराउ, सोहिल जग जाने मेरो भातई।
हेरति ही, हेरति तुमरी बाट, सोहिल भैया आयें मेरे सब सरै[२]।
भरि धरियो बहिन को मान, सोहिल भैया ने लईं हैं बड़ाइयाँ।
भरि धरियो बेटी अमुक दे को मान, सोहिल बाबुलचढ़ी हैं बड़ाइयाँ।

* झिलमिल दियला *

विवाह से एक-दिन पूर्व ; मूरवान (मौली-बन्धन) के समय ; जब छोटा सा दीपक पूजा की थाली में झिल-मिल झिल-मिल जल रहा है ; और महिलायें "कन्या" के माथे से प्रथम-वार "मौरी" (खजूर की बनी) बाँध रहीं हैं, तो यह उचित ही है कि होनेवाले विवाह के साथ, त्रेता के सीता-राम-विवाह का स्मरण-ध्यान कर लिया जाय ; और यहीं से गीत का प्रारम्भ है :—

कौनसऊ कौ झिलमिल[३] दियला, कौनसऊ की बाती रे लाल ?
कौनसऊ की सोय-कुँअरि हित, यह वर ब्याहन आयौ रे लाल ?
साजनऊ[४] कौ झिलमिल दियला जनकराय की बाती रे लाल।
जनक राउ की सीय-कुँअरि हित, राम वर ब्याहन आये रे लाल।

१—देवरानी जिठानी। २—काम पूरा होना। ३—झिलमिल कर, काँप कर, जलता हुआ। ४—चक्रवर्त्ती श्रीदशरथ जी।

परन्तु आँधी, मेह, इत्यादि से, होने-वाले विवाह के अवसर पर कोई प्राकृतिक विघ्न-बाधा न उठ खड़ी हो, इस लिये—

आँधी मेह तू मेरे न्योतौ[१] !
पाँच दिना कों पूरब-पच्छिम तू मेरे न्योतौ !
पाँच दिना को उत्तर-दक्खिन तू मेरे न्योतौ !
पाँच दिना को बकसि[२] दे !!

❋ मंडप ❋

शुभ मुहूर्त्त में मंडप-आच्छादन के समय, व रात्रि में प्रीतिभोज में, प्रथम-गीत "मंडप" होता है। गीत पद्य-काव्य है ; और दो प्रकार के छन्दों में गुहा गया है। परन्तु आज यह क्षत-विक्षत अवस्था में प्राप्त है। बहुत से शब्द मिलते ही नहीं ; स्थान-स्थान पर छन्द-भंग व तुक-भंग दोष हैं। गीतकार ने जो प्रारम्भ में गाया होगा, वह पूरा तो सम्भवतः अब मिल न सके ; फिर भी आधुनिक चतुर्वेदी-कवि यदि प्रयास करें, तो इसकी हीनांग-पूर्त्ति कर सकते हैं। कहीं-कही "भराब" निम्न पंक्तियों में भी करने का प्रयास किया गया है। त्रेता-युग के पुण्य-विवाह के हेतु मण्डप-छाने की क्रिया-स्मरण से ही गीत प्रारम्भ होता है।

वे मण्डप ! राय[३] छवायो, वे रामचन्द्र रचौ है विआहू[४]।
वे लीले[५] से बाँस कटाये, वे बाँस बने हरियाले[६]।।
हरे-हरे बाँस के [खम्भ][७] लीनें, पान-पँगत[८] लगाइयौ।
बत्तीस खम्भ लै आनि रोपे, बहु दिया लै दिवाइयौ ।।

१—निमंत्रित है। २—क्षमा कर दे ; छोड़ दे। ३—श्रीजनक राय। ४—विवाह। ५—नीले, पके। ६—हरे-हरे। ७—यह शब्द माथुर-गीतावली में नहीं है, छन्द भंग बचाने के हेतु जोड़ा गया है। ८—पानों की बनीं बन्दनवार।

अरगजहु-कुंकुम[१] लीपि-चन्दन,[२] मोतिन चौक पुराइयौ।
सीता औ राम विवाह कारन, मंडप राय छवाइयौ ।।
वे मण्डप० ।।

और फिर, उस मंडप की सजावट-शोभा का वर्णन है—

चौंसठ गूँथे हैं कुसुम के गुच्छा बहु भाँती।
बिच-बिच बेलि निकासिवे,[३] बिच-बिच चंपा की जाती[४]।
बिच-बीच चंपा आइ बौर्यो, केवड़ा मेंहकाइयौ[५]।
बिच भमर[६] वास, गुलाव कोमल, बिचइ कूजो[७] लगाइयौ।
बिच-बिचइ पाकुर अम्ब बौर्यो, दुष्ट-भंजन तूरियौ (?)।
सीता औ राम विवाह कारन, मंडप जनक छवाइयौ ।।
वे मण्डप० ।।

उस मण्डप की शोभा-प्रतिष्ठा को देख कर आये हुये देवगण, विशेष कर ब्रह्मा, अपना निजत्व एवं प्रभाव भूल गये ; और कुछ ग्लानि में पड़ गये। भगवान शंकर ने समझा कर उन्हें शान्त किया।

मण्डपहिं माँच[८] बँधाये।
और अथर्वन[९] साजे ।।
साजे अथर्वन[९] सगुन निर्मल, पञ्च शबद[१०] सुनाइयौ।

१—अरगजा और कुंकुम (केसर) जैसे सुगन्धित द्रव्यों से तर। २—चन्दन से लीप कर। ३—नक़ाशी का काम। ४—चमेली। ५—सुगन्धित करना। ६—भ्रमर, भौंरा। ७—मोतिया, बेला (कूज़ा)। ८—मंच, आसन। ९—अथर्वेद = शिल्प-शास्त्र (अथवा अथर्व-वेद ?)। १०—पाँच मंगल-सूचक बाजे—तंत्री, ताल, झाँझ, नगाड़ा और तुरही (यथा—"पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं विधि नाना"—तुलसी।)

रघुनाथ-मूरति देखि सुर-नर, [निज जनम][*] विसराइयौ ।
[समुझाय बोले शम्भु सुरगन,][*] चित्त चरननि ल्याइयौ ।
सीता औ'राम विवाह कारन मंडप, जनक छवाइयौ ।

वे मण्डप० ॥

उस समय दक्षिण की ओर बड़े-बड़े निशाचरों का बढ़ता हुआ बल श्री दशरथ, जनक आदि उत्तर-भारत के राजाओं को शंकित कर रहा था। विवाह-समाज में आगत बड़े-बड़े राजाओं में भी वही चर्चा का विषय था। जनक राय, राजाओं में अग्रगण्य होते हुये, इस चिन्ता से और भी व्याकुल थे। ऐसे सुभट की खोज थी, जो अपने बाहुबल से निशाचरों का बढ़ता प्रभाव दबा सके। इसी आशय से सीता-विवाह की शर्त्त शिव-धनुष उठाने की शक्ति रक्खी गयी थी। वह देख ली गयी। और मानों इशारे ही इशारे में, राम को देख कर ही, जनकराय को मूक-आश्वासन मिल गया—

बड़ौई रम्यानौं[1] [प्रीता][*] ।
वे भामिनि गावहि गीता
वे बाबुल भये है सुचिन्ता[2] ॥

---

*—यह शब्द माथुर-गीतावली में नहीं हैं। छन्द-भंग बचाने के लिये जोड़ दिये गये हैं। द्रष्टव्य, राम-चरित मानस, बाल काण्ड, दोहा ३४५-३४६,

"भाग्य विभव अवधेस कर, देखि देव ब्रह्मादि ।
लगे सराहन सहस-मुख, जानि जनम निज बादि"
"विधिहि भयेउ आचरजु विसेषी। निज करनी कछु कतहु न देखी॥"
"सिव समुझाये देव, सब जनि आचरज भुलाहु ।
हृदय विचारहु धीर धरि, सिय-रघुवीर-बिआहु ॥"

१—शोभा को प्राप्त हुआ। २—चिन्ता से निश्चिन्त, निशाचर-प्रभाव के नाश होने की चिन्ता से।

निश्चिन्त तुम अब होउ बाबुल, ज्ञान करि समुझाइयौ ।
दस-भुजनि[1] के सौ खण्ड करिहौं, असुर-भंजन कराइयौ ।
भाखौं सो वेद-पुरान कहियै, लिखौ जो सो बखानियौ ।
सीता औ' राम विवाह कारन, मंडप जनक छवाइयौ ॥

वे मण्डप० ॥

फिर निश्चिन्त होकर धूम-धाम से विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह के पश्चात प्रीतिभोज! जिसमें देव-मानव-मुनि सब यथास्थान बैठे। सोने के थालों में विविधि पकान्न के सुभोजन; और फिर पान-आदि से सत्कार! अन्त में भरपूर देन-दायजे और परिचारिका आदि के साथ सीरध्वज जनक-जी कन्या जानकी से मिले-भेंटे; बारात के साथ बेटी की विदा की! उपहार दिये; और फिर वियोग के मीठे आँसू····टप····टप····। गीत चलता है।

मण्डप तर पाँति[2] बिछाई ।
वे देवन बैठक पाई ॥
वे सोने के थार कचौरा[3] ।
वे वासुक फूल तमोरा[4] ॥
वे वासुक फूल तमोर कहियै रैनि-बैन[5] सुबिंजनी ।
भरि दिये खार-ब-खार बाबुल, बहुत पाटम्बर[6] दिये ।
परिचिन्त[7] सुरई[8] दई बाबुल, राम कौं सीता दई ।
मिलि-भेंटि कन्या समदि[9] आये नैन तें आँसू गिरे ॥
सीता औ' राम विवाह कारन मंडप जनक छवाइयौ ॥

वे मण्डप० ॥

१—दशभुज = रावण। २—बैठने के लिये पत्तलें (पद-तलें)। ३—पकवान। ४—सुगन्ध वाले फूल और पान। ५—सम्भवतः सुबिंजन, महिलाओं का गारी-गान। ६—रेशमी वस्त्र। ७—परिचारिका, दासी। ८—गाँयें। ९—उपहार देकर विदा करना।

* सारद (गौरि-मङ्गल) *

सारद लागोंगी पाँय, पुहुप[१] चढ़ाऊँ।
विघन-राय,[२] बलि जाऊँ, वांछित[३] पाऊँ॥

फिर छन्द का प्रकार बदलता है, किन्तु है वही प्रार्थना—

बाँछियो[३] पाऊँ देव गनपति, कृष्ण-गुरु कीजै कृपा।
मोहि देहु आज्ञा, गौरि-मङ्गल वचन पाऊँ सारदा॥

इस प्रकार शारदा, गणपति और कृष्ण-गुरु की आज्ञा लेकर व उनकी स्तुति कर, गीत-कार अपने मुख्य-विषय "शिव-गौरि" विवाह पर आता है। प्रथम, गिरिराज हिमवन्त-मयना के शैल-गृह में गौरि-अवतार का वर्णन —

गिरि की सकल अनूप, कोकिल-बानी।
कोकिल में कुलवन्ति-रूप बखानी॥

*[सब रूप खानी गुण बखानी द्वितिय-[४]ज्यों सुन्दरि भई।
जनु चन्द्र-बदनी मृग-सुनयनी बढ़त नित शोभा नई।
पूरन पवित्र सुनाम पार्वति यथा निर्मल सुरसरी।
हिम-गृह निवासिन अति सुहासिन लोक तारन औतरी॥]

प्रतिऔ[५] कियौ मत आन[६] गवरि बिहाऔ।
गौरी कौ वर होय, जो शिवहि बुलाऔ॥

और फिर गौरि-तपस्या की कथा बाद देकर, गीत गौरि-विवाह के विषय पर ही सीधा आ जाता है।

१ पुष्प, फूल। २—श्री गणेशजी, विघ्न-हरण। ३—मनोवांछित, मनचाहा। ४—दूसरे, अथवा शुक्ला-द्वितीया के चन्द्र की भाँति बढ़ने वाली। *—माथुर-गीतावली में लिखित यथा-प्राप्त शब्दों को लेकर, यह एवं अन्य छन्द स्वान्तः सुखाय पुनर्निर्मित कर दिये गये हैं। ५—प्रतिज्ञा। ६—अन्य के साथ।

शिव कों बुलाऔ, लगुन लिखिये, खाँड़[१] घृत[२] तंदुल[३] सँचै[४]
बहु अन्न धन भण्डार पूरण, यज्ञ की रचना रचै॥
रचि गये रचना विश्वकर्मा,[५] जगा[६] जोति[७] जगाइयो॥
कुछ कनक-कलश[८] भराय चौरन पाननि[९] मण्डप छाइयो

इधर शिव-बरात प्रस्थान का वर्णन—

शिव ब्याह हित जे ईश[१०] अमर[११] बुलाय नारद अगवनी[१२]।
धरि मौरु मुकटनि ब्याल[१३] लपिटे, भूत सँग अनुचर अनी[१४]।

यदुवीर[१५] आये धन्य मंडप, मनोरथ पूरन भये।
हिम[१६] देस-दक्खिन के दुलीचा विष्णु को आसन दये॥]

और उधर भगवती गौरि के हरिद्रा-तैल आदि विवाह के पूर्व-कृत्य—

अमरपुरी[१७] की नारि तेल चढ़ावैं।
करत विधि-आचार[१८] मंगल गावें॥

और फिर भगवती गौरि के विवाह-पूजन का क्रिया और विवाह-वेष का शृङ्गार-वर्णन—

[पूजा करावें विधि,[१९] विनायक[२०] प्रथम गनपति थापियौ[२१]।
अचरज करइ जनि कोउ, सुरनि अनादि वेदन भाखियौ।

१—चीनी। २—घी। ३—चावल। ४—संचित किये गये, इकट्ठे किये गये। ५—निर्माण के देवता, विश्वकर्मा। ६—यज्ञ-देव, अग्नि। ७—हवन की अग्नि। ८ -सोने के कलश ९—पानों से। १०—विष्णु। ११—देवता। १२—अगवानी, आगे। १३—साँप। १४—फौज, दल। १५—विष्णु। १६—हिमवान। १७—स्वर्ग, इन्द्रपुरी। १८—विवाह विधि और रीति-भाँति। १९—ब्रह्मा। २०—गणेश। २१—स्थापना की।

छवि खानि मातु भवानि, सब सुर-नारि सकुचि लजावहीं।
कछु गौरि कौ शृंगार बरनें, ब्याह-मंगल गावहीं ॥]

बेनी[१] भाल-विसाल नग-मनि गूँथी ;
सैंनी[२] सुरंग पमार[३] कटि-छवि अनूठी ;
शशिमुख[४] तिलक लिलार आभा अगरी ;
गरे गजमोंतिन हार कंठ पदकरी ;
बाजूबँद बिच बेलि कंकन भानी[५] ;
गजगति चालि मराल कोकिल-बानी ॥

और फिर विवाह के प्रधान-कृत्य, भाँवरि आदि होने लगे।

लै नाम कुल और प्रवर बरनें विप्र साखोच्चार में ;
गहि पानि कुश कन्या समर्पो वेद-विधि विस्तार में
फिरि गौरि-शंकर परइ भाँवरि, रङ्ग करहिँ[६] सहेलरीं[७]
बीना बजावें विमल गावें, नारद की पूजा करी
कोकिल में कुलवन्ति मातु भवानी
शोभा अपार न सकै कोउ तिहुँ-पुर[८] बखानी।
तिहुँ-पुर बखानी चन्द्र-बदनी, कमल-कर विधना रची।
नहिं जाय बरनत गौरि नखसिख, सुभग मनि-भूषन खची।
मरजाद सुन्दरता भवानी, चित्र ज्यों प्रतिमा गढ़ी।
यों रहसि सुन्दर चढ़ी चौंरी, प्रीति शंकर सें बढ़ी ॥

और विवाह-संस्कार साविधि अनुष्ठित होने पर मयना-हिमवंत, देन-दायजा भेंट करते हैं—

१—बेणी, चोटी। २—आँखे, नेत्र। ३—भूँगा। ४-अपूर्ण चन्द्रकला की शक्ल का। ५—उमेंठ-दार, छल्ले-दार। ६—हँसी-ठिठोली। ७—गौरि की सहेलियाँ। ८—स्वर्ग, मर्त्य व पाताल लोक।

माँगौ बेटी राजकुँअरि जोइ, सोइ दीजै।
देउ-देउ पितु-मातु, विलम्ब न कीजै।
कछु साज घर कौ देउ सम्पति, विलँब बहुत न कीजिये।
मनि चीर अम्बर धेनु कंचन, यथा इच्छा दाजिये।
आशीष दीजै होइ जीवन सफल, कन्या पाइ जो।
सो रासुरे में सुहाग पाऊँ, यह पिता मेरो दाइजौ ॥

परन्तु मैना-हिमवन्त ने विवाह-जैसा ही अनुपम देन-दायजा भी दिया—

खोलेउ रतन-भँडार; ऊँट लदाइयौ ;
अति-बल तेज तुरंग जीन जड़ाइयौ ;
लक्ष ऊपर सुरभि सींग-मढ़ाइयो ;
कनक मणि बहुजड़ित भूषण ल्याइयौ।
बहु कनक मणि[१] के दिये भूषण बहुत पाटम्बर[२] दिये
बहु हेम मरकत दै बराती सकल सन्मानित किये।
का देहुँ पूरन काम संकर; चरन-गहि विनती कही ;
परचिन्त सुरई[३] दईं बाबुल[४] दासी करि पुत्री दई।

और फिर, विवाह का अन्तिम कार्य, कन्या की विदा, कन्या से "मिलना", करुणा और प्रेम के आँसू—

पहुँचाय नगर बरात बाहिर, सबनि सँग हिमवन फिरे।
मिलि-भेंटि कन्यें समदि[५] आये नैन तें आँसू गिरे ॥

पौनछक, बारात आने के बाद का प्रथम-कार्य; और पहेंना, बारात का अन्तिम विवाह-कार्य; इन दोनों अवसरों पर, "छिड़कने" के समय, यह "सारद" अथवा अथवा "गौरि-मंगल" गीत गाया जाता है।

१—सोने के जड़ाऊ। २—रेशमी वस्त्र। ३—गायें। ४—पिता, हिमवन्त। ५—उपहार दे कर।

४

वर-प्रतीक्षा

* अरवर-गरवर *

आज बरात आने की प्रतीक्षा है। ज्यों ज्यों दोपहर हुआ, प्रतीक्षा बढ़ती गयी। बीसों तरह के विचार मन में उठते हैं। बरात अभी तक आयी क्यों नही? ओह! यमुना-जी जो चढ़ीं हैं: रास्ता ही कैसे मिलेगा। और स्त्रियों का "अरवर गरवर" गीत है—

> अबे जमुना की अरवर गरवर गैल, दुलहु कैसे आइहै?

पिता-जी तो निश्चिन्त हैं; बरात आयेगी ही। परन्तु स्त्रियों को अधिक चिन्ता है। क्या किया जाय? पिता जी से सुझाव है, और पिताजी का तत्काल निश्चिन्ताई का उत्तर—

> दै भेजो बावुल मेरे नाव, दुलहु कैसे आइहै?
> अबे ना मेरें नाव नवरिया,[1] नाइनें[2] मेरें खेवटये[3]।
> जो लढ़गहिली[4] की साद,[5] पियादें[6] चेरो[7] आइहै।

और फिर उसी-प्रकार संकल्प-विकल्प चलते हैं। महिलाओं के सुझाव और पुरुषों के वैसे ही उत्तर—

१—छोटी नौका। २—नहीं हैं। ३—केवट, नाव चलाने वाले। ४—विवाह होने वाली कन्या। ५—प्रेमाकर्षण। ६—पैदल। ७—सेवक की भाँति, पिछलगा।

> दै भेजौ काकुल मेरे हाथी, दुलहु चढ़ि आइहै।
> अबे ना मेरें हाथी हथिनरी,[1] नाइनें मेरें अंकुशा[2]।
> जो लढ़गहिली की साद, पियादें चेरो आइहै।
> दै भेजौ आजुल मेरे घोड़ा, दुलहु चढ़ि आइहै।
> अबे ना मेरें घोड़ा बछेड़ी, नाइनें मेरें चाबुका।
> जो लढ़गहिली० ॥
> दै भेजौ वीरन मेरे पलिकी, दुलहु चढ़ि आइहै।
> अबे ना मेरें पलिकी पलिकिया, नाइनें मेरें द्वै जने[3]।
> जो लढ़गहिली० ॥

और यहाँ कन्या के रूप की तुलना में दूलह का कुरूप होना याद किया जाता है—

> कारे उढ़रिपुत[4] कारे, तौ ना जानों किस गुने[5]।
> अबे उबटे[6] हैं अण्डी के तेल, उघारे[7] है घाम[8] में
> वाका मैया बिहइया[9] है पूजी, कसौंदी[10] के पेढ़ सें।

और कारे वर से गोरी कन्या की विषमता (contrast)—

> अबे गोरी लड़िलरी है गोरी, तो ना जानें किस गुनें।
> चुपरी है तेल फुलेल, उलारी है छाँह में।
> वाकी मैया सुहैया[11] है पूजी, केसर के री बिरछ सों।

पर वर के काले होने से क्या हुआ? गुणवान चाहिये! बस!! सब संकल्प-विकल्प समाप्त। सोचिये ज़रा—

१—हथिनी। २—हाथी हाँकने-वाला अंकुश। ३—पालकी ढोने वाले दो आदमी। ४—दूलह के लिये प्रयुक्त, छिनाल का पुत्र। ५—किस-कारण। ६—उबटन किया गया है जिन पर। ७—नंगे बदन। ८—धूप, सूर्य की रौशनी। ९—फूहड़। १०—बरसात में अपने आप पैदा होने वाला एक बेकार पेढ़। ११—चतुर।

अबे कारी कस्तूरी है कारी, रुपैया की टुक भली।
अरु पियरी हरद की गाँठि, पला भरि तैलियो ॥

कस्तूरी काली होती है, फिर भी एक-रुपये में जरा-सी ही मिलती है; और हलदी की गाँठ सुन्दर पीली होती है, पर एक रुपये की खरीदने में तराजू का पलड़ा भर जाता है। आने वाला श्रीवर कस्तूरी की भाँति गुण-भरा है। भगवान करे वर और बरात जल्द आये।

गोरी-अम्बा

बरात-प्रतीक्षा का एक और गीत—गोरी अम्बा—है। नाम से मालूम होता है कि यह गौरी माता से सम्बन्धित होगा, किन्तु अर्थ दूसरी तरह के हैं। "भूँठी री भूँठी गोरी री" से स्पष्ट है कि गोरी यहाँ गौरैया चिड़िया के लिये प्रयुक्त हुआ है। गौरैया के साथ अम्बा का अर्थ क्या आम के वृक्ष से है? अथवा यह हो कि प्रथम "गोरी" गौरैया है; और दूसरी "गोरी", जिसके साथ अम्बा जुड़ा है, गौरी-माता हैं; पिछला अर्थ ही अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होता है। गीत है—

देहरी रे बैठी गोरी[1] रे, मँड़यें रे बन कौ कागु[2]।
उड़इ रे काग सुलच्छने, जो वर आवेगौ आजु ॥
गौरी-अम्बा[3] ये हठ[4] वर आवेगौ आज ॥
भूँठो रे भूँठी गोरि[1] री, भूठौ रे बन कौ कागु!
असिय कोस बालम बसैं वे कैसे आमेंगे आजु?
गौरी अम्बा० ॥

१—गौरैया चिड़िया। २—कौआ। ३—माता गौरि। ४—अवश्य।

परन्तु नहीं! ज़रा सुनो तो यह अह्लाद-स्वर!

"आये" री "आये" है रही, मँड़ये[1] रे परी है पुकार[2]।
काहू बिरहुली[3] बस किये, जो आये हैं आधी-सी राति ॥
गौरी अम्बा० ॥

और आते ही कन्यापक्ष की महिलाओं द्वारा मीठे उपालम्भ, वर-माता के लिये, विनोद में मधुर-विचित्र कल्पना! श्लेष!

दुलहा तेरी मायली[4] रे, ओछे से कर्म कराय।
मौर मुकट[5] के कारनें, वह (दारी) मलिया कें जाय ॥
मलिया ये मन सुकराय, फिर-फिर बाई के जाय।
गौरी० ॥

दुलहा तेरी काकुली,[6] ओछे से कर्म कराय।
कान के कुण्डल कारने, वह (दारी) सुनरा के जाय ॥
सुनरा ये मन सुकराय, मलि-मलि धोवे वाके पाँय।
गौरी अम्बा० ॥

बर-तर[7] वरइ बरोसिया[8] रे, सोनों गढ़हि सुनार;
गढ़इ उढ़रि-पुत[9] मूँदरी,[10] लाड़लरी कों नौलख हार[11]।
गौरी अम्बा० ॥

खैर! यह तो दूलह की माँ, काकी की बात है। दूलह के लिये मौर, कुण्डल, मूँदरी; और वधू के लिये नौलख हार तो उन्हें बनवाने थे। कैसे ही बने। दुलहा का इसमें क्या दोष। दुलहा तो हमारे लिये पूज्य है। उसका सत्कार तो उचित-रूप में होना ही है। गीत चलता है—

१—मंडप-तर। २—शोर। ३—प्रेमिका। ४—माता। ५—विवाह में पहने जाने वाला खजूर का मौर। ६—काकी, चाची, ताई। ७—बड़-वृक्ष के नीचे। ८—बरोसी, जिसमें सुनार आग जलाकर सोना तपाता है। ९—छिनाल का पुत्र, दूलह के लिये प्रयुक्त। १०—अङ्गूठी। ११—नौ-लखा हार।

लाढ़ो[१] के आजुल[२] यों कही, गोंड़े[३] रे छतुर[४] तनाउ।
धिय-रे-जमैया लाड़िले कों, छिन-छिन लागेगी धूप।
गौरी अम्बा० ॥

लाढ़ो[१] के बाबुल[५] यों कही, गोंड़े रे पुरिया पवाउ[६]।
धिय-रे-जमैया लाड़िले कों, छिन-छिन लागेगी भूख।
गौरी अम्बा० ॥

लाढ़ो के काकुल[७] यों कही, गोंड़े रे कुअट[८] खुदाउ।
धिय-रे-जमैया लाड़िले कों, छिन-छिन लागेगी प्यास।
गौरी अम्बा० ॥

लाड़ो के वीरन[९] यों कही, गोंड़े रे पलिँग बिछाउ।
धिय-रे-जमैया लाड़िले कों, छिन-छिन लागेगी नींद।
गौरी अम्बा० ॥

और ऐसे मामूली से लगने वाले गीत में नीति का कितना बड़ा उपदेश दिया गया है, जैसे महर्षि यास्क का निरुक्त-वचन "दुहिता....... दूरे हिता" वाला वाक्य कुछ अधिक स्पष्ट कर दिया गया हो:—

नियरे[१०] न करियै सजनई,[११] गोंड़े[१२] न बइयै[१३] खेत।
नित उठि आवें उलाहने,[१४] छिन-छिन मान[१५] गिराय[१६]
गौरी अम्बा० ॥

❋

१—कन्या। २—दादा, बाबा। ३—गांव के पास। ४—छत्र, तम्बू। ५—पिता। ६—पूड़ी बेलना। ७—काका। ८—कुआ। ९—भाई। १०—पास वाले गाँव/नगर में। ११—विवाह-सम्बन्ध। १२—गाँव के किनारे का। १३—बोना, खेती करना। १४—उलहने, फ़रियाद। १५—सम्मान। १६—कम होता है।

५

आग्यौनी

बरात के बाजे सुनायी पड़े। महिलाओं ने "चटक-बदरिया ऊनई" गीत उठाया। गीत की पृष्ठ-भूमि इस प्रकार है:—

बरसात में जब खेती लहलहाती है, तब गाँवों में ढोल-पीटते नटों के झुण्ड आते है। "गद्दी सलामत रहे अन्नदाता की"—रोज़ सवेरे-शाम डंके से ढोल पीट कर वह द्वार-द्वार यही आवाज़ लगाते हैं। फिर एक दिन गाँव के मैदान में उनका खेल होता है। बाँस गाढ़ दिया जाता है। नीचे खड़ा हो कर एक नट ढोल पीटता है, और बाँस के ऊपर चढ़ कर दूसरा नट, अथवा नटी, शरीर साध कर कौतुक दिखाते है। गाँव वाले, नटों को रुपये अथवा अनाज देते हैं; और फिर नटों का दल इसी धन्धे से दूसरे गाँव चला जाता है।

❋ चटक बदरिया ❋

गीत में बरात के ढोल का शब्द दूर पर सुन कर, उपालम्भ-रूप में, ऐसे ही नटों का झुण्ड आने का अन्दाज़ किया गया है। बरसात का मौसम! ढोल का शब्द है, अथवा बादल की गरज!! उधर, दूर पर, चटख़ काले रँग की बदली जैसे उठ रही है (आते बरातियों की पदधूलि से) —

एक चटक-बदरिया[1] ऊनई,[2] और मनहुँ[3] कजर की रेख[3] ;
लाले घोरन[4] दै री, गरजन दै बरसन दै कारे काजरा।

और अब झुण्ड स्पष्ट-रूप से दिखायी देने लगा, इधर ही आता हुआ—

केहाँ के नट बेड़िया, औरु केहाँ रोप्यौ[5] है बाँस ॥लाले०॥
अजुध्या[6] के नट बेड़िया, औरु जनकपुर[7] रोप्यौ है बाँस ॥
लाले०॥

और फिर नटों के खेल की मधुर, विनोद-मय कल्पना, बरातियों के सचमुच के नाम ले-ले कर, साथ में उनकी गृह-देवियों के भी—

कौन स मदरा[8] झकोरियौ,[9] औरु कौन स चढ़ि गई बाँस ॥लाले०॥
दशरथ[10] मदरा झकोरियौ औरु कौशिल्या[11] चढ़ि गई बाँस ॥लाले०॥
बाँस चढ़ें कौशिल्या मूतियो, औरु परौ है दशरथ कान ॥लाले०॥
तूँ तौ उतरि उतरि नट बेड़िनी, तेरे सजन[12] मरत हैं लाज ॥लाले०॥

और वर-घर की अनूठी रीति—

रानी कैकई बिढ़उन[13] नीकरी, राजा दशरथ के साथ ॥लाले०॥
सुमित्रा आपु कों[14] विरही[15] चूनरी, राजा दशरथ कुलह[16] कबारु[17]
॥लाले०॥

१—गाढ़े रँग की बदली। २—उठी। ३—काजल की रेखा, दूर पर उठती हुयी बदली का रङ्ग। ४—घुमड़ना ; एक पर एक उठना। ५—गाढ़ा। ६—(अब कुछ-कुछ पहचान में आये) यहाँ दुलहा के गाँव का नाम लिया जाता है। ७—यहाँ कन्या के गाँव का नाम। ८—मृदङ्ग, यहाँ ढोल। ९—डंका देना, बजाना। १०—वर-पिता अथवा बड़े का नाम। ११—वर-माता अथवा अन्य महिला का नाम। १२—सम्बन्धी, कन्यापक्ष के लोग। १३—सैर करने हेतु व चीज़ें खरीदने के हेतु [बँगला-"बेड़ाते"]। १४—अपने लिये। १५—चटख़-रँग की, प्रेमिल। १६—टोपी। १७—फटी-पुरानी, रद्दी।

* कानन-कुंडिल *

किन्तु नहीं ! यह तो पहचाने-हुये हैं ; फ़लाने गाँव के ! अपनी लाढ़ो का भी तो उसी गाँव में सम्बन्ध तय हुआ है ! कैसे अच्छे घोड़े पर सवार सुन्दर-सा दूल्हा ! आकर अपने दरवाज़े पर ही खड़ा हो गया। घोड़ा हिनहिना कर पैर पीट रहा है। तो क्या बरात आगई....? और रात का समय ? अपने घर-वाले सो रहे हैं या जाग रहे हैं ? गीत चलता है—

कि अब तुम सोवहु कि जगहु लड़िलरी के बाप !
दरवाजें बछेड़ा[1] रौरै[2] खूँदै[3] रे।

और फिर कन्यापक्ष के लोगों के नाम ले-ले कर यही चेतावनी दी जाती है। बछेड़े का सवार अब भली-भाँति देख कर पहचान लिया गया है। माथे पर मौर है, कानों में कुण्डल हैं, शरीर पर झगा (जामा) है, पैरों में मौज़े हैं ; और साथ में पालकी है। परन्तु यह ठाठ इकट्ठे कैसे किये गये ? सम्बन्धिन-महिलाओं से तो मन-मानी कहने की छूट है। और गीत के Insinuations—

कि अब तेरे माथे कौ मौरु रे दूल्हा कौने गूँथ्यौ[4] रे ?
कि अब तेरी मैया है विकट छिनारि, मलिया के बेटा सों राजी रे।
कि वह दारी मलि-मलि धोवहि मलियरा के पाँय ;
सत-खसमू कौ जोबन यों ही बीतौ रे ॥
कि अब तेरे काननि के कुण्डल दूल्हा कौने गढ़े रे ?
कि अब तेरी काकी है विकट छिनारि, सुनरा के बेटा सों राजी रे।
कि वह दारी मलि-मलि धोवहि सुनरवा के पाँय ;
सत-खसमू कौ जोबन यों ही बीतौ रे ॥

१—घोड़ा। २—शोर करता है, हिनहिनाता है। ३—पैर पटकता है। ४—गुहा, प्रस्तुत किया।

और इन्ही शब्दों में "अङ्ग के जामा" के लिये "दरजी का बेटा" और "पाँव के मोज़ों" के लिये "मोचिया का बेटा" और "संग के डोला" के लिये "समधी का बेटा" व्यवहृत होता है।

❋

* नन्नो झुरमुट *

दूल्हा के पीछे-पीछे पूरी बरात है। बरात में के आदमी भी एक-एक कर के पहचान में आते जाते हैं। और फिर—

नन्नी नन्नी झुरमुट[1] ए, ऊपर बरसैगो मेहा[2]।
तौ तुम कित आये हो, वसुदेव[3] देस[4] हमारे?
तौ देस[4] हमारौ ये, है परदेस तिहारौ।
तौ तुमरी देवकिया[5] ये, हमरे वृष भान[6] सों राजी।
तौ राज विराज़ौ ये, वह दारी जोबन की माती।
तौ घिङ्ग परे हैं ये, दारी देवकी[5] के जौंरा।
तौ द्वै चुरहेले द्वै मुरहेले द्वै मेरे भैया चारि भतीजे।
तौ झुरमुट खेलें ये, दारी देवकिया[5] के जौंरा॥

❋

* इकताई *

कलश-पूजन, निछावर आदि आग्यौनी का कार्य सम्पन्न हो चुका। कन्या-पक्ष के "पुरखा", दरवाज़ा करने के हेतु वर के सामने आ गये; और लाल पाग वर के सर से, बाँधने लगे। गीत है—

१—समूह (बादलों का); सम्भवतः यहाँ बूँद-फुहार। २—बारिश। ३—यहाँ किसी बराती का नाम लिया जाता है। ४—गाँव। ५—वर-घर की कोई महिला। ६—कन्या के घर का कोई पुरुष।

कौन स कप्पड़-जोगु[1] इकताई ब्यौंतियौ।
को जा मोलु करायें मनोहर पूनियौ[2]॥
वे रामचन्द्र[3] कप्पड़-जोगु इकताई ब्यौंतियौ।
सीरध्वज[4] मोलु करायें मनोहर पूनियौ॥
चाँउर भरी है चँगेर[5] ऊपर दोहनी[6]।
दरज़ी बहुत हुसियार इकताई की बौहनी।
चाउँर भरी है चँगेर[5] ऊपर आरसी[7]।
दरजिनि विकट छिनारि बोले दारी फ़ारसी॥

❋

* वरौठा *

आग्यौनी का जलसा समाप्त-प्राय है। थराद्वार, विनती आदि कार्य बाकी रहा है: वह भी हो रहा है। गीत चलता है—

सो मन करि आग्यौनी कीनीं।
मोतिन चौक पुराइ जनक ने, चौकीं चारु साजि दीनीं।
चारौ भैया दिपैं[8] चौक पै, बरसत कला सहस दूनीं॥ सो मन०॥
केसरि तिलक दिये बनड़े कें, गले माल पहिराय दीनीं।
जामा जुगल जड़ाऊ कंकन, भरि-भरि थार मुहर[9] दीनीं॥सो मन०॥

१—कपड़ा नाप कर। २—शरीर के ठीक नाप का सुन्दर सिँया जाय। ३—वर का नाम लिया जाता है। ४—सीता जी के पिता, यहाँ कन्या के पुरखा और घर-गाँव वालों के नाम लिये जाते हैं। ५-डलिया। ६—दूध दुहने का बरतन। ७-शीशा; दर्पण। ८—शोभित हैं, चमकते हैं। ९-मोहरें, सोने के सिक्के।

हाथ सुमिरनी लयी जनक ने, सजननि की शोभा कीनों।
धनि धनि विश्वामित्र महर्षि, जनक राय बिनती कीनीं ॥सो मन०॥
कदली खम्भ दिपैं मन्दिर में, मोंतिन की झालर पायीं।
रेशम के बन्धेज बनाये, अधिक चुनी[1] वामें जड़वायीं ॥सो मन०॥
झुकत पौरि गजराज जनक के, इन्द्र ने नौबत[2] धरि दीनीं।
[ब्रह्मा वेद पढ़ें, बन्दी जन अस्तुति करें सरस भीनीं ॥] सो मन०॥

हम घर साजन

बरात डेरों को वापस चली गयी। काका-मामा वधू की गोद भरने अन्दर आये। अब यह सम्बन्धी-साजन हो गये, क्योंकि विधिवत् कन्यावरण हो चुका। गीत है—

हम घर साजन[3] आये ; पटुके[4] चीर[5] बिछाये।
आवहु साजन ररियाँ[6] ; फूल बिखेरोंगी गलियाँ।
आवहु साजन गरुये[7] ; फूल बिखेरोंगी मरुये[8]।
दारी अमुकिया[9] के जारा[10] ; वे गुहि लावेंगे हारा।
हारनि बिच-बिच कलियाँ ; छैल करें लुर-खुरियाँ[11]।

१—चुन्नी-रत्न। २—नगाड़े। ३—सम्बन्धी-जी। ४—वस्त्र, पाँवड़े। ५—डुपट्टा। ६—रँग-रेलियाँ करने वाले। ७—बड़े। ८—दौना-महुआ के फूल। ९—यहाँ वर पक्ष की किसी स्त्री का नाम। १०—यार, पर-पति। ११—उजड्ड-पन।

और फिर जो मन में आया, सम्बन्धिन के सम्बन्ध में वही गाया, पूरी छूट के साथ ; और फिर—

गोरे ई गोरे है आये ; कारे कहाँ धरि आये ?
नकटे ई नकटे है आये ; नाक कहाँ धरि आये ?
पेट कठौती सो लयाये ; आँखि धना-सी लाये।
ओठ बरा से ल्याये ; म्हों बटुआ-सौ लाये।
इतनिन में वे अमुकिचन्द गोरे ; उनऊ कौ ओठ बिदौरो।

आदि, वर पक्ष के स्त्री पुरुषों के नाम ले-लेकर उपालम्भ सुनाये जाते हैं।

दोंना की टाँटीं

आग्यौनी का जलसा, व काका-मामा की गोद, आदि के पश्चात् का कार्य है कन्या द्वारा गौरि-पूजन। आज से एक महीने तक कन्या (वधू और बहू होने पर भी) नित्य गौरि-पूजन अनुष्ठित करेगी; और इसी गान के साथ। गान की लय इतनी सरस, सुन्दर और सीधी है कि छोटी-छोटी बच्चियों की जीभ पर भी अनायास चढ़ जाती है; साथ ही सरल-करुण—

दोंना की टाँटीं मरुअ के हैं खम्भा ;
आनि जो रोपे हैं सीय दुआरा।
हमरी लड़िलरी बेटी[1] कछुअ न जानें ;
[पूजा की जो विधि वेद बखानें।][2]

१—श्वसुरालय में यहाँ "बहू" अथवा 'बहुअरि" कहा जाता है।
२—यहाँ ये शब्द छन्द के हिसाब से जोड़ दिये गये हैं।

गुँदियनि गुँदियनि[१] मटिया ले आवें ;
वा मटिया की बेटी[२] गौरि बनावें ।

अर्थात्, दौंना-मरुआ की टट्टीं और खम्भे लाकर सीता जी के द्वार पर लगाये गये हैं। हमारी लाड़ली बेटी अभी कुछ भी नहीं जानती, (भोली-भाली, पूजन-विधि से अनभिज्ञ है)। वह सनी-मिट्टी की छोटी-छोटी गोंदी ले आती है; फिर उन्ही गोंदियों से "गौरि" बना लेती है। [और अब गीत गौरि के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की पूजा और उसकी फलश्रुति बताता हुआ बढ़ता है—]

पुजु बेटी[२] पुजहु गवरि के हैं ओठा[३]; जौ[४] धिय[२] होहु पियारी रे जेठा[५]।
पुजु बेटी[२] पुजहु गवरि के हैं चिकुरा[६]; जौ धिय[२] होहु पियारी रे ससुरा[७]।
पुजु बेटी[२] पुजहु गवरि के हैं आसू[८]; जौ धिय[२] होहु पियारी रे सासू।
पुजु बेटी[२] पुजहु गवरि की छाती; जौ धिय[२] होहु जनम-अहिवाती।
पुजु बेटी[२] पुजहु गवरि के हैं दन्ता; जौ धिय[२] होहु पियारी रे कन्ता[९]।

गौरि-पूजन विधि (पृष्ठ २७४) में एक दौने में भर कर साबित धनियाँ और एक-दोने में भर कर साबित जीरा पूजन-सामिग्री में रक्खा जाता है। गीत में पूजन सामिग्री का हवाला है—

हमनि[१०] पुजायीं जीरे की हैं पुरियाँ;[११]
"जियौ! जियौ!!" करहिँ अवध की हैं रनियाँ[१२]।
हमनि[१०] पुजायीं धननि की हैं किरियाँ;[१३]
"धनि-धनि" करहिं अवध की हैं रनियाँ।

१—छोटी-छोटी गोंदी (सनी-मिट्टी की)। २—श्वसुरालय में यहाँ "बहू" कहा जाता है। ३—होठ, ओष्ठ। ४—जिससे। ५—जेठ, पति के बड़े भाई। ६—केश। ७—ससुर, वर-पिता। ८—यह शब्द आँसू लिखा है, परन्तु आँसू ठीक नहीं जँचता; 'सासू' की तुक मिलाने को आसू ठीक है। ९—पति। १०—हमने। ११—पुड़ियाँ। १२—कौशिल्यादि मातायें। १३—क्यारीं।

हमनि पुजायीं कुसुम की हैं किरियाँ;
"रँगु-रँगु"[१] करहि अवध की हैं रनियाँ।

और अब पूजन-विधान समाप्त कर के, वर-कन्या के परस्पर आकर्षण-प्रेम का वर्णन है, दूसरे शब्दों में कन्या के सौभाग्य का—

उढ़रिपुत सुवर[२] चिरौ[३] गयौ गढ़ दिलरी[४]; ये लायो ये लायो
ये रँग चुनरी। पहिरौ लड़िलरी बेटा ये रँग चुनरी॥
ये लायो ये लायो ये नग मुँदरी; पहिरौ लड़िलरी बेटा ये नग मुँदरी।
तुमरौ सुहाग बखानें सहेलरी॥
कोट-तरे-तर[५] बोयी है राई; उढ़रिपुत लड़िलरी की भई है सगाई।
कोट-तरे तर[५] बोयौ है जीरौ; साजन-बाबुल[६] को भयो मन धीरो[७]।
कोट-तरे-तर[५] बोई है राई; समधी-समधी में भई हितुआई[८]।

और फिर हार्दिक शुभ कामनायें एवं आशीर्वाद—

जैसी है राम-सिया की जोड़ी;
तैसी उढ़रिपुत-लड़गहिली की अविचल जोड़ी।
दशरथ पूत जनक की हैं धीया; रामचन्द्र दुलहु सीतल-दे हैं सीया।
जैसी हैं जनक राय तुम्हरी बिटिया;
तैसी अमुकिचन्द[९] तुमरी हैं धीया[१०]।
जैसी हैं दशरथ तुम्हरी हो बहुअरि;
तैसी अमुकिचन्द[११] तुमरी है कुल वधू॥

१—रङ्गीन पहनने वाली, शोक-रहित। २—सुन्दर वर। ३—चिरंजीव। ४—दिल्ली। ५—बाहरी दीवाल के नीचे की तरफ़। ६—वर-पिता एवं कन्या पिता। ७—मन में धैर्य हुआ। ८—हितूपना। ९—कन्या पिता का नाम। १०—कन्या। ११—वर-पिता का नाम।

६

विवाह-गीत

❋ कन्यादान ❋

वैसे तो गीतकार ने कन्यादान के अवसर के लिये यह गीत रचा था, किन्तु उसके अतिरिक्त, लगुन के दिन से आग्यौनी के दिन तक, नित्य इसकी आवृत्ति की जाती है। गीत श्रीराम-सीता विवाह-घटना पर आधारित है! शब्द, रचना, भाव आदि देखते ही बनते हैं। गीत की लय मानों करुणा-सरिता की प्रवाह-धारा ही है। "हो रामा" की टेक से प्रत्येक कड़ी प्रारम्भ होती है। गीत है—

हो रामा—

कन्या जाँईं राम हो पाँईं तब यह यजन[१] सँजोयौ[२]।
यजन[१] सँजोयौ[२] दशरथ जू के ढोटा, ज्यों जन-लोग सिहाई[३]।

और सिहाने वालों, प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होने वालों, में स्त्रियाँ यहाँ घर-कुटुम्ब के मृत पुरुषों के नाम ले-लेकर मानों कल्पना को प्रत्यक्ष ही कर देतीं हैं। और फिर अगली पंक्ति में—

ब्याह सँजोयो अमुकिचन्द्र .... , दुनियाँ तमासें आई।

१—यज + न = यज्ञ। २—सज्जित, किया अनुष्ठित किया। ३—बड़ायी करना, प्रशंसा करना।

यहाँ अमुकिचन्द् के स्थान पर कुटुम्ब के सभी जीवित व्यक्तियों के नाम लिये जाते हैं, जिनका विवाह-कार्य में पूर्ण और सब तरह का योग रहेगा। इस प्रकार नाम-लिये-हुये सात से भी अधिक पीढ़ी के (मृत) पुरुषों की प्रसन्नता के हेतु, नाम-लिये-हुए जीवित घर-कुटुम्बियों ने जो विवाह का आयोजन किया है, गीत उसके ब्यौरे का वर्णन करता है—

गिरि पर्वत के खंभ मँगाये, रोपे हैं सीय-दुआरा[१]।
खम्भन खम्भन दियल उजेरौ, जग-मग जोति सुहाई।
हरे-हरे बाँसन मँडपु छवायौ, नगवेलि[२] गूँथि लगाई।
हरे-हरे गोबरु अँगन लिपायौ, गज-मोतिन चौक पुराई।
कूँम-कलिस[३] अमिरत[४] भरि धरियौ, ऊपर अमवा[५] की डार।
पियरी-सी माँटिन वेदी हो राची, अम्ब की समध[६] मँगाई।
वेदिन रचेहु पमारनि केरा, राव बट्टे-सिल[७] देऊ।

और अब इस-प्रकार यज्ञ-मण्डप व यज्ञ-वेदी विवाह-हेतु समस्त आवश्यक वस्तुओं के साथ प्रस्तुत हो गयी, तब गीत मुख्य-विषय—कन्यादान की क्रिया—पर आता है :—

तेहि सिल वैठीं लढ़गहिली[८] अमुक दे, उढ़रि-पुत[९] जौरें[१०] होई।
सोहे लढ़गहिली के करिहा पटोरे,[११] उढ़रि-पुत[९] पियरी सी धोती।

१—सीता जी के द्वार पर, यहाँ विवाह-गृह के द्वार पर अर्थात् कन्या के द्वार पर। २—पान से वनी वन्दन-वार। ३—कुम्भ का कलश, घड़ा। ४—अमृत-भरा। ५—आम का टोंहा। ६—आम की समिधा, हवन के हेतु। ७—सिल-लोढ़ा अश्मारोहण के हेतु। ८—यहाँ कन्या का नाम लिया जाता हैं। ६—छिनाल का पुत्र, दूलह के लिये उपालम्भ-शब्द। १०—पास, पार्श्व में। ११—कमर से पहनने का रेशमी वस्त्र।

सोहे अमुकिया[१] के हाथ गड़ुअरा,[२] अमुकिचँद[३] कुश की डार।
कम्पन लाग्यौ हाथ कौ गड़ुआ, कम्पी है कुश की डार।

माता-पिता के हृदय और हाथ काँप उठे। जो जन्म से लाड़ में पाली-पोसी थी, आज इस समय अपना समस्त स्वत्व छोड़ कर, इस कन्यादान-कृत्य से, सम्पूर्णतः दूसरे को सोंपी जा रही है। क्यों न काँपे हृदय और हाथ! परन्तु यही तो संसार-धर्म है। मानो घबड़ाये माता-पिता को धैर्य देती हुयी कन्या ही कहती है—

अब क्यों कम्पौ (मेरे) समरथ बाबुल, भई है धरम की बेला[४]।
धरम-इ-धरम प्रकटियौ बाबुल, जिनि[५] कोई बोलै पापी।
पापी होइ सो उठि घर जैओ, धरमी मंडप माँझ।
चन्द्र-ग्रहण नित होइ मेरे बाबुल; सुरज-ग्रहण नहिं होई।
गउअ कौ दानु नित होइ मेरे बाबुल, धिय[६] कौ दानु दुहेतू[७]।
गउअ कौ दानु पुरोहित दीजै, धिय कौ दुलहु दमादू।

सच है! संसार और गृहस्थी का यही मार्ग है, यही धर्म है। पुत्री दान मे दिये जाने के हेतु ही गृहस्थ-घर में जन्म लेती है। जैसे स्वयं कन्या ही विचलित माता-पिता को धर्म और नीति का स्मरण करा कर उनकी मनोव्यथा कम करती है। फिर, गीत में, कन्या अपने माता-पिता से वचन माँगती है—

एक वचन हम माँगे (मेरे) बाबुल, फागुन करहु विआहू[८]।
भात न बूसे,[९] गोतु[१०] न रूठै,[११] दहिअ[१२] न अमिल[१३] होई।

१—कन्या की माता का नाम लिया जाता है। २—जल की झाड़ी। ३—कन्या के पिता का नाम लिया जाता है (माता-पिता अथवा जो भी कन्यादान-कार्य सम्पन्न कर रहे हों)। ४—समय। ५—मत, वारण-सूचक "न"। ६—पुत्री। ७—दुहेतू के अर्थ के लिये देखिये पृष्ठ २१०। ८-विवाह। ९—सड़ना। १०—परिवार के लोग। ११- गुस्सा होना, कुढ़ना। १२—दही। १३—खट्टा।

और साथ ही, कन्या की बुआ (फूफी) अपने भाई (कन्या-पिता) से—

दुसरौ वचन हम माँगे बीरन[१] जौ तुम कान-धराऊ[२]।
लीलौ सौ घुड़िल, कजरिया[३]
बाँकौ, फँूद-फुँदारा[४] बाकी बाग[५]।
सो लै देउ लड़िलरी के दुलहा, बिहँसत चलइ जमाई[६]।
तिसरौ वचन हम माँगे बीरन, जौ तुम कान धराऊ।
खुटियाँ तुराओ नानुलअ गढ़ाऔ (?), बिहँसत चलइ जमाई।

और इस प्रकार हृदय-कँपा कर कन्या-दान का कार्य सम्पन्न हुआ। विवाह-कार्य की समाप्ति पर, ध्रुव-दर्शन कर के—

ध्रुव की तरैया जब औझप देखी, तब धिय देति असीसा।
"खइयौ पीजौ मेरे आज़ुल बाबुल, जीजौ लाख बरीसा।"

और दर्शकों का भी आशीर्वाद है कि नव-विवाहित दम्पति सुख-सौभाग्य-समृद्धि आदि के स्वामी हों। फिर भी माता-पिता के हृदय में एक लकीर-सी दिखाई देती है—

घर की खिलौना मैंने दई है लड़ियरी, तउअ न ठगुपति होई।

और उपस्थित-व्यक्तियों के नयनों का जल आँचल में, और माता के हाथ की झाड़ी से अनवरत, न टूटनेवाली, धार से गिराया हुआ जल कन्या-दाता, कन्या, एवं ग्रहण-कर्त्ता श्रीवर के हाथों को भिंगोता हुआ, तले रक्खी कन्यादान की परात में एकत्र होता रहता है। टप....टप....

१—भाई। २—सुनो। ३—तेलिया-कुम्मेत। ४—फुँदना-लगी। ५—लगाम। ६—दामाद।

भाँवरि

जैसे भाँवरि का मंत्र ही हो—यह भाँवरि-गीत प्रत्येक भाँवरि के फेरे पर गाया जाता है।

बीन[१] भेरि[२] मृदङ्ग बाजै, गीत मङ्गल चारु[३]।
वेद मुनियन[४] परइँ भाँवरि, सबरे जनकपुर[५] राजु
रामचन्द्र[६] सीतल-दे[७] की भाँवरि परें॥

सप्तपदी पर महिलायें "वचन" गातीं हैं, जो आधुनिक गजलों की लय पर पीछे बनाये गये हैं, और हलुये में कंकड़ की तरह कटकते हैं।

शाखोच्चार के गीत

शाखोच्चार का प्रथम गीत "हम घर साजन" (पृष्ठ ४१०) है, जो बरात के घर में प्रवेश करते समय होता है। फिर—

गिरिधारी जू की मेहतारी

Innocent सुन्दर नाम। यशोदा माता का। किन्तु किसी अति-रसिक कवि की कृति है। काव्य में एक प्रकार (Kind) होता है, जिसे "कहि-मुकरी" कहते हैं। सब कुछ—अश्लील भी—कह कर, पीछे के दो चार शब्दों ने अर्थ बदल दिया, कह कर मुकर गये—

१—वीणा। २—भेरी। ३—सुन्दर। ४—मुनिगण वेद-मंत्र पढ़ रहे हैं। ५—यहाँ कन्या के गाँव का नाम। ६—यहाँ वर का नाम। ७—यहाँ कन्या का नाम लिया जाता है।

गिरिधारी-जू की मेहतारी, समधिन न्यौतें आयीं।
श्री वृषभानु नन्द-जू के ढोटा, नख-सिख लौं पहिरायीं।
रहसि घर समधिन आयीं जू॥

सजन सुहाईं समधिन आईं, देखन घर की शैली।
खोलि हुलासन बैठी दारी समधिन, मोहरनि कैसी थैली।
रहसि घर०॥

समधिन कों हाथी कौ चहियें, आछौ नीकौ पूरौ।
रंग रँगीलौ अरु चटकीलौ,—कों हाथी दाँत कौ चूरौ॥
रहसि घर०॥

समधिन कों घोड़ा कौ चहियें, सह घोड़ा असवार।
हुक्का चिलम तमाखू चहियें,—कों घोड़ा कौ चिरवरदार।
रहसि घर०॥

समधिन कों पलिकी कौ चहियें, पलिकी के चारौ कहार।
साज-पाट पलिकी को चहियें,— को पलिकी कौ बैंठन-हार।
रहसि घर०॥

× × ×

और इसी प्रकार, प्रत्येक अन्तरा का चौथा-चरण सब कुछ कह कर मुकर जाता है। आगे एक जगह साहित्यक-शोभा बिखरी पड़ी है—

हँसनि दसन-चौका की चितवनि, खाये दरो ने पान।
ठोढ़ी की गाढ़ बसौ मन मेरौ, जाको संग न छोड़ो जाय।
रहसि घर०॥

× × ×

नीचें समधी ऊपर समधिन, दोऊ मिलि देत असीस।
चिर-जीजौ दूलहु औरु दुलहिन, जीजो लाख बरीस।
रहिस घर०॥

❊ कालारिया ❊

जैसा नाम से ही स्पष्ट है, शराब-खाने का दृश्य उपस्थित किया गया है। न मालूम चतुर्वेदी-ब्राह्मणों में यह गीत कैसे प्रचलित हो गया। सम्भवतः शराब-खोरी को अति-निकृष्ट कार्य समझ कर ही—

माई केहाँ बइयै जौ-चना, अरु केहाँ रे बइयै भाँग।
कालारिया मतवारिया॥
माई जनकपुर बइयै जौ-चना, अयोध्यारे बइयै भाँग॥
कालारिया० ॥
माई हमरे समधी मद पियें, मद चख पियें,
अरु समधिन भरि-भरि देइ॥ कालारिया०॥

× × ×

"नन्नी बूँदे", "बड़े साजन" "लम्पट लीलरिया" आदि सब इसी प्रकार, सुनने ही में भले लगने वाले, गीत हैं।

❊

❊ बाती-मिलायी ❊

इस अवसर पर गोस्वामी-जी की एक पुण्य-कृति गायी जाती है।

बैठें बीती जात सब राती;
लाल तुम काहे न मिलावत बाती।
कै जननी भगिनी सिखराये, कै बाती लागे ताती॥

बाती देखि शङ्क[1] बहु बाढ़ी, लिखहु मातु कौं पाती॥लाल०॥
कठिन धनुष शंकर को तोर्‌यौ, मारी ताड़का घाती।
यह बाती लै जाउ अजुध्या, मातु कौशिल्या काती॥लाल०॥
मौन भये कछु बोलत नाहीं, बेगि बुलावौ बराती।
माँगन होय सो माँगौ लाल-जू, मणि मुकता अरु हाथी॥
लाल०॥
तब रघुवर हँसि कें यों बोले, हमरे कुल नहिं रीती।
यह बाती चारौ मिलि कातीं, तुम हमरे सँग जातीं॥लाल०॥
कोई सखी मुख मोरि हँसन लागी, कोई सखी अलसानी।
'तुलसिदास' उलटी चलि आयी, रघुवंशिन की बानी॥
लाल०॥

❊

१—शङ्का! सम्भवतः यहाँ वह इशारा है कि संध्या को बत्ती अथवा हवनाग्नि देखते ही ताड़का दौड़ आती थी; और मुनि-आश्रम भ्रष्ट करती थी।

❊

नोट—विवाह गीतों में भाँवरि से पहले दूलह के लिये प्रयुक्त "उढ़रि-पुत" शब्द का अर्थ "छिनाल-स्त्री का पुत्र" किया गया है। एक मत के अनुसार यह शब्द "ऊढ़ा" से बना है, जिसका अर्थ विवाह होने वाली कन्या से है। यदि यह ठीक है, तो शुद्ध शब्द "उढ़रि-पुन" न हो कर "ऊढ़ा-पति" होना चाहिये था। किन्तु व्यवहृत "उढ़रि-पुत" ही होता है, जिसका शब्दार्थ उपरोक्त ही ठिक समझा गया है।

७

प्रीतिभोज

प्रीति-भोज एक समय लेने वाला कार्य है; और इसी में "गारीं" भली-प्रकार गायीं और सुनी जातीं हैं। पेट और मन सुस्वादु भोजन से भरता है अथवा सु-तीखीं 'गारीं' से, सो भगवान जाने! अस्तु। जैसा अन्यत्र लिखा गया है, प्रीति-भोज की तैयारी पूरी होने के साथ, ज्यों ही बरात आने को होती है, "मंडप" गीत (पृष्ठ ३९२) आरम्भ हो जाता है। फिर—

❊ बलि-पाउनरे ❊

बलि-पाउनरे, अर्थात राजा बलि के पाहुने, वामन-भगवान, विष्णु के अवतार। वर विष्णु-रूप माना गया है; इस लिये वर के हेतु यहाँ यह शब्द व्यवहृत हुआ मालूम होता है। गीत में दो भिन्न प्रकार के छन्द गुहे हैं। शब्द भी टूटते हैं। बहुत उलट-पुलट हो गये ज्ञात होते हैं, लुप्त भी हो गये हैं। चूँकि गीत स्वर प्रधान है, छन्द प्रधान नहीं, इस लिये मालूम नहीं होते।

ये बलि-पाहुन रे आये हैं!
सहरष फूल वाटरियाँ[१]।
फूल बिखेरों जेहि बाट[१] साजन आये।
ये सजन आये सु-मन भाये, छैल इच्छा पूरियो।
बहु पान फूल बिखेरि बाबा, जँह सों साजन आइयौ॥
तुम सोई वर आनहु बाबा, जो वर त्रिभुवन मोहे।
वर रूप [खानि] सुजान सुन्दर, रूप त्रिभुवन मोहे।
जाके रतन कुण्डिल कान झलकें, सेहरौ सिर सोहये।
सिर सेहरौ सोहै दुलहा अमुकिचन्द,[२] रहसि मालिन गूँथि ल्यायी।
यह रहसि मालिनि सेहरौ गुहि, चन्द एक बखानियौ।
सेहररौ अमुकिचन्द[२] सीस सोहै, गूँथि ल्यायी मालिनी।
ये तुम तुरियाँ[३] पलानौं बाबा, और घिसि कूँकूँ रुरा।
अब चंदि चलब जननी के जाये, मुख मोरि लेत मोरा।
तमोर[४] दै मुख चलौ ब्याहन, तम्ब-तूरि[५] बजाइयौ।
चलि तन्त तुरग[६] न मोर बोलै, राग बाग[७] हिँकारियो[८]।
एते री चोररियनु[९] दीप सँजोऊँ, वेद की झनकार नी।
जँह वेद की झनकार सुनि कें, गीत गावें कामिनी।
बहु फिरन लागे फेरे,[१०] भई विरद रमनियाँ[११]।
जहँ घने बम्मन भाट बोलें, राग भाट हँकारियौ।
अमुकिचन्द[१२] नन्दन होउ, अब चलि व्याहि बहू लै आइयौ।
जहँ सुनि सहेलीं होइ गहिलौ मोरियौ मंगल गाइयौ।

❊

१—रास्ता, बाट। २—दूलह का नाम। ३—घोड़ी। ४—पान। ५—तुरही। ६—घोड़ी। ७—लगाम। ८—हिनहिनायी। ९—चत्वरों, चबूतरों। १०—भाँवरि। ११—रमणीय। १२—वर के पुरखों का नाम।

❋ चन्दन चौकीं ❋

गीत में एक अजीब श्लेष है। आने पर, पिता के पुत्र समझे जाकर, ठीक-ठीक सत्कार होता है—चन्दन की चौकीं, सोने की कील जड़ी पानों की पत्तल, दूध से पाँय पखारना, आदि। परन्तु जैसे ही जन्म का रहस्य खुलता है, वैसे ही सत्कार-वस्तुयें बदल जाती हैं; और उनके स्थान पर काठ की चौकी, नीम की टाँकी जड़ी पत्तों की पत्तल, पानी से पाँव पखारना आदि हो जाता है। गीत की प्रत्येक कड़ी "वे दानु दे" की टेक से आरम्भ होती है।

वे दानु दे—

वे चन्दन चौकीं साजीं ॥
सोने की कील सम्हारी; पाननि की पातरि डारी।
लौंगन की कील सम्हारी; तेरे दूधन[1] पाँय पखारीं।
वे गंगाजल उबटि नहाये; धरती लै सब बैठारे।
सब लरिका कासों जाये; पुरिखन के पुण्यन पाये।
वे राम दिये फल पाये; सूरज की किरनन जाये।
चन्दा के पहसत[2] जाये, [विधना के दीनें पाये।]

तेरी माय सो गंगा, बहिन सो गंगा, अरौसिन गंगा परौसिन गंगा।
ईती गंगा पीती गंगा, जो रे खिलावै सो भी गंगा, ओतु-गोतु सब चंगा।

वे काठ की चौकीं सारीं; लोहे की कील सम्हारीं।
पत्तन की पातरि डारीं; टाँकिन[3] की कील सम्हारीं।
तेरे [नीरन] पाँय पखारीं; गंगाजल उबटि नहाये।
ये दूल्हा कासों जाये; हाथिन के हलकन[4] जाये।
तेरी माय सो दारी....... ओतु गोतु सब भँड़ुआ।

१—दूध से। २—चन्द्रोदय से पहले के उजाले का समय। ३—नीम की सूखी टाँकी। ४—हाथियों के झुण्ड।

❋ अति प्रचण्ड की गारो ❋

कवि का नाम है बाल-कृष्ण। ज्ञात होता है, यह छत्रसाल के दरबारी कवि थे। भाव व भाषा की दृष्टि से "गारी" का काव्य बहुत ही ऊँचे दर्जे का है, विश्व-विद्यालय के पाठ्यक्रम के स्तर का—

अति प्रचण्ड जोवन गुमान सों, समधिन गिनति न काहू;
अहो राजत समधी समधिन घर, हस्ती मंद चलति गज चालि।
पाटी[1] पारि माँग मुक्ताहल,[2] सीसफूल अति राजै।
मनों मृग-पाँति[3] श्याम-घन-दामिनि[4], उपमा यह छवि छाजै॥
अहो राजत०॥

युगल-करनि[5] तरिमन[6] जड़ाव, जगमगति ज्योति अति राजै।
कैसें कहों बनाय भाव सों, औझप छींट (छटा ?) विराजै॥
अहो राजत०॥

नासा-हीरु[7] चीरु सुख मानिक, चुभक-चालि[8] अति शोभै।
मनों कि भौंह भाव अवरेखी[9], चितवनि में चित चोभै[10]॥
अहो राजत०॥

खायें पान गुमान वेष, मनों रूप विधाता छाकी।
नैन सरोज कपोल गोल की, कहि न परति गति जाकी॥
अहो राजत०॥

अति लौने[11] सोनें के कुच दोऊ, कसे हैं कंचुकी गाढ़े।
मानहुँ पूजा शिव-प्रतिमा की, मौन भाव सों ठाड़े॥
अहो राजत०॥

१—पटियाँ, गुहे हुये केश-भाग। २—मोती की लर। ३—हिरनों की पाँत। ४—काले बादलों में बिजली। ५—दोनों हाथों में। ६—हीरा। ७—नाक की लौंग का हीरा। ८—चुभने वाली चाल। ९—टेढ़ी। १०—चुभा लेना, वेध लेना। ११—बहुत सुन्दर।

अँगिया लाल माल मोतिन की, छैल-छबीली छाती।
उदबुद[१] बयस उमँग जोवन की, फिरति मदन-मद-माती॥
अहो राजत०॥
लहँगा लाल साल साँटन कौ, सोनें-भींजी[२] सारी।
सिर खोलें सकुचति नहिं समधिन, दूल्हा माय तुम्हारी॥
अहो राजत०॥
कदलि जंघ, कटि केहरि, नहसुत दाड़िम गाढ़े साँचे।
नखसिख बान बनी दारी समधिन, समधी जेहि रँग-राँचे॥
अहो राजत०॥
नौघढ़ साल सुघढ़ समधी कों, समधिन चाहति ऐसी।
बैठि निशंक प्रचण्ड जंघ पर, मनहुँ बिहाता-जैसी॥
अहो राजत०॥
बाल कृष्ण छत्र साल मही मद, कहु कैसे बनि आवै।
निशि दिन ब्यारि भई नित डोलै, जार पियादनु लावै॥अहो राजत०॥

"नौघढ़ साल सुघड़" समधी और "नखसिख बान बनी" "चितवनि में चित चोभे" वाली समधिन, क्या साहित्य में इससे सुन्दर नायक और नायिका और कहीं मिलेंगे?

* घूँघटा *

घूँघटा का काव्य-सौष्ठव, "अति प्रचण्ड" की भाँति ही, साहित्यक और ऊँचे दर्जे का है। इसमें कवि का नाम नहीं मिलता।

दारी समधिन तेरौ घूँघटा, लटकै हो साजन[३] ओर रे॥
मुरि-मुरि[४] मारै घूँघटा, दुरि-दुरि[५] चितवति जाय।

१—उठती हुयी। २—कलावत्तू के काम की। ३—कन्या-पक्ष-सम्बन्धी की ओर। ४—घूम-घूम कर, फिर-फिर कर। ५—छिप-छिप कर।

घुलि-घुलि राँची[१] छैल सों, छिप-छिप लेति बुलाय॥ रे दारी०॥
पाटी[२] पारै मोंम सों, अलक झलक भरै माँग।
आई लहरि[३] फुलेल की, भँमर करें गुंजार॥ रे दारी०॥
बन्दन की बेंदी बनी, हँसि-हँसि मोरति भोंह।
चौका[४] चमकै चोंप-सों,[५] बिहँसि-बिहँसि खाय सोंह[६]॥
रे दारी०॥
काननि तरिमन[७] नग जड़े, रस फुन्दा मखतूल[८]।
गालनि भँवरु[९] भमाइ के, जीभ कमल जैसी फूल॥ रे दारी०॥
दुरहुर-दुरहुर[१०] में बहै, समधिन बैठी न्हाइ।
मेंढ़क चूमा लै गयो, बगुला रहे लुभियाइ॥ रे दारी०॥
ब्यारि[११] चलै पुरवाइया, औरु झपकन[१२] को मेह।
आँगन डारि खटोलना, परति मदन के नेह॥ रे दारी०॥
अँगिया अंग न भावई, खेंचि न अंचरु देइ।
खूँट पिछौरी[१३] कौ गहै, मसकि-मसकि रस लेइ॥ रे दारी०॥
झीनों पहिरै झिरझिरौ, दे झिलमिल की ओट।
निरलज लाज न आवई, आवति है बड़े भोर॥ रे दारी०॥
लाउन[१४] लिखेहु[१५] पपीहरा, अंचल तीतुर मोर।
आनि गमाँके गोंहड़ें, यहि तौ अमुको कौ जार॥ रे दारी०॥

१—रङ्ग-रेली करना, रंजित होना। २—पट्टी, केश-भाग। ३—सुगंध की लहर। ४—सामने वाले नीचे-ऊपर के दो-दो दाँत। ५—जैसे होड़ लगा कर। ६—सौगंध, क़सम। ७—करनफूल। ८—काला रेशम। ९—गड्ढा। १०—बहते पानी में, नदी में। ११—हवा। १२—कभी हलकी बूँदों बरसना, कभी बन्द होना। १३—ओढ़नी। १४—लावण्य-युक्त, सुन्दर। १५—निकासी के काम से काढ़ा हुआ।

दिल्ली ढूँढ़ी आगरें, ढूँढ़ी धुर गुजरात।
पायी समधिन कुंज में, मुरली-मनोहर[1] साथ ॥ रे दारी० ॥

सजन-भेंट

गीत-कार की दो "छाप" लगीं हैं, रामदास और कृष्ण दास। हो सकता है कि राशि का नाम रामदास हो और "चेरौ नन्द मेहर के घर कौ" के नाते से वही अपने को कृष्ण दास लिखने लगे हों। गीत में विविधि व्यंजनों के नाम हैं—भूख जगाने वाले (appetizing); और इतने अधिक-संख्यक कि "आधे परसा परसत हारे। धोइ हाथ निज सदन सिधारे" (आधे परसइया थक कर, बीच में ही हाथ धोकर, अपने-अपने घर चले गये)।

सजन-भेंट वृषभानु श्याम जू की, चलौ है हरि की गहि बाँह ॥
हाँ जू ॥
बनि बरात जब ब्याहन आये। मोहन मंडपवा हाँ हाँ जू ॥
समधी लोग कुटुम बहु भाँती। न्यौंते सब घर-घर के बराती ॥
धोये पाँय पाँवड़े डारे। कंचन रुकम रुपैया वारे[2] ॥
केसरि में अरगज घिसि ल्याये। विश्नु-तिलक बहु भाँति लगाये ॥
आसन मोर-सिंहासन दीनें। वेद पढ़त चौबे जसु लीनें ॥
नई-नई पातरि दौना डारे। मूँग भात घृत ऊपर वारे ॥
पुअउ पिराँक जलेबी फैनी। सीरा सहित रचीं मृग-नैनी ॥
लाभन लाड़ू सिमईं अनरसे। [विंजन भाँति भाँति के परसे] ॥
माँठे मीठे सकल समोंसे। गूझा रुचिर मनोहर गूँठे ॥
रुचि पपरी [सोहन] मुर कोली। पापर पेठा मगद छुहारी ॥

१—कन्या पक्ष के किसी आदमी का नाम। २—निछावर किये।

कोमल भटउ सेंम अरु घुइयाँ। रुचिकर गौंठीं सरिसर सुइयाँ ॥
चिकिया मिलौनी वोजी तोषीं। ता पाछें बकबकियाँ परोसीं ॥
तीन भाँति कीं बरीं बनाईं। सब हाँड़िन की जाति सुहाई ॥
तान भाँति के बरा बनाये। खारे खट्टे और दधि-बोरे ॥
तीन भाँति की बल्लें बनायीं। गाढ़े दही घोरि लपिटायीं ॥
चूरन साग चाट चटकारे। लौंग मिरच दे चूक सम्हारे ॥
धोई दारि मूँग की कीनी। तामें निबुआ केसरि दीनीं ॥
आछौ उज्जल भात पसायौ। तुर्त फुर्त माखन लै तायो ॥
शिकरन शरबत की अधिकाई। देखि हँसे दूलह यदुराई ॥
परसन निकरे वेष सुहाये। श्याम सुरति अनुराधे हाँ जू ॥
आधे परसा परसत हारे। धोइ हाथ निज सदन सिधारे ॥
बड़्डे बरा बरातिन खाये। छोटे-से पीछे तें आये ॥
निबुआ छोलि धरौ ढिंग आधौ। जेंऔ मुरली मनोहर माधौ ॥
हाँकि बियारि करी मनुहारी। जेंऔ समधी समधिन बलिहारी ॥
कप्पड़ दिये आनि बहु भाँती। किये हैं तिलक पहिराय बराती ॥
इहि विधि सकल गोप पहिराये। दे बारा डेरा पहुँचाये ॥
"रामदास" जन द्वारें ठाड़ौ। सो प्रभु कौ पनिहारौ हाँ जू ॥
"कृष्ण दास" कहत गिरिधर सों। चेरौ नन्द मेहर के घर को ॥

ऊनई ऊनई डोलै

सो ऊनई[1] ऊनई डोलै। निशि-दिन समधिन चन्द-चकोरै[2] ॥
पाटी-पारि[3] तिलक अविचल सोहे, केसरि आड़ दई बहु विधि सों।

१—अनमनी, अन्यमनस्क। २—जैसे चकोर चन्द्रमा को देखता है वैसे देखती है। ३—माँग सम्हाल कर, केश गुह कर।

कान-तरौंना,[१] नाक नक-बेसरि,[१] गालनि पुरियाँ कपूर की सोहै ॥ सो० ॥
गले में कंठसिरी[१] मनि सोहै, चन्द्रहार[१] वाको सब जग मोहै।
बाँह बरा[१] बाजूबंद[१] सोहै,
झबियाँ[१] बनीं समधिन की लाल पुहनि[२] की ॥ सो० ॥
कर कंकन[१] मोतिन के गजरा,[१]
छछरि चुरीं[१] खुलि बनीं पहुँचिन[१] में।
दसऊ अँगुरि दस मुँदरी[१] हो सोहे,
आरसी[१] समधिन की सब जगु मोहे ॥ सो० ॥
पाँय पैरियाँ[३] घुँघुरू विछुआ,[१] अनवट[१] नइयाँ भमर के फेरे[४]।
बरस्यो[५] चहति साजननि पै समधिन, हरे रेशम कौ घूँघट पट सोहै ॥ सो० ॥
लहँगा लाल गुलाबी पिछौरा, अंगिया बँधी चारि बन्दन सों।
करि सिंगार पीढ़ा चढ़ि बैठी, सैननि यार लेति जोड़िन सों ॥सो०॥

❋

* दूल्हा *

भाँवरि से पहले दूल्हा के लिये "उढ़रि-पुत" शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। किन्तु विवाह होने के पश्चात् दूल्हा इस घर का मान्य हो गया; उसे घर क्या, पूरा गाँव ही मान्य कर के मानेंगा; और व्यक्तिगत-रूप में वह गालियों का लक्ष न बनाया जायगा। परन्तु उसकी माता, बहिन, फूफी....आदि। इन्हें तो छोड़ना उचित नहीं। गीत में कैसा धर्म-सङ्कट बताया गया है—

१—एक प्रकार का आभूषण। २—लाल रेशम में पोहीं हुयीं। ३—पहन कर। ४—चक्करदार, उमेंठिमाँ। ५—कृपा करना, दया करना।

सुनि दूल्हा रे! तोहि गारी कहा कहि दीजै रे।
सुनि दूल्हा रे! तेरी बहुत बड़ाई कीजै रे ॥ सुनि० ॥
क्या बहुत बड़ाई करौं, तेरी माइ लंगरि[१] है बुरी।
निशि-दिवस गलियनि फिरति डोलै,
निरलज्ज डोलति है कहा कीजै रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
समधिन फिरति मदन मद छाकी रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
फिरती मदन-मद मद छाकी, कुच दोऊ ढाँकै नहीं।
वह चितइ चोप[२] लगाइ चहुँ दिशि,
विकल भई निसि डोलै रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
समधिन मिली है हुरकियन गावे रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
मिलि हुरकियन सँग गीत गावै, काम-रँग में राँची[३] है।
उज़बक, रुहेले, मुग़ल, सैयद,
अमुको तुरकनि हूँ नहिं छोड़ै रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
अमुका पियहि कलार[४] सँग 'पानी' रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
कल रट्ट[५] के सँग पियहि पानी, आपु चोखी कलारिनी[६]।
वह लोक-लज्जा सबहि धोई,
चपरो[७] भई है चोखी कलारिनी[६] ॥ सुनि दूल्हा ॥
अमुको सुनियति है त्योंनारी रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
भात वाकौ कटकटौ है, मूँग वाकी दुर-दुरी।
अरु झोर वाकौ लदफदौ है,
फटी-रोटी घियहि माँहि बहावै रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
अमुको पहिरै झीनी सी सारी रे ॥ सुनि दूल्हा ॥
झीनी सी सारी बाँह सोहे, अंचरा पर किंकिनी[८]।
कटि किंकिनी[८] पर लसैं निम्बू,
अमुको को देखि सबहि मन मोहे रे ॥ सुनि दूल्हा ॥

१—ढीट। २—चाह, इच्छा। ३—रँग कर, रंजित होकर। ४—शराब बनाने और बेचने वाला। कलारों का झुण्ड। ६—कलार की स्त्री। ७—चंचल, चालाक। ८—करधनी।

* सारिँग *

सारंग एक पक्का राग है, सम्भवतः प्रारम्भ की उठान सारंग-राग में कभी बाँधी गयी हो, और उसी कारण हमारे इस गीत का नाम "सारिँग" पड़ गया हो। गीत "चटक-बदरिया" की भाँति नटों के खेल से, प्रायः उन्हीं शब्दों में, प्रारम्भ होता है, परन्तु आगे चल कर गीत की गति शृङ्गार से अश्लीलता की ओर बढ़ जाती है। प्रारम्भ के बोल हैं—

हो ओ-ओ····सारिँग !
केहाँ के नटबेड़िया, बँस-बेड़िया, झँझनारिँग।
केहाँ रोप्यौ है बाँस मँहारिँग ॥
अजुध्या के नटबेड़िया, बँस-बेड़िया, झँझनारिँग।
जनकपुर रोप्यौ है बाँस मँहारिँग ॥
बाँस चढें समधिन मूतियो, झँझना रिँग।
पड़ौ है अमुकि चन्द कान मँहारिँग ॥
तूँ तौ उतरि उतरि नट-बेड़िनी, बँस-बेड़िनी, झँझनारिँग।
तेरे सजन मरत हैं लाज मँहारिँग ॥
दारी समधिन बिड़उन[1] नीकरी, झँझनारिँग।
और भड़ुआ अमुकि-चन्द साथ मँहरिँग ॥
समधिन अपु कों तो बिरहुलि चूनरी, झँझनारिँग।
और अमुकि-चन्द कुलह[2] कबारु[3] महाँरिग ॥

× × ×

* ज्योंनार (छोटो) *

गीत बड़े अच्छे शब्दों में, काव्य-मय भाषा में, चलता है, ताकि ध्यान से सुना जाय। आगे चल कर श्लेष हैं, किन्तु अश्लील नहीं;

१—घूँमने, (बँगला भाषा में "बेड़ाते")। २—टोपी। ३—रद्दी।

सुन्दर व्यंग हैं। बराती प्रीति-भोज में जीमने के लिये आये हैं। घनश्याम की बरात, वृषभानु की छत, द्वापर-युग; कृष्ण-काव्य—

जाकें आये हैं श्याम बराती, लला-मोहन वृषभानु कें आये।
आये आदर करि लीजै। कंचन के डेरा दीजै ॥ लला० ॥
वृषभानु बड़े बड़-भागी। जुरि-मिलि कें बैठी पाँती ॥ लला० ॥
चन्दन की चौकीं डारीं। सोने की कील सम्हारीं ॥ लला० ॥
भरि धरी हैं शीतल जल झारी। पग धोओ कृष्णमुरारी ॥ लला० ॥
पाननि की पातरि डारीं। लौंगनि की कील सम्हारीं ॥ लला० ॥
भातनि के डलवा[1] डारे। मूँगनि के कोट[2] कँगारे ॥ लला० ॥
सिकरन की नदियाँ बहायीं। घिरतन के बहे हैं पनारे ॥ लला० ॥

और हमारे बराती सुरिचिपूर्ण वर्णन को बड़े चाव से सुनते रहे; सुन्दर शब्द, सुन्दर भाव! परन्तु जैसे गीत को अवसर के उपयुक्त बनाने के लिये महिलायें अधीर हैं-और फिर वही—एक-एक नाम ले कर, चुन-चुन कर सत्कार!

तोहि कहा कहि दोजै गारी। तेरें सात-बाप एक महतारी ॥ लला० ॥
तेरी फूफी कुन्ती दारी। क्वाँरी सूरज संग सिधारी ॥ लला० ॥
तेरी बहिन सुभद्रा दारी। बु तौ अर्जुन संग सिधारी ॥ लला० ॥
तेरी भौजी द्रोपदी दारी। बु तौ पाँच पति की एक नारी ॥ लला० ॥
सातौ बाप अनी[3] अन-भाँती[4]। जुरि-मिलि कें बैठे हैं पाँती ॥ लला० ॥
गारी गाँवें गोप कुमारी। पट दै दै कें हँसे मुरारी ॥ लला० ॥
यह गारी गोपालहि भावै। सब पंचनि के मन आवै ॥ लला० ॥

१—डलियाँ, टोकरीं। २—शहर-पनाह, दीवाल। ३—फौज। ४—बेतरतीब।

उपधि-वितरण

भोजन प्रायः समाप्त हो चले। गरम दूध की मनुहार है। कान किसी दूसरी ओर लगे हैं। उपाधि-वितरण जो होने वाला है ; और—

"एजी सुक्रुर की राति सनीचर को भोरु ;
नोंन की डरी, तेल की परी ;
जाने न देखी सनीचर की सूत्ति ;
सो देखै जा बराती अमुकिचन्द की मूत्ति ॥
आओ री बहुएँ बिटियाँ देखि देखि जाउ ॥"

इतने लोगों के बीच में अकेले जिसका नाम इस सम्मान के लिये चुना गया, वह अमुकिचन्द भले ही कुछ असन्तुष्ट हों, पर और सब बराती-घराती प्रसन्न हो रहे हैं। उपाधि-वितरण करने वालीं यह ध्यान रखतीं हैं कि अमुकिचन्द घरात के गाँव में किसी के दामाद, भानजे, आदि तो नहीं हैं।

और फिर अन्त में "चुनी-मुनी" बहनों के कथोपकथन में तो सारे विवाह-कार्य की जैसे audit report ही पेश कर दी गयी। वर-पक्ष से कौन सी रस्म अदा करने में भूल या त्रुटि हुयी, कौन सा कार्य करने से बाक़ी रह गया ; कहाँ वर-पक्ष ने अति-लोभ किया, आदि पूरी बातों की जैसे दिन-ब-दिन बारीकी से जाँच होती रही है ; और अभी इस महा-मनोरंजक कथोपकथन में मुनी ने चुनी को और चुनी ने मुनी को स्त्री-समाज में सुनी हुयीं सारी बातें, अपने मतामत के साथ, सुना दीं ; नाटकीय पुट के साथ। सभी आनन्द ले रहे हैं।

ढोलियरा

भगवत्कृपा से विवाह के सभी कार्य निर्विघ्न, हँसी-खुशी, समाप्त हो गये। प्रीतिभोज के अन्त में, जब बरात ज़ीम कर उठती है, तो

कन्या पक्ष की ओर से जिस-जिसने विवाह-कार्य में योग दे कर इसे सफल बनाया है, उसे-उसे विजय-बधाई देना आवश्यक है। बरात हाथ धो रही है। बाजे वाले ढोल आदि सम्हाल कर प्रस्तुत हो रहे हैं। और, महिलाओं का विजय-धन्यवाद सूचक गीत—

ढोलियरा गहगढ़[1] ढोल बजाउ ;
अमुकिचन्द जीते भात दे।

और सबके नाम और कार्यों की प्रशंसा के साथ, विजय-वर्णन की बधाई और धन्यवाद दिये जाते है। यहाँ तक, कि—

नाऊ कौ जीतौ बोलौ दै।
बारी कौ जीतौ पातरि दै।
कुम्हार को जीतौ माट दै! आदि

राम-राम

चलते-चलाते, कन्या-पक्ष की गली से डेरों की ओर जाते-जाते, बरातियों को, पीछे छत से सुनायी देता है बहनों का स्नेह-स्वर!

जौ तुम अमुकि चन्द जात हौ, हमारी राम-राम है।
भैया! एकु सँदेसो लै जाउ, हमारी राम-राम है।
समधिन सों यों जाइ कहियो, हमारी राम-राम है।
मेरी लाढ़ौ कों नीकें राखियो, हमारी राम-राम है॥

विदा और बिछोह की करुणा में गीत का स्वर जैसे धूमिल पड़ता जाता है। हर उत्सव का उतना ही बड़ा अवसाद है।

१—घोर उमंग और आनन्द से भरा।

८

वर के घर के गोत

* मोतियरा *

वर के लगुन चढ़ने के दिन यह गीत गाया जाता है। गीत-कार या तो मुसलमान है, या उर्दू-दाँ। यह गीत किसी और समाज से लिया गया ज्ञात होता है।

थार भरे माँ मेरी मोतियरा सों माँट।
साजन घर कों मेरो शहजादौ सजि चलौ ॥
कौनसई कौ माई यह दलु जाय ;
कौनस ऊपर मेरो शहजादौ सजि चलौ ?
सब पुरिखन[1] को माँ मेरी यह दलु जाय,
साजन[2] ऊपर मेरो शहजादौ सजि चलौ ॥
अमुकिचंद[3] कें माँ मेरी हाथियरा सौ-साठि[4];
साजन ऊपर मेरौ शहजादौ सजि चलौ ॥
समधी कें माँ मेरी चुअइ[5] गुलाल,
रँगहि अमुक-कुँअरि[6] [सोभिल] चूनरी ॥

१—यहाँ वर-पक्ष के मृत-पूर्वजों के नाम लिये जाते हैं। २—यहाँ कन्या पक्ष के सम्बन्धी-जी का नाम लिया जाता है। ३—वर-पक्ष के जीवित कुटुम्बियों के नाम। ४—एक सौ साठ। ५—टपकता है। ६—वरपक्ष की स्त्रियों के नाम।

आछौ सौ माँ मेरी चन्दन कटाय,
मैं री गढ़ाऊँ शहजादे की पालकी ॥
माँचौ[1] बनै री माँ मेरी भमर-भमाइ[2] ;
पाटी-सिरएनि[3] मेरे शहजादे कें आरसी[4] ॥
माँचौ[1] बिनाऊ[5] माँ मेरी रेशम चुनि-चुनि बान[6] ;
अद्‌माइन देहौं शहजादे कौं मखतूल[7] की ॥
माँचें बिछाऊँ माँ मेरी अनवटिया[8] की सेज,
सिर आलमशाही[9] मेरे शहजादे कें गैंड़ुआ[10] ॥
बिछाऊँ री माँ मेरी सेज जुही के फूल ;
घर महकाऊँ[11] मेरे शहजादे कें केवरो[12] ॥
तेहि चढ़ि [बहुअरि] जावेगी[13] लाल[14] ;
ओढ़ि पियारी शहजाहे की चूनरी ॥

शहज़ादा ब्याह करने गया ; कल्पना ने ताना-बाना बिन कर यहाँ तक का विस्तार तो सब बता दिया ; परन्तु विवाह में मिला दहेज ? उसका वर्णन तो छूट ही गया ?

बनड़ा लायौ री माँ मेरी असगढ़ ढोइ ;
हंडा ले आयौ शहज़ादौ अनमोल कौ।
बनड़ा लायौ री माँ मेरी मोहरें पचास ;
रुपया तौ लायौ शहजादौ डेढ़-सौ ॥

और अन्त में उल्लास—

जौ तोइ री अहीरिया[15] दहाय की साध ;
नाँदनि[16] दह्यौ[17] जमाय लै ॥

१—पलँग। २—घुमावदार बिनावट के साथ। ३—सिरहाने की पाटी से। ४—आइना, शीशा। ५—बिनवाना। ६—रस्सी, डोरी। ७—काला रेशम। ८—छल्लेदार। ९—बादशाही। १०—मसनद, तकिया। ११—सुगन्धित करूँ। १२—केवड़ा। १३—जन्म देना। १४—लड़का, बालक। १५—अहीरिन ; दूध-दही बेचने वाली। १६—नाँदों में। १७—दही।

जो तोइ री अमुक-दे[1] सोहर[2] की साध ;
तौ [वेदी] चढ़ि अमुकिचन्द ब्याहि लै ॥

कनरी

यह वर के घर विवाह के समय गाये जाने वाला गीत है। वैसे लगुन चढ़ने के समय भी गाया जाता है। कनरी (canary) एक प्रकार की चिड़िया है। कनरी-चिड़िया की उड़ान दूर की होती है। गीत-कार की कल्पना है, कि यह कनरी सारी दुनियाँ देख कर, रतनगढ़ के राव-राजा को सब हाल सुनाती है। गीत की कनरी को रतनगढ़ के राव ने बुलाया। उन्हें कनरी ने तीन शीतल-स्थान बताये, और भी अपनी पसन्द की बहुत सी बातें बतायीं— "पौरि" किसकी बड़ी है, "साजन" कौन सबसे अच्छे हैं, दुलहा कौन सब से अच्छा है, आदि—

कह-कह[3] कनरी तोहि राव बुलावें !
अरु राव ! रतन-गढ़ सीयरौ[4]।
औरु सियरी[4] मलियागिरि की छाँह ;
[भलरौ] कोयल बन सीयरौ ॥

फिर कनरी ने राव को बताया कि वह सिरे की चीज़ ही पसन्द करती है ; खोजती रहती है घूम-घूम कर ; और सिरे की चीज़ चुन लेती है। वह सिरे की चीज़ें हैं—

विरछ-विरछ करि हौं फिरी, मलियागिरि बिरछ जो होय ॥
कपड़-कपड़ करि हौं फिरी, तनसुख सौ कपड़ जो होय ॥
सहर-सहर करि हौं फिरी, अजुध्या सौ सहर जो होय ॥

१—विवाह होने वाली कन्या का नाम। २—पुत्र-जन्म के समय गाये जाने वाले गीत-बधाये ; सूतिका-गृह। ३—कह-कही, चहक बोलने वाली। ४—शीतल, ठण्डा।

पौरि-पौरि करि हौं फिरी, अमुकि चन्द[1] की पौरि जो होय ॥
सजन-सजन करि हौं फिरी, अमुक चन्द[2] से सजन जो हौंय ॥
दुलहु-दुलहु करि हौं फिरी, अमुक चन्द[3] से दुलहु जो हौंय ॥

दोनों पक्षों के लड़के व आदमियों के रंग की व्याख्या भी कर दी घूमने वाली कनरी ने :—

जैसो मोतियरा ऊजरौ, औरु धरिये सोने-थार ;
जौहरिया सों करि बीनती।
तैसें सब लड़िका ऊजरे, बैठेंगे साजन[4] पास ;
साजन[4] सों करि सजनई।
ऐसे समधी[4] हैं धूमिले,[5] बठे हट-धरिया[6] की हाट ;
हट-धरिया[6] सों करि बीनती।

और फिर वर-वधू की पड़ती हुयी भाँवरों की व्याख्या, उनका देवताओं की जोड़ी से सम्बन्ध, सभी बता रही है, रतन गढ़ के राव को यह कनरी, इस हो-रहे विवाह का हाल—

पहली भाँवरि [चाँदल][7] बसियौ,
अहिवातीं रोहिन-दे कौ घर बसौ ॥
दुसरी भाँवरि महादेव बसियो,
अहिवातीं गौरन-दे कौ घर बसौ ॥
तिसरी भाँवरि [सत्यवान][8] बसियो,
अहिवातीं सावित्री कौ घर बसौ ॥

१—वर घर के पुरखों के नाम। २—सम्बन्धी का नाम। ३—वर का नाम। ४—कन्या पक्ष के सम्बन्धी-जी। ५—धूएँ के रंग के, काले। ६—हाट में दूकान लगाने वाला। ७—चन्द्रमाँ (रोहिणी चन्द्रमा की पत्नी है)। ८—सावित्री के पति का नाम सत्यवान।

चौथी भाँवरि रामचन्द्र बसियौ,
अहिवातीं सीतल-दे कौ घर बसौ ॥
पँचयों भाँवरि श्रीकृष्ण बसियौ,
अहिवातीं रुकमिनी कौ घर बसौ ॥
छठयीं भाँवरि अमुकि चन्द बसियौ,
अहिवातीं अमुक-दे कौ घर बसौ ॥
सतईं भाँवरि दुलहा रे बसियौ,
अहिवातीं मँगेतर कौ घर बसौ ॥

* लीली *

वर द्वारा सपठौनी के हेतु गणपति-पूजन, वस्त्रधारण, पान, काजल लगाना, तिलक, आदि कार्य सम्पन्न हो चुका। वर चौक से उठता है, प्रस्थान के हेतु। माता आँचल लेती है। गीत चलता है। सपठौनी के अन्य गीतों की भाँति यह गीत भी बहुत लम्बा है। दूल्हा को दूर-स्थित ससुराल तक ले जाने वाली "लीली" घोड़ी का कुछ वर्णन —

लीलीरी मेरी लीलरिया,[1] तेरो हार पलानो[2] नरी।
तू बाट चलहि किती है तेजिन [दूरि वँह की]बाट री।
सो जो द्यौस[3] लीली बाट चालै, पियहि ठण्डौ पानियाँ।
नह सुत[4] (?) छोड़ै कछु गिनै ना, दूब चाहैं हरी-हरी।
सुरईन[5] तेरौ घिरत चाहैं, वैरी-यार[6] बखानियाँ[7] (?)।

१—लीली घोड़ी। २—गद्दी, जीन। ३—दिन में। ४—टाप (नाखून) के निशान। ५—सुरा गौ। ६—दुश्मन और मित्र। ७—प्रशंसा करना।

काहे कौ तेरो बाखड़[1] रचियो, काहे जड़ित तेरो ताजना[2] ?
सोंने कौ मेरौ बाखड़[1] रचियो, हीरा जड़ित मेरौ ताजना[2] ;
मुखहरौ[3] वाकौ रतन जड़ता, लाल लटकैं फूँदना।
पीठि पाउँ दै कें दुलहु चढ़ियौ, आँचर माता गहि रही।

परन्तु लीली की तेज़ चाल से दूल्हा को सन्तोष नहीं। वह तो और भी जल्द पहुँचना चाहता है, प्रेमाकर्षण जो है—

"छोड़हु री मेरी जननि आँचर, मोहि उमाहो[4] सजन की धीय कौ।
उमाहरौ[4] मोहि बहुत लागै, रैनि नींद न आवई।"
सो जो रैनि नोंद न द्युौस भोजन, दुलहै धनियं[5] उमाहरौ[4]।
बत्तीस हाँड़िन[6] किये हैं भोजन, दुलहै सब कछु भावई।
झाड़ी ते गड़ुअ गंगाजल पानी, दुलहै प्यास गहेलरी[7]।
सोरह सुफेदिन[8] किये हैं डासन,[9] दुलहै नींद गहेनरी[10]।
बत्तीस ढोलिन पान सूखें, दुलहै विरियाँ न भावई।

फिर ? दुलहा अकेला तो नहीं जायगा। साथ में परिवार व ननिहाल के लोग भी तो हैं। उधर कन्या-पक्ष है ! व्याकुलता और चिन्ता है महिलाओं को !—

तुम दाम-बल[11] किन करहु बाबुल[12], चारि दल हैं ऊनये[13] !
एक माय-कौ[14], दूजें बाप-कौ,[15] तीजें लाड़ी[16] के प्यौसार[17] कौ।

१—टाट का भूसा-भरा दुहरा लम्बा तकिया, जो पीठकी हड्डी को चोट से बचाने के लिये जीन के नीचे लगा दिया जाता है। २—कोड़ा, चाबुक। ३—मुँह पर बाँधने वाला घेरा। ४—उत्साह, आकर्षण। ५- सगाई-की गयी कन्या का। ६—बत्तीस प्रकार के प्रस्तुत। ७- गहरी; अधिक। ८--सफ़ेद चादरें। ९—विछौना। १०—गहन, गाढ़ी,। ११—पैसे का बल। १२—पिता का नाम। १३—खड़े ; इकट्ठे हुये। १४—ननसाल के। १५—कुटुम्ब के। १६—वधू। १७—मायका ; पीहर (यहाँ 'प्यौसार' में वधू की ननसाल वालों का चौथा दल भी सम्मिलित है)।

"तेरे चारि दल मेरो कहा रे करिहैं, भार सहैं बाबुल काकुला।
तेरे चारि दल कों भात देहों, साजन घियहि बियाहि हों।"
तुम बाहु-बल किन करहु वीरन,[1] दुलहै धनियं उमाहरौ॥
तुम शीस-बल किन करहु दूलह, सेहरो सिर सोहयै।
तुम जंघ-बल[2] किन करहु दूलह, झमकि तुरियाँ[3] पलानियाँ।

और बरात का मामला है। इतनी जल्दी करने से तो काम न चलेगा। अजकल धूप भी तेज़ होती है—

दरबार ठाड़ी माय बिनवै,[4] पूत घाम[5] बिमाइयौ[6] ॥
सो जो घाम[5] घोड़ी घाम[5] बछेड़ी, घामइ[5] लोग बरायती।
सो जो घाम लड़िलरै कौ मौरु पसींजे, पीअरि[7] मैली होइगी।
चटसार ठाढ़ी बहिन बिनवैं, बीरन तिलक संजोइयौ।
मड़यें रऊँ[8] की सासु बिनवै, आजु सजन मेरें आइयौ॥
वेदिन ऊँमो धनियाँ विनवै, आजु सखी वरु आइयौ।
"थनवारे[9] भैया होहु गहिले,[10] झमकि तुरियाँ[11] पलानियौ।
मल्लाह बेटा होहु गहिले, मो-दल[12] पार उतारियौ।"
"क्यों करि रे दूल्हा पार उतारों, को तेरे दाम-निबेरिहे[13] ?"
"हथिया चढ़ंते अजुल अमुकिचन्द,[14] वे मेरे दाम-निबेरिहें।"

महिलाओं को यह भी चिन्ता है, कि होने-वाली बधू का रूप-गुण क्या कैसा है?

१—भाई का नाम। २—जाँघो का बल। ३—घोड़ी। ४—मनाती है। ५—धूप। ६—विरमा लो, ठण्डी होने दो। ७—विवाह का पीला वस्त्र। ८—आपकी; तुम्हारी। ९—घोड़े के थान वाले, साईस। १०—प्रिय। ११—घोड़ी। १२—बरात के साथ मुझे। १३—उतराई का हिसाब चुकाना। १४—यहाँ बड़ों व छोटो के नाम, सम्बन्ध-रिश्ते के साथ, लिये जाते हैं; और गीत बढ़ता रहता है।

"कहु कहु रे चौबे के बेटा, कैसौ लाड़िलरी कौ रूप है?"
'तेरी लाड़िलरी कौ रूप बरनों, जैसे बाग़ अनारुला।"
"सहिजादरे कौ शील बरनों, जैसौ आँचरु पेखनों।"
सो जो रिमझिम रिमझिम मेह बरसि गयौ, आँगन है गई कीचं हो।
जहं बाट चलहिं मेरे रानी के अमुकिचन्द,[1] लै रे सजन की धियरुली।

और दुलहा की ओर से घर की महिलाओं को आश्वासन! माता और पुत्र की स्नेह-सिक्त वार्त्ता—

"अपनी मैया कों दासी हौं लाओं, दासी सरस अरु दायजौ।
राँधन पउन-परीसन[2] लाऊँ, अरथ गुसाँइन कुल बहू।"
"लै आउ रे मेरें चन्द्र-वदनी, देखि कें हुलसै हियो।
सो जो हियो हुलसै कमल बिहंसै, कमल भीतर मन खुशी।"
मुख चूमि मैया लेति बलैयाँ, वारि-वारि पानी पियै।
"सो जो दास दासी बौहत लाऊँ, सदा चरनन थिर रहै॥"
श्री जनक के घर सीता ही जैसी, तैसी अमुकिचन्द[3] कुल बहू।
अमुकिचन्द[4] बनड़ा जुग-जुग जीजो, वाकी बनड़ा कौ चिर अहिवात है।

* ढाम-ढमीलौ *

"घोड़े लालन" (घोड़े पर चढ़ा वर) की टेक से गीत सपठौनी के समय का मालूम होता है। परन्तु लगुन के दिन से ही यह गाया जाता है। गीत में, रास्ते के किसी ग्राम से, घोड़े पर चढ़ा वर, पीछे-पीछे जाँन (बरात) के साथ, चला जा

१—वर का नाम। २—भोजन बनाने व परोसने के लिये। ३—वर-पिता का नाम। ४—वर का नाम।

रहा है, जिसके आगे-आगे नगाड़े बजते-गरजते जाते है। गाँव के स्त्री-पुरुष कुतूहल के साथ बरात देखते हैं, और बरातियों से पूँछ कर सब हाल मालूम करते हैं—

गोविन्द चरण मनाऊँ घोड़े लालन ;
जो सुमिरें फल होय रे लाल।
ढाम[१] ढमीलौ[२] गरजि घोड़े लालन ;
निकरौ शहर मँझाय रे लाल॥
"कैहाँ जाँन[३] पहौंचे घोड़े लालन ;
कैहाँ दुलहु अजीत रे लाल ?"
"जनकपुर जाँन[३] पहौंचे घोड़े लालन,
अजुध्या उये हैं अजीत रे लाल॥"
"कै तुम राव-रजासी[४] घोड़े लालन ;
कै जोंहरिया[५] के पूत रे लाल ?"
"ना हम राव-रजासी घोड़े लालन ;
ना जोंहरिया के पूत रे लाल॥
हम तौ अमुकि चन्द[६] पन्ती[७] घोड़े लालन ;
वरिय[८] बिआहन[९] जाँय रे लाल॥
बबुल[१०] अमुकि चन्द बेटा घोड़े लालन ;
बीरन[११] दहिनी बाँह रे लाल॥
काकुल सगे के भतीजे घोड़े लालन ;
अमुकि चन्द के राज पूता रे लाल॥"

१—नगाड़े का शब्द। २—नगाड़ा। ३—बरात। ४—राव-राजा। ५—जौहरी, मणि-माणिक के व्यापारी ; ६—यहाँ वर के प्रपितामह का नाम लिया जाता है। ७—प्रपौत्र। ८—वरण (सगाई) की हुयी कन्या। ९—ब्याहने। १०—पिता। ११—भाई।

हाथी तौ चले हैं उद्म्बर[१] घोड़े लालन ;
घुड़िला चले रण-जीत रे लाल॥
ऊँटन कसे हैं नगाड़े घोड़े लालन ;
गाढ़िन जोते हैं बैल रे लाल॥
सातौ-स्वर[२] शहनाई घोड़े लालन ;
सजि सब चली है बरात रे लाल॥
सोनों तौ चलौ है लंका कौ घोड़े लालन ;
रूपौ धाँधल माँट रे लाल॥
मोती तौ चले है ढुराहुल[३] घोड़े लालन ;
संग जोंहरिया कौ पूत रे लाल॥
गहनों तौ चलौ है डबा[४] भरि घोड़े लालन ;
संग सुनरा कौ पूत रे लाल॥
कपड़ा तौ चलौ है बकुचि[५] भरि घोड़े लालन ;
संग बजाज कौ पूत रे लाल॥

और फिर इसी प्रकार गीत बढ़ता जाता है, बकसों भरी चूनरें, कुप्पी भरा ईंगुर, रोली, बेंदीं आदि, खासे[६] भरी मेवा, तबल[७] भरे पेड़े, छबरि[८] भरे पान, कुप्पी भरा चोया,[९] भाँग, तमाखू आदि बरात के साथ चलने वाली वस्तुओं की बहुतायत के वर्णन के साथ ! और फिर भी कमी हो जाय, तो उस-उस वस्तु के व्यापारी-पुत्र को बरात में साथ ले लिया गया है। [कुछ ही पहले का बरात-चित्र है, जब वर-पक्ष अपने भरोसे बरात ले जाता था, कन्या-पक्ष के माथे नहीं।] फिर—

१—मस्त। २—सरगम के सात-स्वरों से युक्त। ३—बड़े साइज़ के गोल, एकसी गुलाई के। ४—डिब्बा। ५—गठरी। ६—खासा-कपड़े के बने बोरे। ७—तबेला, बड़ा बरतन। ८—छबरिया, टोकनी। ९—कई गन्ध-द्रव्यों को मिला कर बनाया एक सुगन्ध-द्रव्य।

तम्बू तौ चले हैं कनातें घोड़े लालन ;
कसन चले गुन-खूँटा[1] रे लाल ॥
मैया तो चली है बेहनिया घोड़े लालन ;
फुफुआ चलीं चौंर ढोरें रे लाल ॥
सब कछु लीजो सुरति करि घोड़े लालन ;
कुलहिँ न आवइ लाज रे लाल ॥

सब चलीं सपठौनी के साथ, किन्तु भावज नहीं दिखायी देतीं। बताया किसी ने—"घर का सब गहना "डबा-भरि" साथ ले चले हो, वह क्या ढूँड़ी चलें ?"

"तव भावज मिस रूठीं घोड़े लालन ;
रहीं रे भुसौरा[2] सोइ रे लाल ॥"
तब देवर समुझाईं घोड़े लालन ;
"रखहु भावज मेरो मान रे लाल ॥
हाथनि पहिरहु बिजाँइठे[3] घोड़े लालन ;
गले गज मोतिन हार रे लाल ॥"

सपठौनी आदि हो गयी। अब सफ़र तय करना है, कितने बजे चल कर कहाँ कब पहुँचना होगा ? गीत चलता है—

"चिड़ियन चँहचरु[4] माड़ौ घोड़े लालन ;
चलिहौ केतिक दूरि रे लाल ॥
चाँद न उअहि जुन्हैया घोड़े लालन ;
चलहु भुराई-सी राति रे लाल ॥
[धुर] बागड़[5] वाकों कहिये घोड़े लालन ;
जँह दुलहिन कौ देसु रे लाल ॥

१—रस्से और खूँटे, तम्बू बाँधने के लिये। २—भूसा रखने का स्थान। ३—एक प्रकार के कंकण। ४—चूँ-चूँ चहकना। ५—ऊसर।

"बाटरिया[1] कँकरीली घोड़े लालन ;
निसि अँधियारी रात रे लाल ॥
बाटरिया[1] झड़वाऊँ घोड़े लालन ;
रातिन दियला उजेरों रे लाल ॥"
"द्वै जन सुमिरों बाटरियाँ घोड़े लालन ;
एक भैया एक मीत[2] रे लाल ॥
भैया तो खरच भनावै घोड़े लालन ;
मीत खवावै पान रे लाल ॥"

गीत बढ़ता ही जाता है, और बरात का रास्ता भी ; और शेष में—

अपने वर उ कौं बियाहों घोड़े लालन ;
दै बीरन अगवानी रे लाल ॥

ब्याह होने पर ही गीत समाप्त होता है।

* सगुन-चिरैया *

बरात जाने का दिन ; एक सगुन-चिरैया (ऐसी चिड़िया, जिसके दर्शन शुभ माने जाते हैं) ; वर-माता की चिन्ता ; चिड़िया से कथोपकथन ; और सुन्दर-सुन्दर घरेलू नीतिवाक्य, इन घटनाओं और वस्तुओं को लेकर गीत के ताने बाने बिने गये हैं।

"धनियँ उमाहे री रामचन्द्र, सियहिं बियाहन जाँय ॥
अहे अहे सगुन-चिरैया हो, भले-भले सगुन विचारि।
तेरे सगुन मेरे अतिलढ़[3] हो, बरिय[4] बियाहन जाँय ॥",,

१—पगडण्डी, रास्ता। २—मित्र। ३—अति-लढ़ैते (वर)। ४—सगाई की हुई कन्या को।

"जौ तुम अतिलढ़[१] जात हौ, दूधहिँ मोलु कराउ।"
"मोलु है घोड़ी बछेड़ी हो, मोलु है कपिला गाय॥"

और फिर कहा जाता है "मोलु है····छैल सुपारी, महोबे के पान, चोखे नारियल, किसमिस दाख" आदि; और गीत उन्ही शब्दों में बढ़ता है।

"जौ तुम अतिलढ़ जात हौ, घाम बिमाय[२] किन जाउ।
घामइ बदन पसीजै हो, पीयरि मैली होइ॥",
"ना गिनि[३] सुकर सनीचर हो, ना गिनि बार-कुबार।
ना गिनि मैया को पीहर हो, न रे बबुल[४] ससुरारि॥",

माता की निर्धनता है, अथवा बेबसी, अथवा मातृप्रेम का ही अभाव? मातृप्रेम का अभाव तो कदापि नहीं है—

"मैया को पीहर नीधन हो, बबुल[४] घनेरौ है लोग[५]।
अहै निरमोहिल मैया हो, कहा खाइ जायो है पूत?"
"आठ मास चोया पियौ हो, नमये में अगर कचूर।
दसयें मास होरिल[६] भये हो, आई ललाजू की आँखि।
ठाड़ां ही ठाड़ीं हम फिरीं हो, ठाड़ैंइँ रैनि बिहान॥"

और माता जब अपने निर्मोही न होने का सबूत दे चुकती है, तो फिर "ढाम-ढमीलौ" की कुछ कड़ीं, उन्ही शब्दों में, इस गीत में भी जुड़ जातीं हैं "बाटरिया कँकरीली हो........" आदि। फिर इस गीत में परदादी, दादी, काकी आदि का नाम, उनके "जाये" पुत्र के नाम के साथ, लिया जाता है। और फिर आती है कन्या के नगर में बरात की प्रतीक्षा—

१—अति लढ़ैते, यहाँ श्री वर। २—शान्त करके, ठण्डी करके। ३—मत गिनों; मत विचार करो। ४—बाप का। ५—परिवार। ६—नवजात-शिशु।

पीपरिया झकझालरी[१] हो, ताकी है सियरी छाँह।
ता तर ठाढ़ै अमुकिचन्द[२] हो, अमुकिचन्द[३] केतिक दूर?
वेदिन[४] ठाड़ीं मँगेतर[५] हो, दुलहा[६] केतिक दूर।

और कैसे शुभ-आशीर्वाद के साथ गीत समाप्त होता है—

सुरा-गऊ कौ दहिया[७] हो, मालहरे की दूब॥
सो सिर बाँधौ रामचन्द्र[८] हो, चिर-अजनाउर[९] हौंय।
आँचर बाँधौ मँगेतर हो, चिर अहिवातीं हौंय॥

* कारेगढ़ की घोड़ी *

वर की सवारी के हेतु कारेगढ़ की नामी घोड़ी मँगायी गयी है। गीत उस घोड़ी, व उसके साज, के निर्दोष सुन्दर वर्णन से प्रारम्भ होता है—

एक घोड़रि[१०] ऐ हो नवल[११] विचच्छन[१२] सुछँद[१३] सुहायी।
सो जो तेरे कारन रानी के अमुकिचन्द,[१४] कारेगढ़ से आयी॥
आई सो घोड़रि कारे भीतर सिंह दल लीली भली।
हँसुलीय घोड़ी पयाद कोमल सर्व गुन लच्छिन भली।

१—सघन। २—कन्या-पिता का नाम। ३—वर-पिता का नाम। ४—यज्ञ-वेदी पर। ५—कन्या। ६—नाम लेकर। ७—दही। ८—दूलह का नाम। ९—अजन = ब्रह्मा की आयु वाला। १०—घोड़ा। ११—नयी। १२—विचक्षण = विचित्र। १३—स्वच्छन्द प्रकृति की १४—वर का नाम।

हर हर के अमुकिचन्द[1] पन्ती[2] कारन कारेगढ़ से' आइयौ ॥
सो जो बखड़ु[3] जाकौ जीन जड़ानों; हीरा जड़ित लगाम हो।
रेशम चिमची पाट पोहे, चित्त रहसे[4] गोतिया[5]।
चिर जियहु अमुकिचन्द[6] नातो कारन कारेगढ़ से' आइयौ ॥

और फिर वर के सेहरे का वर्णन !

गूँथि मालिनरी ऐं' हो सेहर गूँथि लाई।
जहं रहसि मालिनि सेहरौ गुहि छंद एक बखानियौ।
जहाँ छन्द दौना छन्द मरुये, कुसुम और जूही भली।
शोभा अमुकिचन्द[7] चौक बैठे, माय मन रहसी भली।
चिर जियहु अमुकिचन्द[8] बेटा कारन, कारेगढ़ सें आइयौ ॥
मन बिहंसी है लेउ ऐं' हो दाई जिन यह नारो छिवाओ।

और फिर इसी प्रकार "मन बिहंसी है लेउ" रासि गिनाने वाले पंडित, उबटना करने वाली नाइन, गोद खिलाने वाली फूफू, घोड़ा पर चढ़ाने वाले कुटुम्बी-जन के नाम आदि के साथ गीत चलता जाता है।

उतारि बेहनुलि नौंन राई, आरते फूफू करें।
सो बहुअ ल्यावें बंश-रोपन, आवें गोरिय बहुअरि भलीं।
हियरा छवाछिन गीत गावें, चौक रतनन पूरियौ।
बहुअ लै मेरे अतिलढ़ आवें, धन्य यह कवि गाइयौ ॥

१—मरों के नाम। २—वर से उनका सम्बन्ध कहा जाता है। ३—बखरा, घोड़े की पीठ पर पलान आदि के नीचे रखने के हेतु सूखी घास आदि भर कर टाट का बनाया दोहरा तकिया या मुट्ठा, जो पीठ की हड्डी पर घाव बचाने के लिये पलान के नीचे रख कर कसा जाता है। ४—प्रसन्न। ५—कुटुम्बी। ६—जीवित बड़ों के नाम और उनसे वर का रिश्ता। ७—वर का नाम। ८—वर-पिता का नाम।

नगर-कलपिया

सपटौनी समाप्त हो गयी है। वर को यथा-स्थान पहुँचा कर, साथ-गयी महिलायें, वर के घर लौट रही हैं। गीत में बरात निकलने का वर्णन है। अन्तिम दो पंक्तियाँ और गीतों में भी आ चुकी हैं। गीत भगवान राम की बरात-वर्णन से प्रारम्भ होता है, और फिर कल्पना की लहरों में बहता है:—

नगर कलपिया[1] सें निकरौ हो राजा, स्यो[2] लीली असवार हो।
सहर अयोध्या सें उमड़ौ हो रामचन्द्र, स्यो[2] घोड़ी असवार हो ॥
को यह आगें को यह पाछें, को लीली असवार हो ?
दशरथ आगें भरत-जी पाछें, लछिमन-सत्रुहन लीली असवार हो ॥
दुलहु रामचन्द्र चँदन पलिकियाँ, चौंर ढुरैं चहुँ ओर हो ॥
कौन स पायौ है सहर इटायौ, कौन स पाई गुजरात हो ?
कौन स पाई है रानी सी दुलहिन, तपिबे कों राम-रसोई हो ?
दशरथ पायौ है सहर इटायौ, भरत ने पाई गुजरात हो।
रामचन्द्र पाई है रानी सी दुलहिन, तपिबे कों राम रसोई हो ॥
मेरौ दुलहुया भूँखो री प्यासौ, को रे कलेवा देय हो।
मायल हू तें सासु मयाछुर[3], लाड़ू कलेवा देइ हो।
सारी[4] दुलहा की नैना हो आँजन, नँह-सुत[5] काजर देइ हो ॥

१—सम्भवतः "कालपी" शहर के लिये प्रयुक्त है। २—शोभा को प्राप्त। ३—लाढ़ करने वाली। ४—वधू की बहिन। ५—नाखून का निशान, एक प्रेम-चिन्ह।

बड़ी बरात

बरात चलते समय के दो गीत हैं—बड़ी बरात और छोटी बरात। 'बड़ी बरात' में पहले दो बरातियों—वर और उसके एक साथी—से, रास्ते के किसी अजनवी आदमी की बात होती है।

"बीरा गंग जमुन के बीच रे, तू तौ ह्वै बनजारे बानियाँ।
बीरा कै तुम बाट-बटोही, तो कै बनजारे बानियाँ ?"
"वीरा ना हम बाट बटोही, तो ना बनजारे बानियाँ।
बीरा हम हैं अमुकि चन्द[1] पन्ती,[2] तौ वरिय[3] बियाहन हम चले।
वीरा यह मेरी बनी है बरात," तो "को-को बराती सजि चले?"

और यहाँ सम्बन्ध के साथ बरातियों का नाम ले-ले कर गीत बढ़ता है; अजनवी साधारण आदमी नहीं, पूरा मज़ाकिया है। वह दूल्हा को तो आगे निकल जाने को कह देता हैं; और पीछे आते हुये, परिगह[5] में से, चौमुच्छा गलगुच्छा रक्खे एक बराती बुज़ुर्गवार से मजाक करता है।

लट लटकें लाल पगड़ी के पेच, दुलीचा[4] रेशम पाट के।
आगें अपने दुलहु कौं लेउ, पाछे तें परिगह[5] आइयौ॥
तेरे काननि बाँधों सूप, गलगुच्छन बाँधों चालनी।
खट खटकत आवे अपत[6] कौ सूप,
चून छानति आवे चालनी॥

१-२—यहाँ सम्बन्ध के साथ उपस्थित पुरुषों का नाम लिया जाता है। ३—सगाई-की हुयी कन्या। ४—गलीचा। ५—कुटुम्ब के व सम्बन्धी। ६—निर्लज्ज।

छोटी बरात

मालिन, फूल और सुन्दर गुहा हुआ सेहरा! फिर दावात, क़लम और पढ़ा-लिखा सुजान लेखक!! यों ही गीत चलता है—

कुंज गलिन बन होय, औरु आय फिरैगी मालिनी।
को तोकौं बीनेंगौ फूल, औरु को गुहि लावेगी सेहरो ?
मलिया-कौ बीनेंगौ फूल, मालिन गुहि लावेगी सेहरो॥
काहे की मसि-दोत[1], औरु काहे की लेखनी बनी ?
सोने की मसि-दोत[1], औरु रूपे की लेखनी बनी।
कायथ-कौ[2] चतुर सुजान, लिखतु आवै लेखनी॥
अमुकिचन्द[3] चतुर सुजान, लखटकिया[4] बावुल[5] पढ़ाइयौ।
तोइ बुद्धि दई करतार[6], अच्छिर[7] दीनें सरसुती[8]॥
हथिया पलानों अमुकिचन्द आजु, बावुल वाके होहु बराइती।
पहिरैं पटोरे दच्छिन के चीर, मैया वाकी होहैं जाँनिना[9]॥

गीत की यह अन्तिम दो पंक्तियाँ प्रत्येक बराती के "तिलक" करते समय, नाम व सम्बन्ध आदि यथा-आवश्यक अदल-बदल कर, गायीं जातीं है। इसके बाद, गीत में बड़ी बरात का "लट लटकें...." से अन्त तक का अंश, उन्हीं शब्दों में (जिसके साथ वर-गृह की महिलाओं का मज़ाक-करने का रिश्ता हो, उसका नाम लेकर) गाया जाता है।

और अन्त में तैयारी, "घर बसने" की—

घर रे बसै आधी रात, रँगि लाउ रे छपिहरा[10] चूनरो।
घर रे बसै आधी रात, गुहि लाउ रे मलियरा सेहरौ॥

१—स्याही की दवात। २—कायस्थ (अथवा पटवारी) का लड़का। ३—वर का नाम। ४—लखपती। ५—पिता। ६—ब्रह्मा। ७—अक्षर-ज्ञान। ८—सरस्वती। ९-जाँन बरात से कहते है; "जाँनिनी" का अर्थ क्या बरात के साथ जाने वाली से है? १०—कपड़े पर छापा छापने वाला रँगरेज़।

रघुपति

नयी-बहू व बरात के साथ वर सकुशल वापस पहुँचने को है। बड़ी देर से प्रतीक्षा हो रही है। जहाँ बरात वापस पहुँचने के समाचार मिले, "रघुपति" प्रारम्भ हुआ; और ऊँचे पंचम-स्वर में। गीत का विषय है, श्री राम-सीता का अवध-आगमन का अह्लाद! विश्वामित्र जी बालक-द्वय ले गये थे, चक्रवर्त्ती-जी के हृदय के साथ अयोध्या सूनी कर के! आज चारौ भैया अपनी-अपनी वधू के साथ अयोध्या फिरे हैं—

रघुपति आये री देस में, परौ है अयोध्या में शोर।
घर घर अनँद बधामनों[1]॥
आये री आये हैं रही, नभ लों पहुँची घूरि।
सोने के कलिसा रुपि[2] गये, बँधि गयीं बन्दनवारि।
अँगना चन्दन लिपाय कें, पूरे गजमोतियनु चौक।
कूम कलिसु अमिरत भरौ, ऊपर अमुला की डार।
मोर-सिंहासन बैठनों॥

गीत की विषय-वस्तु का एक पहलू यहाँ समाप्त हो जाता है। त्रेता से मोड़ लेकर गीत आज की विषय-वस्तु पर आता है। बिवाह कर आये हुये भाई-भावज के सम्मुख पनींछे का आरते का थाल लेकर विवाहिता-बहिन खड़ी है, आरते के नेग पर हठ है :—

बैठे लढ़गहिले अमुकिचन्द चौक, करउ सब बिटियाँ आरतौ।
माँगौ बेटी अपनौ री नेगु, "हथिया न लैहों सवा-लाख कौ।"
हँसुला अमुक-दे के मन बसौ, "सो मोपै दओऊ न जाय।"

सुन्दर नयी हँसुली नई-बहू के हेतु बनी थी, और वह उसीके गले की शोभा बढ़ा रही है। नई-बहू से हँसुली न-देने का मौन

१—गीत-बधाये। २—स्थापित हुये।

उत्तर मिल गया, तो बहिन मीठे गुस्से से भर कर मुड़ चली—वापस, अपनी ससुराल के रास्ते पर—

वे चलीं ननदुलि वे चलीं, गहि ससुरे की गैल।

और नव-वधू ही खुशामद करती है; साथ लाये सुन्दर वस्त्रों को भेंट करती हुयी—

उलटहु ननद लड़ायती, चीर[1] पहरि घर जाउ।

परन्तु उसकी ननद तो मानती ही नहीं, राज़ी ही नहीं होती। बोलती है तैश में—

"चीर[1] कों फारि धज्जी[2] करों, चंग-सी[3] उड़ि उत जाउँ।
दस हर बीरन जोतियो, चलियो दुपहरी की सोंय।
पूत जनन्ती रे भाभी जी, जनियौ नौ दस धीय[4]।
भैया-भतीजे मेरे चिर जिऔ, भौजी कें सात-सात सौति[5]।"

हँसी भी, और काँपी भी नव-वधू! यह कैसा आशीर्वाद है? अपने भैया को तो फिर भी आशीर्वाद, और मुझे—नौ दस लड़कियाँ और सात-सात सौतें। हँस पड़ीं सब महिलायें। आख़िर नव-वधू ने अपने गले से हँसुला उतारी, और ननद की ओर बढ़ा कर कहा—

"लौटहु ननद लड़ाइतीं, हसुँली पहरि घर जाउ।

ले ली हँस कर हँसुली नँनद ने हाथ में, और अब नई-भाभी के लिये भी सब आशीर्वाद सीधे हो गये—

हँसुली पहरि ठाड़ी भई, मुरि-मुरि देति असीस।
"खायहु पहिरहु चिर जियौ, जीजो लाख-बरीस।

१—साड़ी, वस्त्र। २—टुकड़े, धज्जियाँ। ३—पतंग की भाँति। ४—पुत्रियाँ। ५—सौतें, सहपत्नियाँ।

एक हर[1] बीरन जोतियौ, और परियो दुपहरी की भन्नि[2]।
फरियो लोटन-आमनौं[3], पोढ़ै[4] मलियरे की दूब।
धियरि जनन्ती भाभीजी, जनियो नौ-दस पूत।
भैया-भतीजे मेरे चिर जियौं, भाभी कौ चिर अहिवात ॥"

❋

⁕ काग-बड़ेरौ ⁕

कौआ ? शुभ-शकुन का पक्षी ! प्रिय के आने का सम्वाद वाहक ! उसी के नाम पर, प्रतीक्षा के पश्चात्, नवागता नव-वधू को वाहनादि से उतारते समय यह गीत गाया जाता है।

देउ न बाबुल किसोरियो (?), बहुअ बिआहन जाँय।
काग बड़ेरौ बोलियौ, बहुअरि केतिक दूरि।
वह रे आई वह दोसिये, गगन लौं पहुँची है धूरि।
सोने के कलिसा दीसिये, बँधि गयी बन्दनवारि।
आनि झमंके अमुकिचन्द दूलहा, आयौ है सब परिवार।
आनि झमंके अमुकिचन्द दूलहा, लै साजन की धीय।
आनि झमंकी बहुअरि लाड़लीं, पहरें कुसुम रँग घाट।
'तैं कैसें जानी बहुअरि लाड़ली, यह है ससुर की पौरि ?"
"सोंने के कलिशा धरे, अरु झूमैं हस्ती द्वार।
सीय दुआरें अमुला [सोहे], ताकी है सियरी सी छाँह।

१—एक-चक खेती। २—ज़ोर की बारिश ! ३—लोटन नामक आम का पेढ़। ४—फैले ; उगे।

तातर ठाड़ी सासुलि हेरें, हेरें बहुअ की बाट।"
बहुअरि आवति देखि कें, सासुलि करे हैं सिंगार।
हाथन पहिरे बिजाँयठे, गले गज-मोतिन हार।
कौरे रे धरी हैं पुतरियाँ, छुटि रही नागर बेलि।
आँगन तुलसी कौ बिरुला, पुजियें सालिगराम।
बाँसनि सूखें धोतियाँ, होय वेदन झनकार।

और अब पनौंछा की क्रिया का वर्णन है।

गुनन पनौंछौ बहुअरि लाड़ली, गुनवन्ती जो होय ;
धनिन पनौंछौ बहुअरि लाड़ली, धनवन्ती जो होय।
[पुअन पनौंछौ अमुक-कुँरि बहुअरि, पुत्रवती जो होय]
[लड़ुअन पनौंछौ बहू लाड़ली, सबहि लड़ैती होय]।
ग्वालन पनौछौ बहुअरि लाड़ली, सदा सुहागिल होय।
आरते उतारे अमुक-दे बेटी, अरथ गुसाँइन भौजी होय।

और फिर नई-बहू के लिये घर में नये-नये सुखद प्रवन्ध—

मैं तुम अमुकिचन्द पालु रे, भैंसिन ठाड़ौ बँधाउ।
अमुकिचन्द बेटी लड़ायती, घिय बिनु कौरु न देइ ॥
मैं तुम अमुकि चन्द पालु रे, कपड़नि बकुच भराउ।
अमुकिचन्द भतीजी लड़ायती, पटोरन पाँव धराउ ॥
मैं तुम अमुकिचन्द पालु रे, आँगन सगरु खुदाउ।
अमुकिचन्द फूफू लड़ाइती, प्रात करै अस्नान।
मैं तुम दुलहा पालु रे, आँगन बेला लगाउ।
अमुकिचन्द बहिन लड़ायती, कलियन सीस गुँथाउ।
चाउँर भरिये दो-छरे, गुड़ रे गँड़ेरिन होय।
सो रे निकारें अमुक कुअरि, [कहें] बहुअ कलेवा लेउ।
तुम जिनि जानों सासुलि, बहुअरि फूहर होइ।
राधँन पीसन परोसन, रसुइया की शोभा बहू होय।

* सगुना *

पनींछा-उत्सव का शेष "सगुना" गीत से होता है। शुभ-शकुन का समय ; और वर्णित परिस्थितियाँ कुछ और ? मालूम होता है कि "खरक दुहावन" से लेकर "गुड़-सोंढि" तक का भाग इस गीत का अंश नहीं है। पिछली चार पंक्ति का भाव "सगुना" में ठीक बैठता है। अभी जो गीत गाया जाता है, उसकी पंक्तियाँ, "भले री माई" से आरम्भ होकर, इस प्रकार गायीं जातीं हैं।

भले री माई,

सगुना आज्ञु भले ॥
जैसे सगुना आज्ञु भले, तैसे नित-नित होंइ ॥भले०॥
खरक दुहावन हम चलीं, बछरा मारी लात।
दूध गयौ दोहनि गई, लगी कमरि में घात ॥ भले०॥
सासु पूँछें बहू दोहनी, सैंया पूँछे कहाँ चोट।
सासु बिसावें दोहनी, सैंया बिसावें गुड़-सौंठि ॥ भले०॥
पीपर पूजन हम चलीं, बायें बोलौ काग।
पीपर पूजत पिय मिलै, एक पन्थ द्वै काज ॥ भले० ॥
काहे के लाड़ू करौं, काहे सें राधों खीर।
न्योंति जिमाऊँ द्वै जने, सगी ननद के वीर ॥ भले० ॥

सुखद शेष ! खीर-खाँड़ जैसा मधुर-मीठा !! नवागता बहू से सभी का सम्बन्ध सदा ऐसा ही प्रेम-मय, खीर-खाँड़ सा मधुर-मीठा बना रहे, यही प्रार्थना और आशीर्वाद के साथ विवाह-उत्सव—

* समाप्त *

शुद्धि-पत्र

प्रेस के लौह-यंत्रकी रगड़ से ऊपर की मात्रा आदि टूट जानेके कारण छपीं कुछ अशुद्धियों को कृपया इस प्रकार हाथ से सुधार लें।

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध-शब्द	शुद्ध-शब्द
४५	२४	दशन	दर्शन
५९	९	सवसान्य	सर्वमान्य
६०	२५	पुराणां	पुराणों
६५	२३	सरवना	सखना
७५	२०	शास्त्रा	शास्त्रों
७७	३	पुण्य काय	पुण्यकार्य
८५	१९	अविप्लत	अविप्लुत
८७	१५	लड़के लिये	लड़के के लिये
९२	२	आपान हस्तपादां	आपीन हस्तपादां
९५	२३	विनिवत्तते	विनिवर्त्तते
९८	अन्तिम	हिरण्यकेचि	हिरण्यकेशि
९९	२४	ाववाह	विवाह
१६५	१९	भेज ही जातीं हैं	भेज दी जातीं हैं
१६८	२०	स्वाकति	स्वीकृति
१९४	२०	युवोरक्छिद्रासं	युवोरच्छिद्रासं
१९५	२	सुपाड़ा	सुपाड़ी
२०१	९	गौ दा भी	गौ दी भी
२०१	२०	दान मे दा जाने	दान में दी जाने
२०९	२२	ज्नानां	ज्ञनानां
२११	९	कार्यां	कार्यों
२१३	६	कन्यादावा	कन्यादावी
२१९	९	नेवां	नेवों
२२२	८	अचतां	अचतों
२२८	७	कन्या का	कन्या को
२५७	१६	ह	हैं
२६२	२१	अपना	अपनी
२७८	१६	नाचे बैठ	नीचे बैठ
२९१	६	एक झाड़ा	एक झाड़ी
२९१	१२	काँच की चूड़ा	काँच की चूड़ी
२९१	अन्तिम	का १० सेट	की दस सेट
२९५	३	अन्य स्थानां	अन्य स्थानों
२९५	१५	घर दे दा जातीं	घर दे दी जातीं
२९८	१०	वर-पच्च का	वर-पच्च की
२९९	अन्तिम	वर-वधू लोट कर	वर-वधू लौट कर
३००	१०	उद्देश्य का पूर्त्ति	उद्देश्य की पूर्त्ति
३०१	१५	ओर	और
३०७	११	बिजला हो	बिजली हो
३०८	३	"सोध"भा	"सोध"भी
३०९	१५	उसका सूचना	उसकी सूचना
३१०	१९	सुपाड़ा	सुपाड़ी
३१२	८	दर्जा	दर्जी
३१४	५	खिलाता है	खिलाती है
३१४	२३	भाई-बन्धु आं	भाई-बन्धु ओं
३१७	२०	बुलाने पर हा	बुलाने पर ही
३३१	अन्तिम	साड़ा दी जाती	साड़ी दी जाती
३४३	२३	कार्यां	कार्यों
३४५	८	बहू का	बहू को
३४६	अन्तिम	चारो और	चारो ओर
३५०	७	पूजा करता है	पूजा करतीं हैं
३५०	१८	बान्धवा	बान्धवों
३६१	१	इतनां	इतनों
३७५	११	माठी बाल	मीठी बाल
३७५	२१	पैरां	पैरों
४०५	१०	नटां	नटों
४१६	१५	पुता दान मे	पुत्री दान में
४१७	५	फूँद-फुँदारा	फूँद-फुँदारी
४२१	अन्तिम	ठिक	ठीक
४२९	४	तान	तीन
४२९	१६	वारा	वीरा
४३१	फुटनोट	कलारों	५—कलारों

With best compliments from :

MUNDRA & COMPANY

8, Biplabi Rashbehari Basu Road,
Calcutta-1

Phone : 22-7129
22-1044

And Associates :

SHANKAR ENGINEERING & MOULDING CO

8, Biplabi Rashbehari Basu Road,
Calcutta-1

&

MUNDRA MILL STORES CO.

138, Biplabi Rashbehari Basu Road,
Calcutta-1

Phone : 22-1557

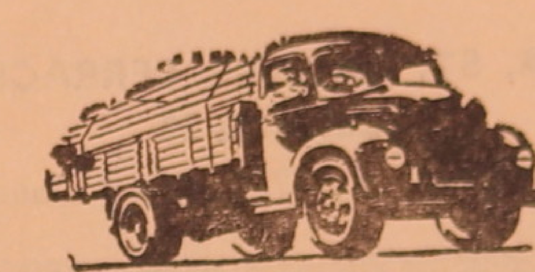
SAVE TIME & MONEY

For Quick & Safe Despatch of Your Goods by Roadways—

Consult :

AMALGAMATED ROADWAYS

Always Reliable,
Dependable & Economical.



AMALGAMATED TRANSPORT

Head Office :

30/31 Kalakar Street,
CALCUTTA

Phone No : Office : 33-3637 & 1827
Residence : 33-9544

Branches :

SILIGURI
JALPAIGURI
DHUPGURI
CHANGRABANDA
COOCHBEHAR.

DARJEELING
KALIMPONG
KURSEONG
GHOOM
MATHABANGA

With best compliments from :

S. A. E. (INDIA) LIMITED

Electrical & Mechanical Engineers

16A, ST. GEORGE TERRACE
Calcutta 22
Telephone : 45-4706 (Two Lines)

P. N. INDUSTRIES

ENGINEERS AND RE-ROLLERS

Manufacturers of :

M. S & H. C. ROUNDS, SQUARES, FLATS, ANGLES & GATE-CHANNELS.

Office :

40B, Sudhir Chatterjee Street,
Calcutta-6.
Telephone : 34-8730

Factory :

Mullar Haat, Agarpara
P. O. Kamarhatty (24 Parganas)

Metal Press Works Ltd.



165, Lower Chitpore Road,
Calcutta-1.

Telegram : CHATURVEDI

Telephone : 34-1865
Post Box No. 2036

For everything electricals, Please Consult the premier-most Concern :—

Messrs **BAIJNATH CHOUBEY & CO.,**
37-39, EZRA STREET,
CALCUTTA-I.

Authorised Dealers for :

Phillips, G. E. C., A. E. I., Johnson & Phillips, Voltas, Gloster Cable, I. C. C., India Fan, Clyde Fan, etc., etc.

Gram : "PEELKNIVES"

Phone : 22-0987.
22-4798.

COSMOPOLITAN TRADING COMPANY

138, CANNING STREET, G. P. O. Box No. 499
CALCUTTA-I.

Importers & Stockists of :

ALL KINDS OF WELDING ACCESSORIES

H. O.

NACHHATTAR TRADERS.

P-14, New C. I. T. Road,
Calcutta-12.

Main Branch Office :

D. D. T. S. Sevoke Road,
Siliguri.

Branches at :

HASHIMARA ★ BAGRAKOTE ★ BENGDUBI
CHALSA ★ RANGPO ★ BINAGURI
KALIMPONG ★ PATNA.

Civil & Military Contractors : General Order Suppliers.

तार—वालसोकिट

फोन नं—३४-६२९८

हर तरह का बिजली का सामान—कनड्यूट पाइप, फिटिङ्ग, बत्ती, पंखे, स्विच, तार, स्टार्टर, वगैरह सब प्रकार के एप्लायन्स आदि के लिये—

U. L. CHOUBEY & CO.

यू. एल. चौबे एण्ड कों

१२, रवींन्द्र सारनी
कलकत्ता

With best compliments from :

KUMAR TRADERS

95, Kali Prasanna Sinha Lane,
Calcutta-2.

Manufacturers of :
All Kinds of Electrical goods and
Order Suppliers.

आयुर्वेद का वरदान



असली
बंशलोचन

बच्चों युवा एवं वृद्धों को महान पौष्टिक
तथा गर्भवती स्त्रियों के लिये
विशेष रूप से हितकारी

लखपत राय
सम्पत राय साध
कलकत्ता-७

१४ मल्लिक स्ट्रीट

With best compliments from :

★

Shri Ram Silk

Manufacturing Co.

14, NETAJI SUBHASH ROAD,
CALCUTTA-1.